अष्टछाप के महाकवि



ब्रज कोकिल नन्ददास

सम्पादकः

भगवती प्रसाद देवपुरा

अष्टछाप के महाकवि

"ब्रज-कोकिल : नन्ददास"

सम्पादक

भगवती प्रसाद देवपुरा

साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

★ प्रकाशक:

भगवती प्रसाद देवपुरा
प्रधानमंत्री
साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा
☎ ०२९५३–३०७८५

★ प्रकाशन वर्ष:

संवत् २०५५ वि॰, सन् १९९९ ई॰

★ मूल्य:

एक सौ पचास रुपये मात्र

★ प्रथम संस्करण:

एक हजार प्रतियाँ

★ लेजरटाईप सेटिंग:

मेवाड़ कम्प्यूटर एण्ड प्रिन्टर्स,
एस.१९, मुल्लाह तलाई, उदयपुर
☎ ५६०५६४

★ मुद्रक:

हरिहर प्रिण्टर्स,
जे–97, अशोक चौक, आदर्श नगर, जयपुर

निवेदन

मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष और सन्तोष है कि इस वर्ष हम पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह के शुभ अवसर पर अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि श्री नन्ददास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक सम्पूर्ण ग्रंथ हिन्दी संसार के समक्ष समुपस्थित कर रहे हैं। ग्रंथ में कवि से सम्बद्ध काव्य ग्रंथो को संकलित करते हुए कुछ छोटे ग्रंथो को परिचयात्मक ढंग से भी प्रस्तुत किया है। कुछ अपरिहार्य कारणों से हमें महाकवि के बड़े ग्रंथों को संक्षिप्त भी करना पड़ा किन्तु उसमें भी यह ध्यान अवश्य रखा गया है कि उनके काव्य प्रवाह में अवरोध न हो।

एक ही व्यक्ति के बारे में, सम्पूर्ण प्रवाह से तो एक ही लेखक को लिखने में सुविधा रहती है किन्तु उसी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर देश के विशिष्ट साहित्यकारों से लेख मंगाकर उसे व्यवस्थित रूप से संकलित कर प्रकाशित करना अत्यन्त कष्ट कर है, फिर भी संस्था के प्रधानमंत्री श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा ने अनवरत अस्वस्थ रहते हुए भी अपने सहयोगी बन्धुओं को साथ लेकर तथा परिश्रम कर यह ग्रंथ आप महानुभावों के समक्ष रखा है, इसके लिए मैं श्री देवपुरा और उनके साथियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

सदैव की भाँति डा. विष्णुचन्द्रजी पाठक जयपुर एवं श्री रामशरणजी पीतलिया कामवन का अपूर्व सहयोग मिला है। निश्चित ही ये महानुभाव भी संस्था से सम्बद्ध होने के कारण अपने ही हैं, फिर भी मैं कृतज्ञता स्वरूप इनका आभार मानता हूँ। श्री पुरुषोत्तमजी पालीवाल, श्री श्यामप्रकाश देवपुरा, श्री संजय देवपुरा, श्री मधुसूदन गोरवा, सुश्री हेमाली व्यास और श्री राकेश अजमेरा को भी हृदय से धन्यवाद, जिन के सहयोग ने ग्रंथ को मूर्त्त रूप दिया है।

❊ मनोहर कोठारी

सम्पादकीय

'अष्टछाप के महाकवि: ब्रजकोकिल नन्ददास' ग्रंथ को हिन्दी संसार के समक्ष रखते हुए अपार हर्ष है। हिन्दी में सूरदास के साहित्यिक जीवन पर जितना कार्य हुआ है, नन्ददास पर उतना कार्य आज तक नही हो सका है, हालांकि सभी प्रबुद्ध साहित्यकार अष्टछाप में सूरदास के अनन्तर नन्ददास का नाम ही सर्वोपरि मानते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय (शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय) में भी जितना महत्व सर्वश्री कुम्भनदास, परमानन्द दास, गोविन्द स्वामी, कृष्णदास, छीत स्वामी और चतुर्भुज दास को मिला है, उतना नन्ददास को नहीं।

इस दृष्टि से इस वर्ष पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह के अवसर पर 'नन्ददास-ग्रंथ' तैयार करने का विचार बना। उसे मूर्त्त रूप देने के लिए देश के विशिष्ट विद्वानों से नन्ददास के जीवन चरित्र एवं कृतियों के बारे में अपने तथ्यपरक निबन्ध भिजवाने का निवेदन किया गया। मुझे अत्यन्त हर्ष है कि अनेक विद्वानों ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक निबन्ध तैयार कर ग्रंथ को पूर्ण करने में अपना उदारतापूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

इस अवसर पर मैं उन सभी विद्वानों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मुझे तो श्री नन्ददासजी पर प्राप्त निबन्धों को पढ़ने और उनसे सम्बद्ध ग्रंथों के अध्ययन में अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है- इसे प्रभु श्रीनाथजी की अहेतु कृपा ही कही जा सकती है। अतः यह ग्रंथ उन्हीं प्रभु की सेवा में सादर समर्पित है।

श्री पुरूषोत्तमजी पालीवाल, श्री श्याम प्रकाश देवपुरा, सुश्री हेमाली व्यास, श्री संजय देवपुरा, श्री मधुसूदन गोरवा, श्री राकेश अजमेरा को भी हार्दिक धन्यवाद, जिनकी सहायता के बिना यह कार्य समय पर सम्पन्न होना सम्भव नहीं था।

पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह १९९९ ई.

★ सम्पादक



श्री मोतीलाल जी राठी

आभार

श्री मोतीलाल जी राठी

शिष्ट-मिष्ट स्वभावयुक्त श्री मोतीलालजी राठी, नाथद्वारा नगर के विशिष्ट मीना व्यवसायी हैं। ये स्थानीय व्यापारी संघ के वर्षों अध्यक्ष रहे हैं, वर्तमान में ये राजस्थान सर्राफा संघ की कार्यसमिति के सदस्य हैं।

धर्म, दर्शन, अध्यात्म, वेदान्तादि में रुचि होने के कारण इन्होंने व्यवसाय में शुद्धता, गुणवत्ता और ईमानदारी का सदैव ध्यान रखा है।

निर्मल चरित्र एवं अद्भुत प्रतिभा के धनी श्री मोतीलाल जी राठी अपने प्रगतिशील विचारों के कारण माहेश्वरी समाज में तो पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हैं ही, अपनी उज्वल छवि एवं प्रशंसनीय कार्यों के फलस्वरूप नगर में भी गौरव-गरिमा से मण्डित हैं।

अध्यव्यवसाय और शिक्षा में रुचि रखते हुए इन्होंने एक ओर शैक्षिक एवं साहित्यिक संस्थाओं को अनुदान देकर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त किया है, वहीं दूसरी ओर छात्रों को प्रोत्साहन, छात्रवृत्ति एवं समुचित आर्थिक सहायता प्रदान कर, उनकी उन्नति में योगदान दिया है।

अपने जीवन के पचहत्तर बसन्त पूर्ण करने के उपलक्ष्य में अभी कुछ ही समय पूर्व नगरीयस्तर पर इनका अमृत महोत्सव आयोजित किया गया था।

'ब्रज कोकिल महाकवि नन्ददास' ग्रंथ के प्रकाशन में प्रशंसनीय सहयोग प्रदान करने के उपलक्ष्य में साहित्य-मण्डल परिवार श्री राठीजी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हुआ इनके सुदीर्घ जीवन की कामना करता है।

— साहित्य-मण्डल परिवार

अष्टछाप के महाकवि

"ब्रज-कोकिल : नन्ददास"

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
✪ निवेदन		३
✪ सम्पादकीय		४
१. नन्ददास का आविर्भाव	सुश्री हेमाली व्यास	६
२. बहुमुखी प्रतिभा के धनी : नन्ददास	डा. विष्णुचन्द्र पाठक	१२
३. भक्त प्रवर : नन्ददास	डा. श्रीमती कमला मुखिया	१७
४. प्रेम पथ के पथिक : श्रीनन्ददास	डा. सुरेश पाण्डेय	१६
५. नन्ददास के काव्य में श्रृंगार और भक्ति का समन्वय	डा. रमेशचन्द्र मिश्र	२६
६. नन्ददास का भाषा सौष्ठव	डा. श्यामसुन्दर व्यास	३२
७. भ्रमरगीत परम्परा में महाकवि नन्ददास	श्री लक्ष्मीचन्द्र शर्मा 'मयंक'	३५
८. जनश्रुतियों के झरोखे से: महाकवि नन्ददास	डा. त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल	४१
६. श्रीमद्भागवत और कवि नन्ददास का भ्रमरगीत	डा. श्रीमती सुषमा शर्मा	४७
१०. श्रीनन्ददासजी का ब्रजवर्णन	डा. श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया	५३
११. नन्ददास की रासपंचाध्यायी : एक अनूठी रचना	डा. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ	५८
१२. नन्ददास की रासपंचाध्यायी में श्रीकृष्ण का स्वरूप	साहित्य महोपाध्याय डा. चक्रधर नलिन	७२
१३. नन्ददास की पुष्टिमार्ग में शरणागति (काव्यमय)	श्री रामशरण पीतलिया	७६
१४. नन्ददास और उनका शरणकाल	डा. विष्णु विराट चतुर्वेदी	८४
१५. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के निरूपणकर्त्ता श्रीनन्ददास	श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा	८७
१६. नन्ददास का यमुना वर्णन	डा. कैलासचन्द्र भाटिया	६१
१७. नन्ददास की रासपंचाध्यायी : लौकिक–पारलौकिक पक्ष	श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी	६५
१८. श्रीनन्ददास की भक्ति	श्री गोपेशशरण शर्मा 'आतुर'	६८
१६. नन्ददास का काव्य सौष्ठव	डा. रामदास शर्मा	१०५

२०. महाकवि नन्ददास की रचनाएँ	डा. सुरेन्द्र शर्मा	१०८
२१. मुख स्फुरत न बानी, प्रेम रस पुंजनी : श्रीनन्ददास	डा. श्रीमती विमला पाण्डेय	११८
२२. "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया"	श्री रामशरण पीतलिया	१२३
२३. नन्ददास की जोगलीला : एक समीक्षा	डा. ब्रजबिहारी निगम	१२८
२४. नन्ददास के विरह के पद	डा. रमेशचन्द्र मिश्र	१३४
२५. नन्ददास के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती भ्रमरगीत	श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा	१४३
२६. नन्ददास के काव्य में श्रृंगार का विशद वर्णन	श्री देवकीनन्दन कुम्हेरिया	१६४
२७. पद लालित्य और भाषा माधुर्य के धनी : श्रीनन्ददास	श्री मनोहर कोठारी	१७०
२८. भक्तिभावना एवं भाव प्रवणता के अनन्य कवि श्रीनन्ददास	श्री श्यामप्रकाश देवपुरा	१७२
२६. श्याम सगाई	श्री पुरुषोत्तम पालीवाल	१७४
३०. श्री नन्ददास का राम–कृष्ण वन्दन	श्री संजय प्रकाश देवपुरा	१८०
३१. हिन्दी साहित्य और अष्टछाप के नन्ददास	श्रीधर डा॰ जगदीश लवानिया	१८२
३२. रासपंचाध्यायी	डा. श्रीमती पुष्पा चौरसिया	१८६
३३. गोसाईं चरित और भक्तमाल में नन्ददासजी	डा. घनश्याम व्यास	१६२
३४. नन्ददास और उनकी कृतियाँ	डा. श्रीमती पुष्पा चौरसिया	२०१

नन्ददास के काव्यग्रंथ

१.	**श्री गुरु विट्ठलनाथ स्तवन**	२०३
२.	**रासपंचाध्यायी**	२०५
३.	**श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी**	२११
४.	**भंवरगीत**	२१५
५.	**सुदामा चरित**	२२६
६.	**गोवरधन लीला**	२२६
७.	**रुक्मणी मंगल**	२३२
८.	**नाममाला**	२४०
९.	**रूपमंजरी**	२४५
१०.	**रसमंजरी**	२४८
११.	**विरहमंजरी**	२५४
१२.	**अनेकार्थ ध्वनि मंजरी**	२६०
१३.	**कुछ पद**	२६३
१४.	**भाषा दशम स्कन्ध**	२७३

नन्ददास पर साहित्यकारों के विचार

१.	श्रीगुसाईजी के सेवक नन्ददासजी, तिनकी वार्ता	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	३००
२.	श्री नन्ददास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	३०४
३.	श्री नन्ददास	हिन्दी साहित्य शब्दकोश भा-२	३०५
४.	श्री नन्ददास	डा. रामकुमार वर्मा	३०८
५.	नन्ददास के जीवन चरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा	डा. दीनदयाल गुप्त	३१५
६.	अष्टछाप कवियों में नन्ददास	डा. नगेन्द्र	३१६
७.	श्री नन्ददास	श्री गुलाबराय एम.ए.	३१७
८.	नन्ददास	श्री ब्रजेश्वर वर्मा	३१६
६.	बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रीनन्ददास	डा. विजयेन्द्र स्नातक	३२०
१०.	नन्ददास	श्री क्षेमचन्द्र सुमन	३२२
११.	सूरदास और नन्ददास की गोपियाँ	डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी	३२२
१२.	नन्ददास	श्री देवीशरण रस्तोगी	३२४
१३,	नन्ददास का भंवरगीत : बुद्धिपक्ष की न्यूनता का पूरक	श्री राजनाथ शर्मा	३२६
१४.	भ्रमरगीत परम्परा में नन्ददास	डा. लक्ष्मीनारायण चातक एवं डा. राज कुमार पाण्डेय	३२७
१५.	नन्ददास	श्री सुरेशचन्द्र गुप्त एवं श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार	३२८
१६.	नन्ददास का भ्रमरगीत	डा. गोविन्द त्रिगुणायंत	३२६
१७.	नन्ददास	श्री श्यामचन्द्र कपूर	३३०
१८.	भक्त श्री नन्ददासजी	"कल्याण" भक्त चरितांक से	३३२
१६.	श्री नन्ददास	डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	३३३
२०.	अष्टछाप के कवि नन्ददास का काव्य	श्री प्रभुदयाल मीतल	३३४
२१.	नन्ददास का भ्रमरगीत	डा. कृष्णदेव झारी	३३६



नन्दनन्दन का वन विहार

विहरत विपिन विहार उदार रसिक नँदनन्दन।
नव कुमकुम घनसार चारू चिर्चित तन चन्दन।।
अद्भुत साँवल रूप अंग बन्यौ पीत वसन तनु।
मूरत धरे श्रृंगार प्रेम अम्बर ओढ़े जनु।।
विलुलित उर वनमाल लाल जब चलत चाल वर।
कोटि मदन की भीर उठत छबि लुठत चरग तर।।

– नन्ददास– रासपंचाध्यायी



नन्ददास का आविर्भाव

✍ सुश्री हेमाली व्यास

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के पश्चात् श्री नन्ददास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ये बहुमुखी प्रतिमा सम्पन्न थे। ब्रजभाषा सहित्य में इनका सरस काव्य और कोमलकान्त पदावली अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

हिन्दी साहित्य के प्राचीन कवियों का जीवन वृत्तान्त ज्ञात करना जितना कठिन है उतना ही नन्ददास के जीवन के बारे में जानकारी करना कठिन है। यों "दो सौ बावन वैष्णवन् की वार्ता" में इनका जीवन चरित्र दिया हुआ है, किन्तु इनकी काव्य कृतियों के बारे में उक्त 'वार्ता' भी मौन है और स्वयं नन्ददास ने भी अपने बारे में अपने काव्यग्रन्थों में कोई उचित उल्लेख नहीं किया है। अतः विद्वानों का इनके जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है।

'वार्ता' के पश्चात् इनके बारे में थोड़ा बहुत उल्लेख 'नाभाजी की भक्तमाल' के निम्नलिखित छप्पय से होता है–

''लीला-पद-रस रीति-ग्रन्थ-रचना में नागर।
सरस उक्ति-युत युक्ति, भक्ति-रस-गान-उजागर।।
प्रचुर पयध लौं सुजसु रामपुरग्राम-निवासी।
सकल सुकल-संबलित भक्त-पद-रेनु उपासी।।
चन्द्रहास-अग्रज सुहृद, परमप्रेम-पथ में पगे।
श्री नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित रंग मगे।।''

उक्त छप्पय से इतना तो ज्ञात होता ही है कि नन्ददास रामपुरग्राम के निवासी थे और चन्द्रहास अग्रज से इनकी अनन्य मित्रता थी। ये भी बहुत प्रचलित है कि श्री नन्ददास गोस्वामी तुलसीदास के छोटे या बड़े भाई थे। बाबू राधाकृष्णदास ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है– "२५२ वैष्णव की वार्ता" में नन्ददास सनौढिया ब्राह्मण के छोटे भाई व रामानन्दजी के शिष्य थे।" इसी प्रकार मिश्र बन्धु विनोद में " उन्हें 'केवत' ब्राह्मण व गोस्वामी तुलसीदास का छोटा भाई बताया गया है।" 'केवत' का अभिप्राय 'कान्यकुब्ज' से है। लेकिन "२५२ वैष्णव की वार्ता" ने न तो नन्ददास को सनौढिया होना लिखा न 'केवत' ब्राह्मण। उसमें तुलसीदास का भाई होने का उल्लेख अवश्य है। किन्तु ये गोस्वामी तुलसीदास ही थे, यह सिद्ध नहीं होता है।

राजा प्रतापसिंह ने अपने 'भक्तकल्पद्रुम' ग्रंथ में नन्ददास को नाभाजी के अनुसार ही रामपुर निवासी चन्द्रहास का पुत्र माना है किन्तु चन्द्रहास का पुत्र

लिखना गलत है। वार्ता में उल्लेखित "नन्द" गोस्वामी तुलसीदास के छोटे भाई थे किन्तु इस बात को अनेक साहित्यकारों ने नकारा है। हिन्दी के इन मान्य साहित्यकारों ने २५२ वैष्णव की वार्ता को भी प्रामाणिक नहीं माना है, किन्तु हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार श्री वियोगी हरि ने लिखा है– "इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि वार्ता में उल्लेखित चरित्र असत्य है। वार्ता अक्षरशः सत्य है किन्तु उससे यह ध्वनि जरा भी नहीं निकलती कि नन्ददास कहाँ के निवासी थे, किस तुलसीदास के भाई थे और किस जाति के थे ?"

सौरों जिला 'एटा'से उपलब्ध बहुमूल्य ग्रंथ सामग्री से गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददास के जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इसके अध्ययन से नन्ददास के जीवन वृत्तान्त का पूर्णतया ज्ञान होता है तथा वार्ता के कथनकी भी पुष्टि हो जाती है, किन्तु डा॰ माताप्रसाद ने इसकी प्रामाणिकता में भी संदेह व्यक्त किया है। इन सब से स्पष्ट है कि नाभाजी के भक्तमाल का कथन ही सर्वाधिक प्रामाणिक है। इस सम्बन्ध में श्री रामरतन भटनागर अपने 'नन्ददास : एक अध्ययन' में कहते हैं– "हो सकता है, नाभादास ने यह समझा हो कि नन्ददास से तुलसीदास का संबन्ध दिखाने और फिर उन्हें कृष्णभक्त कहने से तुलसीदास की महत्ता में कमी आ जायगी कि इनके भाई कृष्णभक्त हुए। या चन्द्रहास भी भक्त हो और नाभादास से परिचित हों और इस परिचय के आग्रह से नाभादास ने उनका नाम लेना अच्छा समझा हो।"

'बाबा वेणीमाधवदास' ने अपने 'मूलगुसाईं चरित्र' में नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का गुरू–भाई लिखा है और उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है। इसी के आधार पर 'सुकवि सरोजकार' ने भी नन्ददास को तुलसीदास का भाई माना है। इस ग्रंथ को भी 'डा॰ माता प्रसाद' ने प्रक्षिप्त अंश माना है।

श्री रामचन्द्रशुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते है–

"गोस्वामीजी का नन्ददास से कोई सम्बन्ध नहीं था।"

इन बाह्य साक्ष्यों के पश्चात् हमें नन्ददास की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य से भी उनके बारे में कई बातें ज्ञात होती हैं। निम्नलिखित उद्धरणों से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना अपने किसी रसिकमित्र के लिए की थीं।

1. *''परम रसिक इक मित्र, मोहिं तिन आग्या दीनीं।*
ताहीं तें यह कथा यथामति भाषा कीनीं।।

- रासपंचाध्यायी

2. *एक मीत हम सों असगुन्यौ।*
मैं नायिकाभेद नहिं सुन्यौ।।

- रसमंजरी

3. *परम विचित्र मित्र इक रहै।*
कृष्ण-चरित्र सुन्यौ जो चहै।।
तिन कहि दसमस्कंध जो आहि।
भाषा करि कछु बरनौ ताहि।।

- *दशमस्कंधभाषा*

किन्तु इस मित्र का परिचय नन्ददास की रचनाओं में कहीं नहीं दिखता। श्री वियोगी हरि ने इस मित्र को पुष्टिमार्ग पुष्टि की सेविका 'गंगाबाई' के तथा डा.दीनदयालगुप्त ने रूपमंजरी के रूप में माना है किन्तु श्री महावीरचन्द्र गहलोत ने इसे अस्वीकार किया है। प्राचीन ग्रंथों की खोज में नन्ददास की निम्नलिखित रचना प्राप्त हुई है जिसमें उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की अग्रज के रूप में चरणवन्दना की है–

''श्रीमतुलसीदास स्व गुरु भ्राता पद बंदे।
सेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे।।

'नन्ददास' के हृदय-नयन कों खोलेउ सोई।
उज्वल रस टपकाय दियौ, जानत सब कोई।।''

श्रीद्वारिकादास पारीख ने अपने ''श्री गोकुलनाथ के वचनामृतों का संग्रह'' नाम ग्रंथ में नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का भाई ही माना है। हरिरायजी कृत 'अष्टसखान की वार्ता' में श्रीनन्ददास को सनाढ्य ब्राह्मण माना है। सौरों के 'सूकर क्षेत्र महात्म्य' और 'रत्नावली चरित्र' से भी नन्ददास का जीवन चरित्र ज्ञात होता है। उसमें भी वे गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई ही बताये गये हैं।

नन्ददास का जन्म अनेक साहित्यकारों के अनुसार संवत् १५६० के लगभग स्वीकार किया जाता है। डा॰ श्यामसुन्दरदास, डा॰ दीनदयाल गुप्त, श्री द्वारिकादास पारीख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल संवत् १५६० को ही उनका जन्म संवत् मानने के पक्ष में हैं इसी प्रकार उनकी मृत्यु का संवत् १६४० माना जाता है। संवत् १६२४ के लगभग संसार से विरक्त होकर वे गोवर्द्धन चले गये थे और वहाँ पर मानसी गंगा के किनारे उन्होंने अपना स्थाई निवास बना दिया। अपना शेष जीवन उन्होंने वहीं श्रीनाथजी के भजन–कीर्तन तथा ग्रंथ रचना में लगाये रखा और संवत् १६४० में मानसी गंगा के किनारे एक पीपल वृक्ष के नीचे अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया।

अष्टछाप कवियों में श्री नन्ददास अपना महत्वपूर्ण स्थान् रखते हैं।

साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

बहु मुखी प्रतिभा के धनी : नन्ददास

डा. विष्णुचन्द्र पाठक

महाकवि नन्ददास क जन्म, जन्मस्थल एवं जीवन परिचय के सम्बन्ध में हिन्दी संसार के विद्वानों में बहुमत मतभेद है। अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास ने भी अपने ग्रंथों में अपने बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इनके बारे में विस्तृत वर्णन दिया गया है। जिसका उल्लेख संस्था द्वारा प्रकाशित इसी "ब्रज–कोकिल : नन्ददास" ग्रंथ में विस्तार से किया जा चुका है। अतः यहाँ इसकी पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं। श्रीनाभादासजी ने अपने भक्तमाल में नन्ददासजी के बारे में निम्नलिखित छप्पय लिखा है –

लीलापद रसरीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस-उक्ति जुत जुक्ति भक्ति-रस गान उजागर।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल सम्वलित भक्त पद रैनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।

श्री ध्रुवदासजी ने अपने 'ध्रुव सर्वस्व' नामक ग्रंथ में इनके बारे में इनके जीवन घटनाओं की अपेक्षा इनके यश और भक्ति–भावना के बारे में इस प्रकार लिखा है –

नन्ददास जो कछु कहयौ राग रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेहमय सुनत श्रवण उठ जागि।।
रमन दसा अदभुत हुती करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जलधार।।
बाबरो सौ रस में फिरै खोजत नेह की बात।
आछे रस के वचन सुनि बेगि विवस है जात।।

वे बाबा श्री वेणीमाधवदास ने भी अपने "मूलगोसाईं चरित" में इन्हें कान्य–कुब्ज ब्राह्मण, शेषसनातन का शिष्य तथा गोस्वामी तुलसीदास का गुरू भाई लिखा है।

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े। जिन शेषसनातन तीर पढ़े।
सिच्छा गुरूबंध भये तेहि ते। अति प्रेम सों आय मिले वहि ते।

स्व. बाबू श्रीराधाकृष्णदास ने अपने द्वारा सम्पादित 'रासपंचाध्यायी' की भूमिका में नन्ददास को सनौढिया ब्राह्मण तथा तुलसीदास का छोटा भाई माना है। उन्होंने इन्हें पूर्व देश का रहने वाला और रामानन्द का शिष्य भी लिखा है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में भी इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण तथा गोसाईं जी का छोटा का भाई माना है। 'सूकर क्षेत्र महात्म्य' नामक ग्रंथ में इनके पुत्र कृष्णदास ने इन्हें तुलसीदास का चचेरा भाई कहा है। इसी प्रकार मुरलीधर चतुर्वेदी द्वारा रचित 'रत्नावली चरित्र' नामक पुस्तक में इन्हें 'सौरों' निवासी तथा तुलसीदास का चचेरा भाई माना है। जबकि भक्तमाल में इन्हें रामपुर निवासी माना है। गो. हरिरायजी कृत अष्टसखान् की वार्ता में इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बताया है। श्री द्वारकादास पारीक इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का छोटा भाई मानते हैं।

इसी प्रकार इनके जन्म के बारे में भी पर्याप्त मतभेद हैं। कंठमणिजी शास्त्री ने इनका जन्म स्वत् १५७०; डा॰ श्यामसुन्दरदास, डा॰ दीनदयाल गुप्त तथा द्वारकादास पारीक इनका जन्म संवत् १५९० मानते हैं। किन्तु 'सुकवि सरोज' में संवत् १५९४ में इनका जन्म बताया है।

इनके अधिकांश ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि इन्होंने आपने ग्रंथों की रचना अपने एक मित्र के लिए की हैं। निम्ननिखित उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होती है –

1. **परम रसिक इक मित्र, मोहिं तिन आग्या दीनीं।**
   ताहीं ते यह कथा, यथामति भाषा कीनीं।।

   - रासपंचाध्यायी

2. **एक मीत हम सों अस गुन्यौ।**
   मैं नायिकाभेद नहिं सुन्यौ।।

   - रसमंजरी

3. **परम विचित्र मित्र इक रहै।**
   कृष्ण-चरित्र सुन्यौ जो चहै।।
   तिन कहि दसमस्कंध जो आहि।
   भाषा करि कछु बरनौ ताहि।।

   -दसमस्कंध भाषा

नन्ददासजी ने अपने इस मित्र का नाम अपनी रचनाओं में नहीं लिया है। श्री वियोगी हरि ने अपने ग्रंथ 'ब्रजमाधुरी सार' नामक अपने ग्रंथ में इस मित्र का सम्बन्ध गंगाबाई से जोडा है। तो डा॰ दीनदयाल गुप्त ने उसका सम्बन्ध रूपमंजरी की मित्रता से बताया है।

यह सब व्रर्तान्त उनके बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व का है। संवत् १६०२ में गुसाईं विट्ठलनाथजी ने अष्टछाप की स्थापना की थी। उस समय अष्टछाप में सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी के साथ श्री विष्णुदास छीपा भी सम्मिलित थे। संवत् १६०७ में जब श्री नन्ददास गोसाईं जी द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित किये गये तो विष्णुदास के स्थान पर उन्होंने श्रीनन्ददास को स्थान दिया और वयोवृद्ध होने के कारण उन्हें अपना द्वारपाल नियुक्त किया।

श्रीनन्ददास ने सूरदास से पुष्टिमार्ग की शिक्षा प्राप्त की और गोकुल तथा गोवर्द्धन में रहने लगे। श्रीसूरदासजी के आदेश से ही वे फिर अपने ग्राम चले गये और वहाँ अपना विवाह कर गृहस्थ धर्म का पालन किया। संवत् १६२४ में उन्हें पुनः गृहस्थाश्रम से विरक्ति हुई और वे गोवर्द्धन लौट आए। वे श्रीनाथजी के मन्दिर में कृष्णलीला से सम्बद्ध नये–नये पदों की रचनाकर कीर्तन करने लगे। नन्ददासजी ने कुल कितने ग्रंथ लिखे हैं, इस बारे में अभी पूर्ण पता नहीं लग सका है। किन्तु निम्नलिखित पन्द्रह ग्रंथ उनके द्वारा विरचित कहे जोते हैं और इनका उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी खोज रिपार्ट में भी किया है।

(१.) अनेकार्थ मंजरी, (२.) नाममाला, (३.) नासिकेत पुराण भाषा, (४.) दशमस्कंध, (५.) पंचाध्याई, (६.) भँवरगीत, (७.) भागवत, (८.) मानमंजरी, (६.) रसमंजरी (१०.) रूपमंजरी, (११.) विरहमंजरी, (१२.) नाम चिंतामणिमाला, (१३.) जोगलीला, (१४.) श्याम सगाई, (१५.) रूक्मिनी मंगल।

'गार्सी द तासी' ने श्रीनन्ददास के चार ग्रंथों का और उल्लेख किया है –

(१.) सुदामा चरित, (२.) प्रबोध चन्द्रोदय नाटक, (३.) गोवर्द्धनलीला, (४.) नामचिंतामणि माला और नासिकेत पुराण भाषा, भागवत, विरहमंजरी, नामचिंतामणि माला और श्याम सगाई को आपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया है। ठाकुर शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में 'दानलीला' और 'मानलीला' को भी स्थान दिया है। इसी प्रकार मिश्रदन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' में दो ग्रंथों का और उल्लेख किया है – ज्ञान मंजरी और विज्ञानार्थ प्रकाशिका। 'सुकवि सरोज' में 'हितोपदेश' का नाम और है। इस प्रकार इनके २४ ग्रंथों की रचना मिलती है। कुछ ग्रंथों के नाम एक सरीखे होने से ये तैबीस ग्रंथ ही शेष रहते हैं।

पुष्टि सम्प्रदास की दीक्षा लेने के पश्चात् इन्होंने कतिपय फुटकर पदों की रचना भी की है। 'रूपमंजरी', 'रसमंजरी' और 'विरहमंजरी' में इन्होंने मलिक मोहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास का अनुसरण करते हुए चौपाई छन्द में इसकी रचना की है। रसमंजरी में नायिका भेद, रूपमंजरी में वल्लभ सम्प्रदास की भक्ति–श्रृंगार समन्वित भक्तिभावना का प्रतिपादन एवं विरह मंजरी में गोपियों के विरह का वर्णन है। प्रेम बारह खडी इनकी छोटी सी रचना है जिसमें केवल ३७

दोहे हैं। जिसमें गोपियों की विरह दशा का वर्णन है। 'अनेकार्थ मंजरी' के कई नामकरण हो गये हैं इस कारण इसकी पद संख्या में भी काफी विभिन्नता हो गई है। यही हाल मानमंजरी का भी है। 'श्याम सगाई' में राधाजी की माता कीर्तिजी का श्रीकृष्ण पर आक्षेप करना तथा बाद श्रीकृष्ण के साथ उनकी सगाई स्वीकार करने का वर्णन है। 'भँवरगीत' इनका सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ है। ब्रजभाषा क्षेत्र में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है। इसमें उद्धवजी श्रीकृष्ण का संदेश लेकर मथुरा से गोकुल जाते हैं और उनका गोपियों से सगुण–निर्गुण पर तर्क वितर्क होता है। गापियों की प्रेमविभोर कर देने वाली बातों से उद्धव का ज्ञान गर्व तिरोहित हो जाता है। वे मथुरा जाकर श्रीकृष्ण को गोपियों से मिलने के लिये फटकार लगा देते हैं। इसं ग्रंथ में भाषा की कोमलता, भावों का माधुर्य और शब्दों की सजावट का अपूर्व सहयोग है। यह ग्रंथ प्रभावोत्पादक तो है ही इसमें सम्प्रदायिक सिद्धान्तों की पुष्टि भी की गई है। इस ग्रंथ में रोला छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसके अन्त के १० मात्रा की टेक दी गई है। 'गोवर्द्धनलीला' में श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्द्धन पूजा के आग्रह का वर्णन है। 'रासपंचाध्यायी' इनका रोला छन्द में लिखा ग्रंथ है। जो हिन्दी का 'गीत गोविन्द' कहलाता है। 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में 'रासपंचाध्यायी' की सैद्धान्तिक व्याख्या की गई है। 'रूक्मणि मंगल' में भी रोला छन्द का प्रयोग है और यह रूक्मणि विवाह से सम्बद्ध है। ये इनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। 'सुदामा चरित' नन्ददास का छोटा सा ग्रंथ है। इसमें साढ़ेचालीस चौपाइयों में सुदामा के प्रसिद्ध आख्यान का सरल भाषा वर्णन किया गया है। 'भाषा दसम स्कन्ध में श्रीमद्भागवत के दसमस्कन्ध २६ अध्यायों का भावानुवाद है।

नन्ददास ने श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन करने के लिये लगभग २०० पदों की रचना भी की है।

नन्ददास ही अष्टछाप में ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाएँ अनेक शैलियों में की हैं। अपने सहयोगियों के समान कीर्तन के लिये उन्होंने पद भी बनाये हैं, किन्तु कई छोटे छन्द जैसे रोला, चौपाई आदि में ग्रंथों की रचना उनकी चमत्कार पूर्ण शैली का प्रतीक मानी जा सकती है। पुष्टिमार्ग के अष्टछाप में सम्मिलित होने के कारण उन्होंने अपने ग्रंथों में पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों की स्थापना की है, किन्तु इस धार्मिकता के साथ उनके काव्य का साहित्यक मूल्य भी कम नहीं है। भाषा का माधुर्य और भावों का वैभिन्य तो उनकी विशेषता है ही, किन्तु उनके पास विपुल शब्द भंडार होने के कारण उन्होंने अपने काव्यों में कलात्मक ढंग से शब्दों की सजावट भी की है। वे उपयुक्त शब्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त है। उनमें माधुर्य और प्रसाद गुण अद्‌भुत था। जो कुछ वे लिखते थे, रससिक्त बना रहता था।

पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए नन्ददास ने जगत को रसिक बताया है। उनका कहना है "ब्रह्म स्वयं रस रूप है, आनन्द धन है, अखण्ड है, नित्य

है, अगम्य है एवं सुगन्धमय है; इसलिए रसिक है।" उन्होंने वल्लभ वेदान्त के अनुसार ब्रह्म को निर्गुण स्वरूप स्वीकार भी किया है, किन्तु अपने काव्य में उन्होंने प्रभु के सगुण स्वरूप को ही, कहीं अधिक स्थान दिया है। उन्होंने गोपियों के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रेम पीयूष स्वरूप को हृदय से लगाया है और ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अथवा संसार से मुक्ति पाने के लिये भक्तिमार्ग को ही प्रमुख माना है। उनके भ्रमरगीत, सिद्धान्तपंचाध्यायी आदि में इसका निरूपण भी है।

पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के अनुसार जगत को ब्रह्मस्वरूप तथा जीव और जगत को ब्रह्म द्वारा परिणत माना है तथा संसार को मायाजन्य कहा है। उन्होंने जगत को सगुण ब्रह्म की माया ही माना है। नन्ददास ने नित्यरास के आनन्द को सर्वश्रेष्ठ माना है। उन्होंने वृन्दावन को गोलोक कहा है तथा उसे ब्रह्म का चैतन्य स्वरूप माना है। इसी प्रकार उन्होंने श्रीकृष्ण की मुरली को योगमाया तथा उसके स्वरों को नाद ब्रह्म के रूप में प्रतिपादित किया है।

यह कहा जाता है कि इनका तिरोभाव अनुमानतः संवत् १६४० के आस–पास हुआ था। उस समय गोसाईं विट्ठलनाथजी विद्यमान थे। इनके देहावसान के बारे में भी अकबर की दासी को लेकर विचित्र कथा गुंथी गई है जिसका उल्लेख "नन्ददास ग्रंथ में पूर्व में हो चुका है, किन्तु साहित्यकारों का मत है उनकी मृत्यु स्वाभाविक ढंगसे हुई थी। गोवर्द्धन में मानसी गंगा के तट पर वह पीपल का वृक्ष आज भी विद्यमान है जहाँ श्रीनन्ददास ने अपना नश्वर शरीर छोड़कर मोक्ष प्राप्त किया था।

अध्यक्ष, 'कदम्ब', सी-२६६,
भाभा मार्ग, तिलक नगर, जयपुर

भक्त प्रवर : नन्ददास

✍ डा. श्रीमती कमला मुखिया

अष्टछाप के कवियों में सूरदास, परमानन्ददास के पश्चात् नन्ददास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। नन्ददासजी का जन्म संवत् १५६० के लगभग सूकर क्षेत्र (सौरों जिला एटा) के पास रामपुर ग्राम में हुआ था। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम जीवाराम था। जीवाराम के भाई का नाम आत्माराम था। आत्माराम के पुत्र का नाम तुलसीदास था। नन्ददास व तुलसीदास दोनों ही ने बाल्यावस्था में सौरों में रहकर विख्यात विद्वान नृसिंह पंडित से शिक्षा प्राप्त की थी। नन्ददास तुलसीदास को गुरू भाई मानते थे। दे उनके प्रति सम्मान तथा श्रद्धा रखते थे।

आरंभ में नन्ददास संभवतः तुलसीदास के साथ काशी आदि स्थानों में पौराणिक वृति हेतु जाया करते थे। एक बार यात्रियों का दल द्वारिका जाने वाला था। नन्ददास भी उनके साथ चल दिये। इस अवधि में उनके विचार लौकिक आसक्ति की ओर भी हो गये थे, किन्तु गोस्वामी विट्ठलनाथजी के उपदेश से उनका मोह दूर हो गया। वे श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हो गये और उन्होंने अपने ह्दय का सम्पूर्ण प्रेमभाव भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में लगा दिया। यह घटना संवत् १६०७ के आसपास की है। उस समय नन्ददास की आयु अनुमानतः १७ वर्ष के लगभग थी। काव्य और संगीत में स्वाभाविक रूचि होने के कारण उनका मन कीर्तन में विशेष रूप से लगने लगा तथा वे शास्त्रों का विधि से गायन करने लगे। इन भगवद् भक्ति–युक्त गुणों के कारण वे शीघ्र ही पुष्टि संप्रदाय के प्रमुख कवियों में गिने जाने लगे। साम्प्रदायिक जनश्रुति के अनुसार उनका कमला नामक कन्या से विवाह हुआ था तथा कृष्णदास नाम का एक पुत्र भी था, किन्तु इनका गृहस्थ जीवन अधिक नहीं चला। ये संवत् १६२४ के लगभग विरक्त भाव से गोवर्धन चले गये।

तिरोधान :- गोवर्धन आने पर वे स्थायी रूप से मानसी गंगा पर रहने लगे तथा शेष जीवन श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित कर दिया। श्रीकृष्ण का यश–चिन्तन ही उनके काव्य का प्राण था। वे कहा करते थे कि –"जिस कविता में हरि के यश

का रस न मिले उसे सुनना ही नहीं चाहिये।"

नन्ददास ने गोपी प्रेम का अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श अपने काव्य में निरूपित किया है। रसिकों के संग में रहकर हरि लीला गाते रहने को ही वे जीवन का परम आनन्द समझते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी–

रूप प्रेम आनंद जो कछु जग मे आहिं।
सौ सब गिरिधर देव को, निधरक बरनौ ताहि।।

सवत् १६४० के लगभग गोवर्धन में मानसी गंगा के किनारे एक पीपल वृक्ष के नीचे उन्होंने अपने नश्वर शरीर को छोड़कर परम धाम को प्राप्त किया।

पद संग्रह :- नन्ददास ने अनेक स्फुट पदों के अतिरिक्त अनेक ग्रंथों की रचना की है। नन्ददास के काव्य की दो विशेषताएँ मुख्य हैं –

"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

नन्ददास ने रस पूर्ण कथनों में पुष्टि संप्रदाय के सिद्धान्तों को सफलता पूर्वक प्रदर्शित किया है। उनमें एक और विशेषता है– पदों में धार्मिकता और साहित्यिकता का गंगा जमुना संगम।

रचनाओं में रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, भंवरगीत रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी विशेष है।

नन्ददास ने श्री मद्भागवत के विभिन्न प्रकरणों के आधार पर प्रायः समस्त ग्रंथों की रचना की है। उन्होंने भागवत् का अनुवाद न कर उसकी सामग्री को स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करते हुए कलात्मक ढंग से सज्जित कर दिया है।

अष्टछाप कवियों की अष्टयाम सेवा में नन्ददास की बारी श्रृंगार के दर्शनों में हुआ करती थी। वे परम भगवत भक्त थे और अपनी सम्पूर्ण भगवत भक्ति से प्रभु की सेवामें रत रहते थे। पुष्टिसम्प्रदाय में ये सदैव अमर रहेंगें।

छोटा गोपालपुरा, श्रीनाथद्वारा

प्रेम पथ के पथिक : श्रीनन्ददास

✍ डा. सुरेश पाण्डेय

भक्ति–तत्व जड़ को चेतनता प्रदान करने वाली रसमय पद्धति है, जिसका शुभारंभ शुद्ध सहज प्रेम भाव या रति भाव से होता है और अंतिम स्तर सम्यक भाव अपने आराध्य–देव में पूर्ण तादात्मीकरण है, जो पूर्ण समर्पण का द्योतक है... परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति है... " सात्वस्मिन परम प्रेम रूपा " (नारद–भक्ति–सूत्र)। तो " प्रेम " क्या अक्षर मात्र है?

श्रुतियाँ कहतीं हैं... अक्षर तत्व के ही प्रशासन में सूर्य–चन्द्र विधृत हैं, स्थित हैं, नियम से उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, द्युलोक एवं पृथ्वी दोनों विधृत हैं, स्थित हैं, कभी उस अक्षर द्वारा निर्धारित कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं कर सकते। इस अक्षर के ही प्रशासन में हिमालय आदि पर्वत–श्रेणियों से नदियाँ प्रवाहित हो रहीं हैं, जो पूर्व की ओर प्रवाहित कर दी गयीं, वे पूर्व की ओर ही बह रहीं हैं, जो पश्चिम की ओर प्रवाहित हैं वे पश्चिम दिशा की ओर बहती जा रहीं हैं। इस अक्षर के शासन ने जिन–जिन की गति जिस–जिस दिशा की ओर कर दी है, इसका ही वे अनुसरण कर रहीं हैं।, कभी अक्षर द्वारा निर्धारित क्रम का उल्लंघन नहीं कर सकतीं...

''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गर्गि सूर्योचन्द्रमसौ बिधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि घावापृथिव्यौ तिष्ठत एतस्य बा अक्षरस्य प्रशासने आर्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्रण्यर्धमासा श्रतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्यो न्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेम्यः पवैतेभ्यः प्रतीच्यो न्या यां यां च दिश मनु.....''

यह अक्षरतत्व ही आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अनाथ–नाथ श्रीं श्रीनाथजी हैं। इनमें समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, समस्त ज्ञान, समस्त वैराग्य नित्य वर्तमान रहते हैं। इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। लीला से ही वह अपने में ही विशाल विश्व की रचना करते हैं पोषण करते हैं, और फिर संहार भी कर लेते हैं। किन्तु ऐसा करके भी वे इसमें आसक्त नहीं होते , ऐसे यह विलक्षण हैं। समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में इनका निवास है, पर वे इतने छिपे रहते हैं कि इन्हें बिरले ही जान पाते हैं। जैसे नट के अभिनय संकेत को... उसके संकल्प को, अनजान मनुष्य नहीं जान सकते, वैसे ही प्रभु की विविध विचित्र लीलाओं को कुबुद्धि से भरे जीव तर्क लगा कर जान नहीं सकते... उसकी लीलायें अत्यन्त दुविज्ञिय हैं।

मंदाकिनी का कल–कल निनाद शूकरक्षेत्र के उस सुरम्य तट पर अवस्थित नृसिंह पण्डित के आश्रम को मुखरित कर रहा था। पुष्पित तरूश्रेणी, लतिकायें, मन्द समीर का स्पर्श पा कर झूम रहीं थीं। गंगा तट का यह मनोरम दृश्य दो युवकों के भक्ति रसभावित चित्त में नवरस का संचार कर रहा था। उनके श्रीमुख से निस्सृत हरिगुणगाान में प्रतिक्षण नवउल्लास का हेतु बन रहा था। इनमें से एक युवक के हृत्स्रोत में प्रबलप्रवाहित सख्यरस की धारा सुषुप्तगुप्त होते हुए भी हिल्लोर ले रही थी, उसे अनमना, बेचैन, उद्विग्न कर रही थीं। युवक थे शूकरक्षेत्र के सन्निकट रामपुरग्राम वासी पण्डित जीवाराम के पुत्र नन्ददास और दूसरे युवक थे उनके चाचा पण्डित आत्माराम के पुत्र तुलसीदास।

हृत्स्रोत में अन्तर्वाहित प्रेम–रस की सुषुप्त धारा की तरंगें ले जातीं बलात् नन्ददास को नृत्य–गायन–नाट्य प्रदर्शनों में। मन विचलित ही रहता अतृप्ति के कारण। वह तो किसी अज्ञात लीलाशक्ति द्वारा संचालित हो रहा था। तभी प्रेम पथ के इस पथिक को साधन प्राप्त हो गया द्वारिका जा रहे तीर्थयात्रीदल में सम्मिलित होने का। अग्रज तुलसीदास से अनुमति ले बढ़ चले नन्ददास श्री रणछोड़जी के दर्शन हेतु। पहुँच गये ब्रह्मादि देवताओं द्वारा चिर–प्रशंसित मथुरा नगरी... मुग्ध हो गये नन्ददास... मन ही मन संकल्प किया... द्वारिका से लौट कर यहीं वास करेंगे. .. साथ वालों का साथ छोड़ बढ़ चले अकेले ही... मार्ग भटक प्रभु की लीलाशक्ति द्वारा पहुँच गये सिंहनद... एक भवन में एक क्षत्री नारी को गवाक्ष में देखा... उसका सौन्दर्य इन्द्राणी–ब्रह्माणी को लज्जित कर रहा था... लहराती हुयी सुन्दर वेणी में गुम्फित मल्लिका–पुष्प, वृहत् नितम्बभार एवं वक्षस्थल के कारण कृशोदरी रमणी.. सुन्दर वस्त्रों से आच्छादित... हिलते हुए कर्ण–कुण्डलों की आभा में दमक रही केश राशि... दमकती हुयी कुन्तलराशि से आच्छादित उसका अलंकृत मुख... होठों पर रम्य मुस्कान... स्मितसमन्वित वक्र–कटाक्ष–विक्षेप से मनहरण सा करती हुयी एक हाथ से कमलपुष्प घुमाती हुयी वह गवाक्ष में खड़ी है... ब्रजेन्द्रतनय को सर्वोत्तम आश्रय जान उनका वरन करने को संभवतः प्रतीक्षारत आतुर।

नन्ददास विमुग्ध हो गये। परमब्रह्म की यह योगीन्द्र–मुनीन्द्र–मनोहारिणी लीला देखते हुए अन्तरिक्ष में अवस्थित ऐश्वर्यप्रवण भावुक भक्त प्रेमभावना के राज्य में जा कर कल्पना करने लगे... इनके कल्याण का सुन्दर सुअवसर सन्निकट है। गोलोकबिहारी नराकृति परब्रह्म पुरूषोत्तम श्रीश्रीनाथजी की अचिन्त्यलीला शक्ति के महा प्रभाव से ही ये घटना घटित हो रहीं हैं। सामान्यजन की दृष्टि महामहिम भगवान की, उनकी लीलामहाशक्ति की, योजना का वास्तविक अनुसंधान पा ही कैसे सकतीं हैं?

अचिन्त्यलीला शक्ति की प्रेरणा से काष्ठपुत्तलिका की भाँति नन्ददास देख रहे हैं... यह भी प्रेम–देवता की आराधना ही तो है। सर्वोत्कृष्ट प्रेम आराधना के उपकरण कुछ भी हों, पर नियति का व्यतिक्रम क्यों हो? निर्निमेष नेत्रों से देखते रह जाते हैं नन्ददास... आनन्द में बेसुध, समयोचित कर्त्तव्य करने की भी शक्ति सर्वथा विलुप्त सी हो चुकी है... किसी अनिर्वचनीय भाव–समाधि में निमग्न हैं... आनन्द मन्दाकिनी की प्रबल धारा से एक आवर्त (भेंवर) बन जाता है... नन्ददास उस आवर्त में फँस कर चक्कर लगा रहे हैं... नित्य–प्रति...आनन्द मन्दाकिनी नन्ददास को अपने भुजपाश में आबद्ध कर घुमा रही है... नन्ददास बाह्य ज्ञान खोकर अन्तश्चेतना के जगत में जा पहुँचे... चित्त भूमिका में एक अनिर्वचनीय असीम सुन्दर मूर्ति अंकित हो जाती है... बाह्यज्ञानशून्य नन्ददास अपलक देखते.. नन्ददास की दशा लोग–बाग देखते... उनके चर्म–चक्षुओं में यह शक्ति कहाँ कि वे जान पाते कि नन्ददास क्या देख रहे हैं। सौन्दर्य–निधि विचित्र शोभा से सम्पन्न भावस्रोत का रस ले रहे है, नन्ददास आनन्दविमुग्ध। हृद्‌य के उमड़ते हुए आनन्द–प्रवाह में विवेक लुप्त हो गया, विचार–शक्ति आनन्द–तरंगों में तरंगित–प्लावित हो गयी–चंचल बन गयी। इससे खत्री परिवार के लोग आतंकित–आलोड़ित हो उठे। कुल–मर्यादा लोक–लाज की रक्षा हेतु चल पड़े गोकुल की ओर। नन्ददास भी पीछे–पीछे मथुरा पहुँचे क्षत्री परिवार यमुना पार चला गया, जाते–जाते वारण कर गया नाविकों को ब्राह्मण युवक को पार न ले जाने के लिए...

अपनी मधुर चरितावली से आत्माराम योगीन्द्र–मुनीन्द्र को भी भक्ति–पथ–पथिक बनाने की अभिसंधि ले कर लीला–रस–सुधा की शत्–सहस्त्र मन्दाकिनी धाराओं में अपने भक्तों को बहाते हुए सदा के लिए आनन्द–सिन्धु में निमग्न करने का संकल्प करके किसी अचिन्त्यशक्ति ने नन्ददास को प्रेरित किया। यमुना–पुलिन पर अर्द्धनिमीलित नेत्रों से प्रेम–रस–पयस्विनी भक्त–वांछा–कल्पतरू कालिन्दी की वे आराधना करने लगे...

नेह के कारण श्री जमुनै प्रथम आई।
भक्तन के चित्त की वृत्ति सब जानके तहाँते अति आतुर जो धाई।।

जाके मन जैसी इच्छा हती ताकी तैसी साध जो पुजाई।
"नन्ददास" प्रभुता पर रीझ रहे जोई श्रीयमुनाजी को यश जु गाई।।

लीलाविहारिन् ! तुम्हारी मुनि–मन–मोहनकारिणी लीला धन्य है। श्रीगुसाईंजी ने चार पत्तलें लगवाई और क्षत्री परिवार सें महाप्रंसाद पाने को कहा। परिवार के मुखिया ने कहा "हम तो तीन ही आदमी हैं, चौथी पत्तल किसकी है?" श्रीगुसाईंजी ने पूछा... ब्राह्मण देवता कहाँ रह गये? सभी अवाक्... आर्श्यचकित। श्री गुसाईंजी ने दूत भेज कर नन्ददास को बुलवाया।

नन्ददास आये... श्रीगुसाईजी के दर्शनमात्र से मानों विद्युत्लहरी ने नन्ददास को स्पर्श कर लिया हो... चंचल हो कर वे श्रीगुसाईंजी के चरण कमलों में गिर पड़े... बस पड़े ही रह गये... शरीर जड़वत हो गया... नेत्र स्थित हो गये... पर अंतर में पूर्ण चेतना है। श्रीगुसाईजी स्पष्ट सब कुछ अनुभव कर रहे हैं, प्रत्यक्ष देख रहे हैं। नन्ददास की आत्मा में उस समय एक अभिनव प्रकाश उदय हुआ। इस प्रकाश से आलोड़ित नन्ददास का मन श्रीगुसाईंजी के चरणकमल का दर्शन कर उद्भावना करने लगा...

जयति रूक्मिणीनाथ, पद्मावती प्राणपति
विप्रकुल छिप्र आनन्दकारी

समचित्त, मदेकनिष्ठ, महापुरूषों का दर्शन होते ही जीव का अज्ञान–अन्ध कार, भवबंधन नष्ट हो जाता है, श्री श्रीकृण की अनन्यरति, अनन्यप्रेम भी प्राप्त हो जाता है। श्रीगुसाईजी के रूप में नन्ददास ने साक्षात कोटिकन्दर्पलावण्य, पुरूषोत्तम के दर्शन किये... जिस स्वरूप के दर्शन उस क्षत्राणी के नेत्रों में नन्ददास को होते थे, उसी स्वरूप के दर्शन श्रीगुसाईजी के रूप में उन्हें प्राप्त हुए। नन्ददास के दिव्य–चक्षु खुल गए। साष्टांग दण्डवत् कर करबद्ध खड़े हो गए। अन्नत जन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरू उद्यान के प्रफुल्ल कुसुम, समस्त उपनिषद्स्थ कल्पलता के मधुर फल के रूप में श्रीगुसाईजी की प्राप्ति हुयी नन्ददास को।

श्रीगुसाईंजी अन्तर्दृष्टि से जान गये... प्रेमसुधारसलोलुप, विशुद्धप्रेम, प्ररिभावितचित्त नन्ददास, अस्थि–मज्जा–मेदमांस निर्मित मात्र प्राकृत तरूण नहीं हैं... यह तो परम दिव्य भगवदीय जीव हैं... तरूण–किशोर भी कथन मात्र के हैं... वस्तुतः यह तो स्वयं भगवान श्रीश्रीनाथजी के अनन्य सखा "भोज" हैं... उनकी निभृत–निकुँज–माधुर्य–लीला की सखी "चन्द्रलेखा" (सुदेवी) हैं।

श्रीगुसाईंजी ने नन्ददास को श्रीयमुनास्नान करवा कर श्रीनवनीतप्रियजी के सन्निधान नामनिवेदन करवाये और सम्प्रदाय में दीक्षित किया। श्रीगुसाईंजी ने कहा. ".. नन्ददास ! देखते हो। अरे देखो, श्रीनवनीतप्रियजी के अधरों पर आयी हुयी स्मित मुस्कान प्रत्यक्ष देख लो, इनमें लीन हो जाओ। इन अरूण अधरोष्ठ की अरूणिम कान्ति के कुंदपंक्ति सदृश दन्तावलि पर कैसी लालिमा–सी छायी है। यहाँ बाहर हँसते हुये श्री नवनीतप्रियजी के दर्शन कर रहे हो तो ? वे ही अन्तर्हृदय में भी विराजित हैं। इन्हीं में तन्मय हो जाओ। सुनो, मन को इनके प्रेम–रस में डुबा दो, डुबा–डुबा कर मसृण कर लो, फिर इस मसृण मन को इन हास्यकिरणों के सन्मुख कर दो। बस किरणें इस मन को आत्मसात कर लेंगी।"

नन्ददास को श्रीगुसाईजी ने श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन कराये... पर न तो नन्ददास के नेत्र थके, न वे तृप्त ही हुये, बल्कि जितना वे देखते, उतनी दर्शन की उत्कट प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जाती। देखते–देखते नन्ददास कल्पना के सुमधुर भाव–साम्राज्य में उतराने लगे।

श्रीगुसाईंजी ने भोजन करके सब वैष्णवों को पातर धराई। नन्ददास महाप्रसाद लेने बैठे, श्री नवनीतप्रियजी के विशुद्ध प्रेम–आस्वादन में तन्मय... भाव–समाधि लग गयी... आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की अनेकानेक लीलाओं का स्फुरथ–स्मरण होने लगा... प्रातःकाल हो गया... पातर सामने धरी की धरी रह गयी।

नंदनंदन आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र ही तो प्रियों के प्रियतम हैं, इनसे प्रेम करने में जीवन की परम सार्थकता है। नन्ददास अतृप्त नयनों से भाव–समाधि में उनकी ओर देखते रह जाते हैं... प्राणों में कम्पन हो रहा है, नेत्रों में जल छल–मल–छल–मल कर रहा है, कण्ठ सर्वथा अवरूद्ध है, वाक्शक्ति लुप्त हो गयी है, व्याकुल वहीं चित्रलिखे से बैठे हैं। श्री नवनीतप्रियजी की प्रेम–माधुरी के सुधा–रस का पान करते–करते उनके अंतस्तल में प्रवाहित भावस्रोतस्विनी कर इस धारा से संगम हे गया है। इस मधुर धारा ने भावस्रोतस्विनी के स्रोत की चंचल तरंगों को आत्मसात कर लिया है। अभी–अभी जो कल्लोलिनी हिलोरें ले रही थी, उसमें आवर्त जो उठ रहे थे... वे सब के सब श्री नवनीतप्रियजी के मुखारविन्द से निसृत इस मधु–सुधा–प्रेम–धारा में विलीन हो गये... तदृष हो गये... श्रीगुसाईंजी का स्मरण करके, श्रीकृष्णनामामृत का पान करके अनन्तजन्मार्जित पुण्य का परम फल तो नन्ददास को प्राप्त हुआ ही, श्री नवनीतप्रियजी का दर्शन कर वे उनके अदृश्य आधिदैविक सुखद स्पर्श का परमानन्द भी अनुभव कर चुके। अपना सर्वस्व नन्ददास आज न्यौछावर कर चुके हैं इन चरण–कमलों में।

श्रीगुसाईंजी ने कृपापूर्वक पधार कर नन्ददास के कान में कहा... "नन्ददास! उठो दर्शन का समय हो गया है।" नन्ददास उठ खड़े हुए... श्री गोसाईजी का मंगलमय दर्शन कर श्रीचरणों की वन्दना की...

"प्रातः समय श्री वल्लभसुत को, उठतहिं रसना लीजै नाम"।

नन्ददास के ह्रदय में कभी तो श्रीनवनीतप्रियजी का महान ऐश्वर्य उदय होता है, और कभी उनकी रूप–माधुर्य की शत–सहस्त्र धारायें प्रवाहित होने लगती हैं। ऐश्वर्योन्मेष के समय नन्ददास के श्री चरणकमलों में लुट पड़ना चाहते हैं और जिस क्षण माधुर्य–प्रेम का विकास होता है, उस समय श्रीनवमीतप्रियजी के मरकतद्युतिकलेबर को ह्रदय से लगाने का मनोरथ करने लगते हैं। नन्ददास के प्रफुल्ल अन्तःकाम में भाव उठ रहे हैं... मैं तो निहाल हो गया... मेरे नेत्र सफल हो गये... मैं कृतार्थ हो गया... अपने पुरूषार्थ अथवा पुण्य से नहीं, मुझे तो कृतार्थ किया है श्रीगुसाईंजी की अहैतुकी अतिशय अनुकम्पा और कृपालुता ने। श्रीगुसाईंजी नन्ददास की ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं, नन्ददास एक अनिर्वचनीय

आनन्दसुधारस में विभोर हो रहे हैं। उनके शुद्ध हृदय में भगवत्प्रेम की भागीरथी प्रवाहित होने लगी। नन्ददास प्रकृतिस्थ होने लगे... वे पुनः श्रीगुसाईंजी की श्री चरणकमलवन्दना करते हुए भाव–विह्वल गा उठे...

श्री विट्ठल मंगल रूप निधान।
कोटि अमृत सम हँस मृदु बोलन, सबके जीवन प्रान।।
करूनासिन्धु उदार कल्पतरू देत अभय पद दान।
सरन आये की लाज चहुँ दिसि बाजे प्रकट निसान।।
तुमरे चरन-कमल के मकरंद मन मधुकर लपटान।
''नन्ददास'' प्रभु द्वारे रहत हूँ, रूचत नहिं कछु आन।।

श्रीगुसाईंजी ले चले नन्ददास को उनके प्रियसखा श्रीश्रीनाथजी से मिलाने गिरि–गोवर्द्धन। उत्थापन का समय हो गया है... श्रीश्रीनाथजी अपने प्रियसखा को अपने पास पा कर आनन्दमन्दाकिनी प्रवाहित करते, अपने आनन्द–वितरण का आस्वादन स्वयं लेते हुए उत्तरोत्तर प्रफुल्लित हो उठे। प्रेमविभोर नन्ददास उद्‌भावना कर उठे...

''सोहत सुरंग दुरंगी पाग कुरंग ललना के से लोचन लोने''...

श्रीश्रीनाथजी की शोभा की आज इयत्ता नहीं है। यह तो एक अनन्त–असीम पारावाररहित सुधासिन्धु के समान है जिसमें आज उत्ताल तरंगें उठ रहीं हैं... तरंगें नाचती हुयी आतीं हैं और नन्ददास को अपने आँचल में छिपा लेतीं हैं, फिर तरंगें उन्मादिनी की तरह हँस–हँस कर सभी दिशाओं में फैल जातीं हैं... समस्त वैष्णव–प्रेमी–भक्तजनों को गोपीजनवल्लभ के आधिदैविक अनूठे प्रेम से प्लावित करने... नन्ददास मुखरित हो उठते हैं...

बनते सखन संग गायन के पाछे-पाछे आवत मोहनलाल कन्हाई।
बनते आवत गावत गौरी।
देख सखी हरि को बदनसरोज।

नन्ददास निर्निमेष नेत्रों से श्रीश्रीनाथजी का सौन्दर्य, उनकी मनोहर भंगिमा निहारते रहे। उनकी आँखों में गिरधरधरण नंदनंदन का अतुल सौन्दर्य सब ओर से समा गया। यहाँ तक कि नन्ददास तलहथ उठाकर आँखों के सामने करते तो तलहथी में भी श्रीश्रीनाथजी की छवि अंकित हो जाती, अपने उत्तरीय एवं कटिवस्त्र में भी श्रीश्रीनाथजी का सजीव प्रतिबिम्ब छलमल–झलमल करता दीखता। वह गुम्फित केशललाम, ललाट का वह केसर, रतनारे चंचल नयन, सुढार युग्म कपोल, अरूणिम अधर, कठुकाभूषित कम्बुकण्ठ, व्याघ्रनखरासित वक्षःस्थल, सुन्दर नाभिकमल, किंकिणीभूषित कटिदेश, कोमल छोटे बाहुयुगल, हस्तकमल, सुन्दर मनोहर जानु, गुल्फ, चरणकमल... नन्ददास के नेत्रों में भरे हैं।

सर्वेश्वर भगवान के प्रेम में भक्त जब कायमनोवाक्य संलग्न होता है, निरन्तर साधना चलती है, तब साधन का अहंकार भी विगलित होकर साधन जनित ही एक अनिर्वचनीय श्रान्ति उत्पन्न होती है। व्याकुलता उत्पन्न हुयी कि भगवान की कृपा का आविर्भाव हुआ, फिर साक्षात्कार हो ही जाता है। श्रीनाथजी केवल विशुद्ध प्रेम के लिए ही प्रेम करने वाले भक्तों–जीवों को जितने सुलभ है, उतने सुलभ अन्य किसी के लिए नहीं। और तो क्या अपने आत्मभूत तत्वज्ञानियों के लिए भी नहीं।

कवि की कल्पना आज साकार हुयी। उसकी रसना की ओट में स्वरों की झंकार करती सुरसुन्दरी अवगुण्ठन खोल झांक उठी... मुखरा हो उठी। कवि की कल्पना प्राकृत सौन्दर्य से ऊपर उठ गयी। वाग्वादिनी भी कमलयोनि से सृष्ट जगत को भूल कर नित्य चिन्मय गिरि गोवर्द्धन दर्शन करने आ जातीं। श्रीश्रीनाथजी के नेत्रों से नेत्र मिला कर कवि इस अप्रतिम सौन्दर्य की झांकी करता और फिर काव्य–रचना होती, अनुभव को अक्षर–शब्द का रूप मिल जाता... वह सौन्दर्योक्ति कवि की कल्पना निश्चय नहीं होती, कवि का वर्णन अक्षरशः सत्य का निदर्शन होता। आनन्दकन्द श्रीश्रीनाथजी का सानिध्य पा कर विहंगमों की काकली काकली नहीं रहती, वास्तव में ही संगीत की मधुर रागिणी बन जाती। तरू–शाखाओं से लिपटी लता–वल्लरियाँ पवन–संचारित हो कर स्पंदित हो रहीं हों... यह बात नहीं... अपितु वे श्रीश्रीनाथजी के दर्शन से उल्लसित हो कर सचमुच ही नृत्य करतीं। ये गायन–नर्तन–पुलकोद्रम कवि की कल्पना मात्र नहीं, काव्य–शास्त्र के रूपक अलंकार भी नहीं, ये तो चिदानन्द परब्रह्म पुरूषोत्तम श्री कृष्णचन्द्र के गिरि गोवर्द्धन परिसर में विचरण–पदार्पण से व्यक्त होने वाले स्वाभाविक सत्य परिणाम हैं। प्राकृत नेत्र–मन भले इन्हें न देख सकें... इसका अनुभव न कर सकें, किन्तु आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के कृपाकण से पूत हुए दिव्यशक्ति–विशिष्ट नेत्रों के लिए तो ये नित्य सत्य हैं।

न जाने कितनी बार संध्या समय जननी यशोदा के भवन में गोपसुन्दरियाँ आयी हैं अपना दीप प्रज्वलन करने, मानों उनके घर दीप प्रज्वलित करने के साधन नहीं हों। इतना ही नहीं, दीप जला कर वे बाहर गयीं हैं और अपने मुखश्वास से ही उस दीप को निर्वापित कर पुनः नन्दभवन में लौट आयी हैं... जैसे हो, जिस मिस से हो, उनके नेत्रों को आनन्द कन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन होते रहें... इतना ही उन्हें अभिप्रेत है। लालन उनके पलक की ओट हुए कि उनके प्राण हाहाकार कर उठते हैं...

धन नंद महर के मिस-ही-मिस आवै गोकुल की नारि।
सुंदर बदन बिन देखे कल न परत, भूल्यौ धाम-काम आछौ बदन निहारि।।
दीपक लै चली बारि,बाट मे बड़ो कर डारि, फिरि आवै छवि सौ बयार देत गारि।
"नन्ददास" नंदलाल सौ लागे नयन, पलक की ओट मानौ बीते जुग चारि।।

भक्ति–रसायन में कहा गया है–

तादृग्रमेशचरितं श्रुतिमात्रवेद्यं यस्यास्ति सोऽपि भवदुःखलवं न वेत्ति।
चित्रां किमत्रा स तच्चरित्रं च येषामध्यक्षमास न विदुर्भववेदनां ते।।

रमावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे चरित्रों को जो केवल सुनते मात्र हैं, जिन्हें अनुभव नहीं, केवल श्रवणमात्र से ही होनेवाला लीला संबंधी ज्ञान जिनके पास है, उनके लिए भी भवदुःख का लेश नहीं रहता–लीलाश्रवण की इतनी महिमा है... फिर यहाँ तो नन्ददास के नेत्रों के सामने वे श्रीश्रीनाथजी स्वयं विराज रहे हैं और देव–मुनि दुर्लभ श्रीकृष्णचरित्रलीला का प्रत्यक्ष प्रवाह बह रहा है।

ब्रजपुर में जबसे श्रीकृष्णचन्द्र का अवतरण हुआ है, तबसे उनके महामरकत–श्यामल अंगों से लीला का नवीन नूतन स्रोत क्षण–क्षण में झर रहा है। प्रत्येक गोप–गोपी के अन्तस्तल में उसकी एक–एक बूंद संचित होती रहती है और फिर प्रत्येक बिन्दु गीत के रूप में मूर्त्त हो जाता है। प्रत्येक रजनी का विराम होते ही गोपेन्द्र एवं अन्यान्य समस्त गोप तो नित्यकर्म में संलग्न होते हैं, और गोपेन्द्रपरिचारिकायें, गोपसुन्दरियाँ वास्तुपूजन कर अपने कंकणभूषित करों से दधिमंथन आरम्भ कर देतीं हैं। उस समय प्रत्येक गृह में, प्रत्येक गोपी के अधरों पर श्रीकृष्णलीलागान की लहरें उठतीं रहतीं हैं। गीत की यह अनवरत धारा ब्रजराज के, ब्रजमण्डलवासी समस्त गोपों के कर्णरन्ध्रों में प्रविष्ट होती रहतीं हैं। किसी गोपी के मानस पथ में श्रीकृष्णचन्द्र पालने में झूल रहे हैं। गोपी उन्हें निहार कर आनन्दनिमग्न हो रही है। यह अपरिसीम आनन्द अन्तर्देश में सीमित रह जा नहीं सकता। गीत बन कर बाहर लहराने लग जाता है, गापी गाने लग जाती हैं...

नंद को लाल ब्रज पालनै झूलै।
कुटिल अलकावली, तिलक गोरोचना, चरन अंगुष्ठ मुख किलकि फूले।।
नैन अंजन रेख, भेख अभिराम-सुठि, कंठ केहरि नख, किंकिनी कटि-मूले।
''नन्ददासनि'' नाथ नंद-नंदन कुँवर निरखि नागरि देह गेह भूले।।

कहीं किसी दूसरी गोपी के मानसतल में नंदनंदन के जन्म महोत्सव का राग–रंग भर रहा है, उत्सव का साक्षात्कार कर वह फूली नहीं समा रही है, उसके प्राणों की उमंग शब्दों का आकार धारण कर बाहर प्रसारित हो उठती है...

माई! आज गोकुल गाम कैसो रह्यो फूलि के।
गृह फूले दीसे, जैसे संपति समूल के।
फूली-फूली घटा आई, घरहर घूमि कै।
फूली-फूली वरषा होति, झर लायौ झूमि कै ।।

फूलो-फूलो पुत्र देखि, लियौ उर लूमि कै।
फूली है जसोदा माइ, ढोटा मुख चूमि कै।।
देवता-अगिनि फूलै, धृत-खाँड़ होमि कै।
फूल्यौ दीसै दधिकाँदौ, ऊँपर सो भूमि कै। ।

मालिन बाँछे बंदनमाल, घर घर डोलि कै।
पाँवर पहिराइ राइ अधिकै अमोल कै।।
फूले है भंडार सब द्वारे दिये खोलि कै।।
नंद दान देत फूले ''नन्ददास'' बोलि कै।।

कभी नन्ददास देखते निभृत–निकुँज में जुगल सरकार की निशीथ–लीला।

चांपत चरन मोहनलाल।
पलका पौढ़ी कुँवरि राधिका सुंदरी नवबाल।।
कबहुं कर ग्रही नैन मिलावत, कबहुँ मिलावत भाल।
''नन्ददास'' प्रभु छबि निहारत प्रेम के प्रतिपाल।।

शूकरक्षेत्र के गंगातट का वासी प्रेमिक नन्ददास गिरिगोवर्द्धन पर श्रीश्रीनाथजी के सन्निकट मानसी–गंगा तट का वासी बन गया। प्रेम–पथ के पथिक नन्ददास को संसार ऐसा फीका लगने लगा जैसे मनुष्य को उल्टी देख कर बुरा लगे। वे कहीं और नहीं जाते... श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसाईंजी, श्री गिरिराजजी, श्रीयमुनाजी और अनाथ–नाथ श्रीश्रीनाथजी में ही मन रच बस गया...

जो गिरि रूचे तो बसो श्रीगोवर्द्धन, गाम रूचे तो बसो नन्दगाम।
नगर रूचै तो बसो श्रीमधुपुरी, सोभासागर अति अभिराम।।
सरिता रूचै तो बसो श्रीजमुनातट सकल मनोरथ पूरण काम।
''नन्ददास'' कानन रूचै तो बसो भूमि वृदावनधाम।।

वे प्रायः जन्मजन्मान्तर के अनन्यसखा श्रीश्रीनाथजी से भी कह बैठते... ''चलिये कुँवरकान्ह, सखी भेष कीजै।'' क्योंकि '' शिव मोहे जिन वे मोहनी जै कोई। प्यारी के पायन आज आन पर सोई।।'' अब तो विशुद्ध गोपी–प्रेम में आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र की सौन्दर्य–माधुरी, रास–रस एवं नित्य गोपी–भाव में सराबोर रहने लगते नन्ददास... '' रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि। सो सब गिरिधर देव को, निरथक बरनों ताहि।।''

मानसी गंगा तट पर प्रेम–पथ का यह पथिक आज अश्वत्थ वृक्ष तले भाव–विह्वल प्रभु श्री श्रीनाथ के रास–रस–प्रेम में निमग्न है...

देखौ-देखौ री नागर-नट, निरतत कालिन्दी-तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट-लटक।

काछिनी, किंकिनी कटि, पीताम्बर की चटक,
कुण्डलन किरन रवि थकी अटक।।

तत थइ, तत थइ सबद सकल घट उरप,
तिरप गति पग की पटक।

रास में राधे ! श्री राधे ! मुरली में एक रट,
"नन्ददास" गावै तहाँ निपट-निकट।।

निभृत–निकुँज–की नित्य रासलीला में प्रवेश कर निपट निकट श्रीश्रीनाथजी ऍवं श्री प्रियाजी के "मोहन पिय की मुसकति, ढलकन मोर मुकुट की। सदा बसौ मन मेरे, फरकति पियरे पट की।"... कहते हुये शूकर क्षेत्र के गंगा तट से प्रेम पथ पर अग्रसर हुआ प्रेम पथिक नन्ददास मानसी गंगा तट पर अनन्द प्रेम रस से परिपूर्ण हो गया। नन्ददास श्रीश्रीनाथजी के चिदानन्दमय प्रेम–रस में अनादिकाल से पथिक रहे, अनन्तकाल तक रहेंगे।

धन्य है करूणावरूणालय की अहैतुकी कृपा। वे जीव को कदापि भूलते नहीं, दूर हट जाने पर भी वे सदा जीव का आह्वान करते रहते ही हैं और समीप आते ही अपने अपरिसीम स्नेहसिन्धु में निमग्न कर देते हैं। श्रीश्रीनाथजी नित्य हमारे–तुम्हारे सहचर हैं, तुम्हारे सुख के लिये एक–से–एक सुन्दर रचनाओं का प्रकाश कर, तुम्हारे पीछे–तुम्हारे साथ अवस्थित रह कर खेल रहे हैं। कदाचित तुम उनकी ओर दृष्टि केन्द्रित कर उनके समीप अवस्थित रह कर उनका आनन्द ले सकते। फिर तो ब्रजेन्द्रकुलंचन्द्र आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र का यह नित्य लीला विहार तुम्हारा भी निजस्व हो पाता। किन्तु तुम भ्रान्त हो रहे हो, भटक रहे हो अपने नित्य परमसखा श्रीश्रीनाथजी से दृष्टि हटा कर, उनसे अत्यन्त दूर जाकर विषयों के प्रलोभन में उलझे हो। इतने पर भी इन परम दयालु–कृपालु नीलसुन्दर की अनन्त पारावारविहीन कृपा किसी–न–किसी मिस से अत्यन्त सामान्य नगण्य तक अवसर को निमित्त बनाकर तुम पर उमड़ती रहती है। उनका प्रच्छन्न आह्वान तुम्हें अपने प्रेम–पाश में बद्ध करने ही लगता है। अहा ! कैसी अप्रतिम अपरिमित कृपा का दान है यह। जीवों ! अब भी सचेत होकर अविलम्ब इन विषयों के चाकचिक्य से दृष्टि फेर लो, पीछे की ओर–अंतर्मुख हो कर देखो... श्री श्रीनाथजी तुम्हें पुकार रहे हैं। उनके इन इन्द्रनीलद्युति श्रीअंगों में अपनी पाशविक वृत्तियों को विलीन कर दो, उनके सानिध्य का कदापि परित्याग न करो, उनके चरणसरोरूह में नित्य अवस्थित रहो। यहाँ ही भक्तवांछाकल्पतरू से तुम्हें सम्पूर्ण अपेक्षित वस्तुयें प्राप्त हो जायेंगी। यही प्रेम–पथ के पथिक श्री नन्ददास की काव्य–पुष्पांजलि का मर्म है, यही उनका पथभ्रान्त वर्तमान समय के जीवों के लिए सन्देश है।

निदेशक, वृन्दावनवैष्णव संस्कृति एवं प्रज्ञा
संस्थान पूर्व संयुक्त सूचना निदेशक, बिहार सरकार।
एस.-१/१२, कैलाशनगर, श्रीधामवृन्दावन

नन्ददास के काव्य में श्रृंगार और भक्ति का समन्वय

डा. रमेशचन्द्र मिश्र

नन्ददास पुष्टि सम्प्रदाय प्रवर्तक गो. श्री विट्ठलनाथजी के कृपा पात्र अष्टछाप के रससिद्ध कवि रहे हैं। उनका समस्त काव्य भगवद्भक्ति से ओत–प्रोत है। ईश्वर के प्रति ऐकान्तिक अनुराग को 'भक्ति' कहा जाता है। महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति सूत्र में – 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' (१/१/२) ईश्वर में परम अनुराग को भक्ति कहा है। नारद भक्ति सूत्र में– '' सात्वास्मिन् परम प्रेम रूपा'' – भगवान् में अनन्य प्रेम प्रवाह का नाम ही 'भक्ति बताया है। अपने आराध्य के प्रति अनुराग जब इस कोटि तक पहुँच जाए कि उसके बिना एक क्षण भी चैंन न पड़े और चित्त की समस्त वृत्तियाँ पूर्णरूप से उसी अनुराग योग्य आराध्य में केन्द्रित हो जाएँ, तब यह समझना चाहिए कि आराध्य के प्रति अनुराग 'परम अनुराग' की कोटि में पहुँच गया। श्री नन्ददास के काव्य में गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति अनुराग इसी कोटि में सम्पृक्त है। गोपियों ने अपना शरीर, इन्द्रियाँ, परिवार, समस्त भौतिक सम्पदा सभी कुछ श्री कृष्ण को समर्पित कर दिये। इस लिए उनका श्रृंगार–भाव श्री कृष्ण के अनुराग से अतिरंजित हो गया। गोपियों का सान्निध्य प्राप्त कर रसराज श्रृंगार धन्य हो गया और गोपियों के साथ अपने आपको श्री कृष्ण के चरणों में समर्पित करते हुए भक्ति तत्व को आत्मसात कर लिया।

गोपियों का प्रेम स्वभावतः काम–गंध शून्य है। वह तपाये हुए स्वर्ण के समान निर्मल, उज्ज्वल और शुद्ध है। समस्त गोपियाँ श्री कृष्ण की शिष्या, प्रिया, सखी, सहायिका और दासी हैं। ये श्री कृष्ण के मन की अभिलाषा, प्रेम सेवा की परिपाटी तथा इष्ट सेवा में लगे रहना अच्छी तरह जानती हैं। नन्ददास कृत रास पंचाध्यायी में राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से प्रश्न किया–

अहो मुनी, क्यों गुणमय शरीर सों पाए हैं हरि।
जिनिभजे कमनीय कान्त नहिं ब्रह्मभाव भरि।।

हे मुनिराज, गोपियों ने इस त्रिगुणमय शरीर से श्रीकृष्ण को कैसे प्राप्त कर लिया, उन्होंने तो ब्रह्मभाव से श्रीकृष्ण की सेवा नहीं की थी। श्री शुकदेवजी ने इस प्रश्न का समाधान किया–

हरिरस ओपी गोपी सब तिरीयन तें न्यारी।
श्री कमल नयन गोविन्द चन्द की प्राण सुप्यारी।।

ये गोपियाँ प्राकृतिक स्त्रियों से पृथक् हैं। ये श्री कमलनयन भगवान् कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्यारी हैं। इन गोपियों के हृदय में यथार्थ प्रेम अंकुरित है अतः प्राकृतिक दुःख से इन्हें दुःख बोध नहीं होता। प्रेमांकुर के उदित होने से गोपियों में क्षान्ति, अव्यर्थ कालत्व, विरति, भावशून्यता, आशाबंध, सभुत्कण्ठा, नामस्मरण रूचि, भगवद् गुणाख्यानासक्ति एवं लीला भूमि अनुराग – ये नौ लक्षण उदित दिखाई देते हैं। वे एक क्षण भी श्रीकृष्ण से विरहित नहीं रहना चहती हैं। श्रीकृष्ण के वंशीरव से आकृष्ठ होकर अर्द्धनिशा में वन प्रदेश में आई हुई गोपियों से श्री कृष्ण ने कहा– गोपियों, तुम अर्द्धनिशा में इस एकान्त वन प्रदेश में निर्भय होकर चली आई हो, यह नारीधर्म के विपरीत है अतः तुम अपने घरों को लौट जाओ। यह सुनकर गोपियाँ कहती हैं–

अधर सुधा के लोभ भईं हम दासि तिहारी।
ज्यों लब्धी पद कमला नवला चंचल नारी।।
जो न देहो अधरामृत तौ सुनिहौ सुन्दर हरि।
करि हैं यह तन भस्म विरह पावक में जरि करि।।
पुनि प्रिय पदवी पाय बहुरि धरि हैं सुन्दर अँग।
निधरक है कें अधरामृत पीवत फिरि हैं सँग।।

हे स्वामी आपके अधरामृत का पान करने के निए हम आपकी दासी हुई हैं। हम आपके अधरामृत को यदि प्राप्त नहीं कर पाएंगी तो इस लौकिक शरीर को विरहाग्नि में जलाकर पुनः नवीन जीवन धारण कर आपके नित्य साहचर्य को प्राप्त करेंगी।

गोपियों की इस मधुरा रति में अनुराग की चरम परिणति विद्यमान है। अनुराग ही इस महाभाव का आश्रय है। इस महाभाव में श्रृंगार के सारे सात्विक भाव उद्दीप्त होते हैं। रासरस निमग्ना गोपियों में स्वर भंग, कम्प, रोमाञ्च, अश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य, स्वेद मूर्छा ये आठों सात्विक भाव परिलक्षित होते हैं। साथ ही उनमें भक्तिभाव की चर्वणीयता के औत्सुक्य, गर्व, हर्ष,निर्वेद मति, द्युति इत्यादि भक्ति के स्थायीभाव तथा रोमाञ्च, विहलता, अश्रुपात आदि अनुभावों की प्रतीति होती है। नन्ददास इस माधुर्य को 'उज्ज्वल रस' के नाम से अभिहित करते हैं।

उज्ज्वल रस कौ यह स्वभाव बाँकी छवि पावै।
बंक कहनि अरू चहनि बंक अति रसहिं बढ़ावै।।

ये सब नवल किसोरी गोरी भरी प्रेम रस।
ताते संमुझि न परी करी पिय प्रेम विवस अस।।

'उज्ज्वल' शब्द श्रृंगार या माधुर्य का वाचक शब्द है। नाट्यशास्त्र में श्रृंगार रस का वर्णश्याम और वेष उज्ज्वल बताया गया है– 'तत्र श्रृंगार नाम रति स्थायिभाव प्रभाव उज्ज्वल वेषात्मकः '(ना.शा.६/४५–४६) इनमें रति स्थायीभाव से श्रृंगार बनता

है, उसका वेष उज्ज्वल है। श्याम और उज्ज्वल दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। लेकिन विश्लेषण करने पर इस भ्रम का निवारण हो जाता है। श्रृंगार के देवता विष्णु का श्याम वर्ण है पर उनका वेष 'पीताभ कान्तिमान् तथा उज्ज्वल है। नन्ददास ने इसकी पुष्टि में लिखा है–

विहरत विपिन विहार उदार रसिक नँद नंदन।
नव कुंकुम धनसार चारू चरचित तन चंदन।।
अद्भुत सांमल रूप अंग बन्यौं पीत वसन तनु।
मूर्त धरे श्रृंगार प्रेम अम्बरू ओढ़े जनु।।

उज्ज्वल नीलमणिकार श्रीरूप गोस्वामी ने उज्ज्वल रस का प्रयोग 'रागानुगा मधुर भक्ति' के लिए किया है जिसमें समस्त श्रृंगार रस का पूर्णतः अन्तर्भाव हो जाता है। नन्ददास की गोपियाँ 'कृष्ण–कृष्ण' रटतीं रटतीं कृष्ण प्रेम में कृष्णमय हो जाती हैं।

मोहनलाल रसाल की लीला इनहिं सोहे।
केवल तन्मय भईं कछु न जानत हम को हैं।।
भृंगी भजे ते भृंगी होत इक कीट महा जड़।
कृष्ण प्रेम तें कृष्ण होंय, कछु नहिं अचरज बड़।।

महारास के मध्य से श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना, विरह दशा की चरम परिणति भी उसी महाभाव माधुर्य की रागानुगा भक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप है।

नयननि तें जलधार हार धोवत धर धावत।
भ्रमर उडाय न सकति बास वस मुख ढ़िंग आवत।।
'क्वासि-क्वासि' प्रिय महाबाहु यो बदति अकेली।
महा विरह की ध्वनी सुनि रोवत खग द्रुम बेली।।

गोपियों की विरह ध्वनि के स्वर में खगद्रुम वेलियों ने भी रूदन करते हुए उस महाभाव का विराट स्वरूप प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार कविवर नन्ददास का श्रृंगार मात्र काव्य का रसराज न होकर भक्ति के माधुर्यरस का रूप रहा है जिसका विराट रूप श्रृंगार और भक्ति के समन्वय रूप से बोधगम्य है। यद्यपि भाव समुद्र अपार अगाध और अनन्त है, इसका वर्णन कर पाना सर्वथा असम्भव है। मैंने इस लघु आलेख में एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है रसिक जनों को स्वीकार्य होगा।

काम्यवन शोध संस्थान, पातालेश्वर, कामाँ (भरतपुर)

नन्ददास का भाषा-सौष्ठव

✍ डा० श्याम सुन्दर व्यास

भाषा, केवल भावों की वाहक ही नहीं होती, उसकी द्युति होती है। भाव–प्रकाशन में 'आखर' का उचित उपयोग एक अनुपम 'ओप' उत्पन्न कर देता है। अनुप्रासिकता से जो ध्वनात्मकता जागती है वह भावों को निराली छटा ही नहीं प्रदान करती, कविता की उम्र भी बढ़ा देती है। लयात्मकता और लालित्य का यह मणि–कांचन–संयोग, शब्द–संपदा से ही सुलभ होता है और काव्य–शास्त्रियों ने इसे प्रतिभा, अध्ययन तथा अभ्यास का त्रिवेणी संगम माना है। काव्य–मर्मज्ञों ने , शब्द–चयन और भाव–संयोजन की विशेषताओं के आधार पर ही नन्ददास को 'जड़िया' जैसी संज्ञा से विभूषित किया है।

नन्ददास की शब्द–सम्पदा का आकलन करते समय उनके द्वारा रचित 'अनेकार्थ मंजरी' और 'मान मंजरी' का उल्लेख आवश्यक है। ये दोनों ही ग्रंथ उनकी भाषा विषयक प्रौढ़ता तथा पांडित्य के परिचायक हैं। इन्हीं मंजरियों की सुवास का 'प्रसाद' और माधुर्य उनकी कविता में झलकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस 'आखर बल' को कवि की शक्ति माना है, नन्ददास के पास उसका दारिद्र्य नहीं था। परन्तु शब्द–संपदा का सार्थक भाव–संयोजन ही वह कला है जिसंने नन्ददास को 'जड़िया' बनाया। दूसरे शब्दों में यही उनका भाषा–सौष्ठव है। डा० विजयेन्द्र स्नातक के मतानुसार 'नन्ददास के संपूर्ण ग्रंथ परिमार्जित ब्रजभाषा में हैं। मधुर और परिचित शब्दों का चयन कवि की विशेषता है। संगीत–प्रवीण होने के कारण शब्दों के चयन में लय, स्वर आदि का ध्यान रखने से उनके काव्य में प्रांजलता और प्रवाह की सृष्टि हुई है। सरस एवं मार्मिक प्रसंगों की उद्‌भावना में जैसी ललित एवं मोहक पदावली नन्ददास के काव्य में मिलती है, अष्टछाप के कवियों में सूर के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलती।''

अपने आलोचनात्मक इतिहास में डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है– ''नन्ददास में दो गुणों की प्रधानता है। ये दोनों गुण है माधुर्य और प्रसाद। माधुर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का एक गुच्छा है जिसमें मीठा रस भरा हुआ है।'' इस मिठास का रहस्य उद्‌घाटित करते हुए वर्माजी आगे लिखते हैं– '' शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न लम्बे–चौड़े समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है, वह भी बहुत थोड़े शब्दों में और सुन्दरता के साथ।''

नन्ददास के इस भाषा–सौष्ठव की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने अनेक ढंग से की है और इसे 'गंगा–जमुनी तरंग' निरूपित किया है। यह गंगा–जमुनी तरंग 'चिरैया चुहचुहानी' 'अखियाँ अलसानी', 'अलक झलक' और –

'डहडहे मुख कुमकुम रंग रंजित, राजत रस के ऐना।
कंजन पर खेलत मनों खंजन, अंजन युत बर नैना।।' में मिल जाती है।

शब्द चयन, लयात्मकता, चित्रोपमता और मधुरता की एक बानगी देखिए–

"बरसै प्रलय के पानी, जात न काहू पै बखानी,
ब्रज हू पै अति भारी टूटत है तरू–तर।
ता पर के खग, मृग, चातक, चकोर, मोर
बूँद न काहू के लागी, भयौ है कौतुक भर।।
प्रभु जू की प्रभुताई, इन्द्र हू की जड़ताई,
मुनि हँसे हेरि–हेरि, हरि हँसे हर–हर।"

रहीम ने कवि–कर्म में जिस नट–कला की चर्चा की है, नन्ददास को उसमें महारत हासिल है। वे प्रसंगानुसार शब्दों को नचाते हैं। विवाह प्रसंग में घोड़ा 'घोरा' हो जाता है और आसक्ति के क्षणों में डग 'डगरा'। कृष्ण काव्य के अनेक कवियों ने 'नव' शब्द का प्रयोग अनेक बार किया है। नन्ददास में भी इस 'नव' का माधुर्य दर्शनीय है। यथा–

यमुना पुलिन सुभग वृन्दावन, नवल लाल गोवरधन–धारी,
नवल कुंज, नव कुसमित दल, नव–नव बृषभानु–दुलारी"
नवल हास, नव–नव छबि क्रीड़त, नवल विलास करत सुखकारी।
नव श्री विट्ठलनाथ कृपा–बल, 'नन्ददास' निरखत बलिहारी।।

मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने भी नन्ददास के भाषा–सौष्ठव में चार चाँद लगा दिये हैं। 'लीला वर्णन' का एक पद लीजिये–

दौरि–दौरि आवति, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
अचरा पसारति, मोहि कों खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री।।
जा री जा, दूती तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री।
'नन्ददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पायन कहा मेंहदी दई री।।

शब्द से जब ताल का काम लिया जाता है तो मन ही मन सहृदय जन तालियाँ बजाने लगता है। 'महिमा–वर्णन' के अन्तर्गत नन्ददास की इस कला को देखकर उनका 'जड़िया रूप' साकार हो उठता है। एक उदाहरण लीजिये–

अरी, जाकों वेद रटत, ब्रह्मा रटत, संभु रटत,
सेस रटत, नारद–सुक–व्यास रटत, पावत नहीं पार री।
ध्रुव जन प्रहलाद रटत, कुन्ती के कुँवर रटत,
द्रुपद–सुता रटत, नाथ–अनाथन प्रतिपार री।।
गौतम की नारि रटत, गनिका गज–गीध रटत,
'नन्ददास' सोई गुपाल, गिरिवर धर रूप–जाल,
जसोदा को कुँवर, प्यारी राधिका उर–हार री।।

श्रुति–कटुत्व वर्ग के शब्द से श्रुति–माधुर्य की सृष्टि करना, ध्रुवदासजी के इस कथनकी पुष्टि करता है–

'नन्ददास जो कछु कह्यो, राग–रंग में पागि।
अच्छर सरल सनेह मय, सुनत होति हिय जागि।'

रोला छंद में रमण करते हुए नन्ददास ने 'रास पंचाध्यायी' में जो शब्द संयोजन किया है या 'भंवर गीत' में जिस 'टेक'का प्रयोग किया है, वह उनके भाव–भाषा सौष्ठव का परिचायक है।

नन्ददास ने 'अनेकार्थ माला' और 'नाम माला' जैसे छंदबद्ध कोषों की रचना कर अपने पांडित्य का ही परिचय नहीं दिया है, शब्दों को छंद की चोखट में जड़कर उनकी 'पर्यायवाचिकता' में एक चमक पैदा कर दी है। 'सारंग' जैसे अनेकार्थी शब्द का छंदमय रूप कितना सरस है–

पिक, चामर, कच, संध, कुच, कर, वायस हू होय।
खंजन, चंचल, मिरगमद, काम बिसन है सोय।।
छिती, तलाब, भुजंग पुनि, को बड़ भानु समान।
सारंग श्रीभगवान को, भजिए कृपा निधान।।
सारंग सुन्दर को कहत, रात, दिवस बड़ भाग।
खग, पानी अरू धन कहिय, अंबर, अबला, राग।।
रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कुंज, कुंरग।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिये सारंग।।

संक्षेप में कहा जाये तो कविता–कामिनी को भाषा–मांसलता भी प्रदान करती है और वह कान्ति भी जो कवि की कीर्ति को ही नहीं बढ़ाती, आने वाले कवि–कर्मियों की प्रेरणा भी बनती है। निःसन्देह नन्ददास का स्थान ऐसे ही कलावन्तों की अग्रिम पंक्ति में आता है।

सम्पादक वीणा,
७६, इन्द्रपुरी, इन्दौर

भ्रमर गीत परम्परा में महाकवि नन्ददास

✍ लक्ष्मीचन्द्र शर्मा 'मयंक'

ब्रज भाषा साहित्य में "भ्रमर गीत" व भँवर–गीत काव्य–सृजनकी परम्परा उस श्रीमद्भागवत महापुराण से आयी– जिसके प्रति

"निगम कल्प तरोर्गलितं फलं
शुक मुखादभृत द्रव संयुतम्।
पिबत भागवतं रस मालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।- मा° 1/1/3

जैसी लोकानंद दायिनी अनेक सरस सूक्तियों स्तुतिरूप में कहीं सुनी जाती हैं। अतः हिन्दी साहित्य में संस्कृत से उधार लिया गया यह साहित्य मौलिक रूप में उस मूल रूप से कहीं अधिक फला–फूला, यह निःसंदेह कहा जा सकता है। भक्त कवियों ने तो इस हीरे जैसे उजले विषय में अपनी–अपनी प्रतिभा द्वारा "चार–चाँद ही लगा दिये। उदाहरण के लिए यह – "श्री नन्ददासजी प्रणीत "भ्रमर गीत" वा भँवरगीत प्रस्तुत है। यों तो अष्टछाप के सुप्रसिद्ध साहित्य सूर्य "सूरदासजी" एवं परमानंददासजी के साथ–साथ रीतिकाल के और भी महामान्य कवियों ने, जिनकी संख्या उँगलियों पर नहीं गिनायी जा सकती, कलम चलायी है। किन्तु जैसा श्री नन्ददासजी ने गुनन गरूले नये छंद की गागर में सम्पूर्ण भावों का "सागर" भ्रा है, वैसा दूसरे कवियों से नहीं बन पडा है। सच तो यह है कि यह विरह–विभूषित–काव्य–विषय श्री नन्ददासजी की नवरसमयी मुहावरेदार ब्रज भाषा को पाकर सुगठित रूप में इतना ऊँचा उठा हुआ है कि उसकी समसीर कोई भी कवि नहीं कर सका है। तभी तो साहित्य मर्मज्ञों ने आप के प्रति–

"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

कहा है। वास्तव में महाकवि नन्ददासजी शब्दों और भावों के सच्चे "जड़िया ही थे।

श्री नन्ददास कृत-ग्रंथ :- महाकवि नन्ददासजी के निम्नांकित ग्रंथ देखने सुनने में आते हैं – "पांच मंजरियाँ (रस मंजरी, विरह–मंजरी, रूप मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, नाम मंजरी) रास पंचाध्यायी, भ्रमर गीत, रूक्मिणी मंगल, भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध (अनुवाद) श्याम सगाई, सिद्धान्त पंचाध्यायी, गोवर्धन लीला, जोगलीला,

दान लीला, वेणु गीत, सुदामा चरित्र, कृष्ण मंगल, ग्यान मंजरी, नासिकेत पुराण, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक, फूल मंजरी, रानी मंगो, विज्ञान प्रकाशिका, हितोपदेश (राजनीति–हितोपदेश–भाषा) और फुटकल पदावली– इस नामावली में 'पाँचों मंजरियाँ रास पंचाध्यायी, भ्रमर गीत, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और अनेक स्थानों से अनेक बार प्रकाशित भी हुए हैं। बाकी के आपके ग्रन्थ रत्न यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

हम यहाँ इनके पुरातन प्रशंसक "श्री नामादासजी" तथा श्री ध्रुवदासजी की वे सरस सूक्तियाँ देने का लोभ संवरण नहीं कर पारहे हैं जो उन्होंने भी नन्ददासजी के जन्मादि के प्रति ही नहीं उनके कृत्य के प्रति भी कहीं है यथा–

"लीला-पद रस-रीति-ग्रंथ रचना में आगर।
सरस उक्ति-रसजुक्ति, भक्ति-रस गान उजागर।।"
प्रचुर पयोध-लों सुजस, 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल 'सुकुल' सुबलित, भक्त प्रद-रेंन-उपासी।।
"चन्द्रहास-अग्रज" सहृद, परँम-प्रेम पद में पगे।
"री नन्ददास 'आनंद निधि, रसिक सुप्रभु-हित रंग मंगे।।"

- **नाभादास**

"नन्ददास जो कछु कहृयौ, राग रंग में पागि।
अच्छर-सरस सनेह के, सुनँत स्रवँन उठ जागि।।
रँमन-दसा अदभुत हती, करत कवित्त सुढार।
बात प्रेंम की सुनत ही, बहत नेंन-जल-धार।।
सरस बाबरौ-सौ फिरै, खोजन नेहिंन-बात।
आछे रस की बात सुनि, बेगि बिबस है जात।।"

-ध्रुवदास

"**भ्रमर गीत -**" भ्रमर गीत एक विरह विभूषित काव्य कथा का विषय है, किन्तु उसे विशेष रूप से भक्ति, श्रृंगार और करूण रसों का रम्य आगार, निर्गुण–सगुण उषासना तत्वों का प्रभावशाली विस्तृत सागर तथा ज्ञान–भक्ति का भव्य भंडार भी कहा जा सकता है। कारण यह है कि भक्त कवियों ने जहाँ इस "देव दुर्लभ" मिश्रण के सहारे "अनेक जन्म संसिद्धिः" –रूप "मुक्ति–चतुष्टय" जैसे महान पदार्थ को ठुकराकर अपने उपास्य से "विरही–विकांक्षे" की याचना की है वहीं "रीति कवियों" ने इस विषय के द्वारा श्रृंगार रस को पूर्ण बनाने का अत्युत्तम उपक्रम किया है। अस्तु जैसे पूर्व में कहा है, इसका मूल कथानक 'श्रीमद्भागवत' में इस प्रकार है–

"ब्रज में जब अपनी अनेक रस भाव–भरी ललित लीलायें रचकर एते चांशकलाः पुंसः कृष्णास्तु भगवान स्वयं" क्रूरकंस के बुलावे पर अक्रूर के साथ निष्ठुर भावापन्न हो मथुरा पधारे और कंसादिक– असुरों का संहार कर अपने माता–पिता देवकी–वसुदेवजी को बंदी–गृह से छुड़ा महाराज उग्रसेन को पुनः मथुरा की राजगद्दी पर बिठा दिया, तब अपने से बिछुड़े उन सारे ब्रजवासियों तथा "प्रेमधुजा–रसरूपनी" ब्रज–लालनाओं की याद आयी, जिन्होंने "संत्यज्य सर्व विष्यांस्तव पादमूलं" रूप मूल–मंत्र को निरंतर जपकर अपने जीवनों को आप पर उत्सर्ग कर दिया था। अतः तद्भाव–विभोर होकर आपने–

"कृष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।। भा.10/46/1

को उन लोगों के सान्त्वनार्थ वा अपने इस निर्गुणवादी नये सखा को अपने–जैसा रस–सगबगा बनाने, कोरे ज्ञान–गर्वीले उद्धव को पुनीत प्रेमी में परिणत करने के लिए ब्रज भेजा। अतः ब्रज पहुँचकर श्री उद्धव पहले बाबा श्रीनंद और माता यशोदा तथा ग्वाल–बालों के साथ मिले और उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का संदेश दिया। उसके बाद आप 'ब्रज बालाओं' से मिले और उन्हें भगवत्प्राप्यर्थ ज्ञानादि के कड़वे काढ़े को प्रिय–संदेश की मिसरी में मिलाकर पिलाना चाहा तो बात बढ़ गई, फलस्वरूप ज्ञान और भक्ति का संघर्ष मय संवाद चल पड़ा। जब वह जय–पराजय की तुलना हेतु तुला मं इधर उधर लुढ़क ही रहा था कि कहीं से उड़ता हुआ एक रस–लंपट भँवरा जो अपने रूप–गुणों के कारण गोपियों को कृष्ण के समान, जैसे –

"तेरौ-तन घनश्याँम, स्याँम घनश्याँम उतै सुनि।
तेरी गुँजन सुरलि, मधुप उत मधुर मुरलि धुनि।।
पीत रेख तव कटि-बसै, उत पीतांबर चारू।
विपिंन-बिहारी दोउ लसत, एकै रूप सुभाउ।।
मुगल रस के चखा"

–वहाँ आ पहुँचा और विरह–विलुलित ब्रज–वनिताओं के अरूण–कमल–दल के समान–पाद–पद्मों पर गुन–गुन करता हुआ बैठने, अथवा उन्हें चूमने को मंडराने लगा तो प्रेमरस विह्वला गोप–ललनाओं के श्रीमुख खुल गये तथा उस उपस्थित भ्रमर की ओट में छिपे प्रेम का ढोंग रचने वाले मथुरिया कृष्ण के प्रति जो–जो तीखे, फिर भी मधुर से मधुरतर तीर छोड़े गये, वही "भ्रमर" वा भँवर–गीत के विषय रूप में बंदनीय कथा का वर्णन है। ग्रन्थ के प्रारम्भ का छंद दृष्टव्य है। यथा–

"ऊधौ कौ उपदेस सुनों ब्रज नागरी।
रूप, सील, लावन्य, सबै गुन आगरी।।
प्रेम धुजा रस रूपनी, उपजावन सुख-पुंज।
सुन्दर स्याम बिलासिनी, नव वृंदावन-कुंज।। -

सुनों ब्रजनागरी

उद्धव कौन थे? इसके विषय में भागवतकार पुष्टि करते हैं।

"देवी मीदस्य शूरस्य मारिषा नाम परन्यभूत।
तस्यां स जनया भास दश पुत्रान कल्मसानं।।
वसुदेवं देवभागं देव-श्रव समानकम्।
सृत्रयं श्यमकं कंक शमीकं वत्सकं वृकम्।।

-श्री भाग. 9/24/27/29

नागरी - नगर में रहने वाली प्रवीण, चतुरास्त्रियों, यहाँ नागरी शब्द का अर्थ इससे सम्बन्धित ब्रज का बायकाट कर श्री वियोगी हरि ने अपने संस्करण "ब्रज–माधुरी सार" में और बाबू श्री ब्रजरत्नदासजी ने स्वसम्पादित "भ्रमर गीत" में नागरी का अर्थ नगर वासिनी किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि ब्रज में नगर निवासिनी स्त्रियाँ ही नहीं रहती थीं अपितु यहाँ दोनों अर्थात् "ब्रज और नागरी का अर्थ एक साथ ही होगा।

अर्थात् "ब्रज की चतुर प्रवीण स्त्रियों।"

रूप - रूप अर्थात् किसी का वह गुण जो चक्षुरिन्द्रिय द्वारा जाना जाता है अर्थात् पदार्थों के वर्णो व आकृति का योग जिसका ज्ञान नेत्रों को होता हो। रूप आकृति और सुन्दरता भी है। पदार्थों में एक शक्ति सन्निहित रहती है जिससे दृष्टा को उन पदार्थो की आकृति और वर्णादि का ज्ञान वा बोध होता रहता है, इसलिए इस शक्ति को 'रूप' कहते हैं। क्योंकि दर्शन–शास्त्रकारों ने रूप को चक्षुरिन्द्रिय का विषय माना है। वैशैषिक दर्शनकार इसे गुण मानते हैं।

"रूप शब्दो गन्धरस स्पर्शाश्च विषया अमी" (अमरकोष 1/5/16)

रूप सोलह प्रकार का होता है – ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्, वृन्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारूण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्षण, पिच्छल, मृदु और दारूण।

सील वा शील - उत्तम स्वभाव, चाल, व्यवहार, वृत्त, चरित्र, चाल–चलन आदि। बौद्धशास्त्रकारों ने "शील" के हिंसा–स्येन व्यभिचार, मिथ्या भाषण, प्रमाद, अपराह भोजन, नृत्य गीतादि, माला गन्धादि, उच्चासन–शय्या, द्रव्य–संग्रह और इनका त्याग इत्यादि दस प्रकार माने हैं।

ब्रज-नागरी - रूप, सील, लावन्य और आगरी के सरस प्रयोग–

''अरी–ब्रज नागरी प्यारी दैजा मेरौ दान।''	–परमानंददास
''रूप'' अनोंखौ पाइकैं को करति है मौन, गुमान।	–''कृष्णदास
''सील'' संकोच न तागिऐ प्यारे	–परमानंददास
''कहि न सकति लावन्यता'' कीरति–राजकुमारी।''	–चाचा वृन्दावनदास
''छबीली नागरी '' गुन–आगरी ''मेरौ मन मोहि लियौ''	–सूरदास–मदन मोहन

प्रेमधुजा- शुद्ध स्वरूप–प्रेमध्वजा–प्रेम की ध्वजा, अर्थात् प्रेम करने वालों में अग्रगण्य–अगाड़ी गिने जाने वाला।

''प्रेम धुजा'' इसी भाव को परमानंददासजी ने उक्त पद के माध्यम से वर्णित किया है–

''गोपी प्रेम की धुजा।
जिन्ह गुपाल किए अपने बस, उर धरि स्यौंम भुजा।।
सुक मुनि-व्यास प्रसंसा कीन्हीं, ऊधौ संत सराहीं।
भूरि भाग गोकुल की वनिता, अति पुनीत भुअ-माहीं।
कहा भयौ विप्रकुल जनमैं, जो हरि सेवा नाहीं।
सोइ कुलीन ''दास परमानन्द, जे हरि सनमुख जाहीं।।

रस-रूपनी- रस स्वरूपिणी, अर्थात् रसो की साक्षात मूर्तियाँ

रस :– रस नौ प्रकार के माने जाते हैं। यथा–

श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानकाः।
वीभत्सांऽद्भुत्य इत्य सौ रसाः शान्त साथा अतः।।''

-साहित्यदर्पण 3/1 82

उपजावनि- उपजाने वाली, पैदा करने वाली, सुख पुँज, सुख का समूह, ढेर। मन की वह उत्तम तथा प्रिय अनुभूति जिसके द्वारा अनुभव करने वाले को विशेष समाध ाान और संतोष होता है। अथवा जिसके बराबर अर्थात् हमेशा बने रहने की कामना करता हो, वह अनुकूल और प्रियवेदना जिसकी सब को अभिलाषा रहती है।

सुन्दर-स्यौंम विलासनी- श्याम सुन्दर के साथ विलास करने वांली अर्थात् लीला करने वाली, खेलने वाली, 'सुन्दर स्यौंम' श्रीकृष्ण का नाम विशेष है। विलास अर्थात् खेल–क्रीड़ा कौतुक, भोग, सुख आनन्द।

''स्त्रीणां विलास विब्बोक विभ्रमा ललितंतथा।''

(अमर कोष 1/7/31)

नव वृन्दावन-कुंज - नयी, नूतन, नवीन श्री वृन्दावन की कुंज। वृन्दावन, तुलसी का वन कुंज, लतादि से ढँका हुआ स्थान, रस रूपनी उपजावनि सुख पुंज सुन्दर स्यँाम विलासनी आदि के सरस प्रयोग–

''रस-रूपनी प्यारी ! नेंकु इत देखौ मुख-मोरि।'' -गदाधर भट्ट

''सुख 'उपजावनी' राधे ऐसौ न कीजै मान। -ललित किशोरी

''वृन्दावन निरखौ कबौं जहँ कुंज-कुंज-सुख-पुंज। -नागरी दास

इसी प्रेम की व्यवस्था को स्वर्गीय श्री जगन्नथदास ''रत्नाकर'' जी ने प्रस्तुत छंद के द्वारा किया है। यथा–

''मेजे मन भावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज-गावनि में पावनि जबै लगी।।
कहै 'रतनाकर' गुवालिनी की झौरि झौरि
दौरि दौरि नंदपौरी आवन तबै लगी।।
उझकि-उझकि पंद-कंजनि के पंजनि पै,
देखि-देखि पाती-छाती छोहन सबै लगी।।
हमकों लिख्यौ है कहा, हमकों लिख्यौ है कहा,
हमको लिख्यौ है कहा, कहँन सबै लगी।।

श्री उद्धवजी गोपियों से वार्तालाप करते करते जब थक गये तो उन्हें कोई युक्ति दिखाई नहीं दी। अंत में पराजय मानकर उनके सामने नतमस्तक हो गये। श्री उद्धव जी कहने लगे कि '' इन नंद–ब्रज–स्त्रियों की मैं निरन्तर वंदना करता हूँ क्योंकि इनके द्वारा गायी गई कथा तीनों भुवनों को पवित्र करने वाली है। नंदादिक उन्हें जाते देखकर अपनी आँखों में अनुराग के आँसुओं को भर–प्रेमाश्रुओं से अभिसिंचन कर हाथों में उन्हें देने के लिए अनेकानेक भेंट की वस्तुएँ ले यह बोले :–

''हम लोगों के मन की सारी शक्तियाँ उन (श्रीकृष्ण) के चरणों में, वचन उनके नामों का गान करने में और शरीर को प्रणाम करने में लगे हैं। ईश्वर की इच्छा से हमने जो कुछ भी मंगलमय–आचरण और दानादि किये हैं, उन कर्मो द्वारा घूमने हुए, भ्रमते हुए हम किसी योनि में जाँय, परन्तु हमारी प्रीति परमेश्वर श्री कृष्ण में ही लगी रहे।

३७, बल्देवपुरी, महोली रोड़, मथुरा

जन श्रुतियों के झरोखे से : महाकवि नन्ददास

✍ डा. त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल

हिन्दी–साहित्य में जिन आठ कवियों की गणना अष्टछाप के कवियों के रूप में की जाती है, उनमें कविवर सूरदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, कृष्णदास, नन्ददास चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी और छीत स्वामी का उल्लेख होता है। इनमें प्रथम चार कवि आचार्य श्रीबल्लभ के शिष्य थे और शेष चार कवि आचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये आठों भक्त कवि एक दूसरे के समकालीन थे और ब्रज के गिरिराज गोवर्द्धन पर स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन–सेवा करते थे। कहा जाता है– पहले अष्टछाप के कवियों में श्री विष्णुदास छीपा सम्मिलित थे किन्तु, बाद में उन्हें मन्दिर का द्वारपाल नियुक्त कर दिया गया और उनके स्थान पर श्री नन्ददास को सम्मिलित कर लिया गया।

कविवर श्री नन्ददास उच्चकोटि के एक महान कवि थे। ये प्रतिभाशाली और विद्वान तो थे ही, साथ ही उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। लौकिक और आध्यात्मिक – दोनों प्रकार की अनुभूतियों की दृष्टि से इनका काव्य अति ही उच्च कोटि का है। महाकवि श्री नन्ददास के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ समाज में प्रचलित रही हैं। कहा जाता है कि, यह नाच–गाने के बहुत शौकीन थे। जहाँ कहीं नाच–गाना होता, वहाँ यह पहुँच जाते और पूरे समय उसी में रमे रहते। इसी शौक में इन्होंने अपने आस–पास के कई स्थानों की यात्राएँ कीं।

खत्राणी–प्रसंग से ये श्री विट्ठलनाथजी के पास पहुँच गये। श्री विट्ठलनाथजी की शरण में आ गये। गोस्वामी जी ने स्थिति को समझा और इसका बहुत ही सुन्दर समाधान किया। रूपासक्त नन्ददास को उन्होंने श्री नवनीतप्रिय जी के दर्शन कराये और दिव्यरूप का अनुभव तथा उसकी अनुभूति करायी। श्री नन्ददासजी अपना देह–ज्ञान भूल गये और उन्हें उन्हीं क्षणों में दिव्यज्ञान् की अनुभूति हो गयी। वह गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी की शरणागत हो गये। उनका हृदय निर्मल हो गया।

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी ने इन्हें अपने आश्रय में रख लिया और इन्हें भक्त कवि श्री सूरदास को सौंप दिया। भक्त सूरदास ने इन्हें भगवान की माधुर्य भक्ति का ज्ञान प्रदान किया। इनके हृदय में नवीन भावों का उदय हुआ। श्री नन्ददास गोवर्धन गांव में रहने लगे और, जब इनकी इच्छा होती तब यह गोकुल गांव में चले आते। ग्रंथों का अध्ययन, मनन और चिन्तन करने लगे तथा सम्प्रदाय की रीति–नीति–साधना समझने लगे।

कविवर श्री सूरदासजी से इनकी घनिष्ठता और आत्मीयता बढ़ गयी। एक दिन कविवर श्री सूरदास जी ने इनसे कहा– " नन्ददासजी ! अभी तुम में सच्चा वैराग्य–भाव नहीं आया है। तुम्हारे मन में अनुराग भाव शेष है इसलिए, तुम पहले गृहस्थाश्रम का उपभोग करो। फिर, भगवान श्रीनाथजी की सेवा में मन लगाना।" यह बात श्री नन्ददासजी की समझ में आ गयी और ये अपने गांव लौट गये, जहाँ इन्होंने विवाह किया और कुछ वर्ष गृहस्थाश्रम का अनुभव किया। इनके एक पुत्र भी हुआ और इन्होंने अपने गांव में कुछ निर्माण–कार्य भी कराये, जिनमें रामपुर के 'श्यामसर' का विशेष उल्लेख किया जाता है। यहाँ रहकर इन्होंने कुछ काव्य–रचनाएँ भी कीं जो काव्य की दृष्टि से इनकी विशिष्ट कृति मानी गयी हैं– इनमें इनकी मंजरी–साहित्य की रचनाएँ इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। इन मंजरियों में –रस–मंजरी, विरह–मंजरी, रूप–मंजरी, मान–मंजरी और अनेकार्थ--मंजरी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कुछ काल पश्चात् संयोग से गृहस्थाश्रम बिखर गया और कविवर श्री नन्ददास पुनः भगवान श्रीनाथजी की शरण में आ गये। ये गोवर्धन गाँव में मानसी गंगा पर रहने लगे। कुछ समय बाद गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी ने इन्हें अष्टछाप के कवियों में सम्मिलित कर लिया। कविवर नन्ददास ने इसके उपरान्त अनेक उत्तम ग्रंथों की रचना कीं।

इस रचनाओं में 'रास–पंचाध्यायी', श्याम सगाई, गोवर्धन–लीला, भ्रमर गीत, रूक्मिणी मंगल, सुदामा चरित्र, सिद्धान्त–पंचाध्यायी, मान–लीला, प्रेम–बारहखड़ी, पदावली और भागवत–दशम–स्कन्ध, वीणा–वादिन–लीला आदि प्रमुख हैं।

कहा जाता है कि, जब कविवर श्री नन्ददास ने सम्पूर्ण भागवत को भाषा का रूप दे दिया तो कथावाचक पंडितों को बहुत चिन्ता हो गयी। उन्होंने अपनी चिन्ता गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी से निवेदित की, कहा– " इस भाषा भागवत से हमारी आजीविका को हानि होगी।" इस बात को गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी ने ध्यान से सुना और इस पर विचार किया फिर, उन्होंने संकेत से कविवर श्री नन्ददास का ध्यान इस ओर दिलाया। कविवर श्री नन्ददास ने बात को गम्भीरता से लिया और भगवान के रास–रस के सुन्दर पदों को अलग कर के शेष भाषा–भागवत के अंश को श्री यमुना में प्रवाहित कर दिया। इस त्याग से उनका गौरव और अधिक बढ़ गया। श्रीकृष्ण की रूप–माधुरी तथा गोपी–प्रेम के वर्णन में उन्होंने अपनी अद्भुत काव्य–क्षमता का परिचय दिया है।

भक्त कवियों ने प्रेमभाव की अनुभूति को विशेष स्थान दिया है। भक्तिशास्त्र में जिस अनुभूति को रति–भाव–जन्य 'मधुर–रस' माना है और सम्प्रदाय में 'रागानुगा भक्ति' कहा है, वही साहित्य की दृष्टि से प्रेमानुभूति है।

साहित्य की आत्मा रस है। रस शून्यभाव साहित्य की कोटि में नहीं आता है। साहित्य की दृष्टि में नवों रसों को मान्यता प्राप्त हुई है किन्तु, इनमें श्रेष्ठ रस की दृष्टि से श्रृंगार रस को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि, जगत के अणु–अणु में श्रृंगार का वास है। इसी लिए मानव–श्रृंगार और प्राकृतिक–श्रृंगार में से किसी न किसी श्रृंगार को सफल कवि अवश्य ही अपने काव्य में अपनाते हैं। संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में श्रृंगार रस का आधिपत्य है।

हिन्दी का अष्टछापी साहित्य भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं से संयुक्त है अतएव, यह साहित्य दैव–भाव–संयुक्त होते हुए भी अत्यन्त ही मधुर–रस परिपूरित है।

श्रृंगार–रस और संगीत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। फिर, अष्टछाप के आठों कवि तो भक्त और संगीतज्ञ भी थे अतएवं, इन्होंने तो अपने काव्य में श्रृंगार–परक रचनाओं को प्रमुख ही स्थान दिया।

अभी तक साहित्य में महाकवि सूरदास के साहित्य का सर्वाधिक अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। अन्य अष्टछाप के कवि अभी तक इस दृष्टि से बहुत ही कम प्रकाश में आये हैं।

महाकवि श्री नन्ददास ने केवल पद–साहित्य ही नहीं रचा है अपितु, साहित्य के अन्य छन्दों को भी अपनाया है। इनमें संगीत के ताल और नृत्य का भी ध्यान रखा गया है। जैसे इस रचना में देखिए–

देखौ–देखौ री नागर नट, निरतत कालिन्दी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट–लटक।
काछिनी, किंकनी कटि, पीताम्बर की चटक,
कुण्डलन किरन रवि–रथ की अटक।।
तत थई, तत थई सबद सकल घट डरप,
तिरप गति पग की पटक।
रास में राधे ! श्री राधे !! मुरली में एक रट,
'नन्ददास' गावै तहाँ निपट निकट।।

शब्द–चयन और भाषा के माधुर्य भाव का सन्तुलित प्रयोग उनकी रचनाओं को प्रभावशाली और अत्यन्त आकर्षक बना देता है। भाषा की सजीव अभिव्यक्ति करने में वह अद्वितीय कवि हैं। उन्होंने अपने काव्य में स्थान–स्थान पर अपनी इस काव्य–क्षमता का परिचय बडी ही कुशलता से दिया है। इसीलिए, साहित्य में यह उक्ति प्रचलित हो गयी है–

''और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया''

– वस्तुतः यह बात अतिशयाक्ति भी नहीं है। यह बात सत्य है।

रास के वर्णन में संगीत और नृत्य का मनोहर वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है–

नूपुर, कंकन, किंकिनि मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग, एकहि सुर जुरली।।

मृदुल मुरज-टंकार, तार झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र के तार, भँवर गुंजार रली पुनि।।

तैसिय मृदु पट-पटकनि, चटकनि कट तारन की।
लटकनि, मटकनि, झलकनि कल कुंडल हारन की।।

इसी प्रकार "रूक्मिणी–मंगल" काव्य–रचना में कुमारी रूक्मिणी के स्वयंवर के अवसर से पूर्व की दशा का यह मनोहारी वर्णन पढ़िए–

सिसुपालहिं कों देति, रूकिमिनी बात सुनीं जब।
चित्र लिखी-सी रही, दई यै कहा भई अब।।

चकित चहूँ दिशि चहति, बिछुरि मनु मृगी-माल ते।
भयौ बदँन कछु मलिन, नलिन जनु गलित ताल ते।।

अलि पूँछति बलि बात, कहौ नेंनन क्यों पाँनी।
पुहुप-रेंनु उड़ि परी, कहति तिन्ह सों मृदु-बाँनी।।

टप, टप, टप, टप, टपकि नेंन सों अँसुआ ढर-हीं।
मनु नवनीत-कमल-दल ते मल मुतियाँ झर-हीं।।

सुक, पिक, चातक-सबद, सुमींठी-धुँन यों रट-हीं।
मनों मार-चटसार, सुढार चटा से पट-हीं।।

और बिहंगम रंगन-भरि, बोलत हिय-हर-हीं।
मनु तरूवर रस-भरे, परसपर बातें कर-हीं।।

इस वर्णन में एक प्रेमी–हृदय की आकुलता–व्याकुलता और उसकी शारीरिक दशा का बड़ा ही सफल चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार उन्होंने अपनी "रूप–मंजरी" नामक कृति में एक प्रेमकथा में प्रेम की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है–

भूत छियें, मदिरा पियें, सब काहू सुधि होइ।
प्रेम-सुधा-रस जो पियें, तिहि न रहे सुधि कोई।।

जदपि अगम ते अति अगम, निगम कहत हैं ताहि।
तदपि रँगीले प्रेम ते, निपट निकट प्रभु आहि।।

इस वर्णन में प्रेम के प्रभाव का कितना सटीक वर्णन है। 'प्रेम तत्त्व की व्याख्या कितने सरल और स्पष्ट रूप से इस वर्णन में व्यक्त हुई है।

महाकवि श्री नन्ददास को अपने निजी में प्रेम की जो गहन अनुभूति हुई थी, उसका प्रभाव उनके काव्य में सर्वत्र ही हुआ है। यही कारण है, उनके काव्य में सरसता और सत्यानुभूति अधिक व्याप्त है।

भ्रमर–गीत के स्फुट पद महाकवि सूरदास ने अनेक लिखे हैं और इन पदों में अत्यन्त सुन्दर भावानुभूति भरी हुई है किन्तु, महाकवि श्री नन्ददास ने तो इस विषय पर सुन्दर प्रबन्ध–काव्य ही रच दिया है।

महाकवि श्री नन्ददास का भँवरगीत' काव्य की दृष्टि से एक अत्यन्त उच्च कोटि की रचना है। प्रेम रंग में डूबी गोपियाँ जब निर्गुण ब्रह्म के उपासक एवं ज्ञानी उद्धव जी से उनके उपदेशों का खण्डन करते हुए अपनी सहज भाषा में तर्क पूर्वक पूछती हैं–

कौन ब्रह्म को जोति? ग्याँन का सों कहौ ऊधौ?
हमरे सुंदर स्याँम, प्रेम कौ मारग सूधौ।।

नेंन, बेंन, स्तुति, नासिका, मोंहन–रूप दिखाइ।
सुधि–बुधि सब मुरली हरी, प्रेम–ठगोरी लाइ।।

सखा सुनि, स्याँम के।

इसके पश्चात् ब्रह्म की सगुणता का प्रतिपादन गोपियाँ आत्मविश्वास पूर्वक करते हुए कहतीं हैं–

जौ उनकें गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तें ?
बीज–बिना तरू जमैं, मोहिं तुम कहौ कहाँ तें ?

वा गुन की परछाँइ री, माया–दरपन–बीच।
गुन ते गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच।।

सखा सुनि, स्याँम के।

प्रेम–विह्वल गोपियाँ उद्धव जी से उपने प्रेमी श्रीकृष्ण का सन्देश सुनना चाहती थीं। उन्हें उद्धव जी की नीरस ज्ञान–चर्चा नहीं सुहा रही थी किन्तु, उद्धव जी अपने में ही लीन उन्हें उपदेश देते रहे। ऐसी स्थिति में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण जी की निष्ठुरता पर वे खींझ उठतीं हैं। वे नारी भावना से वशीभूत होकर कह उठती हैं–

कोउ कहै रे मधुप, तुम्हें लाजौ नहिं आवै।
स्वाँमी तुम्हरो स्याँम, कूबरीनाथ कहावै।।
हयाँ नीच पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ।
अब जदु–कुल पावन भयौ, दासी जूठन खाइ।।

मरत कहा बोल कों।

गोपियों के व्यंग्यपूर्ण इन अक्षय वाणों का ज्ञानी उद्धव जी क्या उत्तर देते? उन्हें विश्वास हो गया कि, 'प्रेम' के समक्ष 'ज्ञान' का मूल्य अत्यन्त अल्प है। इस संसार में प्रेम से बढ कर कुछ भी नहीं है। संसार के सम्पूर्ण सम्बन्धों में इसी प्रेम के कारण सुख, आनन्द और आत्म सन्तोष की प्राप्ति होती है, जिसे यह निस्वार्थ सहज प्रेम मिला है, वह अत्यन्त भाग्यशाली है।

महाकवि श्री नन्ददास केवल एक कवि ही नहीं थे। वह भाषा और साहित्य के आचार्य थे, दार्शनिक थे, भक्त थे और एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। पर, इन सब बातों के साथ हमें यहाँ यह बात भी स्मण रखना होगा कि, वे मूल में एक 'प्रेमी हदय' सहज मानव थे, जिनका हदय प्रेम–रस से सराबोर था। महाकवि श्री नन्ददास के साहित्य का अध्ययन करने पर हमें यह बात स्थान–स्थान पर स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है।

जनुश्रुतियाँ समाज में किसी न किसी आधार पर बनती हैं। महाकवि श्री नन्ददास के विषय में जो जनश्रुतियाँ हैं, वे भी सत्य ही हैं। महाकवि श्री नन्ददास ने किसी खत्री–युवती से प्रेम किया हो या न किया हो परन्तु उन्होंने जो प्रेमानुभूति पायी थी, वह निराधार नहीं है। 'प्रेम' का इतना सफल चित्रण करना बिना गहन अनुभूति के सम्भव नहीं है।

महाकवि श्री नन्ददास ने लगभग पचास वर्ष की आयु प्राप्त की थी और संवत् १६४० वि० में उन्होंने गोवर्धन में मानसी गंगातट पर अपने नयन सदैव के लिए मूँद लिए।

ब्रजभाषा–साहित्य की विपुल साहित्य–निधि में महाकवि श्री नन्ददास की रचनाएँ बहुमूल्य मणि–माला रूप में सुशोभित हैं। आज इनके समग्र साहित्य के सुनियोजित–मनन की आवश्यकता है।

''श्रीभवन'', मण्डी रामदास, मथुरा

श्रीमद्भागवत और कवि नन्ददास का भ्रमरगीत

✍ डा. श्रीमती सुषमा शर्मा

भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्व है। एक प्रकार से हमारे पुराण अमूल्य निधि हैं, प्रेरणास्रोत हैं। जिसमें वैदिक साहित्य किसी न किसी रूप में इन पुराणों में आ गया है क्योंकि इनका संकलन विभिन्न कालों में हुआ है। पुराणों के नाम से ही उनके विषय का आभास हो जाता है जैसे श्रीमद्भागवत् ! श्रीमद्भागवत में महाभरत से पौराणिक युग तक जितना श्रीकृष्ण का विवेचन हुआ है, समन्वित रूप से चित्रित है।, जिसका मूल उद्देश्य समर्पण है जो पुष्टि मार्ग का विशेष अंग है। बाललीलाओं को छोडकर श्रीकृष्ण का समस्त जीवन चरित्र भागवत के चार भागों में हम पढ़ सकते हैं, घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक एवं गीतात्मक ! वेदव्यासजी का लक्ष्य भागवत तत्व के निरूपण से भक्तिरस का संचार करना है। अतः कृष्ण का दिव्य स्वरूप घटनात्मक स्थलों द्वारा दिव्य मंगल स्वरूप के दर्शनों को स्तुतिपरक किया है। वे भाव में इतने अभिभूत हो जाते हैं कि उन प्रसंगों में साक्षात् रूप के दर्शन होते हैं भले ही भ्रमर (भंवरे) जैसे रूप में ही क्यों न हो ! 'भ्रमरगीत' के प्रसंग को ही लें। भागवतकार ने संस्कृत भाषा में भागवत् के दशम स्कंध में इस प्रसंग को बड़ा रोचक बनाया है। प्रारंभ में उद्धव तथा गोतियों की बातचीत है– श्री शुक– – – – –

इसमें उद्धव की आकृति का वर्णन है जो कृष्ण से मिलता जुलता है। इसी समय एक भौंरा गुनगुनाते हुए आता है। भ्रमर को रसिक वृत्ति का प्रतीक माना है। जिस प्रकार भौंरा फूलों के इर्द गिर्द घूमकर रस लेकर विमुख हो जाता है उसी प्रकार कृष्ण हैं– दोनों का वर्ण श्यामवर्ण है, भौंरे की गुनगुनाहट और कृष्ण की मुरली की तान में कोई अंतर नहीं है। गोपियाँ उद्धव के सामने भ्रमर को संबोधित कर उपालंभ देती हैं। रे मधुप ! तू बड़ा कपटी सखा है उद्धवजी पंचमहाभूतों की महत्ता दर्शाते हुए, माया, मोह, ज्ञान का उपदेश देते हैं। गोपियाँ जब अपनी विरह–व्यथा का वर्णन करती हैं तो उद्धव श्री कृष्ण की लीला कथा सुनकर ज्ञानभक्ति से प्रेमभक्ति में आजाते हैं। इस प्रकार ज्ञान–मार्गी–भक्ति पर प्रेम की विजय है। सगुण भक्ति और प्रेम भक्ति की प्रतिष्ठा है। 'प्रेम' एक भाव है। जो अटूट है। मनोविज्ञान में " फीलिंग" शब्द अंग्रेजी में मिलता है जिसका अर्थ है भाव, अनुभूति अनुभूति ही सुख दुख की अभिव्यक्ति है। एक मानसिक प्रक्रिया है। जो भावात्मक प्रक्रिया से शुरू होती है जिसका विश्लेषण असंभव है। अनुभव की चेतनावस्था में संवेदन, सौंदर्य बौद्धिक और नैतिक गुण आते हैं जो आत्मनिष्ठ होते हैं। मन ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक होता है। नवधा भक्ति इसी की परिधि में समाहित है। इसी मनोविज्ञान के आधार पर श्रीमद्भागवत का भ्रमर गीत प्रसंग है, जिसने अपनी परंपरा अनवरत रखी है। भ्रमर गीत परंपरा में भक्ति कालीन कवि नन्ददास हैं। जिन्हें हम अष्टछापकवियों में जानते हैं –"और कवि गढिया, नन्ददास जड़िया" के

रूप में !इनके भंवर गीत में अनुभूति की रमणीयता है, आनन्द की अभिव्यक्ति है जो सुन्दर कलात्मक है। नन्ददास का भंवरगीत विरहकाव्य है जिसका प्रारंभ "उधॉ को उपदेस सुनै ब्रजनागरी" !

उपदेश दो प्रकार के माने गये हैं एक साधारण दूसरा विशेष। विशेष उपदेश के रूप में वे स्थल हैं जहां उपदेश किसी व्यक्ति विशेष के रूप में दिए गए हों, जैसे उद्धव गोपी प्रसंग। इन उपदेशों में परमतत्व और ज्ञान भक्ति कर्म की व्याख्या हुई है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के भ्रमरगीत में यही विशेष उपदेश दृष्टव्य हैं जिनका अनुसरण भ्रमरगीत परंपरा के कवियों ने किया है जिनमें कवि नन्ददास आते है। श्रीमद्भागवत की भाषा संस्कृत–निष्ठ है, और नन्ददास की भाषा ब्रज भाषा है। भाषाओं का अंतर होते हुए भी भक्ति रस का संचार कण–कण में है। प्रेम की धारा अविरल प्रवाहित हुई है।

उद्धव की ब्रजयात्रा नंद यशोदा को, गोपियों को सांत्वना देना था, कृष्ण के ब्रजरूप को दर्शाना था। श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास के भंवरगीत में प्रसंग का अंतर है, जैसे नन्ददास ने कुब्जा के प्रसंग को देकर गोपियों की सौत डाह की ईर्ष्या को प्रकट किया है। श्रीमद्भागवत के उद्धव निरभिमानी ज्ञानी हैं और नन्ददास के भंवरगीत के उद्धव निर्गुणोंपासक संतों की भाँति तार्किक और विवादी हैं। नन्ददास ने उद्धव को तर्क में और प्रेम में गोपियों को रखा है। गोपियों के उच्च बौद्धिक स्तर का दिग्दर्शन किया है। विरह की मार्मिक चर्चा है। वल्लभ संप्रदाय के शुद्धाद्वेत के दर्शन होते हैं तो साधक के लिए ब्रह्म को अजन्मा, अनन्त माना है। गोपियों ने उद्धव के पांडित्य एवं ज्ञानगर्व को खंडित कर उन्हें प्रेमभक्ति की शिक्षा दी। दोनों ही अर्थात् श्रीमद्भागवत में तथा नन्ददास के भंवरगीत में प्रसंग सगुण भक्ति का पोषक और एक अकाट्य शास्त्र है। भक्ति और ज्ञान का संतुलन है, प्रेम सर्वोपरि है योग को व्यंग्यात्मक रूप देकर खंडन किया है।

साधना की दृष्टि से पुष्टि का अर्थ है सेवा, पोषण, प्रभु की कृपा !

पुष्टिमार्ग मे सेवाभाव कण–कण मे समाया है, चाहे बालभाव हो या सखा भाव या सेव्य भाव हो यहां भाव का प्रमुख स्थान है। उस भाव में "प्रेम" सर्वोपरि है। इस दृष्टि से तीन प्रकार की पुष्टि परिभाषित हुई है, प्रवाह पुष्टि जिसका अर्थ है संसार में रहकर प्रभु की भक्ति करना। मर्यादा पुष्टि से तात्पर्य है, संसार की माया से लिप्त होकर आराध्य देव का गुणगान करना है। शुद्ध पुष्टि से तात्पर्य है, प्रेम को भगवान की कृपा मानना। ब्रह्म के रूप में कृष्ण को मानना दार्शनिक पक्ष है जो परब्रह्म है, अक्षर ब्रह्म है ओर जगत् ब्रह्म है, नादब्रह्म है। शोधपरक दृष्टि से भ्रमरगीत कहीं इन्हीं दर्शन का पर्याय है। जब चेतना जागृत होती है तब ज्ञानात्मक पहलू को हम परखेंगे। भक्तिरस में ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और विवेक तत्व भक्त को प्रेम में बांध देता है क्योंकि प्रभु प्रेम के भूखे हैं, भक्त भी उनकी प्रेम प्राप्ति कर स्वयं को संतुष्ट कर लेता है। प्रेमभावना ही भक्ति का परिचायक है। नारदीय भक्तिसूत्र में भी भक्ति में प्रेम की सूक्ष्मता है, अनुभूति है।

अष्टछाप कवियों में कवि नन्ददास ने अपने भंवरगीत को रागरागनियों में लिखकर कोमलता पूर्ण, तन्मयता के साथ दर्शाया है। श्रृंगार रस को प्रधानता देकर उसके दूसरे पक्ष अर्थात् वियोगावस्था को उभारा है। वेदव्यास के श्रीमद्भागवत के भ्रमर गीत से प्रभावित होकर अपने मन को, विवेक को कृष्ण के प्रति समर्पित किया है। दोनों के प्रसंगों में उद्धव दर्शन से संघर्ष करने की प्रवृति गोपियों मं दर्शायी हैं दोनों में ही तर्कशास्त्र की दीक्षा है। गोपियों का हृदय जितना आत्मविभोर है उतना ही उनका मस्तिष्क प्रौढ है। भक्तिपक्ष में प्रेम पुष्टि मार्गीय भक्ति के विचार पक्ष की अभिव्यक्ति नन्ददास की विशेषता है जिसका प्रभाव उनपर श्रीमद्भागवत के प्रसंग से हुआ है। कवि नन्ददास के भंवरगीत में प्रबंधकाव्य सा क्रमबद्ध रूप है, एक विरही व्यथा का चित्रण है खीझ है और अधिकार पाने का संघर्ष है। उन्हीं के शब्दों में–

"नास्तिक है जे लोग कहा जानै निज रूपैं
प्रगट भानु को छोडि, गहत परछांई पूछैं"

नन्ददास का 'भंवरगीत' परिपक्व दर्शनज्ञान, विवेक बुद्धि, तार्किक शैली और कृष्ण भक्ति के प्रेम का परिचायक काव्य है। नन्ददास का उद्देश्य निर्गुण निराकार रूप की उपासना का खंडन है और सगुण साकार कृष्ण की भक्ति साकार करना है। गोपी–उद्धव संवाद में कवि नन्ददास की विचारवृत्ति का परिचय मिलता है भाषा की दृष्टि से ब्रजभाषा की मधुरता बिखरती है। नन्ददास ने भागवत् के भ्रमरगीत के प्रसंग के अनुसार उसे कथात्मक काव्य बनाया है, इसमें माधुर्य गुण दिया है और तार्किकता की बहुष्ठता है। दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्यात्मक ढंग से हुआ है। इस प्रकार कवि नन्ददास मस्तिष्क के साथ चलते हैं तर्क–वितर्क से प्रारंभ करते हैं अंत में सगुण की निर्गुण पर विजय स्थापित कर प्रेम की धारा भंवर गीत में प्रवाहित करते हैं।

हृदय से मस्तिष्क को अधिक बल देते हैं ! नन्ददास को भाषा जड़िया कहने का तात्पर्य है जिस प्रकार एक जडिया अंगूठी में सुंदर सा नगीना जड़ता है और उसकी सुन्दरता की श्रीवृद्धि करता है उसी प्रकार कवि नन्ददास अपनी भाषा में शब्द जडने में माहिर हैं। शब्दों के भंडार में कहीं भी शिथिलता नहीं है धारा प्रवाह, कोमलकांत पदावली मधुर वर्षा की बूंदा–बूंदी ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों में लोकोक्तियाँ, मुहावरों का प्रयोग कर जन–जन के मन को मोहित कर दिया है। शब्दों के चयन में मार्मिकता के गुण आने से पाठक, श्रोता, वक्ता, दर्शक आल्हादित हो आत्मविभोर हो जाता है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत में प्रेमतत्व आध्यात्मिक क्षेत्र की विरह वेदना है। जो दार्शनिक प्रधान है, तर्क–वितर्क में भावुकता का समावेश है जो नन्ददास के इस पद में झलकता है– वे तुमसे नहीं दूर, ग्यान की आंखिन देखो

अखिल विश्व भरपूरि ब्रह्म सब रूप बिसेखौ"

इस प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म की सर्वव्यापकता सिद्ध होती है तो गोपियाँ शास्त्र सम्मत को जिस प्रकार अपने शब्दों में कहती हैं, बानगी देखिए –

ये इतनो नहिं जानहिं वस्तु बिना गुण नांहि।
निरगुन भये अतीत वे सगुन सकल गुण मांहि।।

गापिकाओं की भावुकता में अधिक प्रेम व्यंजना है। उद्धव ने कहा–थोड़े ही दिनों में कृष्ण तुमसे आकर मिलेंगे। साथ ही योग का उपदेश देते हैं। गोपियों ने इस पर प्रत्युत्तर दिया " हमरै तौ यह रूप बिन औरू कछू न सुहाय"

श्री कृष्ण का ध्यान आते ही किस प्रकार स्वाभाविक अवस्था के दर्शन होते हैं देखिए –

" ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे
आइ गये छवि छाई बने नीरे अरू वागे।।
ऊधौ सौं मुख मारिके तिनहिं सौं कहे बात।
प्रेम अमृत मुख है स्रवत अंबुज नैन चुचात।। –तरक रस रीति की"

उद्धव के मुख से कृष्ण का नाम सुनते ही गोपियां किस प्रकार आलोकित होकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं देखिए –

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम गृह की सुधि भूली
भरि आनंद इस ह्रदय प्रेम नेम बेली हि फूरी

गोपिकाओं की प्रेमव्यंजना में उनके शब्द मूक हैं क्योंकि सारा सोच कृष्ण है बस ! गापिकाएँ कृष्ण की प्रशंसा के साथ निष्ठुरता पर क्षुब्ध होकर व्यंग्यबाणों की बौछार करती दिखाई देती हैं और उद्धव के गर्व को खंडित करने का प्रयास करती हैं इस प्रकार –

"देखत उनकौ प्रेम, नेम ऊधौ को भाज्यो
तिमिर भाव आवेस, बहुत अपने मन लाज्यो
मन में कही रज पाइ कै, लै माथे निज धारि
परम कृतारथ है रह्यौ, त्रिभुवन आनंद वारि
–वंदना जो गवे।।

ऐसे समय में एक भंवरा उड़ता हुआ गापियों के पावों को कमल समझ कर उनपर मंडराता है, गुंजन के साथ तो नन्ददास ने उस भ्रमर को उद्धव के मन का प्रतीक बनाकर गापियों द्वारा उपालंभ दिलवाए जिनको सुनने से उद्धव प्रेमभक्ति के रहस्य को समझ सकें।

"गोपी प्रेम प्रसाद सौं हौं ही सीख्यो आय
ऊधौ तै मधुकर भयौ, दुविधा ग्यान मिटाय
–पाई रस प्रेम कौ

विरह की दसों दशाओं के अंतर्गत भंवरगीत में नन्ददास ने गोपियों के अनुभावों द्वारा उनकी मानसिक स्थिति का स्पष्ट चित्रण किया है– वे सभी एक दूसरे के सामने कहती सुनती अनुभूतियों को व्यक्त करती है। स्वयं नन्ददास सीधे सादे वाक्यों के द्वारा गोपियों के हृदय का चित्रण करते हैं " इहि विधि सुमरि हा करूणामय नाथ हो केसव, कृष्ण मुरारी" जहाँ कुब्जा का प्रसंग है वहां हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या का उद्वेग है कृष्ण की मुरली की धुन स्मृति पीडा को शांत जरूर करती है वह भी थोडी देर के लिए वापिस भंवर की गुजन से मुरली की धुन की स्मृति विरह व्यथा को और भी बढ़ा देती है। नन्ददास ने जो विरहानुभूति का वर्णन किया है वह सशक्त और समर्थ है जिससे एक प्रकार का साधारणीकरण हो गया है मानों गोपिकाओं की पीडा जनसाधारण की पीडा है, कवि की पीडा है। कवि नन्ददास ने मुक्तक काव्य की दृष्टि से 'भंवरगीत' की रचना की है। जिसमें कथासूत्रों का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध से किया है। ७५ छंदों में विषय के क्षेत्र को पर्याप्त सीमा में बांधा है। प्रथम छंद को छोडकर शेष रचना एक ही छंद में है। प्रारंभ के दार्शनिक भाग के अतिरिक्त शेष भाग वर्णनात्मक भावात्मक शैली में है –

श्रीमद्भागवत का कथा सूत्र वर्णनात्मक है और कूट–कूट कर भरी दर्शनशास्त्र की छवि यत्र–तत्र दिखाई देती है। नन्ददास ने भावावेश में कृष्ण उद्धव संवाद, उद्धव का ब्रजागमन का उल्लेख नहीं किया एक दम ब्रज में आ धमक कर गोपियों को उपदेश देते हैं। उद्धव गोपी संवाद में संक्षिप्त चर्चा है अंत में ब्रज से उद्धव के प्रस्थान को चलता मात्र कर दिया है उद्धव कृष्ण संवाद को भी अत्यंत अल्प बना दिया है। पूरे नन्ददास के भंवरगीत में भावों का उद्दाम वेग है, संगीतात्मक दृष्टि से इसकी महत्ता है। विरह के भावावेश में उपालंभ छंद है। अनुप्रासों की झंकार है तो छंदों की कोमल व्यंजना है। इन्हीं कारणों से नन्ददास का भंवरगीत संगीतात्मक दृष्टि से गेय बन गया है मंदिरों में नन्ददास के भंवरगीत के पद जन मानस को आत्म विभोर कर देते हैं। नन्ददास के ध्वन्यात्मक शब्द लय और संगीत में प्राण ला देते हैं –

"नुपुर कंकन किंकिन करतल मंजुल मुरली
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली"

इस पद में मृदंग, उपंग, चंग, कंकन किंकिन शब्द ध्वनि उत्पन्न करते हैं। मधुर शब्दों के प्रयोग से नाद सौंदर्य की बढोतरी हुई है।

कवि नन्ददास ने मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग कर भाषा में और अधिक बल दे दिया है–

"घर आये नाग न पूजै, बांबी पूजन जाहि
पारस परसे लोह तुरंत कंचन है जाहि
कहा हिय लोन लगावो
प्रेम पियूषै छाँडि कै, कौन समेटे धूरि
क्षुधिज ग्रास मुख काढ़ि"

इन मुहावरों, लोकोक्तियों द्वारा उपालंभ की शैली में कृष्ण का निर्गुण रूप उद्धव के योग शास्त्र में प्राण डाल देता है। अलंकारों की दृष्टि से नन्ददास ने शब्दालंकारों की, अर्थालंकारों की योजना में अपनी सूझबूझ दर्शायी है। अर्थ गंभीरता में पटुता है तो भाषा में सजीव चित्ताकर्षकता है। अनुप्रास के प्रयोग की बहुलता साथ ही यमक, वीप्सा, श्लेष, रूपक, उपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा, दृष्टांत भ्रांति, स्वाभावोक्ति, रूपकातिशयोक्ति को भी प्रमुख स्थान दिया है।

ओ रज अज सिव खोजत जोजत जोगी जिन जिय।
सो रज बंदन करन लगी सिर धरन लगी तिय।

छंद की दृष्टि से पहले एक रोला फिर एक दोहा अंत मे दस मात्रा की टेक, टेक में पूरे छंद को नवीन रूप देकर काव्य मे नाटकीयता का स्वाभाविक गुण दर्शाया है। छंद की नवीन योजना संगीत का परिधान है ये गेयगान हो गया है। ''रोला'' में नन्ददास का जवाब नहीं, शब्दों के कुशल शिल्पी भाव की दृष्टि से जड़ने में माहिर हैं।

नन्ददास के भंवरगीत में बह्म को अंशी और जीव को अंश रूप माना है। प्रेममय रूप को भक्ति का आधार माना है। जीव में जीव अंश है और ब्रह्म अंशी हैं। उद्धव ब्रज से प्रस्थान करते हैं– गोपियों के प्रेम भक्ति से प्रभावित होकर कृष्ण के '' मोहे ब्रज बिसरत नाहिं'' को पुनः स्थान देते हैं, प्रेम दर्शन को प्रशस्त कर जनजीवन को नई चेतना देकर पुनर्जागरण के युग का स्वागत करते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति के विचारपक्ष की अभिव्यक्ति ही कवि नन्ददास की सयुक्ता का रहस्य है। इस प्रकार भ्रमरगीत परंपरा का एक अमिट प्रसंग नन्ददास का भंवरगीत है। श्री तत्ववाद में लीलागान की काव्य पंरपरा एक सौंदर्य भाव है। हिन्दी साहित्य के मंथन में यह भ्रमरगीत प्रसंग खोज सामग्री के आधार पर नवीन तथ्यों का प्रकाश है जिसकी ज्योति श्रीमद्भागवत है जो अमर है, अटूट है, अखंड है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास के भंवरगीत के जिसे निर्गुण भक्ति को सुधासार कहना होगा यही प्रेमाभक्ति प्रभु की कथा के श्रोता और वक्ता धन्य हैं कृष्ण सदा उनके निकट रहते हैं। प्रेम भक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन प्रभु की कृपा है जो सत्संग में अपना तन, मन, श्रीकृष्ण को अर्पित कर देता है। यह प्रेम अटल है जो उद्धव के लाख समझाने पर भी प्रेममयी गोपियों का मानस स्नेह रस से पूर्ण महकता है, बिखरता है, भ्रमर की भांति समेटना भी जानता है। हमारे मन की एक–एक वृत्ति एक एक संकल्प है जो श्री कृष्ण के चरण कमलों पर न्यौछावर है।

'प्रेम मंजरी' डी-२०, चौमू हाउस,
जगन-पथ, सी-स्कीम, जयपुर

श्री नन्ददासजी का ब्रज-वर्णन

'त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा'

✍ डा. श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया

श्री नन्ददास आनन्दनिधि रसिक प्रमुदित रंग रंगमगे।

लीलापद रसरीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस-उक्ति जुत जुक्ति भक्ति-रस मान उजागर।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रैनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रस सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्रीनन्ददास आनन्द निधि रसिक प्रभुदित रंग रगमगे।

श्री नाभादास जी ने नन्ददासजी के सम्बन्ध में उक्त छंद लिखकर पूर्ण परिचय दिया है। अष्टछाप कवियों में महाकवि सूरदास के बाद दूसरा नाम नन्ददास का ही लिया जाता है। लोकप्रियता की दृष्टि से भी नन्ददासजी का स्थान दूसरा ही मान्य है। लोक कहावत भी ब्रज में प्रचलित है –'नन्ददास जड़िया और सब गडिया'। अर्थात् नन्ददास के काव्य में प्रत्येक उपयुक्त शब्द, अलंकार, छन्द व भाव सुशोभित हैं। नन्ददास ने राम और कृष्ण दोनों को अपना इष्ट मानकर रचना की। एक पद में ही –

'राम कृष्ण कहिये उठि भोर।

इतमें अयोध्या निर्मल सरजू, उत यमुना जल करत किलोल।।
इतमें दशरथ पुत्र कहाये, उत में कहाये (बाबा) नंद किसोर।
इतमें कौसल्या मैया गोद खिलावैं, उतमें यसोदा झुलावैं हिंडोर।।

इतमें धनुषबान कर राजें, उतमें मोर मुकुट की कोर।
इतमें धनुषबान कर राजें उतमें मुरलीधर मुख की कोर।।

इतमें चरन अहिल्या तारी, उत कुब्जा से कियो है किलोल।
इतने में जानकी बायें बिराजे, उत राधे संग जुगल किसोल।।

इतमें सागर सिला तरानी, उत गिरिवर धरें नख की कोर।
रावण के दस मस्तक छेदे, कंस को मारि किये झकझोर।।

इतमें राज विभीषण दीनौ, उग्रसेन कियौ अपनी ओर।
'नन्ददास' के ये दोउ ठाकुर, दसरथ सुत बाबा नंद किसोर।।

यमुना–पुलिन पर बैठ कर स्तुति गान कर रहे थे –

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आई।
भक्त की चित्त-वृत्ति सब जान कै ही ताहितें अति ही आतुर धाई
जैसी जाके मन हती इच्छा, ताकी तैसी साध जो पुजाई।
'नन्ददास' प्रभु ताहि पै रीझत, जमुना जू के जस जो गाई।।

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने बुला भेजा। गोसाईं जी के समक्ष पहुँच कर नन्ददास उनके भक्त हो गये और उनकी प्रशस्ति स्तुति में पदों की रचना की–

प्रात समें श्री वल्लभ-सुत के वदन कमल को दरसन कीजै।
तीन लोक-बंदित, पुरसौत्तम, उपमा कहा जो पटतर दीजै।।
श्री वल्लभ-कुल उदित चंद्रमा, लखि छवि नैनि चकोरन पीजै।
'नन्ददास' श्री वल्लभ-सुत पै, तन-मन-धन न्यौछावर कीजै।।

नन्ददास वल्लभ सम्प्रदाय और पुष्टिमार्ग से सम्बन्धित पद–रचना के अन्तर्गत व्यवस्थित हो गये। श्री विट्ठलनाथजी ने अष्टछाप के कवियों में सम्मिलित किया। नन्ददास की १४ कृतियों को प्रामाणिकता दी गई, जो निम्नांकित हैं। इनमे रचना–काल का उल्लेख नहीं मिलता। ये हैं –

रासपंचाध्यायी, नाममंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूक्मिणी मंगल, भंवर गीत, सुदामा चरित्र, विरह मंजरी, गोवर्द्धन लीला, दशम रूकन्ध, रस मंजरी, रूप मंजरी, श्याम सगाई, सिद्धान्त पंचाध्यायी तथा पदावली।

नन्ददासजी कृष्ण के भक्तिमय संगीत के वातावरण से ओतप्रोत होकर भ्रमण करते हुए गोकुल के सामने यमुना पर आगये और यमुना के पद लिखे। अष्टछाप के प्रत्येक कवि प्रतिदिन कीर्तन में अपने रचित पद सुनाते थे। इन्होंने ब्रज की महिमा के पद लिखे। ब्रजमण्डल में भी वृन्दावन ब्रजनन्दन की लीलास्थली होने के कारण अधिक सुंदर, रूचिकर एवं मनोहर प्रतीत हुआ। रासपंचाध्यायी में श्रीमद्भागवत के प्रणेता शुकदेवजी की वंदना मंगलाचरण के रूप में करके श्री वृन्दावन का वर्णन किया है। के सच्चिदानन्द–भगवान सत्–चित्–आनंद हैं सच्चिदानन्द में से चित्त गुण ही वृन्दावन है–

श्री वृन्दावन चिद्धन कछु छवि बरनि न जाई।
कृष्ण-ललित लीला के काज धरि रहयौ जड़ताई।।

तद्न्तर वृन्दावन का प्रकृति–वर्णन अति सुखकारी, रमणीय एवं नयनामिराम है, जहाँ काल भी प्रभावहीन है। सदैव समान शोभा से युक्त रहकर आनन्द प्रदान करते हैं।

जहँ नग खग, मृग कुंज लता की रूंख तृन जेते।
नहिंन काल गुन-प्रभा सदा सोमित रहे तेते।।
सकल जंतु अविरूद्ध जहाँ हरि मृग संग चरही।
काम-क्रोध-मद-लोभ रहित लीला अनुसरही।।

वसंत ऋतु का आगमन अतीव सुख व समुद्धिदायक है और वृन्दावन में कृष्ण की लीला देखने के लिए सदैव वसंत ऋतु छाई रहती है, जिससे वातावरण रम्य एवं मनोरम हो जाता है–

सब दिन रहत वसंत कृष्ण-अवलोकनि-लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा।।
जहँ जेतिक द्रुम जाति कल्पतरू सम सब लायक।
चिंतामनि समभूमि सकल चिंतित फल-दायक।।
तिन मद्धि इक जु कलपतरू लगि रहि जगमग जोती।
पत्र मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती।।

कल्पतरू वृक्ष में एक और अनुपम शोभा दिग्दर्शित होती है कि इस की शाखाओं, पत्तों, फलों और फूलों में कृष्ण की छवि प्रतिबिम्बित है–

वा सुरतरू महँ अवर एक अद्‌भुत छबि छाजै।
साखा-दल-फल-फूलनि हार-प्रतिबिंब विराजै।।
ता पर कोमल कनक-भूमि, मनिमय मोहति मन।
दिखियत सब प्रतिबिंब मनों घर महँ दुसरौ बन।।
तहँ इक मनि मय अंक चित्र कौ संख सुभग अति।
तापर षोडस दल सरोज अद्‌भुत चक्राकृति।।
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर।
तहँ राजत ब्रजराज-कुँवर-वर रसिक पुरंदर।।

वृन्दावन में शरद ऋतु के आगमन पर सम्पूर्ण वातावरण व पर्यावरण अधिकाधिक आनन्दप्रद, सुखद एवं मोहक हो जाता है। चहुँ ओर चाँदनी छिटककर पीयूषवर्षिणी बन जाती है। नन्ददास शरद–रजनी की शोभा का वर्णन अनेक अलंकारों सहित करके प्रफुल्लित होते हैं–

जदपि सहज माधुरी विपिन सब दिन सुखदाई।
तदपि रंगीली सरद समय मिलि अति छबि पाई।।

ज्यों अमोल नग जगमगाइ सुंदर जराय संग।
रूपवंत गुनवंत भूरि भूषन भूषित अंग।।

नव फूलनि सों फूलि फूलि अस लगति लुनाई।
सरद छबीली छया हँसत छबि सों मनु आई।।

ताही छिन उडुराज उदित रस-रास सहायक।
कुमकुम मंडित प्रिया वदन जनु नागर नायक।।

कोमल किरन अरूनिमा बनमें ब्यापि रही अस।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमड़ि घुरि रह्यौ गुलाल जस।।

ब्रज विहार में ब्रज बिहारी श्रीकृष्ण यमुना के तीर पर गए। यमुना–पुलिन पर अपार छवि छाई हुई थी। मनोहारी वर्णन नन्ददासजी ने अति तन्मयता से किया है जो अनिवर्चनीय है–

सुभग सरित के तीर धीर बलवीर गए तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महाभीर जहँ।।
कुसुम घूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजति सुहाई।।
इत महकत मालती चारू चंपक चित चोरत।
इत घनसार तुसार मलय मंदार झकोरत।।
इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।
इत कुरूवक केवरा केतकी गंध–बंधु बस।।
इत तुलसी छबि हुलसी छाँड़ति परिमल लपटें।
इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटें।।
उज्जल मृदुल बालुका कोमल–सुभग सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि यह जु बनाई।।

नन्ददासजी की 'रासपंचाध्यायी' में ब्रजभाषा के रास–साहित्य की श्रेष्ठ एवं अनुपम रचनाएँ संग्रहीत हैं। उनके काव्य में कोमलकांत पदों का माधुर्य, सुललित शब्दों की योंजना तथा काव्य कौशल का चमत्कार प्रभावकारी एवं सराहनीय है।

ब्रज के समस्त कृष्णभक्तों एवं कवियों ने श्रीमद्भागवत को ही आधार–ग्रंथ माना है। वृन्दाविपिन बिहारी यमुना के कूल पर जाकर शरद ऋतु की छिटकी हुई राका अति निर्मल और उज्ज्वल देखकर अपने करकमल में योगमाया सी मुरली धारण की। मुरली से ब्रह्म को जन्म देनेवाली मोहित करने वाली तथा आनन्द वर्षा करने वाली मधुर रागिनी निःसृत की जिससे गोपियों का मन विकल होकर श्रीकृष्ण के परम प्रेम की डोर से बंधा हुआ चला जा रहा था। अपना नाम सुनकर बेसुध–सी दौड़ पडी। उनका अलौकिक प्रेम देखकर, चीरहरण के प्रसंग का वचन पूरा करने हेतु रासलीला की और रासमंडल में प्रत्येक गोपी के साथ रहे।

भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, रूप गुण एवं परम रस से परिपूर्ण गोपियों को रासलीला करने पर अभिमान हो गया कि उन्होंने श्रीकृष्ण को अपने वश में कर लिया। गोपियों के अभिमान को दूर करने तथा प्रेम में अधिक वृद्धि करने के प्रयोजन से श्रीकृष्ण निष्काम होकर कुंजों की ओट में छिप गए। नन्ददासजी ने गोपियों की विरह–दशा का वर्णन भी प्रकृति के माध्यम से ही किया है, जो अत्यन्त मार्मिक है। विरह की विकलता में गोपियों की दयनीय दशा हो गई है–

थकि सी रहीं ब्रजबाल लाल गिरिधर पिय बिनु यों।
निधन महानिधि पाइ बहुरि ज्यौं जाइ भई त्यौं।।
है गई विरह विकल तब बूझत द्रुम बेली–बन।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन।।

गोपियाँ विरह से व्याकुल होकर अपनी सुध–बुध खो बैठीं। विरह–विदग्धा गोपियों को जड–चेतन का भी ज्ञान नहीं रहा। वे मालती, जाति, जूथिका, केतकी, मुक्ताफल बेलि, मंदार, करबीर, चन्दन व पुष्पलता से पूछती हैं कि कृष्ण को कहीं देखा है–

हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनिये दै चित्त।
मान-हरन, मन-हरंन गिरिधरन लाल लखे इत।।
हे केतकि ! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किधौं नंद-नँद (न) मंद मुसकि तुमरे मन मूसे।।

हे मुक्ताफल बेलि ! धरें मुक्ता-मनि माला।
देखे नैन बिसाल मोहने नंद के लाला।।
हे मंदार उदार ! वीर करवीर महामति।
देखे कहुँ बलवीर धीर मन-हरन धीर गति।।

ए चंदन ! दुख कंदन सब कहुँ जरत सिरावहु।
नंद–नदंन–जगबंदन–चंदन हमहिं मिलावहु।।
बूझहु री इन लतनि फूलि रहीं फूलनि सोहीं।
सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होंही।।

गोपियाँ मृगावधु हरिणी से पूछती हैं कि इनके नेत्र कैस डहडहे हो रहे हैं। आगे बढकर कदंब, अंब, नीम से पूछती हैं कि सब मौन क्यों हो गए हैं। वट वृक्ष से पूछती हैं कि तीर्थवासी अधिक कठोर क्यों हो गए हैं। इन पदों में नन्ददासजी की विरह–व्यथा का चित्रण परिलक्षित होता है।

अहो तुलसी कल्यानि ! सदा गोविंद-पद-प्यारी।
क्यों न कहति तू नंद-नँदन सों दसा हमारी।।

अपने मुख-चाँदने चलै सुंदरि तिनमाहीं।
जहँ आवे तम पुंज कुंज गहबर तरू छाही।।

इस प्रकार बन व धन से पूछकर, ढूँढकर वे थकित होकर व्यथित हो उठीं तब कृष्ण की मनोहारी लीलाएँ करने लगीं। लीलाएँ करती हुई कृष्ण रूप में तन्मय हो गई और जैसे भृंगी के वशीभूत होकर जड कीड़ा भी भृंग बन जाता है। कृष्ण भक्ति के कारण कृष्णमय बन गई –

तब पायौ पिय पद–सरोज कौ खोज रूचिर तहँ।
जब गद, अंकुस, कुलिस, कमल, छबि जगमगात जहँ।।

नन्ददासजी के 'रासपंचाध्यायी' में ब्रज–वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति के माध्यम से गोपियों के संयोग एवं वियोग की स्थिति का दिग्दर्शन अत्यन्त हृदयस्पर्शी तथा भावनाओं से ओतप्रोत है।

'नन्दन', भारतीनगर, मैरिस रोड़, अलीगढ़

नन्ददास की 'रास पंचाध्यायी' : एक अनूठी रचना

✍ डा. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ

'अष्टछाप' के आठ कवियों में चार महाप्रभु वल्लभाचार्य के और चार श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य थे। वल्लभ सम्प्रदाय में सूरदास, परमानन्ददास के पश्चात् नन्ददास कवि के रूप में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य नन्ददासजी ने सूरदास जी का सत्संग लाभ उठाया और उनकी भाँति गोवध् ान पर्वत पर श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन करने गले। नन्ददास के पद श्रीनाथजी को श्रृंगार की झाँकी में गाये जाते हैं। ये दर्शन गोकुल चन्द्रमा जी के भाव से होते हैं ओर इसके कीर्तनकार श्री नन्ददासजी माने गये हैं।

श्री शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में नन्ददासजी के सम्बन्ध में लिखा है 'नन्ददास, ब्राह्मण, रामपुर निवासी, विट्ठलनाथजी के शिष्य। इनकी गणना अष्टछाप अर्थात् ब्रजभूमि के आठ महान कवि–सूर, कृष्णदास, परमानन्द, कुंभनदास, चतुर्भज, छीतस्वामी, नन्ददास और गोविन्ददास में की गयी है। इनकी वावत यह मसल मशहूर है कि 'और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया'' इनके बनाये हुए ग्रंथों के नाम हैं – नाममाला, अनेकार्थ, पंचाध्यायी, रूक्मिणी मंगल, दशम स्कन्ध, दान लीला, नाम लीला। इन ग्रंथों के सिवा इनके हजार पद भी हैं। इन आठों महाकवीश्वरों के रचे अनेक ग्रंथ आज तक ब्रज में मिलते हैं।

'सरोज सर्वेक्षणकार' डा॰ किशोरी लाल गुप्त का मत यहाँ उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। डा॰ गुप्त ने लिखा है–

लीला मद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।।
प्रचुर पयध लौं सुजस, रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवालित भक्त पद हेतु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पै में पगे।
श्रीनन्ददास आनन्द निधि रसिक सु प्रभु हित रंग मगे।।

'सरोज' में दिया हुआ नन्ददास का विवरण भक्तमाल के उपर्युक्त छप्पय के मेल में है, अतः प्रामाणिक है। नन्ददास अष्टछापी कवियों में वय के अनुसार सबसे छोटे हैं। कवित्व की दृष्टि से इनका नाम सूर के अनंतर आता है। इनका जन्म संवत् १५६० के लगभग सोरो, जिला एटा के पास रामपुर गांव सनाढ्य ब्राह्मण जीवाराम के घर हुआ। भक्तमाल के अनुसार यह चन्द्रहास के अग्रज एवं सोरों सामग्री के अनुसार गो॰ तुलसीदास के चचेरे भाई थे।

यह एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए थे। उसका पीछा करते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ सवत् १६०७ के आसपास विट्ठलनाथजी ने इन्हें वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित किया। सूरदास का सत्संग लाभ इन्हें हुआ। कुछ दिनों के अनन्तर यह अपने घर चले गये, वहां विवाह किया और गृहस्थ–जीवन बिताया। सुवत् १६२४ के लगभग पुनः निरक्त भाव से गोवर्धन चले गये। संवत् १६४० के लगभग गोवर्धन में मानसी गंगा के किनारे एक विपल तरू के नीचे परमधाम लाभ किया।'

'नन्ददास–ग्रंथावली' के दो सुन्दर संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।[1] एक तो प्रयाग विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद् द्वारा और दूसरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा।

ग्रंथावली मे निम्नलिखित ग्रंथ संकलित हैं -

(१) अनेकार्थ मंजरी या अनेकार्थ नाम माला या अनेकार्थ माला, (२) मान मंजरी या नाम मंजरी या नाम माला यानाम चिन्तामणिमाला, (३) रस मंजरी (४) रूप मंजरी (५) विरह मंजरी (६) प्रेम बारहखड़ी (७) स्याम सगाई (८) सुदामा चरित्र (६) रूक्मिणी मंगल (१०) भँवर गीत (११) रास पंचाध्यायी (१२) सिद्धान्त पंचाध्यायी (१३) दशम स्कन्ध भाषा (१४) गोवर्द्धन लीला (१५) पदावली।

सरोज में दिया गया संवत् १५८५ इनके जन्मकाल के निकट है। यह इनका रचनाकाल नहीं है। इनके केवल ढाई सौ पद मिलते हैं, जो उक्त ग्रंथावलियों में संकलित हैं। अभी तक इनके हजार के लगभग पद देखने में नहीं आए।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, ' अष्टछाप में सूरदास के पीछे इन्हीं (नन्ददास) का नाम लेना पड़ता है। इनकी रचना भी बड़ी सरस और मधुर है। इनके सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध है "और कवि गढ़या, नन्ददास जड़िया"। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रास पंचाध्यायी' है जो रोला छंदों में लिखी गई है। इनमें, जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रास लीला का अनुप्रासादि युक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है। सूर ने स्वाभाविक चलती भाषा का ही अधिक आश्रय लिया है, अनुप्रास और चुने हुए संस्कृत पद विन्यास आदि की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखाई है, पर नन्ददास में ये बातें पूर्ण रूप में पाई जाती हैं। 'रास पंचाध्यायी' के अतिरिक्त इन्होंने ये पुस्तकें लिखी हैं –

(१) भागवत दशम स्कन्ध, (२) रूक्मिणी मंगल, (३) सिद्धान्त पंचाध्यायी (४) रूप मंजरी (५) रस मंजरी (६) मान मंजरी (७) विरह मंजरी (८) नाम चिन्तामणि माला (६) अनेकार्थ नाम माला (कोष) (१०) दान लीला (११) मान लीला (१२) अनेकार्थ मंजरी (१३) ज्ञान मंजरी (१४) श्याम सगाई (१५) भ्रमर गीत और (१६) सुदामा चरित्र। दो ग्रंथ इनके लिखे और कहे जाते हैं – हितोपदेश और नासिकेत पुराण (गद्य में)। दो सौ ऊपर इनके फुटकल पद भी मिले हैं। जहाँ तक ज्ञात है, इनकी चार पुस्तकें ही अब तक प्रकाशित हुई हैं– रास पंचाध्यायी, भ्रमरगीत,

अनेकार्थ मंजरी और अनेकार्थ नाममाला इनमं रास पंचाध्यायी और भ्रमरगीत ही प्रसिद्ध हैं।[3]

डा॰ व्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है, ' अष्टछाप के अन्य चार कवियों में जो गुसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे, नन्ददास (अनुमानत : १५३३–१५८६ ई॰– संवत् १५६०–१६४३ वि॰) का नाम सर्व प्रमुख है। ये जाति के ब्राह्मण और संस्कृत के अच्छे पंडित थे। नन्ददास के सम्प्रदाय प्रवेश की घटना से सूचित होता है कि किसी प्रकार लौकिक प्रेम ही भक्ति में परिणत करके उदात्त बनाया जा सकता है। यदि इनमें सौन्दर्य पर मुग्ध होने की प्रवृत्ति न होती तो कृष्ण की उत्कट भक्ति संभव नहीं थी। इनका किसी खत्रानी के रूप पर मुग्ध होना तथा रूप मंजरी नामक अकबर की वाँदी से मैत्री सम्बन्ध रखना इनके रसिक स्वभाव का प्रमाण तथा भक्त हृदय् की राग–वृत्ति का सूचक है। नन्ददास की रचनाएँ उनके प्रखर पांडित्य, अनुपम भाषाधिकार और भक्ति की द्योतक है।''[4]

डा॰ प्रभुदयाल मीतल का मत है, ''अष्टछाप कें अन्य कवियों की तरह नन्ददास ने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना तो की ही है, किन्तु उन्होंने अनेक ग्रंथों का निर्माण भी किया है। हमारे मतानुसार उनकी प्रामाणिक रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

(१) अनेकार्थ मंजरी (अनेकार्थ नाम माला, अनेकार्थ भाषा)

(२) मान मंजरी (नाम मंजरी, नाम माला, नाम चिन्तामणि माला)

(३) रस मंजरी (४) रूप मंजरी (५) विरह मंजरी (६) प्रेम बारखड़ी (७) स्याम सगाई (८) सुदामा चरित्र (६) रूक्मिणी मंगल (१०) भँवर गीत (११) रास पंचाध्यायी (१२) सिद्धान्त पंचाध्यायी (१३) दशम स्कन्ध–भाषा (१४) गोवर्धन लीला (१५) पद्यावली।

नन्ददास की समस्त रचनाओं में 'भँवर गीत' और 'रास पंचाध्यायी' विशेष प्रसिद्ध हैं। 'भँवर गीत' की समस्त रचना में ऐसा अद्भुत आकर्षण और प्रवाह है, जो पाठक को बलात् अपनी ओर खींचता है और अपने साथ बहा ले जाता है। इसकी रचना भी विचित्र प्रकार के छंद में की गई है। रोला और दोहा मिश्रित छंद के अन्त में दस मात्रा की एक टेक दे देने से 'भँवर गीत' की संगीत–योजना में पूर्णता आ गयी है।

१– डा॰ सत्येन्द्र ने 'नन्ददास' पर एक ग्रंथ सम्पादित किया था, जिसका प्रकाशन, सूर स्मारक मण्डल, कमला नगर, आगरा ने किया है।

२– गुप्त, डा॰ किशोरीलाल, सरोज सर्वेक्षण पृ॰ ४०५–४०६

३– शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र–हिन्दी–साहित्य का इतिहास पृ॰ १७४–१७५

४– वर्मा, डा॰ व्रजेश्वर, हिन्दी साहित्य (द्वितीय भाग), पृ॰ ३८७

'रास पंचाध्यायी' में कवि की कला का और भी विकास हुआ है। अपनी कोमल–कान्त पदावली और श्रुति मधुर भाषा–शैली के कारण यह ग्रंथ हिन्दी का 'गीत गोविन्द' कहा जा सकता है। 'रास पंचाध्यायी' और 'रूक्मिणी मंलग' को उन्होंने राला छंद में लिखा है। यह छंद नन्ददास को विशेष प्रिय था।'' [५]

डा॰ सत्येन्द्र ने 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में लिखा है, 'नन्ददास अष्टछाप के कवि एवं वल्लभ–मतानुयायी कृष्ण भक्त थे। अतएवं इनकी रचनाओं में प्रधानता कृष्णभक्ति के ही विषय की पायी जाती है और उसके अनन्तर कृष्ण लीला की चर्चा मिलती है। जान पड़ता है कि इन्होंने सर्वप्रथम रसरीति एवं कोष विषयक ग्रंथों की ही रचना की थी और उसके पीछे क्रमशः कृष्ण लीला तथा कृष्ण भक्ति पर लिखा था। फलतः इनके चौदह ग्रंथों का रचना क्रम इस प्रकार दिया जा सकता है – (१) रस मंजरी (२) अनेकार्थ मंजरी (३) मान मंजरी वा नाम माला (४) दशम स्कन्ध भाषा (५) श्याम सगाई (६) गोवर्धन लीला (७) सुदामा चरित्र (८) विरह मंजरी (६) रूप मंजरी (१०) रूक्मिणी मंगल (११) रास पंचाध्यायी (१२) भँवर गीत (१३) सिद्धान्त पंचाध्यायी (१४) पदावली। इनमें से 'पदावली' वस्तुतः किसी एक समय की ही रचनाओं का संग्रह नहीं मानी जा सकती हैं।

नन्ददास की उपर्युक्त रचनाओं में से इनकी 'रास पंचाध्यायी' एवं 'भँवर गीत' अधिक प्रसिद्ध हैं।

यह कहा जा सकता है कि यदि आचार्यत्व की दृष्टि से देखा जाए तो 'सूरदास' को प्रथम आचार्य मानना होगा। उनकी 'साहित्य लहरी' भी एक शास्त्र ग्रंथ है। सेर के बाद नन्ददास की इस श्रेय के अधिकारी हैं।' [६]

पं॰ गोपाल नारायण वहुरा जी ने जयपुर 'पोथीखाना' में उपलब्ध नन्ददास के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची अपने ग्रंथ 'लिटररी हेरिटेज ऑव द रूलर्स ऑव आमेर एण्ड जयपुर' में प्रकाशित की है। 'पोथीखाना' के 'खास–मुहर' में सबसे अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ 'विरह मंजरी' की १६ प्रतियाँ हैं, 'रास पंचाध्यायी' भाषा की १८ प्रतियाँ हैं। 'रूप मंजरी' की १३ प्रतियाँ और 'मान मंजरी' की १३ प्रतियाँ उपलब्ध हैं। यह ढूंढाड़ राज्य का वल्लभ सम्प्रदाय के तथा 'नन्ददास' के प्रति विशेष आकर्षण मान सकते हैं। 'पोथीखाना' में उपलब्ध 'नन्ददास' का कृतित्व इस प्रकार है –

(१) अनेकार्थ नाम माला, (२) अनोकार्थ ध्वनि मंजरी, (३) गुण सुदामा चरित्र, (४) दान लीला, (५) नाम मंजरी (मान मंजरी–२), (६) नाम माला (७) नासकेतु पुराण भाषा–४, (८) प्रबोध लीला, (६) प्रेम मंजरी, (१०) भ्रमरगीत भाषा,

५– मीतल, (डा॰) प्रभुदयाल–अष्टछाप परिचय, पृ॰ ३१४–३१५।
६– सत्येनद्र (डा॰) ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ॰ १४८–१४६।

(११) भागवत दशम स्कन्ध भाषा–७, (१२) मान मंजरी–११, (१३) मान लीला, (१४) मार्ग शीर्ष माहात्म्य भाषा, (१५) रस मंजरी–६, (१६) रसिक लीला, (१७) राधा (प्रेम) परीक्षा (१८) रास पंचाध्यायी भाषा–१८, (१६) रूक्मिणी मंगल, (२०) रूप मंजरी–१३, (२१) विरह मंजरी–१६ (२२) सगारथ लीला, (२३) स्नेह लीला–४।[७]

उपरिलिखित विवेचन से यह स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है कि नन्ददास के इतिहास में 'भँवर गीत' और 'रास मंचाध्यायी' महत्त्वपुर्ण तथा प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। यहाँ पर हमारा अभीष्ट 'रास पंचाध्यी ' पर विचार–विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

'श्रीमद् भागवत 'मे' श्री कृष्ण की रास लीला पाँच अध्यायों में २६ से ३३ तक– वर्णित है। नन्ददास को 'रास पंचाध्यायी' में भी पाँच अध्याय है और इसी कारण काव्य का नामकरण 'पंचाध्यायी' हुआ है। नन्ददास ने 'श्रीमद् भागवत' का शाब्दिक अनुवाद नहीं किया है। श्रीमद् भागवत के कुछ प्रसंगों को अपने काव्य में नन्ददास ने संक्षिप्त कर दिया है, कुछ को विस्तृत कर दिया है, कुछ को छोड़ दिया है, कुछ नवीन विषयों को भी सम्मिलित किया है। 'रास पंचाध्यायी' का मूलाधार 'श्रीमद् भागवत' को मानते हुए भी उसको, इसका अधिक से अधिक 'स्वच्छंद भावानुवाद' कह सकते हैं।

'रास पंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय का प्रारम्भ श्री शुकदेव जी की वन्दना से प्रारम्भ होता है–

वन्दन करौं कृपा-निधान श्री शुक सुभकारी।
शुद्ध जातिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी।।1।।
हरिलीला रस-मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्भुत गति कतहूँ न अटक है निकसत नग में।।2।।

नन्ददासजी ने शुकदेव के सौन्दर्य–चित्रण मे शिख–नख वर्णन की परम्परा को अपनाया है। वृन्दावन का वर्णन परब्रह्म के परमधाम के रूप मे किया गया है। पर ब्रह्म जिस प्रकार काल और गुण से अतीत है, उसी प्रकार उनके विहार स्थल भी काल, गुण आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हीरे–मोती के पत्र पुष्प हैं। नन्ददास ने वृन्दावन का वर्णन प्रकृति–शोभा–सम्पन्न सामान्य वन–खण्ड के रूप में न करके उसकी अद्भुत शोभा, अमित रमणीयता और दिव्य श्री सम्पन्नता का चित्रण करके उसे अलौकिकता प्रदान की है –

तापर कोमल कनकभूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत प्रतिबिम्ब मनौ घर मँह दुसरौ वन।।३०।।

७– बहुरा, पं॰ गोपाल नारायण– लिटररी हेरिटेज ऑव द रूलर्स ऑव आमेर एण्ड जयपुर, पृ॰ ३०६–३२०।

वहीं एक मणि–जटित सुन्दर शंख की–सो चित्राकृति का सहस्र दल कमलासन है, इसी पर श्री कृष्ण विराजमान हैं। श्रीकृष्ण का परिचय देते हुए कवि उन्हें परब्रह्म बनाता है –

मोहन अद्भुत रूप कहि न आवति छवि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।।34।।
परमातम परब्रह्म सबन के अन्तरजामी।
नारायण भगवान धरम करि सब के स्वामी।।35।।
बाल कुमार पुगंड धरम आसक्त जु ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन।।36।।

इसके पश्चात् शरद रजनी का वर्णन है। शरद रजनी में वृन्दावन की शोभा का चित्रण करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं –

मंद-मंद चलि चारु-चन्दिका अस छवि पाई।
उझकती हैं पिय रमा रमनि कौं मनुतकि आई।।45।।

भारतीय दर्शन के अनुसार 'वेणु' ब्रह्म का शब्द या नाद स्वरूप है। परब्रह्म की इस विश्वमोहनी शक्ति की ध्वनि का सम्मोहन केवल गोपियों को नहीं, समस्त जड़–चेतन प्रकृति को विमोहित करने में समर्थ है। श्रीकृष्ण की 'वेणु' या 'मुरली' का यह अलौकिक प्रभाव सूचित करने के लिए नन्ददास ने उसे 'अघटित घटना – चतुर जोगमाया' कहा है –

तब लीनी कर-कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली।।46।।
जाकी धुन तैं अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर।।47।।

नन्ददासजी की गोपियाँ 'पंचभूतों' से निर्मित नारियों से भिन्न शुद्ध प्रेममय और 'जगत की ज्योति–सी' उजियारी हैं–

सुद्ध जाति-मय रूप पाँच भौतिक तें न्यारी।
तिनहि कहा कोउ गहै जाति सी जगत उज्यारी।57।।
जदपि कहूँ के कहूँ बधुनि आमरन बनाए।
हरि पिय पै अनुसरत नहीं के जहीं चले आए।।58।।

इसके बाद नन्ददासजी ने कृष्ण–गोपी–मिलन दिखाया है। श्रीकृष्ण गोपियों के अनन्य प्रेमभाव से सन्तुष्ट होकर उनकेसाथ रमण और विहार करने लगते हैं। नन्ददास ने यहाँ भी कृष्ण के नारायण स्वरूप के प्रति सतर्कता बरती है। नन्ददास उनको 'आत्माराम' कहकर उनके व्यक्तित्व की अलौकिकता की ओर इंगित करते हैं –

विहँसि मिले नन्दलाल निरखि ब्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम बस।।86।।

कामदेव जब श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ विहार–विलास–रत देखता है, तब उनको जीतने का उपक्रम करता है, परन्तु परब्रह्म रूप हरि उसे उल्टा ही मथ डालते हैं –

तहँ आयों यह मौन पंचसर कर हैं जाके।
ब्रह्मादिक कों जीति बढ़ि रह्यौ अति मद ताके।।97।।
निरखि ब्रजवधु संग, रंग भरे नव किसोर तन।
हरि मनमथ करि मथ्यों उलटि वा मनमथ को मन।।98।।

द्वितीय अध्याय में नन्ददासजी विरह–महत्ता तथा आवश्यकता पर विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि प्रेम के लिए विरह आवश्यक है। तत्पश्चात् विरह दशा का चित्रण करते हुए कहते हैं ''कृष्ण गोपियों के गर्व को देखकर राधा को साथ लेकर कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। विरह से दग्ध गोपियाँ वृन्दावन की लताओं, पुरूषों और वृक्षों से कृष्ण का पूछती है'' –

जमुन निकट के बिटप पूछि भईं निपट उदासी।
क्यों कहि हैं सखि महाकठिन ये तीरथ-बासी।।14।।
हे अवनी ! नवनीत-चोर चित-चोर हमारे।
राखे कितहिं दुराइ बतावहु प्रान पियारे।।15।।

खोजने और पूछने पर जब गोपियों को कृष्ण के बारे में कुछ पता नहीं चला तो कृष्ण लीला करने लगीं –

इहि विधि बन धन बूझि ढूँढ़ि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मन भाईं।।18।।
मोहन लाल रसाल कि लीला इनही सोहैं।
केवल ननमय भई कछु न जानति हम को हैं।।19।।

गोपियों को आगे चलकर कृष्ण के चरण चिन्हों के साथ राधा के चरण चिह्न भी दिखाई दिए। वे राधा के सौभाग्य की सराहना करती हैं। गोपियाँ यमुना किनारे आ पहुँची जहाँ पर कृष्ण ने राधा के साथ प्यार किया था –

जित तित तैं सब अहुरि बहुरि जमुना तट आईं।
जहँ नन्द नन्दन जग वंदन पिय लाड़ लडाईं।।37।।

तृतीय अध्याय में गोपियाँ श्रीकृष्ण को उपालंभ देती हुई कहती है कि तुमको यदि इसी प्रकार अपने विरह में ही मारना था तो फिर विष, जल, व्याल और अग्नि इन सभी से हमारी रक्षा क्यों की थी? तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हें नन्द बाबा विधाता से प्रार्थना करके संसार के कल्याण हेतु लाए थे। गोपियाँ कृष्ण

के व्यवहार पर आश्चर्य करती हैं –

अहो मीत, अहो प्राननाथ यह अचरज भारी।
अपननि जौ मरि हौ करिहौ काकी रखवारी।।5।।
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन मैं।
सिल त्रिन कंटक अटकल कसकत हमरे मन मैं।।6।।

चतुर्थ अध्याय में गोपियाँ कृष्ण को उपालम्भ देती है और कृष्ण स्वयं को गोपियों का ऋणी मानते हैं। गोपियों से श्री कृष्ण कहते है कि मेरी माया समस्त संसारको उपने वश में करती है और तुम्हारी माया मुझे वशीभूत किए रहती है –

कोटि कलप लगि तुम प्रति-प्रति उपकार करौं जौ।
हे मनहारी तरुनी उऋन न होउँ तबौ तौं।।17।।
सकल विश्व उप बस करि मो माया सोहति है।
मोह मई तुम्हरी माया सोइ मोहिं मोहति है।।18।।

पंचम अध्याय में गोपियाँ अपना समस्त आक्रोश त्यागकर कृष्ण के साथ रासलीला में व्यस्त हो जाती हैं। रासलीला एक वृक्ष के नीचे आरम्भ होती है और रतिलीला के रूप में परिणत हो जाती है। कृष्ण दो–दो गोपियों के बीच विराजमान हैं नृत्य–गान के साथ आलिंगन, चुम्बन और रति क्रिया भी साथ–साथ हो रही है। रति विलास का चित्रण बड़ी सावधानी, चतुराई से किया है जिससे अश्लीलता नहीं आ पाई है।

पवन थक्यौ, सासे थक्यौ, थक्यौ उड्ड-मंडल सिगरौ।
पाछे रवि रथ थक्यौ चलै नहिं आगे डगरौ।।23।।
थकित शरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
विहरत सजनी स्याम जथा रुचि अति रति बाढ़ी।।24।।

कुंजों में विविध विलास करने के पश्चात् समस्त समाज जमुना में जल क्रीडा विहार हेतु जाता है और वहाँ पर विभिन्न प्रकार से जल क्रीड़ाएँ करता है। स्नान करने के उपरान्त श्री कृष्ण के आदेश से कल्प वृक्ष दिव्य आभूषणों की वर्षा गोपियों के लिए करता है –

तब इक द्रुम-तन चितै कुँअर अस अज्ञा दीनी।
निरमोलक अंवर भूषण तिहिं वरषा कीनी।।
अप अपनी रुचि के पहिरे छबि परत नं बरनी।
जग मोहिनी जिती तिनकी मोहिनि ब्रज धरनी।।112।।

पंचम अध्याय के अन्त में नन्ददासजी रास लीला का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं–

निपट निकट घट में ज्यों अंतरजामी आही।
विषय विदूषित इन्द्री पकरि सकै नहिं ताही।।35।
जो यह लीला गावै चित दे सुनै सुनावै
प्रेम् भगति सो पावै अरु सब के मन भावै।।36।।

'रास लीला' सुनने का पात्र कौन है और कौन नहीं है, इस पर चर्चा करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं –

दीन असर्था निंदक नास्तिक धरम-बहिर्मुख।
तिन सों कबहुं न कहै, कहै तौ नहिंन लहै सुख।।37।।
भगत जनन सों कहु जिनके भागवत धरम बल।
ज्यों जमुना के मीन लीन नित रहत जमुन जल।।38।।

\+ + +

नैन हीन के हेत नवल नागरि नारी जस।
मंद हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जानें रस।।17।।
हरि दासन को संग करै हरि-लीला गावै।
परमकान्त एकान्त भगति रस तौ भल पावै।।18।।
नन्ददासजी अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए कहते हैं -
श्रवन-कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान-सार-हरि-ध्यान-सार स्रुतिसार गहत मुनि।।
अध हरनी मन-हरनी सुन्दर प्रेम वितरनी।
'नन्ददास' के कण्ठ बसौ नित मंगल करनी।।42।।

'रास पंचाध्यायी८ का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए नन्ददासजी ने लिखा है–

ताहू मैं पुनि अति रहस्य यह पंचाध्याई।
तन मँह जैसे पंचप्रान अस सुक मुनि गाई।।
परम रसिक इक मीत मोहि तिन्ह आज्ञा दीन्ही।
तातें 'मै' यह कथा जयामति भाषा कीन्ही।।

संक्षेप में, 'रास पंचाध्यायी' में वर्णित रासलीला लौकिक विलास प्रसंग मात्र नहीं है। वह परब्रह्म और उसकी प्रकृति के साथ शुद्ध प्रेमात्माओं की दिव्य और लोकातीत प्रेम–क्रीड़ा है। वर्णन उसका लौकिक विलासवत् इसलिए है कि रचयिता और उसके सभी पाठक लौकिक नर–नारी हैं।

रास लीला के अन्त में श्रीकृष्ण के साथ राधा और गोपियों की जल–क्रीडा का चित्रण है, जिसके अनन्तर लौकिक वस्त्राभूषणों का परित्याग कर, श्रीकृष्ण की आज्ञा से एक वृक्ष दिव्य या अलौकिक वस्त्राभूषण प्रदान करता है, जिसे ब्रजबालायें धारण करती हैं। नन्ददासजी का स्पष्ट संकेत है कि रस–स्नान के द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्ण गोपियों के लौकिक भाव का सारा कल्पष दूर करके, उन्हें सर्वथा शुद्ध करके मात्र प्रेमाभक्ति–स्वरूप प्रदान करते हैं।

'रास पंचाध्यायी' में श्रीकृष्ण की रास लीला का वर्णन हैं। 'रासलीला' परब्रह्म और उसकी आह्लादिनी शक्ति (राधा) तथा परब्रह्म एवं जीवात्माओं का निरन्तर नृत्य में लीन रहना है। यह नृत्य भाव–प्रेमाभक्ति और उसका आनन्द–सर्वथा अलौकिक और अनुभवगम्य हैं। 'रास पंचाध्यायी' के कवि ने वर्णन सांसारिक

रीति से किया है। अतः काव्य श्रृंगार रस प्रधान है। श्रृंगार रस के देवता विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण इसके नायक हैं।

ब्रज की गोपियों की कामना है कि श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करें। इसके लिए वे निरन्तर साधना करती हैं। शरद पूर्णिमा के दिन श्रीकृष्ण मुरली द्वारा उनका आह्वान करते हैं और रास लीला कर उनकी कामना पूर्ण करते हैं। नूपुरों की मंद ध्वनि से गोपियों के आगमन की सूचना मिल जाती है। प्रियतमाएँ जब प्रियतम की दृष्टि–परिधि ा में पहुँच जाती हैं तब उनके सभी अंग नयनमय हो जाते हैं –

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाए।
तब हरिके मन नैन सिमिट सब स्रवननि आए।।66।।
झुनक मुकन पुनि छबिलि भाँति सब प्रगट भई जब।
पिय के अंग-अंग सिमिट मिले छबिले नैननि तब।।67।।

शुकदेव जी का कहना है कि –

हरि-रस ओपी गोपी में सब तियनि तै न्यारी।
कँवल-नैन गोविन्द-चंद की प्रान-पियारी।।65।।

गोपियों को निकट पाकर श्रीकृष्ण जी को विनोद सूझा तब उन्होंने कुछ 'वक्र वचन' कहे। जब चाह में, कथन में कुछ 'बाँकापन' होता है, तभी प्रिय और प्रिया को आनन्द मिलता है –

नागर-गुरु नन्द-नन्द चन्द हँसिमंद-मंद मन।
बोले बाँके बैन प्रेम के परम ऐन सब।।70।।
उज्जवलरस कौ यह सुभाव बाँकी छवि छावै।
बंक चहनि पुंनि कहनि बंक अति रसहिं बढ़ावै।।71।।

श्रीकृष्ण ने गोपियों की परीक्षा ली और वे उसमें पूर्णरूपेण सफल हुईं। ब्रज बालाओं की दृढ़ प्रीति देखकर और उनके प्रेम–वचन सुनकर श्रीकृष्ण का कोमल हृदय पघिल गया तथा श्रीकृष्ण संयोग श्रृंगार के लौकिक व्यापारों द्वारा गोपियों की कामना पूर्ण करते हैं –

परिरम्भन, चुंबन क्रूर–नरव नीबी कुच परसत।
सरसत प्रेम अनंग–रंग नवघन ज्यौं बरसत।।

श्रीकृष्ण कुछ समय के लिए अन्तर्धान होकर जब पुनः प्रकट हुए तब गोपियाँ प्रेम के आवेश में आकर उनके उर–वर से लिपट गयीं। नन्ददासजी लिखते हैं –

कोउ चटपटि सों उर लपटीं कोउ वर लपटीं।
कोउ गल लपटी कहति भलैं भलैं कान्हर कपटी।।६।।

कृष्ण ने सभी गोपियों को आनन्दित किया, सभी के मनोरथ पूर्ण किए।

एक एक हरि देव सबहि आसन पर वैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे।।६।।

नन्दनन्दन के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर, गोपियाँ उनकी भाव भंगिमाओं का अनुकरण कर अभिनय करने लगती हैं। कोई मुरली की मधुर ध्वनि करती है और कोई मधुर स्वर में गाने लगी। संगीत पर रीझकर नटनागर ने उसे भुजाओं में भर लिया और चुम्बन लेकर पुरस्कृत किया –

ताहि साँवरो कुँअर रीझि, हँसि लेत भुजनि भरि।
चुंबन करि सुख–सदन वदन तैं दैत मोल ढरि।।

नन्ददासजी ने संयोग पक्ष का इतना स्वस्थ और सरस चित्रण किया है कि 'रास पंचाध्यायी' की सरसता पाठक को रससिक्त कर देती है।

प्रेमाभक्ति में 'वियोग' का बहुत महत्त्व है। लौकिक प्रेम की शुद्धता की कसौटी विरह माना जाता है। प्रेमाभक्ति में वियोग के सहयोग से शुद्ध प्रेम उसी प्रकार चटकीला हो जाता है, जिस प्रकार कटु, अम्ल आदि पदार्थों से मधुर खाद्य का स्वाद बढ़ जाता है। वहम पर विशेष पुट देने से चढ़ाया जाने वाला रंग और चटक प्रतीत होता है –

मधुर वस्तु ज्यों खात निरन्तर सुख तौ भारी।
बीचि–बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय रूचिकारी।।१।।

ज्यों पटु पट के दिए निपट की रसहिं परै रंग।
तैसहिं रंचक विरह के प्रेम के पुंज बढ़त अंग।।

विरह के आधिक्य के कारण विरही की स्थिति उन्मत्त जैसी हो जाती है, वह जड–चेतन, सभी की कृपा का अपने को पात्र मानता है। नन्ददास का मानना है कि विरही में जड़ चेतन का अन्तर समझने की बुद्धि नहीं रह जाती –

ह्वै गई बिरह विकल तब बूझत द्रुम बेली–बन।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन।।५।।

तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि गोपियाँ स्वयं को प्रियतम का रूप समझने लगती हैं। कृष्ण की मनभावन विविध लीलाएँ करने लगती हैं कार्य व्यापारों का इस प्रकार अनुकरण करना आरम्भ किया जैसे वे स्वयं कृष्ण हों –

इहि विधि बनघन बूझि ढूंढ़ि उनमत की नाई।
करन लगीं मन–हरन–लाल–लीला मन भाई।।१८।।
मोहन लाल रसाल की लीला इनहीं सो हैं।
केवल तनमय भई कछु न जानति हम को हैं।।१६।।

प्रेमाभक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष की दृष्टि से इसका महत्त्व है, साथ ही काव्य की दृष्टि से प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है।

गोपियाँ अपने प्रियतम नन्द नन्दन की खोज में व्यस्त हैं, उनकी भेंट अकस्मात् राधा से होती है, जिसकी दयनीय दशा है। राधा भी सखियों से अपने गर्व की बात स्वीकार करती हैं और पश्चाताप के आँसू बहाने लगती है। राधा के विरह का चित्रण करते हुए नन्ददासजी ने लिखा है –

नयननि तैं जलधार हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाई न सकति बास–बस मुख ढिंग आवत।।३४।।
'क्वासि क्वासि पिय महावाहु' यों बदति अकेली।।
महाविरह की धुनि सुनि होवत खग द्रुम–वेली।।३५।।

नन्ददासजी का वियोग–वर्णन मार्मिक होने के साथ–साथ शास्त्री दशाओं और संचारियों के निर्वाह की दृष्टि से सफल माना जा सकता है।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से 'रास पंचाध्यायी' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें प्रकृति–चित्रण के पाँच रूप मिलते है – नाम–संग्रह, दृश्य चित्रण, उद्दीपन रूप, अलंकार रूप और चेतनरूप। 'नाम संग्रह' की दृष्टि प्रथम और द्वितीय अध्याय महत्वपूर्ण है।

वृन्दावन का वर्णन करते हुए नन्ददासजी ने लिखा है –

चारू चंपक चित्त चोरत।
इत घनसार तुसार मलय मंदार झकोरत।।१२।।
इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।
इत कुठवक केवरा केतकी गंध–बंधु बस।।१३।।

कृष्ण के विषय में गोपियाँ लताओं से पूछती हैं कि कहीं कृष्ण तो उन्होंने नहीं देखा –

हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनियत दै चित।
मान हरन मन–हरन गिरिधिरन लाल लखे इत।।६।।
हे केतकि ! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किंधौं नन्द–नन्दन मंद मुसकि तुमरे मन मूसे।।७।।

नन्ददासजी ने प्रकृति के सामान्य रूप का चित्रण 'रास पंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय में विशेष रूप से किया है। कवि वृन्दावन को लीला–भूमि और श्रीकृष्ण के कमलासन का वर्णन प्रस्तुत करता है –

श्री वृन्दावन चिदधन कछु छबि वरनि न जाई।
कृष्ण लालत लीला के काज धरि रह्यो जड़ताई।।
जहद नग खग मृग कुंज लता वीरूध तृन जेते।
नाहिंन काल गुन–प्रभा सदा सोभित रहे तेते।।१८।।

प्रकृति चित्रण का उद्दीरूप प्रथम अध्याय तथा अन्तिम अध्याय में मिलता है। रसोत्पादक चन्द्रमा के उदित होने की बात निम्नांकित पंक्तियों में उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कही गई हैं –

ताही छिन उड़डराज उदित रस–रास सहायक।
कुमकुम–मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक।।४२।।
कोमल किरन अरूनिमा बन मैं व्यापि रही अस।
मनजिस खेल्यो फागि घुमड़ि घुरि रह्यौ गुलाल जस।।४३।।

'रास लीला' का चित्रण करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं–

वृन्दावन कों त्रिगुन पौन सो विजन विलोलै।
जहँ–तहँ श्रमित विलौकै तहँ–तहँ रंग भरयो डोलै।।७३।।
राग–रागिनी–मंडल ढिग तहँ ठाढ़े गावत।
ताल परवावज आवज बीना मुरज बजावत।।७४।।

प्रकृति के विविध उपादानों को लेकर रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की योजना काव्य में करना कवियों को सदैव प्रिय रहा है। नन्ददासजी इसमें पीछे नहीं रहे हैं। प्रकृति के आलंकारिक प्रयोग उन स्थलों पर मिलते हैं, जहाँ कार्य या व्यापार–सम्बन्धी स्पष्टता के लिए उन असंभावित प्राकृतिक दृश्यों की कल्पना की जाती है, ऐसे चित्रण मात्र कवि कल्पना की देन होते हैं–

कोउ नगधर बय पिय को गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नवधन तें सटकि दामिनी छटा सुं अटकी।।७।।
बैठे पुनि तिहिं पुलिन परम आनन्द भयो है।
छबिली अपने छादन छबिंसो बिछा दयो है।।८।।

'पंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय में 'शरच्चन्द' का मंद–मंद चलकर रमा–रमण का कौतुक देखने आना चित्रित किया है। इसके मूल में कवि का प्रयास प्रकृति के उस अंग को मानवीय चेतनता प्रदान करने का है–

मंद–मंद चलि चारू चन्द्रिका अस छबि पाई।
उझकति हैं प्रिय रमा–रमन कौं मनु तक आई।।४५।।

भावानुकूलता का ध्यान नन्ददासजी ने छन्दों के प्रयोग में रखा है, जो किसी भी कवि के लिए परमावश्यक है। उन्होंने उन्हीं छन्दों को चुना है जिनमें गत्यात्मकता और लयात्मकता अत्यन्त सहज रूप से सरल और मंजुल है। 'रास पंचाध्यायी' रोला छंद में लिखी है। इसमें मधुर और कोमल ध्वनि वाले ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमें कुछ तत्सम और कुछ तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार की भाषा का प्रयोग प्रमुख रूप से रूप–चित्रण और दृश्य–वर्णन प्रधा न स्थलों में अधिक मिलते हैं। उदाहरणार्थ –

उर–वर पर अति छवि की भीर कछु वरनि न जाई।
जिहि अन्तर जगमगत निन्तर कुँवर कन्हाई।।
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय–सरवर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी।।१०।।

राधा के पास दर्पण देखकर गोपियाँ क्रोधित नहीं हुई हैं, क्योंकि वे निर्मत्सर संत समाज में श्रेष्ठ मानी जाती हैं–

तातैं मंजुल मुकुट सुकर लै बाल दिखायो।
श्री सुख को प्रतिबिम्ब सखी तब सनमुख आयो।।२८।।
धन्न कहत भई ताहि नाहिं कछु मन मैं कोपीं।
निरमत्सर जे संत तिरकि चूड़ामणि गोपीं।।२६।।

वर्ण–मैत्री, शब्द–गठन और नाद–सौन्दर्य की दृष्टि से 'रास पंचाध्यायी' की निम्नांकित पंक्तियाँ स्वतः ध्यान आकर्षित करती हैं–

नूपुर, कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली।।६।।
मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की सार भँवर गुंजार रली पुनि।।७।।

मुहावरों की दृष्टि से 'रास पंचाध्यायी' अछूती नहीं है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

१. *कोउ साखि कर पर तिरप बाँधि निरतत छबिली तिय।*
मानहूँ करतल फिरत लटू लाखि लटू होत पिय।।२।।
२. *जित तित तैं सब अहुरि बहुरि जमुना तट आई।*
जहँ नंद–नंदन जग–वंदन पिय लाड़ लड़ाई।।३७।।
३. *किधौं नंद–नंदन मंद मुसकि तुमरे मन मूसे।*

अन्त में 'रास–पंचाध्यायी' नन्ददासजी की सबसे लोकप्रिय रचना मानी जाती है। कला–पक्ष तथा भाव–पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त सफल कृति है। 'रास पंचाध्यायी' के अन्त में नन्ददासजी ने लीला कृति को 'मनहरनी', सुन्दर प्रेम–बितरनी' और 'मंगल करनी' कहा है तथा अपने कंठ में नित्य बसे रहने की कामना की है।

एसो॰ प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
भगवती निलयम्, १ त २,
जवाहर नगर, जयपुर

नन्ददास की रास-पंचाध्यायी में श्री कृष्ण का स्वरूप

✍ साहित्य महोपाध्याय डा. चक्रधर नलिन

वल्लभाचार्य के लीलाप्रद आशावाद, आनन्दवाद और रसवादी परम्परा के अग्रवाही कवियों में सूरदास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, परमानंददास, मीराबाई, स्वामी हरिदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, रसखान, वीरबल, ध्रुवदास, ताजबेगम, गदाधरभट्ट मदनमोहन, भारतेंदु, रत्नाकर, श्रीभट्ट आदि के समान ही नन्ददास (१५३३–१५८६ ई०) ख्याति, समर्पण और साधना की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। इन्होनें परमानन्ददास तथा सूरदास की भांति हित हरिवंश पुराण तथा श्रीमदभागवत की विचार धारा को अपने ग्रंथों का आधार बनाया। इन पर अग्रदास की श्रृंगार वलित भक्ति का प्रभाव स्पष्ट मिलता है। इनके विशिष्ट लीला ग्रंथों में 'भ्रमरगीत' तथा 'रासपंचाध्यायी' ही प्रमुख हैं किन्तु 'अष्टछाप' और 'वल्लभ–संप्रदाय' (डा०दीनदयाल गुप्त) नंददास (प०उमाशंकर शुक्ल) एव नंददास ग्रंथावली' (ब्रजरत्नदास) आदि में 'भागवत–दशम–स्कंध', 'सिंद्धात–पंचाध्यायी', 'ज्ञानमजरी', 'नामचिंतामणि माला', 'अनेकार्थमाला', 'अनेकार्थ–मंजरी', 'रूक्मिणी–मंगल', 'श्यामसगाई', 'सुदामा–चरित', 'दानलीला', 'मानलीला', 'रूपमंजरी', 'रसमंजरी', 'मान–मंजरी', 'विरहमंजरी' आदि अनेक कृतियों का उल्लेख मिलता है। इनकी 'नासिकेत पुराण' युगीन गद्य–ग्रंथ रचना है। हिन्दी के प्रख्यात समालोचक डा०रामप्रसाद मिश्र इन्हें शास्त्रीय काल (१६००–१८०० ई.) का अग्रदूत, एक विचारशील भक्त, एक गम्भीर विद्वान एवं एक उत्कृष्ट कवि के रूप में हिन्दी–साहित्य–कोष के जाज्वल्यमान (हिन्दी साहित्य का वस्तु परक इतिहास १९९८ पृ. ३६३) रत्नों में स्वीकार करते हैं जो सत्याधार है।

नंददास कृत 'रास–पंचाध्यायी' युगीन विचार प्रधान रचना है जो उनकी अद्वितीय प्रतिभा का परिचायक है। वह हिन्दी कृष्णकाव्य पंरम्परा के सीमान्तक हैं। इन्होंने असमें लीलावाद को प्रतिष्ठापित किया। कवि को निश्चित ही भागवताधारित कथाक्रम श्री कृष्ण गोपी–रास लीला प्रसंगो, मिलन और विरह दृश्यों के रूपांकन में अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। इसे भागवत सिद्धांत का संक्षिप्त भावानुवाद तथा छायानुवाद कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि भगवान विष्णु श्री कृष्ण ईश्वरावतार हैं और समस्त वैष्णव समाज तथा हिन्दू समाज के लिए पूज्य हैं। भगवान विष्णु क्षीर सागरीय ही नहीं वरन शान्त रस के अधिष्ठाता श्रृंगार रस के अधिष्ठाता और नायक हैं। उनका नारायन रूप रास–पंचाध्यायी में अभिवर्णित है। नंददास ने श्रीकृष्ण को ईश्वर और परमात्मा के रूप में इस महाग्रंथ में रेखांकन किया हैं –

परमात्म परब्रह्म सबन कैं अन्तरजामी
नारायन, भगवान, धर्म्मकर सबके स्वामी।
बाल–कुमर पौगंड धर्म्मरूचि लिये ललित तन
धर्मी नित्य किसोर कान्ह मोहत सबकौ मन।

(अध्याय एक : २२)

'धर्म–स्वरूप पर ब्रह्म अन्तरयामी होकर भगवान कृष्ण सबके स्वामी हैं एवं सुन्दर बाल, कुमार, पौगंड और किशोर वय में रहकर नित्य सबके मन को मोहते हैं। वे धर्मात्मा हैं। इस प्रकार नंददास ने इस कृति में श्री कृष्ण को ईश्वरावतार प्रतिपादित किया है। कवि ने कृष्ण के बाल, कौमार, पौगंड और कैशोर्य को परमात्मा के रूप में देखा है तथा कृष्णभक्ति का संदेश प्रसारित किया है। कृष्णावतार में श्रृंगार और धर्म का अद्‌भुत समन्वय है। कवि श्रीकृष्ण के गले के मोती तथा वनमाला, तनपर पीताम्बर, स्वर्ग से श्रेंष्ठ वृन्दावन के अनन्त सौन्दर्य का भव्य रूप चित्रांकन करता है तथा कृष्ण की अलौकिकता को जन सामान्य का आधार बनाता है:

'गलमोतिन की माल ललित बनमाल धरे पिय,
मन्द, मधुर हरि पीत बसन फरकत खरकत हिय।
अस अदभुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ,
याही तैं वैकुण्ठ–विभव कुण्ठित लागै तहँ।

(अध्याय एक : २३)

कवि श्रीकृष्ण को ज्योति–स्वरूप, हदय पर भृगुपद चिन्ह सहित, सौन्दर्य–सृष्टा रूपी देखता है जो विष्णु रूप का सहजाकंन है:

'निकर–विभाकर–दुतिमेटत शुभ कौस्तुभमनि अस,
हरि के उर पर रूचिर निबिड, लागत उर पति जस।
मोहन अदभुत रूप कहि न आवै छवि ताकी,
अखिल अण्ड–व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।

(अध्याय एक : २१)

इस प्रकार कविवर नंददास श्रीकृष्ण के हृदय पर अरूण समूह की प्रतिमा को मिटानेवाली कौस्तुम मणि के दर्शन करता है जो हृद्‌य की घनी कृष्णता में चन्द्रमा के सदृश सुखदायी लग रही है। उनका रूप अनूप है और शोभा अवर्णनीय है, ब्रह्माण्डव्यापी हैं, ज्योति–स्वरूप तेजोमय है। श्री कृष्ण का तेजोमय रूप ईश्वरावतार का सम्बोधक है।

रास–पंचाध्यायी में प्रथम अध्याय में १०७ छंद, द्वितीय में २८ छंद, तृतीय में १३ छंद, चतुर्थ (भागवत के ३२ वें अध्याय पर आधारित) में १५ छंद तथा पंचम अध्याय में ४३ (भागवत के ३३ अध्याय पर) छंद इस प्रकार कवि ने २०६ (दो सौ छः) छंद रोला छंद विधान में श्रीकृष्णामृत की वर्षा की है।

कवि ने श्रीकृष्ण और गोपवधुओं के मिलन को आत्मा परमात्मा, नदी और सागर के समर्पित मिलन से तुलना की है। वास्तव में कवि कथन सही है कि नदियाँ जिससे रसपाती हैं उसीसे अंत में उस रस के साथ आ मिलती हैं –

'आय उमंग सौं मिलीं रँगीली गोप–वधु अस,
नन्द–सुवन सागर–सुन्दर सौ. प्रेम नदी जस।
परमभागवत–राग–रसिक जु परीक्षित राजा,
प्रश्न कियो रूस पुष्टि करन निज हित सुख काजा।।

नंददास ने अध्याय एक, ३६ में स्पष्टोक्ति की है कि कमनीय भाव से जो कृष्ण को भजते हैं वह भगवान को नहीं पा सकते तथा गुण–युक्त शरीर से सगुण हरि की सेवा निर्गुण ब्रह्म की उपासना तथा प्राप्ति संभव है। जो कृष्ण को ब्रह्म–भाव से शरीर गुण–धर्म छोडकर भजते हैं वे कैसे हरि को पा सकते है:

हो। मुनि, क्यौं गुनमय शरीर परिहरि पावै हरि,
जो न भजै कमनीय कान्ह कहं ब्रह्म–भाव करि।
तब कह श्रीसुकदेव देव, यह अचरज नाहीं,
सर्वभाव भगवान कान्ह जिनकैं हिय माँहीं।।

श्रीकृष्ण का मुरली–नाद (माया रूपी संसार) सुनकर गोपियां सब कुछ भूलकर कृष्णमय हो जाती हैं और माया का स्वरूप अन्त में सत्य का साक्षात्कार कराता है

'तैसिय पियकी मुरली जु–रली अधर सुधा–रस
सुनि निज धर्म न तजैं तरूनि त्रिभुवन में को अस।
मग, खग और भृगनि कौ केसौ धर्म रहयौ है,
छवि है पिय रहो अब न कछु जात कहयौ है।'

(अ. एक : ५१)

कवि नंददास श्रीकृष्ण की रूपाकृति को निर्धारित करते हैं। उनके सिर पर मुकुट, अद्भुत पीताम्बर, श्यामल शरीर गले में वनमाला करोडो कामदेव जैसी कान्ति देखने योग्य है। ऐसा श्रीकृष्ण का भव्य, स्वरूप अवतार वाद का वास्तविक स्वरूप निर्धारक है :–

अद्भुत सांवल अंग वन्यौ अदभुत पीताम्बर
मुकुट धरे सिंगार प्रेम अम्बर ओढ़े हरि।।
विगलित उर वनमाल लाल उर चलत चाल वर,
कोटि मदन की भीर उठत पुनि गिरत चरन तर।।

(अध्याय एक ५१)

ईश्वर जीव में उत्पन्न गर्व एवं अभिमान को अविलम्ब नष्ट कर देता है। जब कृष्ण ने गोपियों को अभिमानग्रस्त देखा तो उन्हें त्याग दिया जिससे उनमें शुद्ध प्रेम नेम की नूतन ज्योति प्रज्वलित हो उठे, वे निखर कर असली प्रेम का स्वर्ण बन सकें। गोपियों का कृष्ण के प्रेम में लीन होना और कृष्ण रूप में मानने जानने, सब कुछ करने का भाव आश्चर्यजनक लगता है। कवि ने ८ पंक्तियों के रोला छंद (विप्रलंभ श्रृंगार) में करूणा, स्मृति, दया, समवेदना, सहानुभूति एवं सात्वंना भावों को गोपियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है :

'जिनके नैन–निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं,
तिनकौ गृह वन–कुंज–ओट–दुख गणना नाहीं।
ठगी गई ब्रज बाल लाल गिरधर पिय बिन यौं
निधन महाधन पाय बहुरि फिरि जाय भयौ ज्यौं। (अध्याय २ – २)

कवि ने भगवान कृष्ण के अगोचरीभूत स्वरूप और गोपियों द्वारा बहुमूल्य सम्पदा खो जाने वाली स्थिति का चरमाभास प्रस्तुत किया है।

श्रीकृष्ण की खोज में गोपियां उन्हें प्रत्येक कुंज में खोजती हैं तथा प्राणेश्वर के अभाव में वे विकलता के सागर में डूब जाती हैं। एक स्थान पर उन्हें श्रीकृष्ण के पद चिन्ह मिलते हैं जिसमें शंख–चक्र कमलाकुश एवं कुलिश आदि के शुभ – चिन्ह दिखे जिसकी धूल को हरि पद धूल मानकर वंदनाकर उसे अपने मस्तक पर रख लिया :

'कुंज कुंज ढूँढ़त फिरीं खोजत दीन–दयाल,
प्राननाथ पाये नहीं, विकल भई ब्रजबाल।
तब पायौ पिय पद सरोज कौ खोज रूचिर तहँ
अरि देर, अंकसू, कमल, कलस अति जगमगात जहँ।
जो रस अज सिव खोजत जोजत जोगी जन हिय।
सो रज वंदन करन लगी, सिर धरन लगीं तिय। (२–१६)

श्रीकृष्ण जी के प्रति श्री राधा जी का समर्पण जग प्रेमाभिमान में परिणत हो जाता है तब वह श्रीकृष्ण के साथ चलने में असमर्थता व्यक्त कर भगवान के कंधो पर चढ़ने के लिए कहने लगी तो कृष्ण उनका भी त्याग कर देते हैं। और वह ऐकान्तिक रस विलासानन्द से वंचित हो जाती हैं :

'उन नीकैं आराधे हरि ईश्वर वर जोई,
तातें निधरक अधर सुधा–रस पीवति सोई।
सोउ पुनि अभिमान भरी जब कहन लगी तिय
मौंपे चल्यौ न जाय जहाँ तुम चलन चहत पिय।(२–२२)
'पीय संग एंकात रस विलसित राधा नारि,
कन्ध चढन हरि सौं कह्यौ यातैं तजी मुरारि।।२–२३।।

नंददास ने श्रीमद्भागवत कथा के आधार पर गोपियों के श्री कृष्ण के प्रति कीर्ति–कीर्तन के अतिरिक्त उनका गम्भीर शब्दों में हार्दिक प्रीति प्रतीति भरा सरस एवं मर्मस्पर्शी स्तवन तथा व्यंगपूर्ण प्रेमोपालम्भ प्रस्तुतीकरण में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है –

'जसुदासुत जनु तुम न भये पिय अति इतराने,
विश्व कुसल कारन, विधना विनती करि आने।

अहो मित्र। हो प्राननाथ, यह अचरज भारी,
अपने जन कौं मारि करौ का की रखवारी।।३–३।।

हे कृष्ण, तुम यशोदा जी के पुत्र क्या हुए हो, बहुत इतराने लगे या घमंड करने लगे हों। क्या यह भूल गये कि तुम विष्णु रूप हो और विधाता ने संसार की कुशलता के लिए विनती करके यहां लाये गए हो या मानों तुम्हें विधाता से प्रार्थना करके जगत कल्याण हेतु (श्रीनंदजी या वसुदेवजी) उन्हें लाये हैं। हे सखे। हे प्राणनाथ। यह हमें बडे आश्चर्य की बात लगती है कि तुम अपने जन को मारते हो या यदि यों करते हो तो कहो कि तुम रक्षा किसकी करते हो, इतना गर्व क्यों करते हो, तुम तो वही यशोदा–सुत हो जिसे हमने खिलाया बिलाया है।)

इस प्रकार कविवर नंददास ने गोपी वचनों के माध्यम से श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु के रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

गोपियां श्री कृष्ण के विरह में जलने लगी हैं और उनके र्स्पश से तृप्ति और सुख शान्ति की कामना करती हैं जिसमें श्रीकृष्ण का कुछ भी घटने वाला नहीं है

" छिन बैठति छिन उठति लोटीं तिहि रज माहीं,
थोरे जल ज्यौं मीन दीन आतुर अकुला ही।

सन्तत भय तैं अमय करन कर कमल तिहारे,
कह घट जैहे नाथ तनक सिर छुवत हमारे।।३–६।।

रास पंचाध्यायी का तृतीय खण्ड भागवत के दशम स्कंध के ३१वें अध्याय का कुशल भावानुवाद सा है। गोपिकाएँ इच्छा व्यक्त करती हैं कि श्रीकृष्ण अपने चरणकमल उनके हृदय तथा कठोर उरोंजों पर रखकर उनका हित करें जिससे उनका हदय विमल तथा निर्मल हो सके :

'जनति हैं हम तुम न डरत ब्रजराज दुलारे,
कोमल चरन सरोज उरोज कठोर हमारे।

सनै सनै पिय धरौ हमहिं तुम निपट पियारे,
कित अटवी मैं अटत गडत तृन कूर्म अन्यारे।। ३–१३।।

कवि नंददास ने चतुर्थोध्याय को भागवत के ३२ वें अध्याय पर आदृत किया तथा प्रेम और भक्ति की सहजता और मार्मिकता को सफलतापूर्वक निरूपण किया है। कवि ने भागवत के दार्शनिक पक्ष के श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के मनोरथ पूर्ण करके किया तथा गोपियों ने अपने वस्त्रासन पर बिठाकर उनको प्रेम भक्ति का मार्मिक बोध कराया है। इस प्रकार गोपियों का प्राथमिक श्रृंगार भाव भक्ति प्रेम की मूर्ति बन जाता है। श्रीकृष्ण अपने वास्तविक रूप में प्रगट होते हैं :–

'पीत वसन वनमाल धरें मंनुल मुरली कर
मन्द मधुर मुसिक्यान निपट मन्मथ मन्मथ कर।
पियहिं निरखि तिय वृन्द उठीं सब एक बार यौं,
फिरि घट आये प्रान बहुरि उझकत इन्द्री ज्यौं। ४ ५।।
कोउ नागर नगधर की गहि रहि दोउ कर पटकी,
मनु नव घन तैं सटकी दामिनि दामिनि अटकी।
दौरि लिपटि गई ललित लाल सुख कहत न आवै,
मीन उछरि कै पुलिन परै पुनि पानी पावै।। ४ ४।।

श्रीकृष्ण योगीश्वर हैं तथा जिन्हें संसार के ऋृषि मुनि नहीं समझ पाते वे प्रत्येक गोपी के वस्त्र पर बैठकर उसकी मनोकामना पूर्ति करते हैं तथा उनके हृदय को निर्मल और पवित्र बनाते हैं :

'एक एक हरिदेव सबहिं आसन पर बैसे,
किये मनोरथ पूरन जाके हैं मन जैसे।
जो अनेक जोगेस्वर हिय मैं ध्यान धरत हैं,
एकहिं बेर सुरूप एक सब के सुख वितरत हैं। ४–८।।
जोगी जन बन जाय जतन करि कोटि जनम पचि,
अति निर्मल करि राखत किय मैं आसन रचि रचि।
कछु छिन तँहनहिं जात नवल नागर सुंदर हरि,
ब्रज जुवतिन के अम्बर पर बैठे अति रूचि करि।। (४ : ६)

कवि जुवतिन ने प्रेमाभक्ति की महत्ता स्थापित करने में सहजता से सफल होते हैं। वह निःर्स्वाथ भक्ति से निश्छल प्रेम को अति महत्वपूर्ण निरूपित करते हैं। कवि जो उन भक्तों को जो अपने आराध्य द्वारा अपना ध्यान एवं अपनी सेवा न करने वाले को सुखकारी धर्मी तथा जो दोनों का त्याग करते है वे ज्ञानी या आप्तकामी, अकृतज्ञहृदवी कहे जाते है :–

'जे अनभज तेहिं भजैं वहै धर्म्मी सुखकारी,
जैसे मातपिता जु करैं सुत की रखवारी।
जे दोउन कौ तजैं तिनहिं ज्ञानी जानौ तिय,
आप्त–काम अथवा गुरू द्रोही ही अरू कृतघ्न–हिय। ४–१३।

प्रेमी

- **स्वार्थी** — (पाशविक प्रेम)
- **सुखार्थी** — (अपना सुख चाहने वाले और तदर्थ प्रेम करने वाला)
- **कर्त्तव्यार्थ** — (अपना कर्त्तव्य समझकर प्रेम करने वाला)
- **निःस्वार्थी या ज्ञानी**
  - आप्तकाम
  - आत्मानंदी
  - गुरूदोही
  - अकृतज्ञ

इस प्रकार ईश्वरावतार कृष्ण जो समस्त विश्व की माया को वंशीभूत किये गोपियों के प्रेम में लोक और वेद के बन्धनों को तोड़ देते हैं और यहीं प्रेमपूर्वाभक्ति की भगवान पर विजय का कविवर नन्ददास का दर्शन है :

'सकल विस्व अपवस करि मो माया सोहति,
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मो मन मोहति।
तुम जुकरी सो कोउ न करै सुनु नवल किसोरी
लोक वेद की सुदृढ़ श्रृंखला तृन सम तोरी। ४–१५।।

कवि नंददास गोपियों के माध्यम से श्रीकृष्ण के मुस्कुराते मोर मुकुट धारित पीमाम्बर धारी रूप–दर्शन की हर समय कामना करते हैं :

'छबिलि तियनि कैं पाछैं आछैं विलुलित बेनी
चंचल रूप लसत सँग डोलति जुनु अलि सेनी।
मोहन पिय की मुसकनि, दलकनि मोर–मुकुट की
सदा बसौ मन मेरे फहरनि पियरे पट की।। ५–६५।।

कवि दर्शन है कि इस घट (विश्व–शरीर) के प्रति निकट अन्तर्यामी (ब्रह्म–ईश्वर) है किन्तु विषयों से उसकी अनुभूति या प्राप्ति नहीं की जा सकती है :–

'निपट निकट घट मैं जो अन्तरजामी आही,
विषै विदूषित इन्द्री पकरि सकै नहिं ताही। ५–३८।।

इस प्रकार नन्ददासजी श्रीकृष्ण, जो विष्णु के अवतार हैं, की नित्यलीला के वाचक हैं और अपने कंठ में नित्य रमने की याचना करते हैं :

'दोहा – अधहरनी, मनहरनी सुन्दर प्रेम वितरनी,
नन्ददास के कंठ बसौ नित मंगल करनी। (५–४३)

कवि नंददास ने वास्तव में रास पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण को विष्णुवतार स्वरूप उद्घाटित कर इस जगत को रस धारा जीवतंता प्रदान कर प्रेमार्चित भक्तों को आत्म–मुक्ति का द्वार प्रदान किया है। जैसे कविवर रामशंकर शुक्ल रसाल ने यथार्थाभिव्यक्ति की है :

'नंददास रचना सफल, सब कौ करति निहाल।
रीझि रास रस सीझि तब, प्रभसित करी रसाल।।

२४६, प्रभुटाउन, रायबेरली

नन्ददास की पुष्टिमार्ग में शरणागति

✍ रामशरण पीतलिया

अन्तस अनुराग अथाह उल्लसित उर भारो।
वह पथिक अपरिमित चाह लिए बढ चला राह।।
आस्था अथोर आह्लाद मनस्वी अवतारी।
था दिव्य द्वारिका धाम दरस भारी उछाह।।

कब काशी छोडी कुरूक्षेत्र भी किया पार।
मन अटका भटका देह मोह में भरमाया।।
सीहनँद की सौम्य सलोनी सूरत सी सुनारि।
खत्री पत्नी के प्रेम पाश अटका पाया।।

यह नन्ददास थे जिनके अग्रज थे तुलसी।
रणछोड़ मिलन की साध छोड चित डोल गया।।
भिक्षाटन मिस निशि दिवस नजरिया आकुलसी।
उलझी चकराई टकराई हिय खोल गया।।

चर्चित चंचल चित की चरचा चहुँ ओर चली।
खत्री दम्पति हो दुखी देख लोकापवाद।।
सोची जगनिन्दा से बचने की राह भली।
गोकुल प्रभु दर्शन चलैं मिटे मन का विषाद।।

यह नन्ददास थे आस प्रेम नहिं बिसराई।
अनुगामी बन चल दिए निकट गोकुल द्वारे।।
अटके कालिन्दी तट केवट की निठुराई।
गाये प्रशस्ति पद तरनि तनूजा के प्यारे।।

साधक आराधक भाव अलौकिक पहिचाने।
वह बिट्ठल प्रभु थे अग जग के अन्तर्यामी।।
भक्तों के चित हित नित बुनते ताने बाने।
बे सतता लोक कल्याण हेतु जग के स्वामी।।

गुन गरबीली थी ज्ञान साधना हितकारी।
गोस्वामी प्रभु ने कहा अरे यह उचित नहीं।।
जमुना तट के उस पार विप्र व्याकुल भसरी।
तुम तुरंत बुलाओ उन्हें सिखावन सत्य सही।।

था चमत्कार हो गया नहीं देखा भाला।
यह देवालय है यहाँ दूर जमुना धारा।।
है दिव्यदृष्टि प्रभु बिट्ठल विस्मित कर डाला।
इनका है आश्रय सही जानता जग सारा।।

स्वागत शरणागत किया धुले कल्मष सारे।
बिट्ठल प्रभु का आशीष सम्पदा जीवन की।।
बरदायी नेही वचन सुने प्यारे प्यारे।
पुलकित मन पावन पवन पाय नन्दनवन की।।

पंकज ने त्यागी पंक बिखेरा मधुर भाव।
अर्पित देवार्चन हेतु सुप्त सौभाग्य जगा।।
नव भोर हुआ, विकसा कलियों का नया चाव।
बडभागी सन्त बिलोकत वैभव ठगा ठगा।।

था पारस परस सुहावन मन भावन नीका।
वह धन्य धड़ी उद्घोष बनी नव दृष्टि मिली।।
संकीर्तन सुषमा सौम्य श्रेष्ठ जन मन टीका।
कंचन कुन्दन सी काम्य रम्य वर वृष्टि मिली।।

सुर सरिता सी बह चली सृजन की रसवन्ती।
विद्या विनोद श्रृंगार सार के अमर छन्द।।
लीला ललाम के लास्म हास्य की लजवन्ती।
सरपट सपाट अति वेगवान बहु विध अमन्द।।

पा नन्ददास की कला बढ़ा कविता दुलार।
मंजरियों में रस नीति रीति के भाव जगे।।
वल्लभ दर्शन के गूदतत्व सिद्धान्त सार।
विद्वन्मण्डल चिन्तनधारा हित प्रीत पगे।।

भाषा ने भूषण, भूषण पाये दिव्य भाव।
भावों ने रस, रस ने मृदुता, मृदुता शुचिता।।
शुचिता आलम्बन, आलम्बन ने मधुर भाव।
मधुभावों ने पाई थी एकनिष्ठ ृजुता।।

थे नन्ददास बन गए आस अनुशीलन की।
वल्लभ दर्शन के दीप्त चितेरे धन्य हुए।।
मीमांसामर्म महान मंथ उन्मीलन की।
आशा के अनुदूत अनजान अनन्य हुए।।

अध्याय पाँच रचि रास लास्य के ललित छन्द।
रचि भँवरगीत उद्धव मन की शंका मेटी।।
श्रृंगार सजीला हुआ उल्लसित बन्द–बन्द।
लौकिक लीला निस्सीम बनी गिरिधर भेंटी।।

मन मैल मिटा संसार सार पहिचान जान।
साहूकारिन ने नेही साहूकार किया।।
परिवर्तित मन के हाव–भाव उन्नत महान।
कामिनी केलि तजि आश्रय जगदाधार लिया।।

वह प्रेम–प्रीति की डोर अमरता छबि छाई।
वह प्रेम–प्रीति की डोर जगत्पति ओर लगी।।
वह प्रेम–प्रीति की डोर अपरिचित मन भाई।
वह प्रेम–प्रीति की डोर अहर्निश दौढ़ भगी।।

वह साँची डोर निहार हुआ जीवन निहाल।
आदेश गुसाईं बिट्ठल का चित धार लिया।।
लौकिक जीवन में परिवर्तन था बेमिसाल।
मंदलाल नेह का नन्ददास पय पान किया।

सोन्दर्य प्रेम रस भाव भली अब राह मिली।
मिल गया अभीप्सित तत्व रम्य रमणीक रास।।
विकसी छवि मन अभिराम सुमन की कली खिली।
अखिलेश्वर की लीला निहारते नन्ददास।।

वह लीला शिवम् सुन्दरम् का सौन्दर्य शास्त्र।
वह लीला विरह मिलन उत्कण्ठा जन्य राग।।
वह लीला प्रेम पुलक पूरित अनुराग पात्र।
वह लीला लीलाधर ललाम का ललित फाग।।

लीला लिख लिख होते निहाल थे नन्ददास।
अनुराग मंजरी लोकनीति रस प्रेम युक्त।।
उत्तम कविता के अनुष्ठान प्रिय अनुप्रास।
नवकविता सरिता बही भव्यतायुत विमुक्त।।

तुलसी ब्रज आए अनुज मिलन की चाह लिए।
जड़ जंगम राधेश्याम इतनि लखि बिरमाए।।
इक राम रहित रस रूप राग रँग क्या करिए।
ब्रज के करील अरू ढ़ाक पात नहिं मन भाए।।

तुलसी मन शंका भाँप गए थे नन्ददास।
इनके मन क्यों द्विविधा का व्यर्थ वितान तने।।
नतमस्तक हो कीन्ही प्रभु से अरदास खास।
पन पार दिया श्रीनाथ आज रघुनाथ बने।।

तुलसी ने देखा धनुषबाणयुत रघुवर को।
मुरलीधर की छबि देख रहे थे नन्ददास।।
दो सन्त हृदय कर रहे नमन निज प्रभुवर को।
दो भक्त आज आह्लादित थे पावन प्रकाश।।

दर्शन कर प्रभु के पुलकित तुलसीदास हुए।
झुक गया माथ रघुनाथ रूप श्रीनाथ खड़े।
भावना लोक परिपूरित सब विश्वास हुए।।
तरसे जिस छबि को ज्ञानी ध्यानी बड़े बड़े।।

पारस का परस पवित्र पाय मन कुन्दन बन।
चमका चहुँ ओर चली चर्चा बन चमत्कार।।
ब्रजबीथिन गीतावली कृष्ण को कर अर्पण।
शाश्वत सुषमा सौन्दर्य काव्य का सुधाधार।।

तुलसी हुलसे ब्रजबास हुआ सार्थक आना।
मर्यादा का पावन वितान परिपुष्ट हुआ।।
यह मिलन भावनालोक भव्यता का माना।
संतो का संगम लखि जन जन संतुष्ट हुआ।।

यह नन्ददास की पुष्टिमार्ग में शरणागति।
बिट्ठलप्रभु की आशीष अहर्निश वरदायी।।
वल्लभ दर्शन को काव्यकलेवर जन चित हित।
यह पृष्टिमार्ग परिपुष्ट हुआ था सुखदायी।।

लिख 'स्याम–सगाई' भक्ति भाव का चाव भरा।
'गोवर्धन लीला गरिमापूरित अनुष्ठान।।
वह'चरित सुदामा' मित्र भाव का चित्र खरा।
'रस'–'रूप' मंजरी सुन्दरता की अमर खान।।

लिख ''विरह मंजरी'', ''मान मंजरी'' की गाथा।
फिर अन्य अनेकों अर्थो का लिख अमरकोश।।
लीला प्रसंग के अभिनय लखि झुकता माथा।
कृष्णार्पण करते सृजन जगाते अमित जोश।।

ये भक्ति और श्रृंगार काव्य संयोजक थे।
नंददास सन्त ने रीतिनीति आधार दिया।।
संकीर्तन गायक परम सयाने वादक थे।
पुनि पृष्टिभाव संपुष्टि हेतु आकार दिया।।

प्रान्तीय अध्यक्ष, कदम्ब, कामवन

नन्ददास और उनका शरणकाल

✍ डा. विष्णु विराट चतुर्वेदी

नन्ददासजी अष्टछाप के प्रबुद्धतम आचार्य कवि थे, जिनकी शास्त्रीय तथा लोकाकर्षित ललित काव्य रचनाएँ सम्प्रदायेतर रसिक पाठकों में भी ख्यात रही हैं।

अष्टछाप की श्रृंखला में नन्ददासजी सबके अन्त में मार्ग में प्रविष्ट हुए थे इसलिए अष्टछाप में भी दीक्षाक्रम के अनुसार उनका स्थान अन्तिम ही है।

नन्ददासजी के जीवन वृत पर अनेक मनीषी विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए है तथा वार्तासाहित्य एवं वचनामृत के अन्तः साक्ष्य के आधार पर भी विस्तार से इसे स्पष्ट किया गया है। अतः इस विषय में कुछ भी कहना मात्र पिष्टप्रेषण ही होगा।

यहाँ मुख्य विचारणीय विषय है नन्ददासजी का दीक्षाकाल अर्थात् शरणकाल।

पुष्टि साहित्य के विद्वानों ने नन्ददासजी की दीक्षा का समय संवत १६०७ माना है, यहाँ यह संदेह उपस्थित होता है कि जब अष्टछाप की विधिवत स्थापना १६०२ में हो चुकी थी, तब नन्ददासजी १६०७ में दीक्षित होकर भी अपने पूर्ववर्ती मंडल में कैसे समाविष्ट हो गए। इसके लिए अन्तः साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस समय अष्टछाप की स्थापना हुई थी, उसमें नन्ददासजी समविष्ट नहीं थे, नन्ददासजी के स्थान पर मूलरूप से विष्णुदास छीपी अष्टछाप में सम्मिलित थे, बाद में सं. १६०७ में नन्ददास की अप्रतिम काव्य सर्जना–शक्ति को देखकर उन्हें अष्टछाप में समविष्ट कर लिया गया और विष्णुदास छीपी, जो श्री महाप्रभुजी के सेवक थे, अन्यन्त बृद्ध होने के कारण उन्हें श्रीगुसाईंजी का द्वारपाल नियुक्त कर दिया था, जिसे छडीदार भी कहा जाता है।

विष्णुदास छीपी अष्टछाप में समविष्ट थे इसका प्रमाण श्री द्वारकेशजी का पद ध्यातव्य है –

सूरदास सौ तौ कृष्ण, तोक परमानन्द जानौ।
कृष्णदास सौ ऋषम, छीतस्वामी सुबल बखानौ।
अर्जुन कुम्भनदास, चत्राभुजदास विसाला।
विष्णुदास सो मोज, स्वामिगोविंद श्री दामा।
अष्टछाप आठौ सखा, श्री द्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुनगान करि, निज जन होत सुथान।।

अब हम नन्ददासजी के दीक्षाकाल सं. १६०७ के औचित्य पर विचार करते हैं –

वार्ता साहित्य में कहा गया है कि तुलसीदासजी नन्ददासजी के बडे भ्राता थे तथा जब उन्हें ज्ञात हुआ कि नन्ददासजी श्रीगुसाईंजी के शिष्य बन गए है और

गोकुल में ही रह रहे हैं, तब उन्हें वापस घर ले जाने के लिए स्वयं तुलसीदासजी गोकुल जाते हैं और नन्ददास से भेंट करते हैं।

इसी प्रसंग में गुसाईंजी से उनकी भेंट होती हैं और गुसाईंजी अपने पाँचवे पुत्र श्री रघुनाथजी तथा पुत्र वधू श्री जानकीबहूजी को उनके सामने सियाराम रूप में उपस्थित करते हैं, जिससे तुलसीदासजी प्रभावित होकर श्रृद्धानत हो जाते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि जब नन्ददासजी घर छोड़कर यात्रासंघ के साथ गोकुल आ गए तब तुलसीदासजी भी उन्हें इधर उधर खोज रहे थे, कहने का अर्थ है कि जिस समय तुलसीदासजी गोकुल में आए उस समय नन्ददासजी को घर छोड़े हुए बहुत समय नहीं हुआ था।

गो. रघुनाथजी का जन्म सं. १६११ में हुआ था और विवाह पन्द्रह वर्ष की आयु में १६२६ में हुआ था। जिस समय तुलसीदासजी गोकुल आए थे उस समय तक रघुनाथजी विवाहित होकर व्यवस्थित हो चुके थे अर्थात् उनके विवाह को डेढ–दो वर्ष व्यतीत हो चुके होंगे, अतः तुलसीदासजी के आगमन के समय उनसे भेट सं. १६२७ या २८ में हुई होगी। डा॰ प्रेमनारायण टंडन ने वार्ता साहित्य वृहद् अध्ययन ग्रंथ में तुलसीदास का गोकुल आगमन सं. १६२८ निर्धारित किया है जो तर्कसंगत लगता है, वचनामृत के अनुसार भी यह घटना सं. १६२६ के बाद की है।

अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय के यशस्वी लेखक डाँ. दीनदयाल गुप्त ने अष्टछाप की स्थापना काल सं. १६०२ स्वीकारी है। यहाँ पर इस स्थापना काल में ही संदेह उत्पन्न होता है। श्री द्वारकेशजी के पद के अतिरिक्त वार्तासाहित्य में कहीं भी नन्ददास से रहित अष्टछाप का उल्लेख नहीं मिलता।

दूसरा संदेहास्पद कारण यह है कि सं. १६०२ तक गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी स्वयं पारिवारिक क्लेशों तथा विषम परिस्थितियों में ग्रस्त थे। अपने बड़े भ्राता श्रीगोपीनाथजी के नित्यलीला प्रवेश के बाद सं. १६०० में गुसाईं जी सपरिवार ब्रज में आ गए थे किंतु गोकुल में उन्होंने स्थाई निवास तय नहीं किया था। इसी समय सं. १६०० में वह श्रीनाथजी की सेवाव्यवस्था को परिवर्द्धित करने के लिए तथा मंदिर का वैभव बढ़ाने के लिए अर्थसंकलन हेतु गुजरात के परदेश (यात्रा) पर पधारे थे। सं. १६०१ में वह गोकुल आ गए थे। इसी समय गंगाबाई को लेकर कृष्णदास से उनका मतभेद हो गया था। गंगाबाई प्रसंग को लेकर कृष्णदास द्वारा श्रीगुसाईंजी का मंदिर प्रवेश सं. १६०५ में वर्जित कर दिया गया था। वार्तासाहित्य के अनुसार पौष शु. ५ से आषाढ़ शु. ५ तक (संवत १६०६) श्रीनाथजी के दर्शनों से वंचित रहकर विप्रयोग का अनुभव करते रहे थे। संवत १६०६ में गुसाईं जी के मुख्य प्रतिस्पर्धी श्री पुरूषोतम जी नित्यलीलास्थ हो गए। तब सं. १६०७ में गुसाईंजी विधिवत आचार्य गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए थे।

इन सारी घटनाओं का अवलोकन करने से ध्यानाकर्षित तथ्य इस प्रकार हैं –

जब तुलसीदासजी सं. १६२७ में गोकुल आए तो यही प्रतीत होता है कि नन्ददासजी को घर छोड़े हुए बहुत समय नहीं हुआ होगा।

नन्ददासजी का जन्म सं. १५६० माना गया है। यदि उनका दीक्षाकाल सं. १६०६ मान लिया जाय तो उस समय उनकी आयु १७ वर्ष की मानी जायगी। इस आयु में भक्त मण्डली के साथ यात्रा पर निकलने की बात समझ में नहीं आती। सत्रह वर्ष की आयु में ही, या इससे पहले ही चौदह या पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उनके विषय में व्यभिचारी या विषयी का आक्षेप लगाना भी औचित्यपूर्ण नहीं है।

इस सत्रह वर्ष की अल्पायु में ही भक्ति और वैराग्य की बातें, काव्य में प्रौढ़ता तथा आचार्यत्व प्राप्त की बात भी सही नहीं लगती। कंठमणिशास्त्री ने नन्ददासजी का जन्म सं. १५७० माना है। यदि यह तिथि स्वीकार कर ली जाय तो दीक्षाकाल की आयु ३७ वर्ष हो जाती है। हमारे मंतव्य से जब तुलसीदासजी सं. १६२७ में गोकुल आए तब नन्ददासजी को घर छोड़े आठ–दस वर्ष से ज्यादा नहीं हुआ होगा। यदि दस वर्ष का अंतराल भी स्वीकार करें तो यह दीक्षाकाल सं. १६१७ स्थापित होता है। अष्टछाप की स्थापना का समय भी सं. १६०७ के बाद माना जा सकता है, क्योकि सं. १६०७ में श्रीगुसाईंजी आचार्य गद्दी पर आसीन हुए थे आदि लगभग सं. १६१० के बाद ही कृष्णदास से उनका मतभेद समाप्त हुआ था। तब सं. १६१० के आसपास ही अस्थाई रूप से अष्टछाप की रूपरेखा तैयार की गई होगी जिसमें विष्णुदास छीपी का भी अस्थाई रूप से इस में समाविष्ट किया गया होगा बाद में सं. १६१७ के आसपास नन्ददासजी को अष्टछाप में समाविष्ट किया गया हीगा।

यदि तुलसीदासजी नंददासजी के बड़े भाई थे, और तुलसीदासजी का जन्म सं. १५८८ में हुआ था तब नन्ददासजी का जन्म निश्चय ही सं. १५६० के बाद हुआ होगा।

यदि नन्ददासजी के जीवन सम्बन्धी सभी प्राप्य तथ्यों पर विचार किया जाय तो यह तो अनुमान किया ही जा सकता है कि सं. १६०७ के बाद ही नन्ददासजी दीक्षित हुए होंगे। यह तिथि सं. १६१७ के आसपास रही होगी।

चूँकि इस सन्दर्भ में अधिक प्रमाणिक अन्तःसाक्ष्य प्राप्त नहीं है, इसलिए अनुमान के आधार पर ही यह स्वीकार किया जा सकता है।

जिस समय नन्ददासजी श्रीगुसाईंजी से दीक्षित हुए उस समय वह पद रचना और गान में पारंगत हो चुके थे। उनकी रचनाओं में काव्य–प्रौढ़ता का आभास भी उनके परिपक्व होने की और संकेत करता है। हमारी आनुमानित परिकल्पना के अनुसार अष्टछाप की स्थापना सं. १६१० के आसपास तथा नन्ददासजी का शरणकाल सं. १६१७ के आसपास माना जा सकता है।

रीडर हिन्दी विभाग,

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा - १

पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के निरूपणकर्त्ता : श्रीनन्ददास

भगवतीप्रसाद देवपुरा

अष्टछाप कवियों में नन्ददास का साहित्यिक एवं वेदान्तिक निरूपण की दृष्टि से, अप्रतिम स्थान है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पूर्व इनका जीवन सांसारिक भोगों की ओर उन्मुख था। इनके जन्म, जाति, निवास और परिजनों के बारे में श्री नाभाजी आदि ने पर्याप्त वर्णन किया है। गोसाई विट्ठलनाथजी ने इनका सांसारिक मोह भंग कर इन्हें आध्यात्मिकता की ओर अभिमुख किया। इससे इनके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो गया और ये पूर्णतः श्रीकृष्ण की भक्ति में तल्लीन हो गये। प्रारम्भ से ही काव्य और संगीत में श्री नन्ददास की पर्याप्त रुचि थी; अतः जब गोसाई विट्ठलनाथजी ने इन्हें श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन करने हेतु नियुक्त किया तो इनकी प्रतिभा तीव्र गति से विकसित हुई। ये स्वयं श्रीकृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध श्रेष्ठ पदों की रचना कर कीर्तन करने लगे, जिससे इनके मानस में गोसाई जी द्वारा प्रदत्त पुष्टि भक्ति का उदय हुआ। कीर्तन के लिए इन्होंने फुटकर पदों की रचना तो की ही, अनेक ग्रंथों का निर्माण भी किया–जो आज ब्रजभाषा के अमर ग्रंथों में गिने जाते हैं। इनकी रचनाओं में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की विशेषता समविष्ट है। पदों की पंक्तियों में संयुक्ताक्षर नहीं हैं और जो सीधे सादे शब्दों में अभिव्यक्त किया है वह अत्यन्त सुन्दर बन पडा है। इन्होंने अपने काल में शुद्धाद्वित सिद्धान्तो का सफलतापूर्वक समन्वय करने के साथ ही साहित्य और दर्शन का सुन्दर सम्मिश्रण भी किया है। इस विषय में डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं–

"अष्टछाप के कवियों में सूर से भी अधिक नन्ददास में वल्लभ सम्प्रदाय के विचारों को वाणी मिली है। नन्ददास सम्प्रदाय के विचारों को कविता का आवरण पहनाने में अधिक प्रवीण थे।" उपर्युक्त कथन पर समुचित विचार करें तो निश्चित हो स्पष्ट होगा कि श्री नन्ददास के ग्रंथों एवं गोसाई श्री विट्ठलनाथजी के स्तुति भाग में वेदान्त–सम्बद्ध विचारों का निरूपण किया गया है।

पुष्टिमार्ग में कृष्ण एवं गुरू को समान माना गया है। इसीलिए नंददास ने श्रीकृष्ण और गोसाई जी की स्तुति में कोई भेद नहीं किया है। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की बाल भाव से ही सेवा की जाती है। अन्य अष्टछाप कवियों के अनुरूप श्रीनन्ददास ने बालक मनमोहन श्रीकृष्ण के अदभुत रूप एवं अनिन्द्य सौन्दर्य का अपूर्व वर्णन किया है। नन्ददास ने जगत को 'रसिक' बताया है। इस विषय में उनका कहना है कि ब्रह्म स्वयं रसरूप है, आत्मानन्द है, आनन्दघन है तथा अखण्ड, नित्य, अगम्य एवं सुगन्धमय है। रस–मंजरी में उन्होंने लिखा भी है–

'नमोः नमोः आनन्दघन, सुन्दर नन्द–कुमार।
रसमय, रसकारण, रसिक, ज़ग जाकै आधार।।'

सिद्धान्त पंचाध्यायी में वे कहते हैं –

'सब घट अन्तरजामी, स्वामी परम एकरस।
नित्य, आत्मानन्द, अखण्ड स्वरूप उदार।।
केवल प्रेम सुगंध, अगम्य अवर परकार।।''

यों तो वल्लभ वेदान्त में 'ब्रह्म' के निर्गुण स्वरूप को स्वीकार किया गया है, किन्तु प्रभु के सगुण स्वरूप को इसमें कहीं अधिक महत्व मिला है। इसी के अनुरूप नन्ददास ने ब्रह्म को अजन्मा माना है तथा कहा है कि वह योग और ज्ञाप द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। वहीं दूसरी और गोपिकाओं के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रेम–पीयुष स्वरूप को भी हृदय से लगाया है। रस मंजरी मे वे कहते हैं–

'जोगी जेति भजै, भक्त निज रूपहिं जानैं।
प्रेम पियूष प्रगट, श्यामसुन्दर उर आनैं।।

रस मंजरी में उन्होंने आगे बताया है कि भक्ति–मार्ग ही प्रभु को प्राप्त करने का सरल मार्ग है। इसमें व्यक्ति प्रभु का अनुग्रह प्राप्त करता है और उसी से उसकी मुक्ति हो जाती है।

इनके द्वारा विरचित 'भ्रमर–गीत' में जब उद्धव गोपियों को यह समझाते हैं कि 'हे गोपियों, तुम सत्य को समझो और किसी एक व्यक्ति को ब्रह्म समझकर भ्रम में मत पड़ो' तो उद्धव की यह कठोर वाणी गोपियों को क्रोधित कर देती है। वे कहती हैं –

'कौन ब्रह्म की ज्योति, ज्ञान कासौं कहौ ऊधो।
हमरे सुन्दरस्याम, प्रेम को मारग सूधो।।''
प्रेम पीयूष छाँडि कै, कौन समेटे धूरि।'

निश्चित ही श्री नन्ददास श्री कृष्ण के प्रेम स्वरूप के ही उपासक थे। भ्रमरगीत, सिद्धान्त पंचाध्यायी तथा अन्य ग्रथों में इस बात का निरूपण भी है।

नन्ददास अपने ग्रंथों में कई स्थलों पर ब्रह्मवाद को निरूपित किया है। उन्होनें श्रीकृष्ण को सबका कारण, प्रतिपालक, संहारक कहा है। उनके लिए वे ही र्सव्यापी हैं और उन्हीं में, सत्व, रज एवं तम, ये तीनों गुण व्याप्त हैं। ऐसे प्रभु श्रीकृष्ण से नन्ददास भक्ति एवं रति की माँग करते हैं –

'हे करूणानिधि, करूणा कीजे।
अपनी भाव भगति रति दीजे।''

श्री नन्ददास ने राम और कृष्ण की अभिन्नता भी स्थापित की है। वे कहते हैं –

'वे अवधेश धनुष कर धारें, ए ब्रज जीवन माखन चोर।
उनके छत्र, चँवर, सिंहासन, भरत, शत्रुधन, लक्ष्मण जोर।।
इनके लकुटि, मुकुट, पीताम्बर, निज गायन संग नन्दकिसोर।
उन सागर में सिला तिराई, इन राख्यो गिरि नख की कोर।।
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजिए, जैसे निरखत चंद चकोर।।

नन्ददास ने पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के अनुसार जीव और जगत को ब्रह्म द्वारा परिणत कहा है। उन्होनें स्पष्ट किया है कि मनुष्य का शरीर पाप पुण्यों के द्वारा विनिर्मित होने के कारण वह ब्रह्म के अन्तरंग दर्शन नहीं कर सकता जबकि परःब्रह्म सभी शरीरधारियों के ह्दय में, अन्तर्यामी के रूप में, बिराजमान है। अपनी रास पंचाध्यायी में वे कहते हैं –

निपट निकट घट में तो अन्तरजामी आहिं।
विषै विदूषित इन्द्री पकरि सकै नहिं ताहिं।।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए वे अपने ग्रंथ सिद्धानत पंचाध्यायी में पुनः कहते हैं –

काल करम माया अधीन ते जीव बखाने।
विधि–निषेघ अरू पाप पुण्य तिनमें सब साने।।
परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी।
ते क्यों कहिए जीव सहस श्रुति सिखा निवासी।।

जब उद्धव गोपिकाओं के विशुद्ध प्रेम से प्रभावित हो कर श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं और गोपियों के अद्वितीय प्रेम को प्रकट करते हुए, उनसे न मिलने का उपालम्भ देते हैं तब श्री नन्ददास अपने भँवरगीत के माध्यम से कृष्ण से कहलवाते हैं –

अ– सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
विबस प्रेम आवेस, रही नाहीं सुधि कोऊ।।
रोम रोम प्रति गोपिका, है रहे साँवले गात।
कल्पसरोरूह साँवरो, ब्रज वनिता भई पात।।
उलहिं अंग अंगते।।

आ– मौं में उनमें अन्तरो, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यों देखी भी मॉझर्नै, त्यौ मैं उनही मॉहि।।
तरंगिनि वारि ज्यों।।

नन्ददास ने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार जगत को ब्रह्म का स्वरूप एवं संसार को अविद्या माया जन्य कहा है। माया जन्य होने के कारण ही संसार असार है और इसीलिए श्रीकृष्ण के चरण कमलों का दर्शन और स्पर्श ही सार स्वरूप है। इसी बात को दशम स्कन्ध भाषा में उन्होंने इस प्रकार कहा है –

तव पद पंकज द्ररसै–परसै, कौन पुण्य धौं मेरे सरसे।
अरू संसार असार अपार, सहज हि भयौ जु लोके पार।।
तुम अपने परमातम स्वामी, ब्रह्मरूप सब अन्तर्यामी।।

नन्ददास ने जगत को सगुण ब्रह्म की माया ही माना है। उन्होनें कहा है श्रीकृष्ण की योगमाया ने सारे जगत को वश में कर रखा है। श्रीकृष्ण की कृपा से ही शरीर धारी इस माया से मुक्त हो सकता है।

पुष्टिमार्ग के अनुसार नन्ददास ने नित्य रास के आनन्द को ही सर्वश्रेष्ठ मोक्ष माना है और अपने साहित्य में चारों प्रकार की मुक्तियों का, जिनमें सालोक्य मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति एवं सायुज्यमुक्ति सम्मिलित हैं, निरूपण किया है। इन्होंने वृन्दावन को ही गोलोक कहा है तथा उसे ब्रह्म का चैतन्य स्वरूप माना है। इसी प्रकार श्री कृष्ण की मुरली को उन्होनें योगमाया तथा उसके स्वरों को शब्द (नाद) ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। साथ ही उन्होंने रास रसों को वेदान्त सिद्धान्तों का सार बताते हुए अपने ग्रंथ सिद्धान्त पंचाध्यायी में कहा है–

सब रस को निर्यास (निर्वास) रास रस कहिए सोई।
x x x x x x
सकल सास्त्र सिद्धान्त, परम एकान्त महारस।।
जाके रंचक गुनत, श्रीकृष्ण होत बस।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री नन्ददास ने अपने द्वारा विनिर्मित ग्रंथों में पुष्टिमार्ग के सभी विशिष्ट सिद्धान्तों को स्थापित किया है।

प्रधानमंत्री
साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

नंददास का यमुना वर्णन

✍ डा. कैलाशचंद्र भाटिया

सर्वविदित है कि नंददास अष्टछाप के प्रमुख व भक्त--कवि थे। इन पर वार्ता साहित्य में पर्याप्त विवरण मिलता है। आप महाकवि तुलसीदास के भाई थे :–

"सो(वे) तुलसीदासजी बड़े भाई; और छोटे भाई नंददास जी हते।

सो वे नंददास पढे बहुत हते सो नंददास जी हूँ को रामानंदीन कौ सेवक करवायो। उन नंददास कौ लौकिक विषय में प्रीति बोहोत हती।"

इसी वार्ता मैं काफीं विस्तार से नंददासजी के संबंध में वर्णन है। साथ ही जमुनाजी के विषय में भी है। एक बार नाव में बैठे तो नाविक ने उन्हें नाव से उतार दिया। उन मलाहन ने हाथ पकरि के उतार दियो नाव में तें। तब नंददास जी तो श्रीजमुनाजी के तीर ठाड़े–ठाड़े विचार करने लगे। सो श्री जमनाजी के तीर बैठे–बैठे श्रीजमुनाजी के आगें विज्ञप्ति के पद गावन लागे। सो पद जे हतें नेह कारन, भक्त पर करि कृपा, श्री जमुने सो या भाँति नंददास जी श्री जमुनाजी के तीर बैठे–बैठे श्री जमुनाजी की स्तुति करते हैं।

इन पदों को आगे दिया जा रहा है। अतः जमुना की स्तुति के बाद ही गुसाईंजी ने नंददास की नाव भेजकर अपने पास बुलाया, शरण में लिया। विवरण इस प्रकार है :–

तब वा ब्रजवासी ने नंददास सौं कह्यो, *"जो तुमको श्री गुसाईं जी बुलाये है, और नाव पनई है, ता में तुम बैठिके बेगि चलो।"* आयके श्री गुसाईं के दरसन करिके साष्टांग दण्डवत करी। सो दरसन करत ही नंददास की बुद्धि निरमल होय गईं।

इस संदर्भ में जमुना जी पर रचित इन पदों का विशेष महत्व है :–

नेह कारने जमुना जु प्रथम आईं।
भक्त की चित्रवृत्ति सब जान कै ही ताहितैं अति ही आतुर धाईं।
जैसी जाके मन हती इच्छा ताकी तैसी साध जो पुजाईं
नंददास प्रभु ताहि पै रीझत जमुना जू के जस जो गाईं।।

(यमुनाजी स्नेह के कारण ही पहले यहां आयीं, भक्त के मन की दशा समझ कर, ये बहुत शीघ्रता से यहां अवतरित हुई, जहाँ जिसकी जैसी इच्छा थी और जैसी साध थी, वह सब पूरी कर दीं)

नंददास कहते हैं कि प्रभु उसी पर प्रसन्न होते हैं, जो यमुनाजी का यश गाता है। नंददास (डा॰ सत्येन्द्र) पृ. १७८

भक्त पै करी कृपा श्री जमुना जू ऐसी
छाँडि निजधाम विश्राम भूतल कियो,
प्रगट लीला दिखाई हो तैसी।।
परम परमारथ करत है सबन को
ऐसि अद्‌भुत रूप आप वैसी।
नंददास जो जन दृढ़ करि चरन गहे
एक रसना कहा कहे बिसैसी।।

(भक्तों पर अपार कृपा करके यमुनाजी अपना निजी धाम और श्रीकृष्ण का निज धाम छोड़कर पृथ्वी पर आ गईं और भगवान की लीलाओं को यहां प्रत्यक्ष दिखाया है। सभी श्री उनका परमार्थ प्रदान करती हैं। जो भक्त यमुना जी के चरणों को दृढता से पकड लेता है, उसे वह सब कुछ मिल जाता है, जो वह चाहता है। एक बिचारी जिह्वा यमुना जी की विशेषताओं का क्या वर्णन कर सकती है।)

तातैं श्रीजमुना, जमुना जू गावौं।
सेस सहस मुख निसिदिन गवे, पार नहिं पावत ताहि याको।
सफल सुख बैन हार, तातैं करो उच्चार, कहत हौं बार बार जिनि भुलावौं।।
नंददास की आस, श्रीजमुना पूरन करी, तातैं धरी–धरी चित लावैं।।

(मैं तो यमुना जी का जय करता हूँ क्योंकि यमुना जी की कृपा से मैं यह सब पा लेना चाहता हूँ जिसको शेषनाग सहस्र मुखों से गाते हैं पर वे जिसका पार नहीं पाते। यमुना जी समस्त सुखों को देने वाली हैं, इसीलिए मैं उनका नाम रटता हूँ। बार बार जपता हूँ उन यमुनाजी को भूल नहीं जाऊँ श्री यमुना जी ने नंददास की आशा/कामना पूरी कर दी है। इसीलिए मैं प्रतिपल प्रतिघडी यमुना जी का मन लगाकर स्मरण करता हूँ और नाम जपता हूँ।) (वही पृ. १७७)

सकल कामना पूर्ण करने की बात अन्यत्र भी 'ब्रजमहिमा' में कही है :–

सरिता रूचे तो बसो श्री जमुना तट, सकल मनोरथ पूरण काम।

(नदी तट अच्छा लगे तो यमुना तट पर बास करें, इससे आपके मन की समस्त अभिलाषाएँ पूरी हो जायेंगी।)

कालिन्दी यमुना ने कृष्ण जन्म के पश्चात् दधिकांदौ का कैसे आनंद लूटा, इसका मनोहारी वर्णन मिलता है।

दई पनारि खुलाह, सरिता ज्यौं बीथनि गयो।
भानु सुता में जाइ, मिल्यो सु रंग अनंद में।
कलिंद–नंदिनी आइ, सुख जुरति इहि फंद मैं।।

(आँगन के पनाले खोल दिए गए। अब वह दूध दही के कीच की नदी बहती हुई अत मे बीथिन गलियो मे होती हुई अत मे यमुना जी मे जा मिली। इस विधि से कलिदपुत्री यमुना ने भी दधिकादो का सुख लूटा।)

जब प्रभु ने वामनावतार लिया, उस समय भी कवि को यमुना का स्मरण हो उठा चाहे उपमान के रूप में ही हो:

बलि, बामन हो जग पावन करन।

\+ + + + + +

इन पद–जोति मनो कालिंदीधार चढ़ी अमर–पद पाप–हरन।
रहे हैं चकृति चखि सुर–नर मुनिवर दुहुं दिसि नेह आन किये बरन।।

वामनावतार में भगवान विष्णु के चरण नीलमणि की सी शोभा के थे अतएव उत्प्रेक्षा अलकार का आश्रय लेकर कवि ने कल्पना की है कि ''यमुना के रंग की तरह का मानो यमुना की धारा पृथ्वी से देवलोक को गयी है, देवलोक के पापों को दूर करने के लिए। इसे देखकर देवता, मनुष्य, मुनि सभी चकित हो गए। पृथ्वी ने आकाश के प्रेम का और स्वर्ग ने पृथ्वी के प्रेम का वरण किया था।'' और भी कई स्थलों पर कविवर नददास ने यमुना को स्मरण ही नहीं किया वरन् उसके महत्व का प्रतिपादन किया। ऐसे स्थलों में मुख्य अंश कुछ इस प्रकार है:

श्रीकृष्ण सिद्धांत पंचाध्यायी में 'चीरहरण के प्रसंग में :-

सुंदर सरद सुहाई रितु जहाँ सदा बिराजै।
नव अखंड मंडल ससि सब ही रजनी भाजै।।
जमुन तीर बलबीर चीर हरि बरू जिहि दीनौ।
तिनसंब निबिघ विलास रास रमिवे मन कीनौं।।

कृष्णदर्शन की लालसा से यमुना तट पर आना और तडपना :–

धाय भुजन भरि लै पुनि तिहि जमुनातट आईं।
कृष्ण दरस लालसा सु तरफै मीन की नाईं।। (६५)
\+ + + + + +
मिलि जमुना तट बिहरत सुंदर नंद के लाला।
तैसिय ब्रज की बाल भरी लखि प्रेम रसाला।। (१०२)

(गोपियो ने हस बोला को भुजाओ में भर लिया और तब सब यमुना के किनारे पहुँची। गोपियो के साथ नदनदन कृष्ण यमुना तट पर विहार करने लगे।

रास पंचाध्यायी में :-

उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुभग सुहाई
श्रीजमुना जू निज तरंग करि यह जु बनाई। (६१)

(यमुना तट को यमुनाजी ने स्वयं अपनी तरंगो द्वारा उज्ज्वल, कोमल, मृदृल मनोहर बालुका से सजाया सँवारा)

विरह में :-

जमुन निकट के बिटप पूछि भई निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि महा कठिन ये तीरथवासी।।

(यमुना तटवर्ती वृक्षों से पूछकर उदास हो गयी। हे सखी ! तीर्थवासी कठोर हृदय होते हैं, ये क्यों बताएँगे)

उस तट पर बैठ गए :-

बैठे पुनि तिहि पुलिन परम आनंद भयौ है।
छबिली अपने छादन छवि सों बिछा दयौ है (४१५)

(वे सब तब यमुना तट पर बैठ गए। सभी परम आनंदित थे। छबीली गोपियों ने अपने सौन्दर्याच्छाद बिछा दिये और प्रत्येक गोपी के साथ उन पर कृष्ण भी विराजमान हुए।)

पाँचवे अध्याय में ही आगे भी वर्णन है :-

भगत जनन सों कहु जिन्हें भागवत धरम–बल।
ज्यों जमुना के मीन लींन नित रहत जमुन जस।।
जदपि सप्तनिधि भेदिनी जमुना निगम बखानैं
ते तिहि धारहिं धार रमत, जल छुवत न आनै।।(३८३६)।।

(यमुना के जल में गोपियों के साथ कृष्ण ऐसे लग रहे है जैसे गजराज तरूण हथनियों के साथ जलक्रीडा में मग्न हो। यमुनाओं जल मे स्त्रियों का शरीर तो डूबा हुआ है मुख ही जल के ऊपर है, यह दृश्य ऐसा है मानो यमुना में स्वर्ण के कमल फूल रहे हों।)

नंददास के काव्य में कहीं स्पष्ट यमुना वर्णन है, कही अलंकारो के परिप्रेक्ष्य में विविध प्रकार के उपमानों के रूप में। अन्य कवियों के वर्णन से नंददास का यमुना वर्णन भिन्न है और अद्वितीय भी।

नंदन, भारतीनगर, मैरिस रोड, अलीगढ़

नन्ददास की रासपंचाध्यायी : लौकिक-पारलौकिक पक्ष

✍ गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

श्री वल्लभाचार्यजी के पुत्र गुसाईं विट्ठनाथजी द्वारा प्रतिष्ठापित अष्टछाप कवियों में महात्मा सूरदास जी के प्राय : समकालीन श्री नन्ददासजी का स्थान अति विशिष्ट माना जाता है। आपकी रचना में बडी सरसता है और माधुर्य के साथ साथ सानुप्रास और चुने हुए पद विन्यास की छटा को देखते हुए ही यह कहा गया था कि "और कवि गढ़िया, नन्ददास जडिया"। श्री नन्ददासजी की सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक रासपंचाध्यायी है यद्यपि इनके द्वारा प्रणीत लगभग १५ और पुस्तको का भी वर्णन इतिहास ग्रन्थों में हमको मिलता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध मे रास पंचाध्यायी का वर्णन है जिसमे आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र द्वारा की गई लोक विश्रुत रासलीला का प्रतिपादन किया गया है। शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य चरण महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने प्रमाण चतुष्टय में इसको सर्वोपरि स्थान दिया है। रासलीला का बीजरूप तो वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध है। निराकार निर्गुन ब्रह्म की जब रमण करने की इच्छा होती है तथा एकाकी न रमते। भाव जाग्रत होने लगता है तब वे भगवान श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होते हैं और वे ही संगीत, नृत्य, वाद्य, स्वर, ताल, अभिनय या यों कहिये रसपरिपाक के आदि तत्वों से समन्वित गोपांगनाओं का प्राकट्य सुनिश्चित करते है और डनके साथ रासलीला करते हैं। इस रासलीला के प्रतीकार्थ के रूप में विविध वर्णन मिलते है। भगवान श्रीकृष्ण अक्षर ब्रह्म व वेद पुरूष हैं और ब्रज गोपिकाएँ वेद की ऋचाएँ हैं जिनका उनसे नित्य सम्बन्ध है। इस प्रकार रासलीला में तत्वमात्र का विधान है। भगवान श्रीकृष्ण तत्पदार्थ हैं और गोपिकाएँ त्वं पदार्थ तथा इसी का सम्यक ज्ञात कराना 'रासलीला' है। अन्य शब्दों में भगवान श्रीकृष्ण पुरूष हैं और गोपिकाएँ प्रकृति स्वरूप हैं – परमपुरूष के साथ चिद्विलास या रास मे लीन महारानी राधिका तो भगवान श्रीकृष्ण की आहलादिनी शक्ति है हीं। ब्रज गोपिकाओं को मुक्त जीव भी कहा गया है नित्य, अनादि अनन्त रासलीला के पूर्णानन्द में लीन भगवान श्री कृष्ण की ओर आकृष्ट करने या उनके सतत सामीप्य की उत्कट अभिलाषा जगाने वाली वृत्ति है 'वंशीध्वनि'। भगवान श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि सुनकर ब्रजगोपिकाएँ तन बदन की सुधि भूल, समस्त गृहकार्यो का त्याग कर यहां तक कि अपने पुत्र कलत्र और पतियों तक को छोड दौड पड़ती हैं यमुना पुलिन की ओर परमोत्हास प्रवर्तक, लोक मालिन्य से दूर, शरदोत्फुल्ल मल्लिका की सरस सुगन्धि से परिस्नात उस रासलीला में भाग लेने जिसमें है सम्पूर्ण आत्म विसर्जन, अन्याश्रया, अनन्यभावा, स्पृहाशून्या चित्रवृत्ति की परम

भगवान निष्ठा इसी से वंशी के चार भेद वर्णित हैं – वंशिका, सम्मोहिनी या महानन्दा, आकर्षिणी और आनंदिनी तथा इसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन श्रीनन्ददासजी की रासपंचाध्यायी में हमको मिलता है।

फटिक छटा सी किरन कुंज रंध्रन जब आई
मानहुं वितन वितान सुदेस तनाव तनाईं,
तबलीनो कर कमल योगमाया सी मुरली,
अघटित घटनाचतुर बहुरि अधरन सुर जुरली।।

ब्रज कुमारियां कहने लगीं – 'मामेषाचाहयति मुरली त्मेव यत्र प्रतीति :– वह तो मेराही नाम लेकर मुझको बुला रहा है। इस प्रेमोन्मत्तता का वर्णनों से हिन्दी काव्य भरा पड़ा है। भक्त कवि रसखान लिखते हैं –

''बजी है बजी' रसखान बजी, सुनिके कोउ गोपकुमारी नजी है।
जी है कदाचित कामिनी कोउ, तौ हाल बेहाल सो होई अजी है।
अजी है बचाव को कौन उपाव, तियान पै मैनने सैन सजी है।
सजी है तो मेरो कहा बस है, सुनो बैरिन बाँसुरी फेर बजी है।।

श्री नन्ददासजी ने उस सम्पूर्ण वातावरण का भी अति सुष्ठु वर्णन प्रस्तुत किया जो परिव्याप्त था भगवान श्रीकृष्ण द्वारा आयोजित रासलीला के समय उनकी रासपंचाध्यायी से एक आवतरण नीचे उद्धृत है–

''ताही छिन उडराज ड़दित रस रास सहायक।
कुंकुम मंडित बदन प्रिया जनु नागरि नायक।
कोमल किरन अरून मानों बस व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यो फागु धुमड़ि धुरि अबीर रह्यौ ज्यों।।''

रासलीला मे श्रृंगारमयी चेष्टाओं को देखकर अज्ञानियों को इसमें काम विलास परिलक्षित होता है। वे नहीं जानते कि भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र निष्काम हैं, वे सर्वथा काम शून्य हैं। उनके द्वारा तो लौकिक काम का शमन प्रतिपादित है क्यों कि अलौकिक काम की पूर्ति संसार से निवृति और स्वरूपानन्द मुक्ति प्रदान करती है।

''क्रियाः सर्वाऽपि संवात्र परंकामौन विद्यते'
तासां कामस्य संपूर्ति निष्कामेति च तास्तया।।''

'रासलीला वास्तवी और व्यावहारिकी भेद से दो प्रकार की वर्णित है। वास्तव लीला सहज बुद्धिगम्य नहीं है किन्तु व्यावहारिकी लीला भागवद् भक्तों की अनुभूति का विषय बन सकती है। वास्ववी रासलीला का सम्बन्ध दिव्य गोलोक धाम में होने वाली लीला से माना गया है जबकि व्यावहारिकी रासलीला कामविजय के लिए की गई वृन्दावनधाम की लीला है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अहमन्यता के स्फुरण के कारण भगवान में पूर्ण मग्नता की दशा प्राप्त नही हो पाती है। आत्मप्रकाश अहंकार के आवरण से अच्छादित हुआ नही कि भगवान अदृश्य हो जाते हैं। तब उत्पन्न होती है वियोगानुभूति और सयोग के लिए तीव्र प्रेरणा। इस दशा का भी अतीव सजीव वर्णन श्रीनन्ददासजी की रासपंचाध्यायी में हमको मिलता है। साथ ही पुनः दर्शन, महारास में सहभागिता और आत्मा के पूर्णानन्द में विलीन होने की स्थिति का भी वर्णन श्रीनन्ददासजी ने बडी कुशलता के साथ किया है। बास्तव में योग, डपासना, परमात्मचिन्तन, परमात्मा का साक्षात्कार तथा उनके पूर्णानन्द रूप रस में सम्पूर्ण विलयन इन सभी अवस्थाओं का अति कमनीय काव्यात्मक प्रतिपादन श्री नन्ददासजी कृत रास पंचाध्यायी में हमको मिलता है।

यह खेदजनक है कि श्रीनन्ददास का पूरापूरा और ठीक ठीक जीवनवृत अभी भी नहीं मिलता है। 'भक्तमाल' और 'दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में दिये गये विवरणों के विषय में काफी मतभेद है। आपने गोसाईं विट्ठनाथजी से दीक्षा ली तथा आपका भक्तिभाव, जिसकी देन है, आपकी रास पंचाध्यायी, अतीव उत्कृष्ट और आत्मोत्सर्म से ओतप्रोत था इसमें कोई सन्देह नहीं है। उत्कृष्ट काव्यगुणों से समन्वित श्री नन्ददासजी की रास पंचाध्यायी की संगीतमय प्रस्तुति सुरसिक श्रोताओं को आनन्द विभोर कर देगी और उनमें सार्वभौम प्रेमालम्बन के प्रतीक परमआश्रय भगवान श्रीकृष्ण के भी चरणों में अति सात्विक भक्तिभाव जाग्रत करेगी इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। इसी प्रेमानुरागिनी भक्ति के विषय में लिखा गया है कि इसको प्राप्त कर लेने के पश्चात् मानव सिद्ध हो जाता है, अपार हो जाता है और तृप्त हो जाता है।

यल्लध्यवापुमानसिद्धो भवति, अमृतोभवति, तृप्रोभवति।

यही नन्ददासजी कृत रास पंचाध्यायी के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

हमीरपुर हाउस,
६, विजय नगर, लखनऊ

श्रीनन्ददास की भक्ति

✍ गोपेशशरण शर्मा 'आतुर'

महान् भागवत श्रीयुत नन्ददास की भक्ति पुष्टि भक्ति थी। वे जगद्‌गुरू महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित पुष्टि भक्ति मार्ग के अनुयायी थे। श्री नन्ददास श्रीमद्वल्लभाधीश्वर के द्वितीय पुत्र श्रीमद् विट्‌ठलेश प्रभुचरण के शिष्य थे तथा श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा हेतु आप श्री के द्वारा संस्थापित अष्ढछाप के आठ भगवदियों में से एक थे। अष्टछाप के आठ भगवदियों में से चार महाप्रभु श्री मदवल्लभाचार्य जी के तथा चार श्रीमद् विट्‌ठलेश प्रभुचरण (श्री गुसाईंजी) के शिष्य थे।

महाप्रभु श्री मद् वल्लभाचार्य चरण ने अपने शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन करते हुए साकार ब्रह्मवाद की स्थापना की तथा जीव को भगवान् का अंश बताकर उसका कर्त्तव्य अंशी परब्रह्म पूर्णपुरूषोत्तम भगवान श्री कृष्ण (श्रीनाथजी) की सेवा करना बताया। भगवान के वदनावतार श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण के सिद्धान्त के सार को श्रीमदनिरूद्धाचार्य चरण ने आधे श्लोक में निम्नानुसार समझाया है –

"पद्यार्धाद्वच्मि शास्त्राणां सन्दोहं वह्निनोदितम्।
बह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशोजीवोहि नापरः।।

(श्री अग्नि स्वरूप श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का कहा हुआ शास्त्रों का साररूप सिद्धान्त आधे श्लोक में कहता हूँ। बह्म सत्य है, जगत् सत्य है और जीव भगवान् का अंश है न कि परबह्म है।)"

अंश का कर्त्तव्य अंशी की सेवा करना है। अतः महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने भगवान् श्री कृष्ण की सेवा का मार्ग प्रवर्तित किया जो पुष्टिमार्ग अथवा पुष्टि भक्तिमार्ग के नाम से सुविख्यात है।

भज् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से भक्ति शब्द बनता है। भज् धातु का अर्थ सेवा तथा क्तिन् प्रत्यय का अर्थ प्रेम है। गोस्वामी श्री पुरूषोत्तमजी ने श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के अनुसार भक्ति का अर्थ प्रेम–सेवा किया है। शांडिल्य–सूत्र के अनुसार भी ईश्वर में परानुरक्ति (परानुरक्तिरीश्वरे) भक्ति है। परानुरक्ति से अभिप्राय निरवधि स्नेह है। नारद–पंचराज के अनुसार माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह ही भक्ति है।

महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने अपने पुष्टि भक्ति मार्ग में प्रभु श्रीकृष्ण को स्नेहमयी सेवा की प्रमुखता रखते हुए क्रमशः तनुक्तिजा एवम् मानसी सेवा के विषय में बताया तथा प्रेम, आसक्ति एवं व्यसन अवस्था का स्वरूप स्पष्ट किया। आचार्य श्रीवल्लभ ने परबह्म, पूर्ण पुरूषोत्तम यशोदोत्संग ललित श्री कृष्ण को ही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार बताकर उन्ही की सेवा अपने मार्ग में रखी तथा सेवा–समय के बाद उन्हीं की कथा तथा गुणगान में संलग्न रहने का उपदेश देते हुए यह घोषणा की कि प्रभु की सेवा अथवा कथा में अथवा सेवा तथा कथा में जिस भक्त की दृढ़ आसक्ति जीवन पर्यन्त होती है उसका नाश अथवा पतन कभी नहीं हो सकता है :–

"सेवायां वा कथायां वा यस्याऽऽ सक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम।। "

–भक्तिवार्धिनी ग्रन्थ (श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रणीत)

जीव प्रभु का दास है। वह प्रभु को दीनतापूवर्क नमन करने तथा उनकी सेवा करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता है। अतः इस कराल कलिकाल में महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने शरण में आए निस्साधन दैवी जीवों को शरणमंत्र देकर प्रभु की शरण सिद्ध कराई, ब्रह्मसंबंध–मंत्र की दीक्षा देकर प्रभु की सेवा करने का अधिकार दिया तथा अपने वंश में अपने माहात्म्य को स्थापित किया। आप श्री ने इस कठिन काल में भगवत्‌ाश्रय को ही सर्वोपरि बताया क्योंकि अणुजीव उस परब्रह्म की कृपा प्राप्त करने के लिए क्या साधन कर सकता है ? आपश्री ने विवेक धैर्यश्रय ग्रन्थ में आज्ञा की :

"एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम्।
कलो भक्त्यादि मार्गाहि दुस्साध्या इति मे मतिः।।"

आपश्री ने अपने 'नवरत्न ग्रन्थ में "सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति" तथा 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थ में "विवेकस्तु हरिः सर्व निजेच्छातः करिष्यति" लिखकर कर्त्ता केवल भगवान हैं इस बात का ज्ञान दिया तथा कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं प्रभु का स्वरूप दिखाया।

'सिद्धान्त मुक्तावली' ग्रन्थ के महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वाक्यानुसार पुष्टिमार्ग में भगवान का अनुग्रह ही नियामक है ("अनुग्रह : पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः") 'पोषणं तदनुग्रहः' के अनुसार पुष्टि का अर्थ ही अनुग्रह है। पुष्टि भक्ति के दो स्वरूप हैं – (१) साधनरूपा मर्यादा पुष्टि अथवा मिश्रपुष्टि प्रवाह पुष्टि तथा (२) फलरूपा शुद्ध पुष्टि भक्ति। पुष्टि मार्गीय साधनों में प्रवृत्ति भी भगवत् अनुग्रह से ही होती है। शुद्ध पुष्टि मार्ग में अंगीकृत जीवों में गोपांगनाओं की भाँति भक्ति का अविर्माव भगवान् के स्वरूप बल के कारण बिना किसी साधन के होता है।

शुद्ध पुष्टि भक्ति का फल प्रपंच विस्मृति पूर्वक भगवत्‌ासक्ति अथवा निरोध है जो व्यसन अवस्था अथवा सर्वात्मभाव का द्योतक है तथा मानसी सेवा की सिद्धि का परिचायक है। इस अवस्था में भगवत्‌विरह भक्ति के रोम रोम में व्याप्त हो जाता है तथा विरह से शुद्ध होकर उसकी देह अलौकिक हो जाती है तथा वह भगवत् स्वरूप एवम् लीलाओं के रसास्वादन में निमग्न हो जाता है। विरह अथवा प्रेम की दस अवस्थाओं में अंतिम अवस्था मरण है।

अलौकिक देहवालों को व्यसन दशा के अनन्तर रास मण्डल मण्डना गोपांगनाओं की तरह प्रभु–संगम प्राप्त होता है दशम अवस्था नहीं जबकि लौकिक शरीर वालों को व्यसन के अनन्तर अन्तर्गृहगताओं की तरह दशम अवस्था प्राप्त होती है तथा तदुपरान्त भगवत् प्राप्ति होती है। भगवान् के विप्रयोग को सहन कर सकने की इस अलौकिक सामर्थ्य का महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रकट की गई सेवा के सिद्ध होने पर मुख्य फल के रूप में प्रभु द्वारा भक्त को दान किया जाता है। यह सर्वात्मभाव से प्राप्त होने वाला भजनानंद अलौकिक फल है जो अपने किए हुए करोडो साधनों से भी प्राप्त नहीं हो सकता है। इसका दान प्रभु ही अनुग्रह करके देते हैं। यही प्रेमात्मक अथवा प्रेम लक्षणा भक्ति शुद्ध पुष्टि भक्ति है जो लौकिक श्रृंगार रस या लौकिक काम भावना से सर्वथा भिन्न अलौकिक श्रृंगार रसरूपहै तथा जो आत्मा एवम् परमात्मा के मिलन की सामर्थ्य प्रदान करती है। श्रीमद्वल्लभाधीश्वर ने पुष्टि मार्ग में ब्रजभक्तों की भक्ति के अनुसार श्रीकृष्ण की सेवा में बालभाव की प्रधानता रखते हुए मानसी सेवा में श्रीगोपीजन वल्लभ के कैशोर भाव का चिन्तन रखा है। यही पुष्टि मार्ग की विलक्षणता है। श्रीमद्विट्ठलेश प्रभु चरण श्री गुसांईजी 'चतुःश्रलोकी' में आज्ञा करते हैं :–

''सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दैः क्रीडन्वृन्दावने स्थितः।।''

ऊपर संक्षेप में पुष्टि भक्ति के विषय में निवेदन किया गया है। उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार भक्तवर नंददासजी का जीवन एवम् उनकी भक्ति शुद्धपुष्टि भक्ति के क्षेत्र में चिरस्मरणीय रहेंगे।

खत्रानी पर आसक्त नंददास उनके पीछे पीछे गोकुल चले। तभी तो गुसाईं जी के पास पहुँच गये किन्तु मल्लाह ने नंददासजी को नौका में से उतार दिया। वह उन्हें श्री गोकुल नहीं ले गया। विवश नंददासजी इस पार बैठे श्रीकृष्ण की चतुर्थप्रिया महान दयालु तथा पतित पावन करन श्रीयमुना महारानीजी की प्रार्थना करने लगे :–

"भक्त पर करि कृपा श्री जमनाजु ऐसी।
छाँडि निज धाम विश्राम भूतल किया प्रगटलीला दिखाई जू तैसी।
परम परमारथ करत हैं सबन कों देति रूप अद्‌भुत आप जैसी।
नंददास यों जानि दृढ़ करि चरन गहे एक रसना कहा कहों बिसेखी।।"

सर्वज्ञ श्री विट्ठलेश्वर से क्या छिपा था? क्षत्री ने तो आप श्री से नंददासजी को उस पार छोडकर आने की बात नहीं कही थी। किन्तु जब आपश्री ने महाप्रसाद की पातर नंददासजी के लिए भी धरी तथा एक ब्रजवासी को उस पार भेज कर उन्हें बुलवाया तब क्षत्री तथा उसके परिवार के अन्य व्यक्ति आश्चर्य चकित रह गए। "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के अनुसार परमदयालु श्री वल्लभनंदन ने क्षत्री से कहा, "जो तुम सोच काहे कों करते हों। वह तो दैवी जीव है, जो तुम्हारो संग पाइ के इहाँ आयो है। सो अब तुमकों दुःख न देइगो।" नंददासजी को बुलवाकर श्री गुसांईजी ने उन्हें नाम निवेदन कराया तथा पूर्व ही उनके लिए धरी पातर मे से महाप्रसाद लेने को कहा। गुरू के प्रसाद से श्रीनंददासजी को स्वरूपानंद का अनुभव होने लगा तथा वे देहानुसंधान भूल गए और दूसरे दिन प्रातःकाल तक वहीं (प्रसाद लेने वाले स्थान पर) बैठे रहे। गुरूकी कृपा एवम् दयालुता से हदय का रोग 'सविध्न, अम्ल, घातक; काम निवृत हो गया तथा मन प्रभु के स्वरूपानंद में मग्न हो गया। नंददास नंदकुमार के दास बन गए तथा उनकी काव्य शक्ति शुद्ध पुष्टि भक्ति की स्त्रातस्विनी का रूप धारण कर ऐसी बही कि जिसने उसमें अवगाहन किया उसका लौकिक काम का रोग नष्ट हो गया। अतः महाप्रभु श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजी के सिद्धान्त "सर्वेश्वराश्रय सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति" तथा 'विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा के अनुसार नंददास जी की क्षत्री की बहू में असक्ति तथा उसके पीछे पीछे श्रीगोकुल तक जाने में प्रभु की इच्छा ही कारण रूप में थी। हर घटना को भगवत्‌इच्छा एवं लीला के रूप में वही देखेगा जिसकी अलौकिक दृष्टि है। वे श्रीमद्‌गोकुल तक गए तथा गुरू श्रीविट्‌ठलेश्वर की कृपा से उनका उद्धार हो गया। महाप्रभु श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजी श्रीमद्‌भागवत पर लिखी अपनी संस्कृत टीका श्रीसुबोधिनी में दशम स्कंध के चौरासी वें अध्याय के बत्तीसवें श्लोक की व्याख्या में आज्ञा करते हैं – "सच गुरुर्भगवानेव भगवानेव वा गुरूः।।" अर्थात् वह गुरू ही अपने निस्तार कारणार्थ भगवान् है अथवा भगवान् ही गुरू हैं। श्री हरिराय महाप्रभु अपने ग्रन्थ श्रीगुरूदेवाष्टकम् में आज्ञा करते हैं :–

"अनन्य धर्मदाता च व्यभिचार निवारकः।
शरणागत संत्राता कालादिभयनाशकः।।

गुरूकी कृपा से नंददास जी का जीवन पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के अनुसार ढलता चला गया। भगवत् भक्तों का साथ परम फलदायक होता है। भगवतीय क्षत्री की बहू की आसक्ति ने नंददासजी को श्री मद् गोकुल तथा श्रीयमुना महारानीजी तक पहुँचा दिया। उन्होंने श्री यमुनाजी तथा श्रीगोकुल को दण्डवत किया। फिर भला क्यों न गुरूवर विट्ठलेश्वर एवम् प्रभु की कृपा उन पर होती ? श्री नंददासजी ने श्रीगुंसाईजी की कृपा से श्री गोकुल में श्रीनवनीतप्रियजी के तथा श्री गोवर्धन में श्रीनाथजी के दर्शन किए और वे धन्य हो गए।

श्रीमद् विट्ठलेश्वर की आज्ञा "सदा सर्वात्मा सेव्या भगवान् गोकुलेश्वरः" के अनुसार श्री नंददास जी ने भगवान् की बालभाव की पुष्टिमार्गीय सेवा में उपयोगी कीर्तन हेतु अनेक पदों की रचना की तथा प्रभु के समक्ष उन्हें गाया। भगवान् श्री नवनीमप्रियजी के समक्ष उनके द्वारा गाया गया निम्नांकित पद वात्सल्य रस का कितना श्रेष्ठ उदाहरण है :–

"बाल गोपाल लालन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति।
मुख चूमत देखत सुन्दर तन आनन्द भरि भरि गावति।।"
कबहुक पलाना मेलि झुलावति कबहू स्तन पान करावति।
'नंददास' प्रभु गिरिधर कों रानी निरखि निरखि सुख पावति।।

"स्मर्तव्यों गोपिका वृन्दैः क्रीडन् वृन्दावने स्थितः" श्रीमद् विट्ठलेश प्रभुचरण के चतुः श्लोकी ग्रन्थ के इस वाक्यानुसार श्री नंददास जी ने प्रभु विषयक श्रृंगार रस के संयोग एवम् वियोग पक्ष का जो उत्कृष्ट वर्णन अपनी सरस एवम् श्रेष्ठ कविता में किया है वह भक्ति साहित्य एवम् हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। उनके द्वारा रचित भगवान श्रीनाथजी की रासलीला से संबंधित एक पद उद्धृत किया जा रहा है जो ब्रजभाषा कविता के क्षेत्र में उनके अगाध पांडित्य एवं शब्द रूपी नगों के जड़िया (नंददास जड़िया) होने के साथ साथ उनकी प्रेमलक्षणा शुद्ध पुष्टि भक्ति का परिचायक है :–

"देखोरी देखो नागर नट निर्तत कलिंदी तट
गोपिन के मध्य राजे मुकुट की लटक।
काछिनी किंकिनी कटि पीतांबर की चटक
कुडंल किरन मानो रवि रथ की अटक।।
तत थेई तत थेई सब्द उघटत उरप तिरप
गति लेत मान पग की पटक।
रास में श्री राधे राधे मुरली में एही रट
नंददास गावे तहाँ निपट निकट।।

भगवान की रासलीला लौकिक श्रृंगार रस नहीं है। यह भक्ति रस है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु श्रीमद्भागवत की अपनी संस्कृत टीका श्री सुबोधिनी में आज्ञा करते हैं – "क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते" अर्थात् यहाँ रासलीला में वे समस्त क्रियाएँ हैं जो लौकिक काम क्रीड़ा में होती हैं किन्तु यहाँ (रासलीला में) काम नहीं है। यह श्रृंगार रस लौकिक श्रृंगार रस नहीं है। शुद्ध पुष्टि भक्ति के इस मर्म को जानने वाले नंददासजी इसी कारण अपने पंचाध्यायी ग्रन्थ के संबंध में कहते हैं :–

"नाहिन कछु श्रृंगार कथा इहि पंचाध्याई।
सुन्दर अति निरवृत्त परतें इती बड़ाई।।
जे पंडित श्रृंगार ग्रन्थ मत यामें सानैं
ते कछु भेद न जानैं हरि कों विषई मानैं।"

श्रीनंददास के प्रभु श्रीगोवर्धन धर श्रीनाथजी कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तु सर्वतंत्र स्वतंत्र पुष्टि पुरूषोत्तम हैं। नंददासजी उनका गुणगान करते हुए लिखते है :–

"नंद भवन कौ भूषन माई।
जसुदा कौ लाल बीर हलधर कौ राधा रमन सदा सुखदाई।।
इंद्र कौ इंद्र देव देवन कौ, ब्रह्न कौ ब्रह्म महा बरदाई।
काल कौ काल, ईस ईसैंन कौ, बसत कौ बसत महा बरूदाई
सिब कौ धन, संतन कौ सर्वस, महिमा वेद पुरानन गाई।
'नंददास' कौ जीवन गिरिधर गोकुल मंडन कुँवर कन्हाई।

अष्टछाप के भगवदियों, जिनमें नंददासजी एक हैं, की रचनाओं से पुष्टि भक्ति के सिद्धान्त के मर्म को भली भाँति समझा जा सकता है। 'पोषण तदनुग्रह के अनुसार पुष्टि का अर्थ अनुग्रह है। अनु का अर्थ है पीछे तथा ग्रह का अर्थ है पकड़ना। विमुख होकर जाते हुए जीव को भगवान पीछे से पकड़कर अपने सम्मुख करते हैं। यही उनकी निस्साधन जीवों पर कृपा है, यही उनका अनुग्रह है। इस शुद्ध पुष्टि भक्ति के अनुग्रह का एक उदाहरण नंददासजी तो हैं ही उनके काव्य में भी इस अनुग्रह का सुन्दर दर्शन होता है। एक उदाहरण देखिए :–

"आवत ही जमुना भरिपानी।
स्याम रूप काहू कौ ढोटा, बाँकी चितवन मेरी गैल भुलानीं।
मोहन कह्यो तुमकों या ब्रज में नहिं जानी पहिचानी।
ठगि सी रही, चेटक सौ लाग्यौ, तब में व्याकुल फुरत न बानी।।
जा दिन तें चितयौरी मोहन, तादिन तैं उन हाथ बिकानी।
नंददास प्रभु यों मन मिलिगयौ, ज्यों सारंज में पानी।।

उपर्युक्त पद में परब्रह्म पूर्णपुरूषोत्तम श्रीकृष्ण ने स्वयं बोलकर गोपांगना पर अनुग्रह जताया है। भक्त का इससे बडा सौभाग्य और क्या हो सकता है ?

गुरूवर श्री विटट्ठलेश्वर के अनुग्रह ने बिछुडे हुए नंददासजी को प्रभु से मिला दिया। आपश्री का यश नंददासजी ने भक्तिभाव पूर्वक मुक्त कंठ से गाया है। एक उदाहरण निम्नानुसार है :–

प्रकटित सकल सृष्टि आधार। श्रीमद्वल्लभ राजकुमार।।
धेय सदा पद अंबुज सार। अगणित गुण महिमाजु अपार।।
धर्म्मादिक द्वारे प्रतिहार। पुष्टि भक्ति को अंगीकार।।
श्रीबिट्ठल गिरिधर अवतार। नंददास कीन्हो बलिहार।।

कतिपय पुष्टि भक्ति–सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में भक्तवर श्री नंददासजी की रचनाओं से उदाहरण देते हुए उनकी भक्ति पर विचार करने का प्रयास किया गया है। रास–पंचाध्यायी, श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, अनेकार्थध्वनि मंजरी, नाममाला, रूपमंजरी, रसमंजरी, विरह मंजरी, भ्रमरगीत, गोवर्धनलीला, स्यामसगाई, रूक्मिनी मंगल, सुदामा चरित, भाषा दशम स्कंध तथा पदावली आदि उनकी रचनाओं से पर्याप्त उदाहरण देते हुए इस विषय में एक वृहत ग्रन्थ में लिखा जा सकता है।

पुष्टि मार्ग भगवत विरह का मार्ग है। नंददासजी ने अपने विरह मंजरी ग्रन्थ में प्रत्यक्ष, पलकांतर, मनांतर तथा देशांतर जिरह का स्वरूप प्रकट किया है। प्रत्यक्ष विरह का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:–

"ज्यों नव कुंज सदन श्रीराधा। विहरति पिय सँब रूप अगाधा।।
संभ्रम भई कहत रस बलिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता।।

प्रियतम के प्रत्यक्ष रूप में विराजमान होते हुए भी जिस विरह की अनुभूति हो रही है उस पर कोई टिप्पणि करने का अधिकारी वही है जिसे इस प्रकार के विरह की अनुभूति है। यह लौकिक विषय नहीं है, विशुद्ध प्रेम है। यह अनुभूति कविवर नंददासजी जैसे भगवत्‌ीय शुद्ध पुष्टि भक्ति रस से सिक्त होकर कर सकते हैं।

'वल्लभीय'
५६, कृष्ण नगर, भरतपुर

नन्ददास का काव्य सौष्ठव

✍ डा. रामदास शर्मा

हिन्दी साहित्य जगत में अष्टछाप के कवियों ने जो स्वर–साधना की उसकी मधुर गूँज वर्तमान में भी उनका सहज एवं सुखद स्मरण करा रही है। माँ सरस्वती के इन सुधी साधकों में प्रज्ञाचक्षु वात्सल्य सम्राट सूर का स्वर भले ही उच्च रहा हो लेकिन काव्य सौष्ठव की दृष्टि से नन्ददास ने जो कीर्तिमान स्थापित किया है उसका स्पर्श करने में अन्य असमर्थ रहे। कदाचित इसीलिए"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया" जैसी उक्तियाँ उनके विषय में प्रचलित हुईं।

इनके श्रेष्ठ काव्यत्व के सन्दर्भ में नाभादास कृत 'भक्तमाल' में जो छप्पय दिया गया है उसकी प्रारंभिक दो पंक्तियाँ यहाँ उद्‌धृत करना प्रासंगिक होगा –

लीलापद रस रीतिग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।

इन पक्तियों में कवि का काव्य कौशल सुन्दर ढंग से विश्लेषित हुआ है

उनके द्वारा प्रणीत साहित्य दो प्रकार का है भागवत लीला पद एवं रस रीति ग्रंथ

– उनका काव्य सरस उक्तियों से युक्त है।
– पद रचना युक्तिपूर्वक हुई है।
– काव्य का आधार भक्ति रस रहा है।
– सम्पूर्ण काव्य गीति माधुर्य से ओत–प्रोत है।

नन्ददास के काव्य सौष्ठव से परिचय प्राप्त करने के लिए उक्त विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अग्रांकित बिन्दु सुनिश्चित किए जा सकते हैं –

काव्य रूप, रस और भाव योजना, चित्र योजना, भाषा शैली और छन्द विधान।

उनकी रचनाओं के काव्य रूपों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह दो प्रकार का है – प्रबन्ध और मुक्तक। उनकी पदावली मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आती है तो रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, नामामाला, भाषादशम स्कन्ध, गोवर्द्धन लीला, श्याम सगाई, रासपंचाध्यायी, विरह मंजरी, रूप मंजरी, भँवरगीत, रूक्मिणी मंगल, सुदामा चरित्र, श्रीकृष्ण सिद्धांत पंचाध्यायी आदि रचनाएँ प्रबन्ध काव्य के रूप में रखी जा सकती हैं।

इन रचनाओं के अनुशीलन के आधार पर नन्ददास के विज्ञ समीक्षकों ने उन्हें जडियां कहकर उनके कला पक्ष को ही अधिक उभारा है जबकि उनकाभाव पक्ष भी उतना ही उच्चस्तरीय है जितना कला पक्ष। ध्रुवदासजी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्त नामावली' में उनके भाव पक्ष की भूरि–भूरि प्रशंसा की है –

नन्ददास जो कछु कह्यौ राग रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेहमय सुनत श्रवण उठ जागि।।
रमन दसा अद्‌भुत हुती करत कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन ज़लधार।।
बाबरो सौ रस में फ़िरै खोजत नेह की बात।
आछे रस के वचन सुनि बेगि बिबस ह्वै जात।।

इन पंक्तियों से ध्वनित होता है कि नन्ददास के काव्य में श्रृंगार की प्रधानता है। उन्होंने एक ओर रीति शास्त्र परक ग्रंथो का प्रणयन किया तो दूसरी ओर सरस काव्य के रूप में श्रृंगार काव्य का। उन्होंने जितना श्रृंगार के संयोग पक्ष को उजागर किया है उतना ही वियोग पक्ष को भी। उनके काव्य में वियोग की सभी दशाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। यहाँ यह स्पष्ट करना भी समीचीन होगा कि नन्ददास एक भक्त कवि हैं। उनका श्रृंगार वर्णन भक्ति आधारित है। श्रृगार उनके काव्य मे अंग बनकर आया है। अंगीरस तो भक्ति ही है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, भक्ति में डूब कर लिखा है। रस निमग्नता की स्थिति में कवि नेत्रों से अश्रु प्रवाह करता हुआ विह्वल हो जाता है। रस निमग्नता ने उनके काव्य में अनुभूति तत्व की तीव्रता और मार्मिकता का समावेश कर दिया हैं।

अनुभूति तत्व की तीव्रता से काव्य में चित्रात्मकता का संवर्धन हुआ है। उनकी लेखनी से उभरे हुए चित्र तीन प्रकार के हैं – समूह चित्र, युगल चित्र और व्यक्ति चित्र। उनके द्वारा उभारे गए चित्र स्थूल और चाक्षुस नहीं हैं अपितु उनमें शब्द, स्पर्श, रस और गंध का सुन्दर समावेश है। व्यक्ति चित्र का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

'गोकुल की पनिहारी, पनिया भरन चली,
बड़े बड़े नैन तामें खुभि रह्यौ कजरा।
पहिरे कुसुंभी सारी, अंग अंग छवि न्यारी,
गोरी गोरी बाँहन में मोतिन के गजरा।
सखि संग लिए जात, हँसि हँसि करत बात,
तनहू की सुधि भूलि सीस धरे गगरा।
नंददास बलिहारी, बीच मिले गिरधारी,
नैननि की सैननि में भूलि गई डगरा।

नंददास के जडिया कहने में उनकी सक्षम भाषा शैली है जिसमें उपयुक्त शब्दों का समुचित प्रयोग, शब्द शक्तियों तथा लोकाक्तियों मुहावरों की स्वाभाविकता, रीतिवृत्ति और गुणों के अनुरूप शब्द चयन आदि प्रमुख हैं। भाषा प्रयोग की दृष्टि से वे सिद्धहस्त हैं। भावानुरूप सीमित शब्द योजना, नाद सौन्दर्य, सानुप्रासिकता तथा ध्वनि माधुर्य ने उनके काव्य को आनन्दकारी और हृदयग्राही बना दिया है।

उनके काव्य में अलंकारो का प्रयोग सहज व स्वाभाविक रूप से हुआ है, प्रयत्नसाध्य नहीं। यों तो उन्होंने अनेक अंलकारों को अपने काव्य में सजाया है किन्तु उपमा और उत्प्रेक्षा उन्हें अधिक प्रिय हैं। उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग के सम्बन्ध में डा॰दीनदयालुगुप्त ने लिखा है–''नन्ददास की उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी मार्मिक और प्रभावशालिनी होती हैं, उनमें मौलिकता भी रहती है, बेसिर–पैर की उड़ान और शब्दों की कलाबाजी नहीं है।''

जहाँ तक प्रश्न उनके काव्य में गृहीत छंदविधान का है, उन्हांने पदों के अतिरिक्त दोहा, चौपाई और रोला छन्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। इनमें व्याप्त गेयता और संगीतात्मकता भावों के अनुरूप है, उनमें नाद और लय का अपूर्व समन्वय है। रोला उनका प्रमुख छन्द है। 'भँवरगीत और श्याम सगाई में उन्होंने रोला और दोहा के मेल से एक नूतन छन्द आविष्कृत किया है जिसके अन्त में दस मात्राओं की एक टेक दे दी गई है।

प्रस्तुत संक्षिप्त काव्य सौष्ठव दर्शन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नन्ददास का काव्य भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ है। वह हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है।

सहा. निदेशक
अनौपचारिक शिक्षा, भरतपुर

महाकवि नन्ददास की रचनाएँ

✍ डा॰ सुरेन्द्र शर्मा

आचार्य श्री वल्लभाचार्य के द्वितीयपुत्र श्री विट्ठलनाथजी द्वारा श्रीनाथजी की राग सेवा के निमित्त निर्धारित अष्टछाप व्यवस्था में महाकवि नन्ददास आयु की दृष्टि से छटवें स्थान के पूजा के स्थान में श्रृंगार पूजा के तथा भोजसखा एवं चन्द्ररेखा सखी के रुप में किशोर लीला के अधिकारी नियुक्त किये गये। परन्तु प्रतिभा की दृष्टि से उनका स्थान सूरदास के बाद ही गृहण किया जाता है। हो सकता है कि पद (काव्य) रचना मे वे सूरदास से आगे न बढ पाये हों, इसलिए भी कि सूरदास जी से उन्होंने जीवन में बहुत कुछ सीखा भी था, फिर भी भाव विचार का तर्कसंगत सामन्जस्य उपस्थित करने के कारण और भाव को विचार पर प्रतिष्ठित करने के कारण उन्हें सूर से भी आगें गिना जा सकता है।

कवि जिस सनातन सत्य की प्रतिष्ठा मानव की मनोभूमिका पर अपनी रचनाकुशलता से करता है, उस समय उसका व्यक्तित्व गौण और भाव, विचार प्रमुख हो जाया करते हैं, यही उस काल की कवि परम्परा रही; इसी कारण कवि अपनी रचना के प्रति उतना सावध ाान नहीं रहता था, जितना आज का कवि रहता है। इसी कारण महाकवि नन्ददास की रचनाओं के सम्बन्ध में निश्चितरुप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ शोधकर्ता उनकी रचनाएँ २८ तो कुछ २५ मानते हैं परन्तु सामान्य रुप से उनकी १८ रचनाओं का उल्लेख मिलता है। अपने एक भक्तमित्र के आग्रह पर दशमस्कन्ध की भाषाबद्ध कविता टीका के २८ अध्यायों को तो सुरक्षित रखा; शेष को श्रीयमुनाजी में विसर्जित कर दिया। इसका कारण था समकालीन कथावाचकों का आग्रह। इससे स्पष्ट होता है कि वे अपने काव्य रचनाश्रम के प्रति उतने ही सावधान थे जितने से लोकहित सम्भव हो सकता हो कवि अपने श्रम के प्रति लोकोपकारिता ही मुख्य कारण रही। जिसके कारण उनकी समग्र रचनाओं का प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु इतना अवश्य है कि उन जैसे कवि ने १८ से अधिक भी रचनाऐं की होगी।

जो सनातन सत्य है वही प्रतिष्ठित होता है। कवि उसे अनुभव कराने के लिए काव्य रचना करता है और भटकते हुए मानव को एक दिशा देता हुआ उसकी युगानुरूप रचना करने का प्रयत्न करता है जिससे वह निर्द्वंद्व और निर्भय बन सके और कर्त्तव्य का निर्धारण कर सके। उस युग के आततायी वातावरण में श्रीकृष्ण की उपासना ही श्रेयस्करी समझकर उस युग में भक्ति के जिस सांस्कृतिक आन्दोलन से भारतीय समाज को संगठित बनाये रखने का प्रयास किया गया, वह अत्यन्त अद्‌भुत ही कहा जा सकता है। जहाँ एक

ओर मन्दिर तोडे जा रहे हो वहाँ दूसरी ओर मूर्तियों के माध्यम से नये मन्दिरों की रचना भी बडी तीव्रता से की जा रही थी , इसे स्वीकारा जाना ही चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि उस समय इन भक्तकवियों की रचनाओं के एक एक छन्द ने एक एक मन्दिर जैसे पवित्रवातावरण की रचना मे अपना श्रेष्ठतम योगदान दिया।

महाकवि की रचनाओं का उल्लेख कर अब हम उन पर क्रमशः विचार करेंगे।

उनकी निम्नलिखित रचनाएँ हैं -

१. अनेकार्थ मंजरी	**८. रूक्मिनी मंगल**
२. मान मंजरी	**६. रास पंचाध्यायी**
३. रस मंजरी	**१०. भ्रमर गीत**
४. रूप मंजरी	**११. सिद्धान्त पंचाध्यायी**
५. विरह मंजरी	**१२. दशम स्कन्ध**
६. श्याम सगाई	**१३. गोवर्धन लीला**
७. सुदामा चरित्र	**१४. फुटकर पदावली**

इन रचनाओं के उद्‌भव की प्रेरणा इनके सहचर भक्तवृन्द थे; जो साधारण पढे लिखे होने के कारण निरन्तर जिज्ञासु बने रहते थे; जिनकी आध्यात्मिकपिपासा को शान्त करने के लिए वे भावविचारों को भाषाकाव्यबद्ध किया करते थे; इससे इनके पाण्डित्य का भी परिचय मिलता है, कि ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। इस संस्कृत ज्ञान को इन्होंने अपने चचेरे भाई गो॰ तुलसीदास (रामचरितमानसकार) के साथ सोरों के निवासी पं॰ नरहरिदास से प्राप्त किया था।

अनेकार्थ मंजरी : ''उचिर सकतनहिं'' संस्कृत, अह समफन असमर्थ'' कहकर इसकी रचना उन लोगों के लिए की जो संस्कृत शब्द उच्चारण भी नहीं कर पाते थे, फिर अर्थ समझने में असमर्थ थे। यह रचना दोहा शैली में की गई है। यह एक प्रकार से कोश ग्रंथ जैसी काव्य रचना है जैसा कि नाम से भी विदित होता है। परन्तु शब्द के अनेकार्थों द्वारा उन्होंने शुद्धाद्वैत के अविकृत परिणामवाद का ही प्रतिपादन किया है। जैसे–

मधु बसन्त, मधु चैत द्रुम, मधु मदिरा मकरन्द।
मधु जल मधु पै मधु सुधा, मधुसूदन गोविन्द।।

मधु शब्द जिस प्रकार, बसन्त, चैतद्रुम, मदिरा, मकरन्द, जल, मिठास, अमृत मधु दैत्य अनेकार्थ रखते हुए भी परिणाम में अपने अविकृत रूप मधुसूदन गोविन्द के रूप में ही जाना जा सकता है। यह माया तत्त्व के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयुक्त ग्रन्थ कहा जा सकता है। भाषा में अर्थह्रास नहीं होने देना

चाहिए अर्थविकास ही तत्त्वार्थज्ञान को प्रोत्साहन कर सकता है जो भाषा भाषी मनुष्य को शुद्धपुष्ट कर सकता है।

मानमंजरी : यह ग्रन्थ भी कोश ग्रन्थ है, इसे नाम मंजरी, नाम माला, नाम चित्तामणि–माला, नामदाम आदि अनेकों नामों से व्यवहृत किया गया है इसकी रचना का भी उद्देश्य :–

उचिर सकत नहिं संस्कृत, जान्यौ चाहत नाम।
तिन लग नन्द समतिमहा, रचित नाम की दाम।।

जो व्यक्ति संस्कृत नहीं बोल पाते और नाम के तत्त्वार्थ को जानना चाहते हैं उनके लिए यह नामदाम की रचना की गई है। फिर भी यह कोश होते हुए श्रीराधा के मान का वर्णन करता है। दोहा शैली में लिखे गये इस ग्रंथ के प्रत्येक छन्द की प्रथम पंक्ति में शब्द के पर्यायवाची शब्द लिखे गये हैं और इसकी पंक्ति में दूती द्वारा उसका प्रयोग श्रीराधा के मानमनावन के लिए अथवा उनके रूप श्रृंगार के वर्णन के लिए किया गया है। इससे कवि के काव्य कौशल का परिचय प्राप्त होता है। शब्द कोश को कथा काव्य में इस प्रकार ढालना कि कहीं रसात्मकता में विक्षेप न आने पाये साथ ही उपमा उत्प्रेरक आदि अलंकारों का संयोजन मन में चामत्कारिक रसानुभूति का संचार करता है। भाषा को इस प्रकार से गढना कि कही भी प्रयास नहीं, सहजता सरलता ही झलकती दिखाई पड़े और लोकोक्ति मुहावरों का प्रयोग भी चलता रहे, एक प्रकार का काव्य कौशल और भाषा पर पूर्णाधिकार को ही प्रगट करता है। कुछ उदाहरण –

सोम सुधा पीयूष मधु, अंगदराज सुरभोग।
अमी तहाँ कातर कथा, मत्त रहत सब लोग।।

प्रथम पंक्ति में अमृत के पर्यायवाची शब्द प्रस्तुत करते हुए द्वितीय पंक्ति में स्पष्ट किया है कि कृष्ण कथा भी अमृत है "शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्, पिवत भगवतं रसमाह्ययम्" की पुष्टि की है।

श्रीवृषमानुभवन का चित्रण करते हुए हीरा मोती की शोभा को किस प्रकार गुम्फित किया है :–

निष्क फटिक पुनिवज्र सो हीरा दिये जु ऐन।
सकुची तिन तनु देख जनु, भूपभवन के नैन।।

शशि गोती मोती गुतिक जलज सीपसुत नाम।
मुक्ता वन्दन माल जनु विहंसत सुन्दर धाम।।

इन दोनों दोहों में उत्प्रेक्षा का भी समावेश किया गया है। इसी प्रकार का एक दोहा और प्रस्तुत है :–

जाम्बूनद की भींत अह माणिक गच छबि देत।
जहां तहां नरनारी **सब झाई झुक झुक लेत।।**

इसमें नरनारियों की उत्कण्ठा का अपूर्व सम्मिश्रण किया गया है। यह ग्रंथ प्रकाशन योग्य है इसे सुलभ कराया जाना चाहिए।

रस मंजरी - यह दोहा चौपाई शैली में लिखा काव्य है। इसमें नायक नायिकाभेद का विरुपण किया गया है। स्वयं कवि ने प्रारम्भ में लिखा है :-

एक मित्र हमसों अस गुन्यौ, मैं नायिकाभेद नहिं सुन्यौ।
अरू जो भेद नायक के गुने, तेऊ मैं नीके नहिं सुने।
+ + + + + + + + +
ताते नन्द कहत अब उत्तर, मूरख जनमन मोहित दुत्तर।

इससे नायक नायिका भेद के साथ हाव भाव, हेला, रति, दूतीभेद का भी वर्णन किया गया है। विशुद्ध नवोढा का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

अंग अंग जोवन जोति संचरी, कंचन छरी मानों नग जरी।।

यौवन ज्योति को नगसे उत्प्रेक्षित करना और कंचन छड़ी कहकर जो लचीलेपन, चंचलता की व्यंजना की है वह उनके पाण्डित्य की सामर्थ्य प्रस्तुत करती है। प्रौढा उत्कण्ठिता का एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

प्रीतम अन आये जब लहै, ठाड़ी कुंज सदन दूमिक है।
अहो निकुंज भ्रात इत सुनिधौ, हे सखि यूथा ! मनमन गुन धौ।
हे निशिमात ! तात अंधियारे, पूछत हौं तुम हितू हमारे।
हो तमाल ! हो बन्धु रसाल, क्यों नहिं आये मोहन लाल।
ऐसे विलपति प्रलपति रहियै, प्रौढ़ा उत्कंठिता सु कहिये।।

रुपमंजरी :- यह एक लघु आख्यान काव्य है जिसमें रुप मंजरी अपनी सहेली इन्दुमती के माध्यम से श्रीकृष्ण की प्यारभाव से उपासना करती है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान, रुपसौन्दर्य के माध्यम से रस सौन्दर्य की उपलब्धि इस काव्य का लक्ष्य है। ईश्वर प्राप्ति के दो माध्यम हैं प्रथम नाद और दूसरा रुप। इसमें रूप का मार्ग कठिन है। यदि रुप वासना जाग्रत करता है तो वह विष है और यदि वह तृप्ति और आनन्द देता है तो वही रुप अमृत तुल्य है। इस प्रकार रुप बाह्य और अन्तर को स्पर्श करता हुआ अन्तःस्थित सौन्दर्य को जाग्रत कर चिरसौन्दर्य की उपलब्धि करा देता है, श्रीकृष्ण से निकटता ला देता है। इस प्रकार भक्ति पद्धति के दो रूपों का यहाँ निरूपण हुआ है। रुप की उत्कर्षता के लिए दो चित्र नयन और मुख के आधार पर प्रस्तुत हैं :-

नयन- मृगज लजे, खंजन लजे, कंज लजे छवि छीन।
दृगन देखि दुखछीन है, मीन मये जल लीन।।

मुख- रुप मंजरी वदन विधु, विधिना जग में टेक।
परसन बैठयौ ससिनमसि, मानौ डार्‌यो छेक।।

प्रकृति के सारे उपमान जहाँ असुन्दर रह जांय, वहीं लोकोत्तर सौन्दर्य होता है और तो और बुद्धि का विचार विवेक, तर्कशक्ति भी अशक्त हो जाती है :–

रुप मंजरी छवि कहन, इन्दुमती मति कोन।
ज्यों निर्मल निशिनाथ को, हाथ पसारे बोन।।

बौना क्या निर्मल चन्द्रमा को पकड सकता है। इस प्रकार रुप लोकोत्तर बनकर ही लोकोत्तर रुप को प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त रसमंजरी और रुप मंजरी दौनों रचनाएँ उनके उसमन का स्पर्श करती हैं जिस मन ने एक खत्री रुपवती कन्या के प्रति मुग्ध कर दिया था। इसके बाद की रचनाएँ साम्प्रदायिक दर्शन और उपासना की ओर उन्मुख हो गई हैं। ऐसा मुझे प्रतीत होता है। इस प्रकार के पाण्डित्य दम्भ और स्थूल रुपासक्ति के निराकरण में सूरदास जी का योगदान रहा। जब उन्होंने साहित्यलहरी लिखकर इस दोनों का निराकरण किया।

विरह मंजरी - ब्रज की लोक प्रचलित बारहमासा शैली में लिखा गया यह एक भाव काव्य है जिसमें कोई कथानक नहीं है केवल विरहिणी की चैत्र से लेकर फाल्गुन मास तक की मनोव्यथा का चित्रण है जो भक्ति की अन्तिम अवस्था परम विरहासक्ति का प्रतिपादन करता है। इसमें चार प्रकार के विरह १. प्रत्यक्ष विरह २. पलकान्तर विरह ३. वनान्तर विरह ४. देशान्तर विरह का वर्णन किया गया हैं। ये चारों विरह काल्पनिक है परन्तु कल्पना मात्र में विरह इतना प्रखर हो जाता है। विरहिणी प्रेम साधिका के लिए कठोरतम परिकल्पना लेकर उतरता है और जब उसे निकटता का आभास होता है तो वह प्रभुदित प्रफुल्लित हो उठती है। सम्प्रदाय के अनुसार चिर–सामीप्य की प्रतीति कराकर कवि ने बड़ी कुशलता से विरह का निरूपण एक साधक के लिए साधना के रुप में प्रस्तुत किया है। विरह के कुछ चित्र प्रस्तुत हैं :–

और ठौर की आग पिय, पानी लागि बुझाय।
पानी में की आग बलि, काहे लागि सिराय।।
प्रीतम परम सुजान, कातिक जो नहि आव हौं।
तौ ये चंचल प्रान, पिय तुम ही पै आय हैं।।

\+ + + + + +

पर जर उठत सरीर सव, चोवाचन्दन लागि।
विधि गतिजब विपरीत तव, पानी हू में आगि।।

इसमें चन्द्रदूत की कल्पना कर इसे दूत परम्परा अथवा मेघदूत से जोडा है जो भावात्मक अधिक बन गया है परन्तु यथार्थ में चिर संयोग का समझपाना भी इसकी उपलब्धि है।

श्याम सगाई :- इसके माध्यक से श्रीराधा को परकीया के स्थान पर स्वकीया सिद्ध किया है जो साम्प्रदायिक सिद्धान्त के अनुरुप है। राधा के रुप पर मुग्ध हुई माता यशोदा उसकी मॉ कीर्ति से अपने पुत्र से विवाह का प्रस्ताव करती है तो कीर्ति निषेध कर देती है। परन्तु बालापन की प्रीति से जुडी राधा इस निषेध से दुःखी होती है तो अपनी सहेलियों के परामर्श पर कालेनाग द्वारा डस लिये जाने का अभिनय करते हुए मूर्छित हो जाती है। माता कीर्ति परिश्रान्त हो जाती है तो गारूडी मन्त्र सिद्ध, कालिय नाग का मन्थन करने वाले कृष्ण को राधा की सखियों के परामर्श से बुलाने की स्वीकृति दे देती है। श्रीराधा कृष्ण मिलन हो जाता है और माता कीर्ति भी विवाह की स्वीकृति देती हैं। यही इसका आख्यान है। वर्णन में सजीवता सचिन्तता होने का कारण यह साधारण काव्य भी सुन्दर बन गया है।

सुदामा चरित्र :- में सख्य प्रेम का निरुपण किया गया है। जो सख्य भक्ति का सम्प्रदायानुसार प्रतिपादन हैं। इसमें श्रीकृष्ण की दयालुता,भक्तवत्सलता, दीनानाथ, मित्रता के महत्त्व के साथ सुदामा की पत्नी के पातिव्रत, सच्चरित्रता, कर्त्तव्यपरायणता का भी निर्वाह किया गया है। भाषा में पद लालित्य न होते हुए भी सुन्दर लघु काव्य है। सम्भव है कि यह अभ्यास काल की रचना हो। वैसे सुदामा चरित्र से हम सभी परिचित तो हैं ही। इसका आधार श्रीमद्भागवत है।

रूक्मिणी मंगल :- गो॰ तुलसीदास की रचना जानकी मंगल की तर्जपर यह रुक्मिणी मंगल रचना लिखीगई है। इसकी कथा भी श्रीमद्भागवत पर आधारित है। इसमें भक्ति–भावित पक्षों को व्यापक रुप में तथा युद्धादि श्रृंगार विरोधी पक्षों को उपेक्षित कर दिया है। सामान्यतः रूक्मिणी के पूर्वानुराग का सुन्दर चित्रण किया है। वर्णन की दृष्टि से द्वारिका का वर्णन सुन्दर किया है। आध्यात्मिक पुट की अपेक्षा वर्णनात्मकता को अधिक प्रश्रय मिला है।

रास पंचाध्यायी :- माधुर्य भक्ति की यह अद्भुत रचना है। श्रीकृष्ण की रास लीला प्रकृति पुरूष, माया ब्रह्म, नित्यविहारिणी नित्यविहारी की अनादि अनन्त लीला है जिसे श्रीमद्भागवत्कार ने समाधि भाषा में लिखा है; उसी प्रकार सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार इसकी रचना भी नंददास जी ने बडी सावधानी से की है, जिसमें सांसारिक मोहादि बन्ध नों से मुक्त जीव–गोपियों का परब्रह्म– श्रीकृष्ण के साथ मुक्त विहार का वर्णन किया है। " जहाँ जीव में अहंबोध जाग्रत हो जाता है तो ब्रह्म अन्तर्धान हो जाता है। परन्तु नित्यरास करने, रमण करने वाले ब्रह्म से बिछुडते ही जीव जब विकल होकर विरह की अनुमति में अपने प्राण का परिष्कार कर जब शुद्धपुष्ट बन जाता है तब चिर सुन्दर से उसका रमण प्रारम्भ हो जाता है। यही प्रतिपादन रास पचाध्यायी का कथ्य है। श्रीकृष्ण का वेणु वाद नादब्रह्म का प्रतीक है जिसके आगे ससार अणु मात्र (वे–इह, अणु–वेणु)

प्रतिभासित होता है। यही श्रीकृष्ण की मोहिनी शक्ति भी है, जिसके निनादित होते ही गोपिकाएँ संसार के बन्धनों से ही क्या स्वदेहाध्यास से भी मुक्त होकर रससागर की ओर नदियों की भांति प्रवाहित होती चली आती हैं। प्रकृति का रुप रात्रि, तथा श्रीकृष्ण वियोग के समय बृक्षलतादि रूप प्रकृति से की गई प्रार्थना भी व्यर्थ हो गई है इसलिए कि प्रकृत पुरूष, प्रकृतिपति प्रकृति से भी भिन्न है। जब वे मुक्तावस्था में आकर लीलाकरण द्वारा उत्मुक्तावस्था में पहुंचती हैं तब ही उन्हें ब्रह्म से मिलन और उसके साथ विहार का चित्सुख प्राप्त होता है।

रोला छन्द में लिखा हुआ यह काव्य भाव भाषा की दृष्टि से नंददास की सर्वश्रेष्ठ रचना है। ये पांच अध्याय पंचभूत पंचमहाभूतों से मुक्त कराकर शुद्ध प्रेम स्वरुप श्रीकृष्ण की प्राप्ति करा देते हैं :–

यह अद्‌भुत रसरास महाछवि कहत न आवै।
शेष सहस्र मुख गावत तौहू अन्त न पावै।।
शिव मन ही मन ध्यावे, कहि नांहि जनावै।
सनक सनन्दन नारद सारद कहत न आवे।।५/३६।।

यद्यपि यह पदकमल जु कमला सेवति निसिदिन।
तद्यपि यह रज सपने कबहुं नहिं पायौ तिन।।
अज अजहुं रज वांछित सुन्दर वृन्दावन की।
सोऊ तनक न पावत सूल मिटत नहिं तन की।।५/३७।।

इस लीला को जो लौकिक दृष्टि से निरखता परखता है वह इस नाटक तुल्य संसार में कीट–पतंगो की तरह भटकता रहता है और जो :–

प्रेम प्रीति सों जो कोउ गावै, सुनै धरे हित।
प्रेम भक्ति देहि देत दयाकरि नटनागर पिय।।
हीन क्षुद्र, निन्दक, अधर्म हरिधर्म बहिमुख।
तिनसों कबहुँ न कहै, कहै तौ नांहि लहै सुख।।५१३६।।

यह उज्जवल रसमाल कोटि जतननि करि पोई।
सावधान होई पहरौ, अरू तोरोजनि कोई।।
श्रवन कीरतन ध्यान सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान सार हरिध्यान सार श्रुति सारगुथी गुनि।।५१४२।।

भ्रमरगीत :- श्रीमद्‌भागवत के गोपी उद्धव संवाद पर आधारति है। जिससे ज्ञान पर प्रेमाभक्ति की तर्कसंगत विजय को परिलक्षित किया है। इसमें नन्ददास के पाण्डित्य का परिचय मिलता है। साथ ही भक्ति की मुक्तावस्था के दृश्य भी देखने को मिलते हैं। प्रारम्भ में ब्रज संस्कृति के अतिशय शिष्टाचार का परिचय मिलता

है, परन्तु उद्धव द्वारा त्रिगुणातीत निर्गुणोपासना की शिक्षा देने के बाद भी वे ऐसा उत्तर देती हैं जो अकाट्य होते हुए भी अतिथि का तिरस्कार परिलक्षित नहीं करती। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :–

उद्धव– वे तुमतैं नहिं दूरि ज्ञान की आँखिन दैखौ।
अखिल विश्वभर पूरि बह्म सब रूप बिसेखौ।।
लोह दारू पाषाण में जल थल महि आकास।
सचर अचर बरसत सवै ज्येतिहि रूप प्रकास।।
सुनौ ब्रज नागरी।।

गोपी– कौन ब्रह्म की जोति, ज्ञान कासों कहौ ऊधौ।
हमरे सुन्दर स्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ।।
नैन बैन,श्रुति नासिका, मोहन रूप लखाय।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगौरी आय।।
सखा सुन स्याम के

देखिये उद्धव वचन में निर्गुण ब्रह्म की व्यापकता और उत्तर में गोपियों के सगुणब्रह्म की व्यापकता। इसलिए प्रेम भी, भक्ति भी योग बन गई। ज्ञान और कर्म की गोपियों ने ऐसी धज्जियाँ उड़ाई कि देखते ही बनती है।

उद्धव– कर्म बुरे जो होंय, जोग काहे को धारें।
पदमासन धरि सांस रोकि इन्द्रिन कों मारें।।
ब्रह्म अगनि जरि सुद्ध है, सिद्धि समाधि लगाय।
लीन होय सायुज्य में जोतिहि जोति समाय।।
सुनौ ब्रजनागरी।।

गोपी– जोगी नेतिहि मजै भक्त निज रूपहिं जानैं।
प्रेयूषै प्रगटि स्याम सुन्दर उर आनैं।।
निरगुन गुने जो पाइये लोग कहें तौ नाहिं।
घर आयौ नाग न पूजिये बाँबी पूजन जांहि।।
सखा सुन स्याम के।।

जब ज्ञान और कर्म भक्ति में भी समाहित है तो योगी के कर्म का वितण्डा किसलिए ? प्रेम के अनेकों रुप और तदनुसार अनेकों सम्बन्ध हो सकते हैं; अब अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार भक्ति सर्वसुलभ हो सकती है जबकि ज्ञान शिक्षित के लिए और कर्म सामर्थ्यवान् तक ही सीमित है। फिर आये भ्रमर को लक्षित कर गोपियाँ अत्योक्ति के माध्यम से अपनी सम्पूर्ण वेदना प्रगट कर देती हैं, जिसमें व्यंग्य, उपालम्भ, आसक्ति, वर्जना आदि अनेकों भाव अन्तर प्रेम को प्रस्फुटित करते हैं, इस प्रकार यह भ्रमर गीत वस्तुतः प्राणगीत बन गया है जिसमें शुद्ध सात्विक प्रेम की तीव्र अभिव्यञ्जना की गई है। इस प्रेम का प्रभाव भी उद्धव पर

पड़ा है, जिसका उद्धव के कथन के आधार पर ही परीक्षण करें।

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कों जो ऐसे।
हरि कौ पावस प्रेम विना पावत कोउ कैसे।।
मेरे या लघु ज्ञान कौ उरमद रह्यौ अगाध।
अब जान्यौ ब्रज प्रेम कौ लहत न आधौ आध।।
वृथा स्रम करि थक्यो।।

इस प्रकार प्रेमाभक्ति की यह उत्कृष्ट रचना है।

सिद्धान्त पंचाध्यायी :- यह रास पंचाध्यायी का सैद्धान्तिक समीक्षा ग्रंथ है। इसमें साम्प्रदायिक सिद्धान्त के अनुसार व्याख्या प्रस्तुत की गई है। सुनने में आता हैं कि यह रचना रास पंचाध्यायी से ही संलग्न थी, परन्तु भाव और सिद्धान्तों में टकराव न आजाय इस दृष्टि से इसे अलग रचना के रुप में प्रस्तुत किया गया है। इसका आधार श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी के विभिन्न टीकाकार हैं जिन्होंने इस महारास का आध्यात्मिक विवेचन किया है, उसी अध्यात्म की भूमिका पर सम्प्रदाय के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इसमें यद्यपि पांच अध्याय नहीं है फिर भी रास पंचाध्यायी के आधार को लेने के कारण इसका नाम भी सिद्धान्त पञ्चाध्यायी रखदिया है। साधकों के लिए रास के अध्यात्मिक महत्व को समझने के लिए यह उपयोगी रचना है।

दशम स्कंध :- किसी सहचर भक्त के आग्रह पर इसकी रचना की गई है जैसा कि रचना के प्रारम्भ से स्पष्ट है –

परम विचित्र, मित्र इक रहै, कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै।
तिन कही दसम स्कंद जु आहि, भाषा करि कछु वरणों ताहि।।
सबद संस्कृत के हैं जैसे, मो पें समझ परत नहिं तैसे।
ताते सरल सभाषा कीजे, परम अमृत पीजै सुख जीजै।

इसके २८ अध्याय हैं। २६ से ३३ तक रास पंचाध्यायी अलग रचना है। शेष अध्यायों की भी रचना की गई थी। ऐसा सुना जाता है कि कथावाचक ब्राह्मणों के आग्रह पर उसे श्री यमुना में विसर्जित कर दिया गया। अब २८ अध्याय ही प्राप्त हैं। इसमें श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्णकथा को अध्यायों में वर्णित किया है। दोहा चौपाई शैली में लिखा हुआ यह ग्रन्थ साधकों के पाठ के लिए एक सुन्दर साधन है। इसमें श्रीकृष्ण की ब्रज लीलाओं का वर्णन किया गया है। श्रीवृन्दावन वर्णन का एक चित्र प्रस्तुत है :–

वृन्दावन छवि कहत बनै न, भूलि रहे जहाँ हरि के नैन।
जामें संतत बसत बसंत, प्रफुल्लित नाना पुहुप अनंत।
कंटक द्रुम एकौ नहि जहाँ, चिदामास मासत है तहाँ।
अरूण अरूण नृव पल्लव पात, जनु हरि के अनुराग चुचात।।

गोवर्धन लीला :- श्री वल्लभ सम्प्रदाय में गोवर्धन और उसकी पूजा का विशेष महत्व है। इसी के चारों ओर रहकर अष्टछाप के भक्त कवियों ने साधना की थी और श्रीनाथजी से लाड लडाया था। इस प्रकार गोवर्धन लीला का महत्व भी बढ जाता हैं। सूरदास ने पदों के माध्यम से इस लीला का वर्णन किया है तो नंददासजी ने भी इस की अलग रचना कर डाली। यह दशम स्कंध से अलग रचना है। इन्द्र का मान मर्दन, श्रीकृष्ण चरित्र की अद्‌भुत घटनाओं में से एक है। गोपिकाओं का गोवर्धन पूजा के लिए मिलजुल कर जाने का वर्णन काव्यात्मकता से ओत–प्रोत है। कथ्य का सांगोपांग विस्तार भी देखने को नहीं मिलता है।

फुटकर पदावली :- नित्य कीर्तन माला में श्री नंददास जी के विविध लीला प्रसंगो पर रचित और उन्हीं के द्वारा गाये गये लगभग ४०० पदों का यह संकलन है, जिन्हें आज भी सम्प्रदाय के मन्दिरों में राग सेवा के समय गया जाता है। कुछ पद श्री रामचरित से संबंधित भी मिलते हैं। अनुमान किया जाता है कि ये उनकी प्रारम्भ की रचनाएँ हैं जब कि वे गो॰ तुलसीदासजी के साथ रहा करते थे। सभी पदों के अन्त में उनके नाम की छाप भी मिलती है। एक वात्सल्य का पद यहाँ प्रस्तुत है –

सुन्दर स्याम पालने झूलै।
जसुमति माय निकट अति वैठी, निरखि निरखि मन फूलै।।
झुंझुना लैकें बजावत रूचिसों, लालहि के अनुकूलै।
वदन चारू पर छुटी अलक रही, देखि मिटत उर सूलैं।।
अंबुज पर मानहुँ अलि छौना, घिरि आए वहु टूलैं।।
दसन दोउ उधरत जब हरि के, कहा कहूं सम तुलैं।
नंददास घन में ज्यों दामिनि, चमकि डरति कछु खूलैं।।

इस प्रकार नंददास भक्ति काव्य जगत् के प्रशस्त नक्षत्र रहे, और आज भी भक्त हृदय में विराजमान हैं। आपकी भाषा और उसमें शब्द योजना इतनी वस्तु के अनुकूल बनाई कि लोगो ने "और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया" कहकर अपनी समीक्षा सूमरुप में प्रस्तुत कर दी है जिसकी विस्तार से व्याख्या की जा सकती है। नंददास जी द्वारा भक्तिजगत् को, सनातन साधना की जो देन दी गई है वह अमृत तुल्य बन गई है। जिसे सदा श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता रहेगा।

शुभामस्तु।

बिहारीपुरा, वृन्दावन

मुख स्फुरत न बानी, प्रेमरस पुँजनी : श्रीनन्ददास

✍ श्रीमती विमला पाण्डेय

"श्री श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता" में अंतिम वाक्य है:–

"श्री गोवर्द्धननाथजी के अनेक चरित्र हैं, सो कहाँ ताईं लिखबे में आवें, श्री आचार्यजी महाप्रभून की कृपा तें स्वकीयन को अनुभव मैं आवें हैं।"

महाकवि नन्ददास ने भगवान श्री कृष्णचन्द्र की मधुरातीत लीलाओं का जो वर्णन किया है वह साधारणजनों द्वारा लिखना दुष्कर एवं असंभव सा है। श्री श्रीकृष्ण ग्वालों के आँगन की कीचड़ में लोटते हैं, पर विप्रवरों के यज्ञों में जाते हुए लजाते हैं, गौ–बछडों के हुँकार का उत्तर देते हैं, पर सत्पुरूषों की सैकड़ों स्तुतियाँ सुनकर भी मौन धारण किये रहते हैं, गोकुल की पुंश्चलियों की दासता स्वीकार कर लेते हैं, पर जितेन्द्रिय पुरूषों के चाहने पर भी उनके स्वामी नहीं बनते, इससे पता लगता है कि उनके चरण–पंकज–युगल केवल "प्रेम" से ही प्राप्त हो सकते हैं :–

"गोपालांगणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुँकृते स्तुतिशतैमौंन विधत्सेसताम्।
दायं गोकुल पुंश्चलीषु कुरूषे न दान्तात्मसु
ज्ञांत कृष्ण तवांघ्रिपंकजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहु :।।

जिसने एक बार श्री श्रीकृष्णचन्द्र के चारू चरणों में अपना सारा स्नेह अर्पित कर दिया, उसके लिये अनन्तकाल तक सुख का कोई अन्य आधार संभव ही नहीं, उनका स्नेहास्पद अन्य बन सकता ही नहीं। महाकवि नन्ददास ऐसे ही भगवत्ीय थे। भगवान श्री श्रीनाथजी की कृपावारि से उन्हें "कृपासिद्धि" प्राप्त थी... वे श्री श्रीनाथजी के साथ सतत रहते उनका लीलागुण गान करते–

"पलक ओट अकुलात, आरत अत, तज, न सकत एक घड़ी पल छिन" जैसे महाकवि के सम्बन्ध में लिखना .... "मुख स्फुरत न बानी" .... उन्हीं के शब्दों में उनके प्रति भावांजलि है।

जगत का समस्त सौन्दर्य इकट्ठा कर लेने पर भी श्यामसुन्दर के श्रीविग्रह के सौन्दर्यसागर की एक बूँद के बराबर भी नहीं होता। इसी त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्ण के प्रति गोपिजनों का हृदय बिक जाता है, वे उन्हें देख सुध–बुध खो बैठतीं हैं –

"गोकुल की पनिहारी पनियाँ भरन चली, बड़े बड़े नयना तामे खुभ रहयो कजरा।
पहिरें कसुंभी सारी अंग अंग छबी भारी, गोरी गोरी बहियन में मोतिन के गजरा।
सखी संग लिये जात हसँ–हसँ बूझत बात, तनहुँ की सुधि भूली सीस धरे गगरा।
नदंदास बलिहारी बीच मिले गिरिधारी, नेनकी सेन में भूल गई डगरा।"

गोपियाँ चाहे पनघट पर जल भरने जायें, अथवा यमुनातट पर .... श्यामसुंदर को देखकर मार्ग भूल जातीं हैं, ठगी सी रह जाती हैं, श्री श्रीकृष्णप्रेम में गोपियों का ऐसा एकाकार हो गया है जैसे सागर में पानी "आवत ही यमुना भर पानी। श्यामरुप काहु को

ढोटा बांकी चितवन मेंरी गैल भुलानी। मोहन कह्यो तुमहम को या ब्रज हमें नहि पहिचानी। ठगी सी रही चेटक सो लाग्यो तब व्याकुल मुख स्फुरत न बानी। जा दिन ते चितयेसी मोहन ता दिन तें हरि हाथ बिकानी।"नंददास" प्रभु यों मन मिलियो ज्यों सागर में पानी।"

गोपिकाएँ जलघट भरने जाती हैं, भरलाती हैं "सुघट नेह", उन्हें तो श्यामसुन्दर के दरश की चटपटी पड गसी है, ऐसी प्रीत बढी है कि गुरूजनों का त्रास स्पर्श नहीं कर पाता। नटखट श्यामसुन्दर पनघट पर छेडछाड करते, गोपियों के नयनों से, कलसियों से जल बह निकलता, कलश फूट जाते, लुढक जाते, किसे सुध है श्यामसुन्दर के प्रेम में ....

"जल को गई सुघट नेह भर लाई परी है चटपटी दरश की। इत मोहन गास उत गुरूजन त्रास चित्र लिखी ठाड़ी नाम धरत सखी परस की। टूटे हार फाटे चीर नयनन बहे नीर पनघट भड़ भीर सुध न कलश की। "नंददास" प्रभु सों ऐसी प्रीत गाढ़ी बाढी फेल परी चायन सरस की।"

श्रीकृष्ण का रुप देखने का, श्रीकृष्ण–नाम सुनने का एवं उनकी वंशीध्वनि सुनने का गोपिकाओं को अवसर प्राप्त होता है..... उनकी अनिवर्चनीय दशा प्रारम्भ हो जाती है जिसकी जगत में कहीं कोई तुलना ही नहीं है। महाकवि नंददास ने इसी दशा का वर्णन करते हुए जो पद लिखे हैं उन्हें "हिलग" के पद कहते हैं। यथार्थ दशा का वर्णन तो वाणी में आ ही नहीं सकता।

प्रेम के यथार्थ दर्शन गोपिकाओं में जीवन्त देखने को मिलते हैं। प्रेम क्या वस्तु है इसका ब्रजसुन्दरियों की दशा से अनुमान लग पाता है, निश्च्छल प्रेम, एकनिष्ठ प्रेम। बस यह प्रेम ही सार है। श्रीकृष्ण गोपीजनों के पास से मथुरा एवं द्वारिका जाने बावजूद हट कर भी नहीं हटे, श्रीकृष्ण हटते ही नहीं। उद्धव ज्ञान का गर्व शान्त होने पर जब श्रीकृष्ण के पास लौटे हैं, उस समय का वर्णन करते हुए महाकवि नंददंदास कहते हैं :–

"पुनि पुनि कहै अहो स्याम ! आप जाय वृन्दावन रहिये।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपिन संग लहिये।।
और काम सब छाँडि कै उन लोगन सुख देहु।
नातरू टूट्यौ जात है अबहीं नेहु सनेहु।।
करौगे फिरि कहा।

सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोउ।
बिबस प्रेम आबेस रही नाहीं सुधि कोउ।।
रोम रोम प्रति गोपिका है रहिं साँवरे गात।
कल्पसरोरूह साँवरो ब्रजबनिता भई पात।।
उलहिं अंग अंगते।

है सचेत कहि भले सखा ! पठए सुधि ल्यावन।
अवगुण हमरे आइ तहाँ ते लगे बतावन।।
मोमें उन में अंतरौ एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखौ मो माहिं वे त्यों हौं उनहीं माहिं।।
तरंगनि बारि ज्यौं।

गोपी रुप दिखाय तबै मोहन बनवारी।
ऊधो भ्रमहि निवारि डारि, सुख मोह की जारी।।
अपनो रुप दिखाय पुनि गोपी रुप दुराय।
"नंददास" पावन भये जो यह लीला गाय।।
प्रेम रस पुँजनी।

श्रीकृष्ण ही श्री राधा हैं, श्री गोपियाँ हैं। श्री राधा, श्रीगोपियाँ ही श्रीकृष्ण हैं। यह जानते हुए भी..... "सुनत सगाई स्याम की ग्वाल सब अंग फूले। नाचत गावत चले प्रेमरस अनुकूले। जसुमति रानी गृह सज्यो चंदन चौक पुराई बजत बधाई नंद के "नंददास" बलिजाई, के जोरी सोहती" कह कर इस अनिर्वचनीय वर्णनातीत युगल प्रेम का रसपूर वर्णन करते हैं :– "लाल सिर पाग लहरिया सोहे।। तापर सुभग चंद्रिका राजत निरख सखी मनमोहे।। तेसोई चीर बध्यों लहरिया को पहरे श्रीराधा प्यारी।। तैसेई घन उमडयौ चहुँदिसते "नंददास" बलिहारी।"

नवल दूल्हा और नवल दुल्हिन की प्रत्येक वस्तु निंत्य नवल है, सरस है – "नयो नेह नयो मेह नई भूमि हरियारी नवल दूलहे प्यारो नवल दुल्हैया। नवल चातक मोर कोकिला करत रोर नवल युगल भोर नवल उलैया। सारी पेहेरें श्री राधाप्यारी ओढनी के अंग संग सरस सुलैया। "नंददास" बलिहारी छवि पर वार डारी नवल ही पाग बनी नवल कुल्हैया।।

तो कभी राग मल्हार में महाकवि दूल्हे–दुलहनि के "सेहरे" का रस वर्षण कर दर्शन कराते हैं :–

दूल्हे दुलहनि सुरत हिंडोरे झूले प्रथम समागम अहो गठजोरे। चरन खंभ भुजकर मयार डांडी चारू कममलकर रमकि हुलसे दोउ ओरे।। सुभग सेज पट्टली सुख बाढ्यो मरूवा बेलन प्राची ओरे। "नंददास" प्रभु रस बरसत जहाँ नवधन दामनी की अनुहोरे।

सावन की मल्हार कालक्रम से फागुण की धमार में बदल जाती है ...... बढ आती है प्रेम–रस–मत्त गोपिकाओं की मीठी छेड़–छाड नटवरनागर के साथ ....

पीतांबर काजर कहाँ लग्यो हो।
ललना कौन के पोछे हैं नैन।।
कौन के ग्रहे नेह रस पागे वे गोरी कछु ओर।
देहु बताय कान राखति हो ऐसे भये चितचोर।।

अधर अंजन लिलाट महावर राजत पीक कपोल।
धूमि रहे सजनी जागे से दुरत न काम कलोल।।
नख निशान राजत छतियन पर निरखो नयन निहार।
झूम रही अलके अलबेली पाग के पेच संवार।।
हम डरतै जसुदाजू के त्रास न नागर नंदकिशोर।
पाय परे फगुवा प्रभु देहो मुरली देहु अकोर।।
धन्य धन्य गोकुल की गोपी जिन हरि लीने हराय।
''नंददास'' प्रभु किये कनौंडे हैं छाँड़े नाच नचाय।।

गोपिकाओं के संग मदनगोपाल की होरी, रसकदंब में बोरी ..शिव–नारद–शारद भी पार नहीं पाते। नंददास जाके भूरिभाग्य जो विमल विमल यश गावैं –

एक दिस सब ब्रजबाला एक दिस मोहन मदनगोपाला।
चाचर देत परस्पर छबि सों कहि न परत तिहिकाला।।
कुसुम धूर धूँधर मध्य चांदनी चंदकिरण रही छाय।
तेसोही बन्यो गुलाल गगन कछु बरणत बरण्यो न जाय।।
सुरमंडल डफ बीना झीना बाजत रस के एना।
चाचर में चाचर सी चितवन छबीली त्रियन के नैना।
बन्यों है चटक कठताल तार और मुदुल मुरज टंकार।
तिनसंब रंगरंगीली मुरली बीच अमृत की धार।।
बंद्यों है दुहुदिश गुणवितान रस गान सुनत रसमूले।
मंदमंद आवन उलटन मानों प्रेम हिंडोरे झूले।।
लटक लटक आवत छविछावत भावत नार नवेली।
प्रेम पवन वश डोलत मानों रुप अमूपम बेली।।
चारू चलन में मणिमय नूपुर किंकिणी कलरव राजे।
मानों भेदगति पाछें आछें मधुर मधुर ध्वनि छाजे।।
चमक चमक दशनावलि द्युति फिर बदरन मांझ समाईं।
दमक दमक दामिनि छबि पावत चंद्रन में दुर जाईं।
अनेक भांति रागरागिणी अनुराग भरे उपजावें।
सुन विधि के शिव नारद सारद तेहू पार न पावें।।
रसकदंब में बोरी होरी नित उठ खेलन आवें।
''नंददास'' जाके भूरि भाग्य जे विमल यश गावें।।
और फिर आता है रंग भरा, नेह रंगा ''डोल........
विलसत पुण्य पुँज ब्रजबाल, झूलत मदन गोपाल ....
डोल झुलावत सब ब्रजसुंदरि, झूलत मदनगोपाल।
गावत फाग धमार हरख भर हलधर और सब ग्वाल।।
फूले कमल केतकी कूँजो गुँजत मधुप रसाल।
चंदन वंदन चोवा छिरकत उडत अबीर गुलाल।।
बाजत वेणु विषाण बांसुरी डफ मृदंग और ताल।
''नंददास'' प्रभु के संग विलसत पुण्य पुंज ब्रजबाल।।

नित्य नूतनलीला होती है ब्रजबाल ग्वाल गोपिकाओं के साथ गोपीजन वल्लभ की ...... महाकवि मदनमोहन के भोजन के उपरान्त उनके अधरामृत की, उनकी जूठन की आस लगाये नित्य यह कृपा बनाने की कामना करते हैं..

मोहन जेंवत छाक ग्वाल मंडली मांह,
लुमझुम रही देखी राधा सब कदंब की छाँह।।
व्यजंन देत निहोरे कर कर कोउ लेत कोउ करत जु नाँह,
"नंददास आस जूठन की फूल अंग न समाह।।

श्री राधा कदंब की छाँह में बैठे श्रीकृष्ण की ग्वाल–बालों के साथ लुक–छिप कर लीला देखतीं हैं .... उनकी भी कामना कल्पवांछातरू श्रीकृष्ण पूर्ण करते हैं सधन कुँज की छाँह में साथ साथ भोजन कर .... यही तो उनकी भी अन्तर्कामना हर पल रही है .... नंददास महाकवि अनजान बने जुगल–जोड़ी का रसास्वादन करते हैं, नेहरस में भीज उन्हे आशीष देते हैं ....

भोजन भयो लाल नीकी विधसो सघन कुँज की माँह।
गरज गरज धन बरस्यो प्रबल अति कछु हम जान्यो नाह।।
कर अचवन अब देखो ब्रज शोभा कदंब खंड बनमाँह।
'नंददास" प्रभु तुम चिरजीवो, हम नित जूठन खाँह।।

और फिर बज उठी मनमोहन की मधुर मुरली .... अधीने।।

मुरली जग मोहन वश कीने। छांडत नहीं छिनक करतल ते हालर की गति मधुरे बोल बोल मनमोहन अपनी अभा कर लीने। निशवासर अधर रस प्यावत आपु रसे रसभीने।।

बार बार कहत अपने मुख मुरली महासुख दीने।
"नंददास" प्रभु रसिक शिरोमणि ताते भये अधीने।।

रसिक शिरोमणि श्री श्रीनाथजी ग्वारिया की बेटी रुपमंजरी के साथ चौपड खेलते, अपनी मुरली भूल उसकी बीन सुनते .... नंददास को भी श्री श्रीनाथजी ले जाते। एक बार श्री श्रीनाथजी चार प्रहर रात्रि रुपमंजरी के कुँज में ही विराजे। प्रातःकाल निज मंदिर में पधारे। मंगला के समय श्रीजी के नेत्रकमल आरक्त देख जब गुसाईंजी ने पूछा "बाबा, आज रात्रि कहाँ जागरण भयोहै तब श्रीनाथजी ने सारा वृतान्त बताकर कहा– "रुपमंजरी सों चौपड़ खेलबे को गयो हतो"। महाकवि नंददास ने "रुपमंजरी" ग्रंथ की रचना की है जिसमें एक चौपाई है –

।। रुप मंजरी त्रिया को हीयो।। सो गिरधर आपनो आलय कीयो।।

यह सर्वथा सत्य है कि दिव्यलोक के प्राणी एवं भगवान की लीला के परिकर इस युग में भी भगवदिच्छा से प्रकट होते हैं। श्रीनाथजी की मधुरलीला में महाकवि नंददास भी ऐसे ही भगवत्ीय हैं।

एस. १/१२, कैलाश नगर,श्रीधामवृंदावन

"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया"

✍ रामशरण पीतलिया

अष्टछाप के कवि मूलतः कृष्ण भक्त हैं। इनका स्वरुप विविधता भरा है। वे श्रीनाथजी के सखा भी हैं – सहचर भी हैं। कीर्तनकार भी हैं भक्त भी हैं। वे भगवान श्रीनाथजी की प्रेम भक्ति के सच्चे अनुरागी हैं। वे सिद्ध भी हैं –परम भगवत्तीय भी हैं। श्रीनाथजी की भक्ति ने इन कवियों को अमर कर दिया। अष्टछाप के ये कवि यों तो मानवीय दुर्बलताओं से युक्त साधारण व्यक्ति ही थे किन्तु भगवान श्रीनाथजी की भक्ति की पावन रसधारा में आकंठ डूब कर साहित्य की अमूल्य निधि बन गए। २५२ वैष्णवों की वार्ता और चौरासी वैष्णवों की वार्ता में अष्टछाप कवियों के साथ साथ अनेक सम सामयिक भक्त कवियों का वृत्त भी मिलता है जिससे इस कथन की पुष्टि होती है।

अष्टछाप के कवि भक्त और कवि ही थे। शुद्धाद्वैत दर्शन और वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सिलसिलेवार और सम्यक विवेचन ये नहीं कर पाए। इनकी लेखनीं विनय, मंलाचरण, गुरूमहिमा, नाम महिमा भक्ति महिमा, यमुनावर्णन तक ही सिमट कर रह गई। अष्टछाप के इन कवियों में नन्ददास कई अर्थों में इनसे अलग रहे हैं। वल्लभ दर्शन का पांडित्यपूर्ण विवेचन करके नन्ददास ने गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों को सरल भाषा का कलेवर देकर विद्वज्जनों को वल्लभ सम्प्रदायोक्त कृष्णभक्तिकी ओर आकर्षित किया। उन्होंने तर्क द्वारा शुद्धाद्वैत दर्शन की उपादेयता और श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। नन्ददास के काव्य में वे आत्मनिरीक्षण कर दैन्य की बात नहीं करते अपितु दार्शनिक सिद्धान्तों के अपने ज्ञान को प्रदर्शित करते हैं।

नन्ददास अपने काव्य में स्थान–स्थान पर यह भरोसा दिलाते प्रतीत होते हैं कि तर्क की कसौटी पर भी शुद्धाद्वैत दर्शन अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक है।

तिमिर ग्रसति सब लोक ओक लखि दुखित दया कर।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर।।
वे संसार अँधियार आगार में मगन नए वर।
तिन हित उद्भुत दीप प्रकट कीनी जु कुपा कर।।

उनकी रास पंचाध्यायी तथा भंवरगीत जैसी कृष्णलीला से संबंधित रचनाओं में भी हमें उनके दार्शनिक एवं तार्किक दृष्टिकोण तथा पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का परिचय मिल जाता है। वे गूढ़ से गूढ़ रहस्य को सहज भाव से उद्भासित करते हैं–

जो उनके गुन नाहिं और गुन भए कहाँ ते।
बीज बिना तरू जमें मोहि तुम कहौ कहाँ ते।।
वा गुन की परछाहरी, माया दर्पण बीच।
गुन ते गुण न्यारे नहीं , अमल वारि ज्यों कीच।।
सखा सुन श्याम के।

वे पंडित भी हैं और कवि भी किन्तु उसका पांडित्य कवित्व के आगे गौण पड जाता है। नन्ददास के समसामयिक भक्त कवियो में भावना के स्तर पर जो भक्ति के प्रति समर्पण भाव मिलता है उसमें काव्य--कला के प्रति अधिक प्रतिबद्ध रहने का अवकाश इन कवियों को नहीं था। नन्ददास की कलामर्मज्ञता और सिद्धान्त विवेचन दोनों स्वरुप उनके काव्य में मणि कांचन योग बनाते हैं।

श्रृंगार और मधुर रति नन्ददास के काव्य की आत्मा कही जा सकती हैं। दोनों प्रकार की रचनाओं में नन्ददास बेजोड़ हैं और अपने समकालीन कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। स्वतंत्र ग्रन्थ रचनाओं में नन्ददास का स्थान अष्टछापकवियों में सर्वोपरि है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि दार्शनिक विवेचन न तो कविता का विषय है और न कवियों का साध्य। सिद्धान्त पंचाध्यायी जैसी रचनाओं तक में नन्ददास ने भक्ति का स्वरूप ही निश्चित किया है, निरुपित किया है। दार्शनिक विवेचन से वे किंचित दूर ही रहे हैं। गुरू महिमा और नाम महिमा जैसे स्थलों पर भी भक्ति ही उनके कवित्व पर हावी रही है।

नन्ददास ने प्रबंध रचना की, विविध विषयों को अपने काल में सम्मिलित किया। कृष्ण की माधुर्य लीला के अतिरिक्त उनके ऐश्वर्य रुप को भी काव्य का विषय बनाया।

मोह अद्‌भुत रुप, कहत न आवै छवि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।।
परमात्मा परब्रह्म सबन के अतंरर्यामी।
नारायण भगवान धर्म कर सबन के अंतरयामी।।

नन्ददास का मोह्न अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ब्रह्म जैसी आभा है। सर्वान्तर्यामी है। ब्रह्म में बसते हुए अपनी आभा से संसार को अलोकित कर रहा है। इसी कारण ब्रज का वैभव बैकुण्ठ से कम नहीं है। मोहन का मधुर हास्य हदय को आकर्षित करता है–

गल मुतियन की माल ललित वनमाल धरें पिय।
मंदमधुर हँसि पीतवसन फरकत करषत हिय।।
ऐसे अद्‌भुत गोपाललाल सब काल बसत जहँ।
याही ते वैंकुँठ वैभव कुंठित लागत तँह।।

नन्ददास को स्वयं गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने उस क्षत्री के द्वारा बुलाकर दीक्षा दी थी जिसकी स्त्री के रुप पर असक्त होकर वे कुरूक्षेत्र से गोकुल तक उसके पीछे दौडे दौडे आए थे। नाविक द्वारा यमुना पार न कराने पर यमुना स्तुति गान करने लगे थे। यही लौकिक प्रेम श्रीकृष्ण प्रेम में बदल गया। कृष्ण भक्ति के लिए जिस सौन्दर्य प्रेम और रसिकता की अपेक्षा थी वह नन्ददास के पूर्व में ही प्रचुरता से विद्यमान थी।

नन्ददास रचित काव्य ग्रन्थों में 'रासपंचाध्यायी' और भँवरगीत' का नाम सर्वप्रथम आता है। रासपंचाध्यायी ने कवि को अमर कर दिया है। श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कंध के

पूर्वार्द्ध में राससंबंधी प्रसंग को नन्ददास ने जिस मनोहारी ढंग से प्ररतुत किया है वह अपने आप में अनोखा है। भँवर गीत में रोला, दोहा के साथ सटीक अलापि स्वर स्वरुप १० मात्राओं की आधी पंक्ति ने सम्पूर्ण पदावली में जो लालित्य पैदा किया है वह बेजोड है रुप और क्रियाकलाप रासपंचाध्यायी में साकार दृष्टिगीत होते हैं। वर्ण्य विषय को तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की शैली नन्ददास की अपनी शैली है। रासपंचाध्यायी में भाषा का प्रवाह, विचारों का समन्वित स्पष्ट रुप से रेखांकन, वाणी की वक्रता, और तर्कपूर्ण विवेचन देखते ही बनता है। श्रीवृन्दावन वर्णन के अन्तर्गत निरुपित वृन्दावन की चिद्‌धनत्व दृष्टव्य है–

श्री वृन्दावन चिद्‌धन कछु छवि बरनि न जाई
कृष्ण ललित लीला के हित धरि रह्यो जडताई।
जहँ खग मृग नग कुंजलता वीरूध तृण जेतें।
नाहिन काल गुन प्रभाव सदा सोभित हैं तेतें।।
सकल जन्तु अविरूद्ध जहँ, हरि मृग संग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं।।
सब दिन रहत बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
आन बनन जाकी विभूति करि शोभित शोभा।।

श्रीराधाकृष्ण के नित्य निकुंज स्थल चिद्‌धन स्वरुप वृन्दावन को पृथ्वी पर कृष्णलीला हेतु जडत्व स्वीकार करना पड़ा है। लेकिन उस वृन्दावन में अवस्थित जीव जन्तु विरोधी भाव शून्य हैं। वहाँ के लता वीरूधों पर कालगति का कोई प्रभाव नहीं है। उसवन में चिर किशोर श्यामसुन्दर और ललित लाडली श्री राधिका के निंकुज लीला के लिए सर्वदा बसन्त अपना सौरभयुक्त माधुर्य लिए विलसित रहता है। ऐसा वर्णन अन्यत्र विरल रुप से ही प्राप्त होता है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण के भाव को यथावस्थित स्वरुप प्रदान करना श्री नन्ददास की अनूठी काव्यकला का उदाहरण है।

'भंवरगीत' में प्रेम और भक्ति का समन्वयकारी स्वरुप दार्शनिक सिद्धान्तों का तर्कपूर्ण विवेचन निर्गुण त्वव को तिरस्कृत कर सगुण सगुणत्व की स्थापना, अन्योक्ति शिल्प पर आधारित भ्रमर पर उद्धव का आरोपित करना और प्रेमपूर्ण उपालम्भ देते हुए प्रियतम के रस में निमग्न होना, नन्ददास की शैलीगत विशेषता है।

नन्ददास के उद्धव गोपियों से आग्रह करते प्रंतीत होते हैं कि कृष्ण तो सर्वव्यापक हैं उनको ज्ञान की आँखों से देखो। जल थल चर अचर में व्याप्त उनके स्वरुप को पहिचानो तो गोपियों का सहज तर्क है–

कौन ब्रह्म की ज्योति ज्ञान कासौं कहँ उधो।
हमरे सुन्दर श्याम प्रेंम कौ मारग सूधो।।
नैन बैन मुख नासिका, मोहन रुप दिखाय।
सुधि वुधि सब मुरली हरिं प्रेम ठगोरी लाय।।
सखा सुन श्याम के।

रास पचाध्यायी नन्ददास की महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना में उनकी असाधरण भाषाधिकार क्षमता के दर्शन होते हैं। रासपंचाध्यायी का पद लालित्य देखते ही बनता है। कई समीक्षक इनकी कोमलकान्त पदावली के कारण इनकी तुलना संस्कृत के ललित कवि जयदेव से करते हैं।

इत तुलसी छवि हुलसी छांडति परिमल लपटें।
इत कमोद आमोद मोद भरि भरि सुख दपटें।।
उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुभग सुहाई
श्रीजमुना जु निज तंरग कर सो जु बनाई।

रास पंचाध्यायी के शब्दचित्र देखते ही बनते हैं दृश्य और रुप निरुपण में उनकी पैनी और सूक्ष्मदृष्टि सर्वत्र विधमान मिलती है। रास पंचाध्यायी में नन्ददास की नवीन उद्भावना के दर्शन होते हैं। इसमें वर्णित श्रीकृष्ण और गोपियों के मधुर प्रेम को भक्ति के उज्जवल स्वरुप में देखा जा सकता है। इसी स्वरुप को और अधिक सटीक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने सिद्धान्त पंचाध्यायी की रचना की। सिद्धान्त पंचाध्यायी का भी विषय तो रासलीला की परिधि के भीतर ही है किन्तु उसमें आध्यामिक पक्ष का उद्घाटन विशेष रुप से वर्णित है।

'भंवरगीत' नन्ददास की कालजयी रचना है। कृष्णकथा के उद्धव गोपी प्रसंग को नन्ददास ने पृथक खण्डकाव्य का स्वरुप प्रदान किया है। इसमें नाटकीयता भी है तर्क भी हैं सम्वाद भी हैं गेयता भी है। नए भौतिक छन्द की उद्भावना देखते ही बनती है। सूरदास के भ्रमरगीत की सी एकात्मकता न सही किन्तु तर्क और बृद्धि चातुर्य की जिस गुंफित शब्दावली के दर्शन नन्ददास के भंवरगीत में होते हैं, अन्यन्त्र दुर्लभ हैं। नन्ददास की गोपियां न्याय दर्शन और आध्यात्म की बातें करती हैं। अपने अकाट्य तर्कों से वे उद्धव को परास्त करती हैं।

कर्म–धुरि की बात कर्म अधिकारी जानें।
कर्मधुरि क्यों आनि प्रेम अमृत में सानैं।।
तवहिं लौं सब कर्म हैं जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्मबन्ध सब विश्व के जीव विमुख है जाहिं।।

सखां ! सुन श्याम के।

नन्ददास की सभी काव्य कृतियों में उनके जागरुक कवि के दर्शन होते हैं। वे कथानक के साथ बढते बढते आध्यात्म और दार्शनिक तत्व चिन्तन का समावेश इतनी सहजता से कर जाते हैं कि छन्द का काव्य सौष्ठव कई गुना बढ़ जाता है।

सौन्दर्य के वे चतुर चितेरे हैं। चाहे श्याम सगाई हो चाहे रस मंजरी चाहे मानमंजरी हो चाहे अनेकार्थ मंजरी उनकी सौन्दर्य प्रियता कहीं भी न्यून नहीं होती।

नन्ददास की मान्यता रही है कि सौन्दर्य और श्रृंगार के समस्त भाव अपने आराध्य श्रीकृष्ण को समर्पित करके व्यक्त करने से उनमें लौकिक श्रृंगार जन्य कुत्सित भाव स्वतः ही विलोपित हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जिस तरह अग्नि में पड कर सभी वस्तुएं भस्म हो जाती हैं। नन्ददास की विरह मंजरी और रुपमजरी भी विप्रलंब और संयोग श्रृंगार के निरुपण में लिखी गई रचनाएं हैं। प्रेम भक्ति में विरह के महत्व को विरह मंजरी उद्भासित करती है तो लौकिक श्रृंगार से संबद्ध कथानक को प्रेमलक्षणा भक्ति के अर्न्तगत रुपमंजरी लाती है। दोनों ही रचनाओं का काव्य सौन्दर्य देखते ही बनता है। नन्ददास रीतिकाल के पूर्ववर्त्ती कवि रहे हैं, इनके समय में विविध छन्दो में अंलकार और रस विविधता भरी रचनाओं का समावेश होने लगा था। इसी कारण ही वे भक्त होने के साथ साथ सचेत कवि भी हैं। अष्ट छाप के अन्य कवियों ने कृष्ण भक्ति की विविधा रचनाओं में स्फुट पदों के माध्यम से ही प्रच्छन्नभाव से विविध प्रसंगों को रुपायित किया है। नन्ददास के काव्य में रचना प्राचुर्य के दर्शन होते हैं, विषयगत विविधता के दर्शन होते हैं और काव्यकला के एक मर्मज्ञ चितेरे के दर्शन होते हैं।

नन्ददास को भक्ति काव्य और लौकिक श्रृंगार काव्य के बीच सेतु बनने का सौभाग्य प्राप्त है। शब्द गुन्थन में नन्ददास बहुत सतर्क प्रतीत होते हैं।

नास्तिक हैं जो लोग कहा जानैं तिन रुपहिं।
प्रकट भानु कों छोड़ गहें फिर छाया धूपहिं।।
हमरे बिन वह रुप ही और न कछु सुहाय।
जो करतल आभाष को तू कहि ब्रह्म दिखाय।।

सखा सुन श्याम के।

नन्ददास का छन्द प्रयोग आकर्षक है। रस और अलंकारों का सहज प्रयोग चमत्कारपूर्ण है। उनके काव्य में कला भी है, सौन्दर्य भी। भक्ति है– ज्ञान भी। नई उद्भावना है–सुन्दर शब्द चयन भी। उनके समसामयिक कवियों ने कविता आभूषण को गढा है। भक्ति के कलेवर में रुपायित किया है। भावाभिव्यक्ति से सजाया है। रसानुभूति से रस रिक्त किया है– किन्तु नन्ददास ने कविता रुपी आभूषण में अपनी चतुरता से नग जडे हैं। देदीप्यमान रत्न जड़े हैं। पन्ना पुखराज और नीलम जड़े हैं। इससे उनके काव्य की चमक कई गुना बढ गई है। उनके काव्य में उक्ति चमत्कार, अभिव्यंजना शिल्प देखते ही बनता है।

नन्ददास काव्य मर्मज्ञ हैं। श्रृंगार सौन्दर्य के पुजारी हैं। पुष्टि- में अपने ढंग के अकेले भक्त कवि हैं। इनके विषय में कही गई उक्ति सर्वथा सार्थक है –

''और कवि गढिया, नन्ददास जडिया''।

प्रान्तीय अध्यक्ष,
'कदम्ब', कामवन (भरतपुर)

नंददास की जोग लीला : एक समीक्षा

✍ डा. ब्रजबिहारी निगम

'जोग लीला' नामक एक ग्रंथ को नंददास कृत कहा जाता है। फ्रांसीसी लेखक मार्सिन द तासी ने इस ग्रंथ की एक प्रति स्प्रेंजर के पुस्तकालय में स्वयं देखी थी। उन्होंने नंददास की १४ रचनाओं के नाम दिये हैं उनमें से "जोग लीला" भी एक है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्टों – १६००१ ई॰ से १६२२ ई॰ – में नंददास की २० रचनाओं का उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार "जोग लीला" में १३० पद्य हैं। मिश्रबंधु भी इसी मत के हैं। लेकिन शिवसिंह सरोज के अनुसार नंददास की केवल ७ रचनाएँ हैं जिनमें "जोग लीला" नामक पुस्तक नहीं है और इसी मत को डा॰ ग्रियर्सन ने माना है।

प्रश्न उठता है, "जोग लीला" नंददास की है भी कि नहीं ? नंददास की रचना मानने का भ्रम (डा॰ रामकुमार वर्मा को भी था) इन कारणों से हुआ था : "जोग लीला" की भावशैली नंददास कृत "भंवर गीत" से मिलती–झुलती है, दूसरे नंददास कृत "रास पंचाध्यायी", "भाषा दशम स्कंध" और "रूप–मंजरी' की ही तरह "जोग लीला" की रचना भी किसी मित्र के निवेदन पर हुई है और बाद में मिली कुछ प्रतियों में नंददास की छाप आने से यह भ्रम पैदा हुआ है। डा॰ कृष्णदेव झारी (नंददास, चिल्ड्रन बुक सोसायटी, नई दिल्ली, १६७२, पृ॰ ८२–८६, ने विस्तृत अध्ययन के बाद अपना मत दिया है कि भ्रमवश "जोग लीला" को नंददास की रचना मान लिया है। इसकी अधिकांश प्राचीन प्रतियों में लेखक का नाम 'उदय' स्पष्ट दिया हुआ है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि "जोग लीला" वास्तव में उदय की रचना है। एक समीचीन तर्क यह भी है कि तब नंददास "भंवर गीत" सरीखा उत्कृष्ट ग्रंथ लिख चुके थे, तब उसी भाव–शैली व कथ्य में दूसरा ग्रंथ क्यों लिखते? छन्दों की संख्या भी लगभग समान है। नंददास के "भंवरगीत" में ७५ और उपरोक्त कृति में १३०। ऐसा प्रतीत होता है कि नंददास के बाद किसी पुष्टिमार्गीय भक्त (उदय) ने उपनी सहृदयता को भक्ति–भाव से पूर्ण होकर पद्य में अभिव्यक्त कर अपनी कृति का नाम "जोग लीला" रख दिया। इसकी कथा–वस्तु नंददास कृत "भंवरगीत" के समान है।

पुष्टिमार्ग में योग की अवधारणा : उपर्युक्त टिप्पणि को ध्यान में रखते हुए नंददास की कृतियों के आधार पर कुछ विचार करना समीचीन होगा। "योग" शब्द "युज्" धातु से बना है जिसका अर्थ जोडना, मिलाना, संयोग आदि होता है। पुष्टिमार्ग में मधुर और प्रेममूला भक्ति से अखण्ड, एकरस, आत्मानंद रसरूप कृष्ण से जीव (गोपियों) का संयोग होता है, उसकी अनुभूति प्राप्त होती है या सर्वतोभावेन समर्पण से

भक्त में आनन्द का आविर्भाव होता है, अतः पुष्टिमार्ग प्रेममूलक योग मार्ग ही है। इसमें प्रेम से ही साधना प्रारंभ होती है, साधना का प्रत्येक पल रसमय होता है और इसका अंत भी प्रेम–लीला के सरोवर में जीव–मुक्ति लाभ करने में होता है। काव्यशास्त्र में इसी तत्व को सद्योमुक्ति कहते हैं। काव्य की उत्पत्ति आनन्द में होती है, सुनने वाले को आनन्द देता है, और काव्य का अन्त आनन्द में होता है। अतः यह उत्पत्ति, प्रक्रिया और अंत में भी आनन्द रूप है। पुष्टिमार्ग की योग–साधना तैत्तिरीयोपनिषद्।। –६ की सटीक व्याख्या है। इसके अनुसार आनन्द ही ब्रह्म है, आनन्द से जगत् और प्राणियों की उत्पत्ति होती है और वे अंत में आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं'' (आनन्दों ब्रह्मेति ...., आनन्दात् एवं खल्विमानी भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति) जगत् और जीव आनन्दरूप ब्रह्म की लीला या क्रीडा हैं।

पातंजलि के अनुसार ''चित्तवृत्ति निरोध'' से प्राप्त समाधि और कैवल्य योग है। यम, नियम, आसन आदि अष्टांग साधन से ही फल प्राप्त होता है। पतंजलि राग नहीं विराग के पोषक हैं; भोग नहीं योग उनका उद्देश्य है। लेकिन यह मनुष्य को अपनी समग्रता में नहीं देखता। राग से ही वृत्तियां उत्पन्न होती हैं, अतः राग को वर्जित कर दिया जाये तो वृत्तियां उत्पन्न नहीं होंगी। यह केवल कठोर संयम से ही संभव है जिसमें तन, मन व प्राण को पूर्णरुपेण संयमित करना पड़ता है। पतंजलि का योग इतना वैराग्यवादी, व्यक्तिनिष्ठ और निरानन्दी है कि वह कैवल्य के लोभ में मनुष्य को संसार (जगत) से उठाकर एकांत मे पहाड़ी मुफाओं में ले जाता है। इस योग से ज्ञान–रुप ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त होती है। ब्रह्म को ज्ञान–रुप मानने वाले शंकर सन्यास को ज्ञान का लक्षण मानते हैं। (ज्ञानम् संन्यास लक्षणम्, शांकर भाष्य गीता, उपोद्घात)। इस तरह कैवल्यवादी सांख्य और शंकर के अनुयायी अद्वैतवादी या ज्ञानवादी योग की संन्यासपरक व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार जगत् मिथ्या–सृष्टि है।

वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद इसके बिल्कुल विपरीत है। ब्रह्म सच्चिदानंद है, जगत् व जीव उसके अंग हैं। अंश अविद्या–माया के कारण अपने सीमित संसार का सृष्टा होता है और उसी में फंसा रहकर सुख–दुःख का अनुभव करता है। आनन्दरुप ब्रह्म का उसमें तिरोभाव होता है। अतः अपने मूल आनन्द रुप अंश की अनुभूति प्राप्त करने के लिए सीमित संसार अर्थात् माया–मोह, ईर्ष्या–द्वेष व मेरा–तेरा से मुक्त होकर ब्रह्मांश जगत् में आनन्द की उपलब्धि करना है। क्षुद्र संसार मिथ्या है, जगत् भगवत्ंश है। यह दृष्टि वल्लभ की मौलिक देन है। वे ''चित्तवृत्ति निरोध'' न मानकर वृत्तियों के उदात्तीकरण के पोषक हैं। वृत्तियों को आनन्दरुप कृष्ण और उनकी क्रीड़ाओं (लीलाओं) में प्रेमरुपा भक्ति–भाव से रस के आस्वादन की ओर मोडना चाहिए। मुनष्य में वृत्तियों का उदय स्वाभाविक है। लेकिन भगवान् की लीलाएँ लोकवत् होते हुए भी कैवल्य की ओर प्रवृत्त करने वाली हैं। भगवान् कृष्ण की बाललीला, उद्धवलीला, रासलीला आदि जन–साधा रण के मन को भी मोहित कर लेती हैं। प्रत्येक लीला लोकवत् ही है, उसमें ब्रजभूमिके आबाल–वृद्ध–नारी, माता–पिता और गोप–गोपियों की मानव–सुलभ वृत्तियों को कृष्णोन्मुख

करने की क्षमता है। अतः वल्लभ वृत्तियों के निरोध से जीव को संन्यासधर्मी बनाने के स्थान पर उसे रसानन्द में निमग्न होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। संसार को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि भगवत्–अनुग्रह (पुष्टि) से दुःखरूप संसार आनन्द–सागर में रुपांतरित हो जाता है। इस दृष्टि से वल्लभ प्रेमरुपा भक्ति से संसार, जगत् व जीव में रसरुप आनन्द–भाव का आविर्भाव सुलभ कर देते हैं। इस तरह पुष्टि–मार्ग में योग रसरुप भगवान् कृष्ण से भक्त–जीव का संयोग है। यह संयोग सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य मुक्ति का अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।

पुष्टिमार्ग के अनुसार लीलायोग के सोपान : वल्लभ ने जिन सोपानों का निर्देश दिया है उनका पालन ब्रज की अबूझ और अनाडी गोपांगनाओं से लेकर सूर और नंददास सरीखे–मन के विलक्षण पारखी, रससिद्ध कवि और भक्त भी कर सकते हैं। श्रीकृष्ण की लोक–रंजनकारी लीलाओं में सभी का मन रम सकता है। अष्टांग योग की कष्टप्रद साधना से प्राप्त एकाग्रता पुष्टिमार्गीय सगुण भक्ति में अत्यंत ही सहजता और सरलता से प्राप्त हो जाती है।

साधना के सोपान निम्नलिखित हैं :–

१. नित्य सेवाविधि : कृष्ण के स्वरुप की सेवा मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन के रुप में होती है। यह पुष्टि–सम्प्दाय का अष्टांग सेवा–योग है। यह संप्रदाय के मंदिरों में तो संभव है, लेकिन घर–गृहस्थी में इसका निर्वाह कठिन होता है इसके लिए मंदिर में जाकर समय–समय के दर्शन करना व कीर्तन करना या श्रवण करना ही पर्याप्त है। इसके सिवाय वित्तजा (मंदिर बनवाना, श्रृंगार, नैवेद्य आदि प्रसाधनों को जुटाने में आर्थिक योगदान देना) और तनुजा मंदिर में सफाई, ठाकुरजी के वस्त्र सीना, श्रृंगार कराना आदि सेवा के रुप भी स्वीकार किये गये हैं। इस भावात्मक या मानसिक सेवा के २ रूप हैं मर्यादा मार्गीय और पुष्टि मार्गीय। मर्यादामार्गीय सेवा में लोक और शास्त्र की मर्यादा में रहकर उपासना की जाती है। पुष्टिमार्गीय सेवा में मन, वचन व कर्म से सर्वतो–भावेन कृष्णार्पण और कृष्ण लीलाओं में लीन होना ही पुष्टि–पुष्ट मानसी सेवा है।

२. षडऋतुओं के उत्सव : रास, होली, हिंडोला, रथ–यात्रा, त्यौहार आदि मनाये जाते हैं।

इन सेवा–विधियों की विशेष बात यह है कि सेवा के प्रत्येक सोपान पर लीला पदों का गान या कीर्तन होता है। सेवा या उत्सव के अनुरुप स्वरुप व परिवेश की साज–सज्जा अत्यंत मनोरम होती है। अष्टछाप के कवि–भक्त सेवा के विभिन्न रुपों और उत्सवों पर स्वनिर्मित पदों का गान वा कीर्तन करते थे। पुष्टिमार्ग में रासलीला का महत्व अधिक है। रास शब्द रस से बना है। तैत्तिरीय उपनिषद ।।–७ की उक्ति "रसो वै सः" के अनुसार परब्रह्म रसरूप है; कृष्ण सच्चिनानन्द के अवतार हैं, अतः वे भी रसरुप और आनन्दघन हैं। इस परमतत्व की अनुभूति कराने वाली लीला का नाम रस है। रास में संगीत, वाद्य, नृत्य, काव्य व अभिनय की पंच–गंगा में माधुर्य और आनन्द का उल्लास

प्रवाहित होता है। रास के माध्यम से अंशी भगवान् के साथ अंश–जीव का दिव्य–मिलन होता है। वल्लभ ने सरल भाषा में कहा है कि रसयुक्त नाच ही रास है क्योंकि उनमें आनन्द का आविर्भाव हो जाता है।

पुष्टिमार्ग में मधुर भक्ति : सेवा के उपरोक्त प्रकार लौकिक रुप में अलौकिक या दिव्य–रुप के प्रति समर्पित होने के साधन हैं। सेवाकाल में आनन्द–प्रद होना इनके चिन्ह हैं। लेकिन भगवत्–अंश या आनन्द–रुप होना एक भिन्न बात है जिसकी प्राप्ति प्रेम–मूला मधुर भक्ति से ही संभव है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पुष्टिमार्ग में प्रेममूलक अन्य भावों जैसे वात्सल्य, सख्य व दास्य को स्वीकृत नहीं किया है। सूर की भक्ति और पद प्रमुख रुप से वात्सल्य, सख्य और गोपियों के विरह भाव पर केन्द्रित हैं। इन तीनों भावों की परिधि में जड़ (ब्रज के पेड़–पौधे, कदम्ब वन, पहाड, वेणु आदि) और चेतन (गाय, गोप–गोपिकाएँ व माता–पिता) सभी कृष्ण के संयोग और वियोग से प्रभावित हो जाते हैं। नंददास मुख्य रुप से संयोग और वियोग के भक्त–कवि हैं। उन्होंने पुष्टि–पुष्ट भक्ति को अपनाया और उनके सभी ग्रंथों में इसी भाव का मंडन रहता है। यद्यति वल्लभ संप्रदाय में सिद्धांत, दर्शन, कथा व कृष्ण चरित्र का आधार भागवत का दशम– स्कंध रहता है, लेकिन प्रत्येक कवि की अनुभूति, काव्य–प्रतिभा, भक्ति और ज्ञान की भिन्नता में कारण उनकी कृतियों में भिन्नता आ जाती है। नंददास रसिक और रस–मर्मज्ञ भक्त कवि हैं। इसी के साथ वे संस्कृत के प्रकांड पंडित, रस और रीति के आचार्य हैं। उनकी रसिकता और रस–मर्मज्ञ होने का प्रमाण "रास–पंचाध्यायी" है जो कि भागवत के दशम–स्कंध के अध्याय २६ से ३३ तक का श्रेष्ठ एवं स्वतंत्र अनुवाद है। भाव, भाषा, वर्णनशैली, रसनिष्पत्ति और लोकप्रियता की दृष्टि से यह श्रेष्ठ कृति है। इसी कारण यह उक्ति प्रचलित है कि "और सब गढ़िया नंददास जड़िया"। उनके भंवरगीत में उनकी वाद–विवाद प्रतिभा के दर्शन होते हैं। नंददास की गोपियाँ सूर की गोपियों की तरह नहीं कहतीं कि "उधौ जोग जोग हम नाहीं; सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, पद संख्या ४५४१, "जोग जुगति की नीति अगम हम ब्रज वासिनी कहँ जानैं। पद ४५५७, वे वाद–विवाद में उद्धव को पराजित कर उनसे भक्ति की श्रेष्ठता मनवा लेती हैं। नंददास के रस–रीति के आचार्य होने का प्रमाण "रस मंजरी" में मिलता है। पांडित्य व प्रतिभा के दर्शन उनके ग्रंथ "सिद्धांत पंचाध्यायी" में होते हैं। "अनेकार्थ ध्वनि मंजरी" और "नाममाला" में उनका भाषा–ज्ञान प्रकट होता है। उनकी प्रबंध क्षमता के दर्शन "रुक्मिणी मंगल", "श्याम सगाई", रुप–मंजरी" आदि ग्रंथों में होते हैं। ऐसी चहुँमुखी विलक्षण प्रतिभा नन्ददास को पुष्टिमार्ग का सिद्धांतकार व कृष्ण लीलाओं का श्रेष्ठ गायक भक्त बना देती है। इन सभी ग्रंथों में मधुर भक्ति की रुपरेखा, कथा व लक्षण का निर्वाह हुआ है।

मधुर-भाव की भक्ति में भक्तों को सखी रूप मानना : इस भाव से भक्ति करने वालों के तीन रूप होते हैं –

१. पुष्टि-प्रवाह जीव : जैसे ब्रजांगनाएँ जो कृष्ण की बाल रुप में भक्ति करती हैं। यह वात्सल्य भाव की भक्ति है। ऐसे भक्तों के लिए बाल–लीलाएँ आकर्षण की मुख्य केन्द्र हैं।

२. पुष्टि-मर्यादा जीव : भगवान् का अनुग्रह तो प्राप्त है लेकिन अभी लोक व शास्त्र मर्यादाओं में रहकर कृष्ण के प्रति स्वकीया भाव से भक्ति करना है, संप्रदाय में इनका नाम कुमारिकाएँ है।

३. पुष्टि-पुष्ट जीव : ऐसी भक्ति गोपांगनाओं की थी। वे लोकलाज, कुल व शास्त्र मर्यादा और भय छोड़कर कृष्ण की परकीया भाव से भक्ति करती हैं। गोपांगनाओं ने सब धर्मों को त्यागकर शुद्ध–प्रेम से पुरुषोत्तम कृष्ण का साक्षात् किया। झारी ने अपनी पुस्तक "नंददास" के पृष्ठ ३१ पर कहा है, "वल्लभ के अनुसार जीव जब पूर्णतया भगवान् पर आश्रित हो जाता है, अपनी समस्त भावनाएँ व इच्छाएँ तथा सर्वस्व भगवत्र्पण कर देता है, तब भगवान् उस पर परमानुग्रह करते हैं, और उसके साथ नित्य लीला करते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति की वही चरमावस्था है, जोकि गोपांगनाओं को प्राप्त हो गई थी। भक्त को गोपियों के आचरण को ही आदर्श मानना चाहिये।

पुष्टिमार्गीय लीलायोग में वियोग की महत्ता : योग का अर्थ अंश का अंशी से संयोग है। इसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार की सेवा–उपासना की जाती है। लेकिन लीलायोग में वियोग या विरह की अत्यधिक महत्ता है। यह किसी सिद्धांतकार दार्शनिक को अटपटा लग सकता है, लेकिन पुष्टि–पुष्ट भक्ति में शुद्धप्रेम की कसौटी विरह है और उसकी सिद्धि भी विरह से होती है। विरह से दुःख नहीं, प्रिय–मिलन से अधिक सुख मिलता है क्योंकि उसमें प्रतिक्षण अपने प्रेमास्पद से संयोग की उत्कंठा रहती है। उसका नाम–स्मरण कीर्तन, लीला–श्रवण और दर्शन चलता रहता है। भावात्मक रुप से भगवान् हमारे साथ रहता है। इसी कारण "रुप–मंजरी" के निम्न पद का गायन होता है :

हौं जानों प्रिय मिलन तें विरह अधिक सुख होय
मिलतै मिलियै एक सों, बिछुरे सब ठौं सोय।

डा॰ सुधीन्द्र (नंददास कृत "भंवरगीत", चतुर्थ संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा पृ॰ ३६१) भंवरगीत को विरह काव्य मानते हैं। विरह में तन्मयता और एकाग्रता प्रधान रहती है जो कि योग (विशेषकर पातंजल योग, सूत्र–।।।–२, तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम्) का साध्य है। सूर का "भ्रमरगीत सार" और नंददास कृति "विरह मंजरी", "भंवरगीत", "रास पंचाध्यायी" व "रुप मंजरी" सभी इस विरह–जन्य सुख का गुणगान करते हैं। नंददास ने संयोग श्रंगार का भी बहुत व्यापक और मनमोहक काव्य प्रस्तुत किया है।

लीलायोग और मोक्ष : सगुणोपासक मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति या कैवल्य की कामना नहीं करता। भक्त शक्कर की मिठास का आनन्द लेना चाहता है, वह शक्कर का थैला नहीं बनना चाहता। पुष्टिमार्गीय भक्त भी आनन्दरुप ब्रह्म का नित्यप्रति आस्वादन करना चाहता है। अतः अभेद–भक्ति के स्थान पर वह भेद–भक्ति का उपासक बना रहता है। वह अद्वेतियों की तरह "अहं ब्रह्मास्मि" या "सोऽहम्" का समर्थक नहीं है; वह अंश है,

भगवान् अंशी है। अंश–रुप जीव का उद्देश्य मोक्ष नहीं आनन्द की अनुभूति है। तुलसी भी रामायण में कहते हैं :

"सगुणोपासक मोक्ष न लेहीं"
"सगुण उपासक संग तहं रहहिं, मोक्ष सब त्यागि"

रामा, किष्किंधा., दो. २६

पुष्टिमार्गीय भक्त के लिए लीला–सुख के आगे मोक्ष–सुख तुच्छ एवं मूल्यहीन है।

नंददास ने पुष्टि–पुष्ट जीव की मधुर भक्ति को उज्ज्वल रस कहा है। संस्कृत शब्द उज्ज्वलः का अर्थ प्रेम या राग होता है। "रास पंचाध्यायी" का अंतिम पद है :

"यह उज्जवल रस माल कोटि जतन के पाई"

उज्ज्वल रस प्रेममूला मधुर भक्ति से रसरुप सच्चिदानन्द या ब्रह्मानंद का सान्निध्य प्राप्त करना है। अंश जीव जब अपने सत्–चिद् रुप में भगवत् कृपा से आनन्द का आविर्भाव अनुभव करता है तब वह अंशी के सच्चिदानन्द रुप का शुद्ध–अंश हो जाता है। इसी तथ्य को "सिद्धांत पंचाध्यायी" में इस तरह अभिव्यक्त किया है :

"सघन सच्चिदानंद नन्दनन्दन ईश्वर जस।
तैसेई तिनके भगत जगत में भये भरे रस।।"

इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए सखी–भाव से मधुर भक्ति की साधना करना चाहिये। इसके साधन, सेवा और लीलाओं में मन रमाना है। इनके बाह्य रुप लौकिक लगते हैं, लेकिन ये रसरुप आनन्दकन्द श्रीकृष्ण के लीला रुप हैं जो आनन्द से उत्पन्न हुए हैं और भक्त–जीव को दिव्य–आनन्द की अनुभूति कराने के लिये अभिव्यक्त हुए हैं। नंददास का "सिद्धांत पंचाध्यायी" में कथन है :

"नाहिन कछु श्रृंगार कथा इहि पंचाध्यायी"

नंददास ने अपने साहित्य में एक उच्चकोटि के विद्वान भक्त–कवि का परिचय दिया है। उन्होंने हृदय–बुद्धि, संयोग–वियोग, लौकिक–अलौकिक, भक्ति–ज्ञान व रीति और भोग–वैराग्य की विरोधी कोटियों में सुंदर समन्वयक उपस्थित किया है। संगीत वाद्य, नृत्य, काव्य और अभिनय का लीला–गान में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उनका लीला–योग, योग की प्रचलित अवधारणाओं में विलक्षण है।

६, तिवारी कॉलोनी, उज्जैन

नन्ददास के विरह के पद

✍ डा. रमेश चन्द्र मिश्र

पुष्टि सम्प्रदाय के अधिष्ठाता श्री वल्लभाचार्य ने पुष्टि सम्प्रदाय में वात्सल्य भाव की भक्ति का विशेष महात्म्य प्रतिपादित किया है। गो॰ श्री विट्ठलनाथजी के समय सख्य और कान्तारति को स्वीकार किया है। अष्टछाप के कवियों द्वारा पद रचना की गई। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने उपनी अष्टयाम सेवा में राधा भाव को स्वीकार नहीं किाय था लेकिन उनके पुत्र गोसाई श्री विट्ठलनाथजी ने श्रीनाथजी के सेवा के मण्डान में श्रीराधा जी को ब्रह्मोत्सवों के रुप में सम्मिलित किया। विद्वज्जनों की मान्यता है कि "विट्ठलनाथजी के समय में मधुर भाव की भक्ति का प्रभाव गौड़ीय, राधा वल्लभी और हरिदासी सम्प्रदायों के प्रभाव से बहुत अधिक हुआ। यही कारण है कि सभी अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में राधा–कृष्ण के युगल रुप की भक्ति से सम्बंधित पदों की प्रचुरता देखने मिलती है। "१ अष्टछाप के कवियों में श्री नन्ददास का नाम 'जड़िया– कवि' के रुप में लिया जाता है। उन्होंने रस, भाव और भाषा का अनूठा मुम्फन कर काव्य भूषणों से श्री राधा–कृष्ण का श्रृंगार किया है। विषय वस्तु का विस्तार, शैली, शिल्प का निरुपण, अलंकारों एवं मुहावरों की संयोजना, छन्दों की विविधता, समय–ऋतु एवं भाव संवेदनानुसार रागों की संरचना के प्रभाव से इन्हें 'काव्य शिल्प के जड़िया' के रुप में प्रतिष्टापित किया गया है। इन्होंने श्रीमद्भागवत की विषय वस्तु को दृष्टिगत रखते हुए 'रास–पंचाध्यायी' की रचना रोला पदों में की है तो भँवर गीत (उद्धव–गोपी संवाद) में रोला व दोहा के साथ अलापी संयोजन करते हुए उसे विशेष रस सिक्त कर दिया है। विभिन्न मंजरियों का निर्माण कर इन्होंने अपने पाण्डित्य कों बुध जनों के समक्ष प्रदर्शित किया है, किन्तु इस आलेख की सीमा श्री नन्ददास के 'विरह के पदों' का वैशिष्ट्य निरुपण करने तक है।

विरह का सीधा संबंध कान्तारति से है, जिसकी प्रमुख अधिष्ठायी कृष्ण–प्रिया श्री राधा है। श्री राधा–कृष्ण की निकुञ्ज लीला और सुख–विलास के चित्रण में संयोग श्रृंगार तथा खण्डितामान, रास–विहार, परकीया रति, दर्शनोत्कण्ठा, मान लीला, मनुहार विलास में विरह विश्लेषण के आधार पर विप्रलम्भ श्रृंगार को प्रतिपादित किया गया है। अभीष्ट की प्राप्ति न हो और रति स्थापिभाव प्रकर्ष को प्राप्त करले मो 'विप्रलम्भ श्रृंगार' होता है। इसके आयोग और विप्रयोग दो भेद किये गए हैं। आयोग का अर्थ है – 'अभीष्ट का न मिल पाना' और 'विप्रयोग' का अर्थ है– 'मिलकर अलग हो जाना।' 'आयोग' को पूर्वराग के समकक्ष कहा गया है और 'विप्रयोग' को विप्रलम्भ, मान, प्रवास एवं करूण में से प्रथम भेद 'पूर्वानुराग' में ही 'आयोग' का अन्तर्भाव हो जाता है।

मिलन या समागम से पूर्व ह्रदय में जो अनुराग का आविर्भाव होता है उसके प्रति मिलन की उत्कण्ठा को ही 'पूर्वराग' या 'पूर्वानुराग' कहा जाता ह। इसके चार मार्ग हैं – प्रत्यक्ष दर्शन, चित्र दर्शन, श्रवण दर्शन और स्वप्न दर्शन। श्री नन्ददास के पदों में पूर्वानुराग को भलि भॉति चित्रित किया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"गोपी ने श्री कृष्ण के रुप, गुण, माधुर्यादि के बारे में सुना है। इस श्रवण–दर्शन से ही उसमें मिंलन की उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न होती है।" (पद) कृष्ण नाम जबते सुन्यौं आली री, भूली री भवन, हौं तो बावरी भयी री।

भर–भर आवें नयन चित हू न परत चैंन तन की दशा कछु और ही भयी री।
जेतेक नेमघर्म कीने री बहु विघ अंग अंग भयी हौं तो श्रवणमयी री।
नंददास जाके श्रवण सुने यह गति माघुरी भूरति कैंधों कैसी दयी री।।

श्री कृष्ण के नाम को सुनकर गोपी के मन में मिलन का आवेग बढ़ता है। वह तो प्रवर्धमान प्रेमोद्रेक से बाबरी सी हो जाती है। उसके नेत्रों से प्रेमाश्रुधार प्रवाहित होने लगजाती है। व्याकुलता से शरीर बेचैंन हो जाता है। समस्त नेम–धर्म श्रवणाभृत के अनुकूल फल प्राप्ति के अनुगामी हो जाते हैं। कविवर नंददास का अभिमत है – जिन श्री कृष्ण के नाम श्रवण से गोपी की यह गति हो गई है उसके माधुर्यरुप के दर्शन से उसकी क्या दशा होगी ?"

एक अन्य गोपी ने श्री कृष्ण की झलक देखी है लेकिन वह उनकी रूप माधुरी को स्पष्ट नहीं देख सकी है। प्रवर्धमान दर्शन लालसा का चित्रण देखिए –

नंद सदन गुरू जन की भीर तामें मोहन वदन नीके न देख पाऊं।।
'विन देखे जिय अकुलाय जाए दुख पाय यदपि बडरे छिन छिन उठ ध्याऊं।।
ले चल री सखि मोय यमुना के तीर जहाँ होय बलवीर देख दृगन सिराऊं।।
नंददास प्यासे को पानी पिवाय ले जिवास ले जिय की जानत हौं तो सौं कहां लौं जनाऊं।।

नंदभवन में बूढे बड़े गुरूजनों की भीड के कारण गोपी को घूंघट का परदा करना पडता है। मन में भरी अकुलाहट का अनुभव करती है। अपनी सखि के साथ यमुना तीर पर जाकर बलवीर को नैंन भर कर दर्शन करने का प्रस्ताव करती है। सखी से जिन मार्मिक शब्दों में अनुनय किया है वह प्रतिक्षण नई ध्वनि देता है –

"प्यासे को पानी पिवाय ले, जिवाय ले, जिय की जानत, हौं तो सौं कहाँ लौं जनाऊं।।

एक अन्य गोपी का प्रत्यक्ष दर्शन से होने वाले अनुराग का भाव और दर्शन के अभाव में मिलन आतुरता की नई उदभावना देखिये। गोपी को गुरूजनों के सामने अपने प्राणधन को देखने में लाज आती है। लाज ही दर्शन में व्यवधान डालने का कार्य करती है, अतः उसे कोसते हुए गोपी कहती है –

जर जावो री लाज मेरे ऐसी कौंन काज आवै कमल नयन नीके देखन न दीने।।
बनते आवत मारग में भेंट भई संकुच रही इन लोगन के लीने।
कोटि यतन कर रही री निहारवे कूं अचरा की ओट दे दे कोटि श्रम कीने।
नंददास प्रभु प्यारी ता दिन तें मेरे नयना उनहीं के अंग संग रंग रस भीने।।

ऐसी लाज को आग लग जाए जिसने कमल नयन श्रीकृष्ण को भली प्रकार देखने भी नहीं दिया। मार्ग में संकोच को दूर करने के प्रयत्न किये लेकिन सफल नहीं हुई। उसी दिन से मेरे नेत्र उनके अंग के संग ही उनके रस सिक्त दर्शनों का लाभ लेने के लिए उनके संग चले गये हैं।

विप्रलब्धा गोपी के मन में श्री कृष्ण के प्रति स्थायिभाव रति को उद्दीप्त करने हेतु उनका दर्शन तो होता है लेकिन लाज के कारण दर्शन तृप्ति का अभाव रहता है। संकोच, लालसा, श्रम आदि संचारी भाव एवं अंचरा की ओट करना, दर्शन हेतु सश्रम प्रयास करना आदि अनुभावों से रति स्थायिभाव रसरुप में प्रतिपुष्ट होता है। प्रियतम के दर्शनों से तृप्ति ने होना विप्रलम्भ श्रृंगार का निदर्शन है।

नंददास की विप्रलब्धा प्रौढ़ा पनघट पर जल भरने जाती है। वहाँ उसे प्रियतम के दर्शन होते हैं, अन्तर्घट में प्रिय का नेह पुनः पुनः दर्शन की तृषा जाग्रत करता है। मन मोहन के दर्शनों के लिए पनघट पर खड़ी रह कर प्रतीक्षा करती है। घर के गुरूजन पनघट पर होने वाले विलम्ब के प्रति आक्रोशित होंगे, यह कल्पना होती है। गोपी व्याकुल हो जाती है। अपना समस्त विवरण साथ की गोपी को सुनाने में नहीं हिचकती है, क्योंकि प्रौढ़ा विप्रलब्धा संकोच हीन होती है।

जल को गई सुघट नेह भर लाई परी है चटपटी दरश की।
इत मोहन गास उत गुरूजन त्रास चित्र लिखी ठाड़ी नाम धरत सखि परस की।।
टूटे हार फाटे चीर नयनन बहत नीर पनघट भई भीर सुधि न रही कलश की।
नंददास प्रभु सौं असी प्रीति गाढी बाढी फैल परी चायन सरस की।।

प्रत्यक्ष दर्शन से एक पाहुनी गोपी के मन में प्रेम जाग्रत होता है। वह मध्या विप्रलब्धा के समान व्याकुल कम लेकिन व्यथित अधिक होती है जैसा कि मध्या का स्वभाव होता है।

ठाड़े री खरिक मांहि कौंन को किशोर।
सांवरे वरण मन हरण बंसी धरण काम करन कैसी मति जोर।।
पवन परस जात चपल होत देख पियरे पट को चटकीलो छोर।
सुभग सांवरी छोटी घटा ते निकसि आई वे छबीली कटा कों जैसो छबीलौ ओर।।
पूछत पाहुनी ग्वार हा हा हो मेरी कहा नांउ को है चित वित चोर।
नंददास जहि चाहि चक चौंधी आय जाय भूल्यौरी भवन गमन भूल्यौ रजनी भोर।।

पाहुनी ग्वालिन ने श्याम सलोने मन हरन किशोर को खिरक में देखा है। श्याम के वेष–विन्यास तथा प्रकृति के उपादान पवन आदि से उसके में रतिभाव

उद्दीपन होता है तथा सिहरन, सभ्रम, चकाचौंध आदि संचारियों का वेग काम की अनुभूति कराता है। वह अन्य सखी से चितचोर का नाम व स्थान जानने का अनुभाव प्रदर्शित करती हुई रतिभाव की पुष्टि का निदर्शन कराती है। वह इतना व्याकुल हो जाती हैं कि घर जाना तक भूल जाती है। उसे रात–दिन श्याम का विरह सन्तप्त करता है।

प्रत्यक्ष दर्शन से सामान्य विप्रलब्धा को मात्र खेद की अनुभूति होती है। उसने श्याम के दर्शन किये हैं और उनके रुप का वर्णन कवि की वाणी से सुना है। वह कह उठती है –

'कविकी वाणी की सीमा है उसके द्वारा असीमित श्याम सुंदर के सौन्दर्य का वर्णन उसी प्रकार असंभव है जैसे चातक की चोंच में समस्त वारिद का समाजाना।

श्याम सलौंने गात है काहू को ढोटा।
आई हूं देख खिरक मुख ठाड़ौ न कछु कहन की बात।
कमल फिरावत नयन नचावत मोतन मुर मुसक्यात।
छबि के बल जगजीत गर्व भर्यौ मैंन मानों इतरात।
नख सिख रुप अनूप रुप छबि कवि पै वरन्यौं न जात।
नंददास चातक की चोंच पुट सब घन कैसें समात।

नंददास की गोपियों के पूर्वराग को मंजिष्ठ–राग कहा जा सकता है क्योकि गापियों का प्रियतम के प्रति अनुपम प्रेम शोभित भी दिखाई देता है और कभी नष्ट भी नहीं होता है। उनमें नीलीराग (जिसमें बाहरी चमक दमक तो अधिक नहीं दिखाती किन्तु वह हृदय से कभी दूर नहीं होता है) और कुसुम्भ राग (जो शोभित अधिक होता है लेकिन शीघ्र ही जाता रहता है) के दर्शन नहीं होते हैं।

नंददास के पूर्वराग का आश्रय केवल गोपियां ही नहीं है अपितु श्री कृष्ण भी आश्रय रहे हैं और आलम्बन हैं श्री किशोरी जी ! श्रीकृष्ण ने अभी तक लाडिली किशोरी के दर्शन नहीं किये हैं, उनके अनूप रुप सौन्दर्य की प्रशंसा बहुत सुनी हैं। श्री श्याम सुन्दर के मन में किशोरी जी के प्रत्यक्ष दर्शन की प्रेम भरी उत्तकण्ठा जागृत होती है। नित्य निकुञ्ज की सहचरी श्री श्याम सुन्दर को सखी के वेष में उनके आंगन में ले जाने को तैयार कर लेती हैं। पद देखिए –

चलिये कुंवर कान्ह सखी वेष कीजै, देख्यौ चाहै लाडिली कौं अंबही देख लीजै।
ठाड़ी हैं मंजन कियें आंगन अपनें, देखी न सुनी ऐसी संपति सपनें।
बड़े बड़े बार पाछें छूटे अति छाजें, मानहुं मकरध्वज चमर विराजें।
वदन सलिल कण जग मग जोती, मानों इन्दुसुधा तामें अभी मय मोती।
आधौ मोतीहार चारू उर रह्यौ लसी, कनक लता ते मानों उदय होत ससी।
पुन सुरसरी सम मोतिन के हारा, रोमावलि मिली मानों यमुना की धारा।

पीक झलकन सौहैं सरस्वती ऐनी, परम पावन देखी मदन त्रिवेनी।
अंचल उडन छवि कहिये कवन, रुप दीप शिखा मानों परसी पवन।
शिव मोहे जिन वह मोहनी जे कोई, प्यारी के पायन आज आन परें सोई।
नंददास और छवि कहां लौं कही जे, देखें ही बने ही लाल चल्यौ ही चही जे।

भक्त कवि नंददास ने किशोरी जी की रुप छवि के माध्यम से काव्य की रूपगर्विता मुग्धानायिका का अनेक उपमानों की उत्प्रेक्षाओं और रुपकों से वर्णन किया है। श्री लाडिली जी के रुप सौन्दर्य के चित्रण करने मे अपने भक्त हृदय के समस्त उन्नत भावों की एक स्थान पर संयोजना कर श्री राधा सौन्दर्य, को उत्कृष्टता प्रदान की है। शिव के अन्तर्मन को उद्वेलित करने वाला वह मोहिनी रुप जो सागर मंथन के अवसर पर अमृत बांटने के लिए श्री विष्णुभगवान् ने बनाया था, वह मोहिनी रुप भी श्री प्रियाजी के चरणों में लजाकर नतमस्तक हो जाएगा। भाव जगत का तारतम्य अवलोकनीय है – वही परात्पर ब्रह्म विष्णुरुपसे देवताओं पर कृपा करने के कारण मोहिनी रुप में उपस्थित हुए। वहीं विष्णुस्वरुप श्री कृष्ण आज श्री किशोरी जी की छवि निहारने हेतु सखी वेष में उनके आंगन में शरणागत हो रहे हैं। उक्त पद में श्री नंददास 'काव्य के जड़िया' के रुप में देखे जा सकते हैं जहाँ त्रिवेणी की नवीनतम उद्भावना, स्नेह बिन्दुओं की इन्दुसुधा में अभीमय मातियों की संभावना, वायुवेग से उड़ने वाले अंचल को "रुप दीपशिखा को पवन का स्पर्श" बताकर काव्य के उत्कृष्ट नगों को अलंकारों में जड़ते से दृष्टिगत होते हैं।

नंददास के पदों में विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत "मान" को भी भली भाँति चित्रित किया गया है। प्रियापराध कोप 'मान' कहा जाता है। इसके प्रणयमान और ईर्ष्यामान दो भेद होते हैं।

नंददास ने उक्त दोनों ही विधाओं पर उत्कृष्ट पदों की रचना की है। प्रणयमान में प्रिय और प्रिया दोनों में भरपूर प्रेम होता है, किन्तु दोनों एक दूसरे के प्रति कुपित होते हैं एक उदाहरण देखिए –

चढ बढ विडर गई अंग मान वेली तेरें सयानी।
हृदय आल वाल मध्य प्रकट भई री आली प्रतिपाली नीके कर छिन छिन रूसवै भयौ पानी।
कौंन कौंन अंगन ते निखारौं री आली अलक तिलक नयन बैंनन भ्रौंह सौं लपटानी।
नंददास प्रभु प्यारी दूती.के वचन सुन छबीली राधे मंद मंद मुर मुसक्यानी।।

प्रियतम ने प्रियाजी के मान विनोद हेतु दूती को भेजा है। दूती ने प्रियाजी के मान का बेली के रुप में बखान करते हुए 'सांगरुपक' प्रस्तुत किया है। दूती को प्रियाजी के अंग में 'मान रुपी बेली' बढ चढ़ कर विडरी हुई प्रतीत होती है। हृदय रुपी आल–बाल से प्रति फलित और प्रतिक्षण रुठने के जल से परिपोषित यह मान वेली अलक, तिलक, नयन, बयन सर्वत्र उलझ गई है। हे सयानी, इस उलझन को मैं कैसे दूर करूँ यह सुनकर प्यारी मुड़कर उसे देखती हैं और मुसकान बिखेर देती हैं। दूती

का मनोबल बढता है। वह किशोरी जी से मान छोडने हेतु मनुहार करती है तो किशोरी जी खीझ उठती हैं और आक्रोशपूर्ण कठोर बानी में कहती हैं–

"दौरी दौरी आवत मोहि मनावत दाम खरच कहु मोल लई री।
अचरा पसार के मोहि खिजावत हौं तेरे बाबा की चेरी भई री।
जारी जा सखी भवन आपने लाख बातन की एक कही री।
नंददास वे क्यों नहिं आवत उनके पांयन कछु मेंहदी दई री।।

दूती ने मन में भाँप लिया प्रिया जी बहुत हठीली है ये प्रियतम की मनुहार से ही मान छोड़ सकती हैं। ये रूखाई भी दिखाती है और प्रियतम के नाम पर मुसकाती भी हैं। इसके इस विरोधी भाव को देखने के लिए जी ललचाता है। इस भाव के पद की शब्दावलि मनन योग्य है–

तेरे री मनायवे ते मान नीकौ लागत जौ लों रही आली तौं लौं लाल ले आऊँ।
तेरी तो रूखाई प्यारे ओर कौ हँसवौ तोर मुख सोरैहू कला कौ पून्यौं चन्द बलि जाऊँ।।
चल न सकत इत पग न परत उत ऐसी शोभा फिर पाऊँ कैं न पाऊँ।
नंददास मोहि द्वय दिश कठिन भई देखवौ करूं कैंधों लाल लै आऊँ।।

दूती प्रियतम श्रीकृष्ण के पास पहुँच कर उनसे निवेदन करती है कि लालन आप स्वयं ही जाकर मानवती राधा को मनाइये, इसमें लजाने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि बड़े लोगों ने "आप काज महाकाज" होना बताया है।

आपुन चलिये लालन कीजिये न लाज।।
मोसी जो तुम कोटिक पठवौ प्यारी न मानत आज।।
हौं तो तिहारी आज्ञाकारी मो सौं कहा कहत महाराज।।
नंददास प्रभु बडरे कह गए 'आप काज महाराज'।।

यहाँ कविवर नंददास ने ' आप काज महाराज' मुहावरे का सटीक प्रयोग किया है। श्याम सुंदर के मन में उत्साह जाग्रत करती हुई दूती प्रियतम से श्री किशोरी की शोभा को निरखने का निवेदन करती है। इस पद में उपमान–उपमेयों की उत्प्रेक्षा में उद्भावना आकर्षक बन पड़ी है।

तुम पहिले तौ देखौ आप मानिनी की शोभा लाल पाछें तो मनाए ल्रीजै प्यारे हो गोविन्दा।
कर पर धर कपोल रही री नयन मूंद कमल विछाय मानों सोयौ सुख चंदा।।
रिस भरी भ्रौंह तापर भ्रमर बैठे अरबरात इंदुतर आयौ मकरंद अरविंदा।।
नंददास प्रभु ऐसी काहे कूं रूसैये बल जाकौ मुख देखे ते मिटत दुख द्वंदा।।

प्रणयमान में दूती कार्यरत गोपियां प्रिया–प्रियतम के प्रति 'तत्सुख–सुखीभाव' को धारण करने वाली होती है। प्रणयमान में विखण्डन के उपचार संग्रहीत कर प्रिया–प्रियतम का मिलन कराती है और अपनी युक्तियों से मान–निवारण कराती है। खण्डिता का पद प्रस्तुत है, जिसमें प्रियतम प्रियाजी को मना रहे हैं। प्रियाजी

का मान छोड़ने को उत्साह सा परिलक्षित भी होता हैं। इस अवसर पर अचूक युक्ति उपस्थापित करती हुई दूती का वचन इस प्रकार है –

तू न मानन देत आली री मन तेरौ मानवे कौं करत।
पिय की आरत देख मेरे जिय दया होत तेरी दृष्टि देख–देख डरत।
मो लौं कहत कहा 'मेरौ न दोष कछू' निपट हठीली धाय क्यों न अंक भरत।
नंददास प्रभु दूती के वचन सुन ऐसे अंग ढर्‌यौ जैसे आंच के लगे ते रांग ढरत।।

दूती के वचन "निपट हठीली धाय क्यौं न अंक भरत" सुनते ही किशोरी जी ने अपने मान गर्वीले शरीर को यों शिथिल कर दिया जैसे आग के पास रखने से कठोर रांग विगलित हो जाता है। प्रियतम के अंक में प्रियाजी का निढाल अंग देखकर दूती चली जाती है। किशोरी जी बहुत हठीली हैं और मानवती हैं। वे प्रियतम से सारी रात नहीं बोलती है। प्रातः काल भोर में ही निकुञ्च सहचरी साखियाँ रति केलिवृत्त जानने को उपस्थित होती हैं लेकिन किशोरी जी को इस रुप में देखकर बोल उठती हैं–

मान न घटयौ आली तेरौ घट जु गई सब रैंन।
बोलन लागे तमचर ठौर ठौर अजहु–न बोली री पिक बैंन।
कमल कली विकसी तूं न नेंक हंसी कौंन टेव परी मृगशावक नैंन।
नंददास प्रभु कौ नेह देख, हांसी आवत वे बैठे हैं रचिरचि सैंन।।

हे सखि, तुम बहुत हठीली हो। सारी रात व्यतीत हो गई लेकिन तुम्हारा मान नहीं घटा। ताम्रचूड़ (मुर्गा) तो भोर में बोल उठे लेकिन तुमने पिक जैसे मधुर वचन नहीं बोले। कमल कली विकसने लगी लेकिन तुम्हारे नेत्र विकसित नहीं हुए। प्रियतम ने कितना सुंदर शयनीय सजाया है लेकिन तुम्हारे हठीले स्वभाव को देख कर हमें हँसी आतीहै।

जब किशोरी जी ने साखियों को कोई भी प्रत्युत्तर नहीं दिया तो 'तत्सुखित्व की कामना' लिए सखी पुनःबोली –

रैंन तो घटत जात सुनरी सयानी बात, मेरौ कह्यो मानें नाहिं तोहि न सुहात री।
सुख के सोहाग भरी ऐसी कैसी टेव परी घटत ना मान तेरौ दया न आत री।
जाके दरश कों सब जग तरसत सोई , तेरे रुप बिन, रह्यौ न जात री।
नंददास नंदलाल बैठे अतिशय विहाल मुरली की धुनि सुनि तेरौ नाम गात री।।

इस प्रकार प्रणय मान के सभी उपादानों हठ, तीखेवचन, बेचैनी, वेष विन्यास की शिथिलता, साज–सज्जा का अभाव, आक्रोश, संताप आदि सभी अनुभावों तथा तदनुरुप संचारियों का भली भाँति चित्रण हुआ है।

ईर्ष्यामान का चित्रण करते हुए कवि नंददास ने अनेक खण्डिता के पद लिखे हैं। जब प्रिया जी को प्रियतम के प्रति परकीया सेवन की संभावना होती है तो 'ईर्ष्यामान'

का भाव जाग्रत होता है। 'भँवर गीत' उद्धव–गोपी संवाद में गोपियां श्याम सुंदर को गोपीनाथ के स्थान पर 'कूबरी नाथ' कहकर अपना आक्रोश व्यक्त करती हैं लेकिन खण्डिता के पदों में ''ईर्ष्यामान' का चित्रण मनोविज्ञान पर आधारित कहा जा सकता है। प्रियतम के नेत्र लाल–लाल हैं ऐसा प्रतीत होता है रात्रि जागरण करके प्रातः लौट रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि प्रियतम पीताम्बर के स्थान पर नीलाम्बर ओढे हुए हैं। प्रिया जी पूछ उठती हैं –

भले मोर आये नैंना लाल।
अपनौं पटपीत छांड नीलांवर ले विलसे उर लाई रसिक रसीली बाल।
रति जय पत्र लिखत दीनें उर स्याम घन बिन गुण माल।
नंददास प्रभु सांची कहिये फिरि प्यारे हमारे नंदलाल।।

श्याम सुंदर से प्रियाजी ने प्रश्न कर लिया कि किस रसिक रसीली बाला को लेकर विलसे हो, सत्य बताओं, आप रात्रिभर कहाँ रहे ? श्याम सुंदर बात को उडाते हुए अपने पीताम्बर का पता लगाना चाहते हैं। प्रियतमा कहती है –

उपरना वाही कें जु रह्यौ।
जाही के उर बसे श्याम घन निश को जो सुख रह्यौ।
छबि तरंग अंग अंग दृग भेद न जात कह्यौ।
नंददास प्रभु चले सैंन दै जब दावन दौर गह्यौ।

पीताम्बर तो उसीके घर रहा है, जहाँ आपने रात्रि का सुख लिया है। इसे सुनते ही उनके अंग अंग में स्पन्दन होने लगा। वे संकेत देकर जाने लगे लेकिन उन्हें दौडकर एक सखी ने पकड़ लिया। वह बोली–

जागे हो रैंन तुम सब नयना अरूण हमारे।
तुम कियौ मधुपान घूमत हमारौ मन काहे ते जु नंद दुलारे।
उर नख चिह्न तुम्हारे पीर हमारे कारण कौंन पियारे।
नंददास प्रभु न्याय श्याम घन बरसे अनत जाय हम पर झूमझुमारे।

गोपियों का श्याम सुंदर के साथ एकात्मक भाव का अनूठा चित्रण कविवर नंददास की सूझ और काव्य मनीषी की उत्तम उद्भावना का अनुपम उदाहरण है। श्याम सुंदर सारी रात जागते हैं तो जागने का प्रभाव प्रियाजी पर होता है। उनके नेत्र लाल हो जाते हैं। श्याम सुंदर ने किसी रसिक रसीली के यहाँ मधुपान किया है परिणामतः प्रियाजी का मन और मस्तिष्क घूम रहा है। श्याम सुंदर के वक्ष पर किसी गोपी ने नख क्षत कियाहै फलतः प्रिया का उर पीडित हो रहा है। कविवर नंददास प्रभु से न्याय की गुहार करते हैं – हे घनश्याम, ये कहाँ का न्याय है, आप उमडते–घुमडते तो कहीं हो और बरसते कहीं हो। राधा की एकात्मकता 'शुद्धाद्वैत–भक्ति वेदान्त दर्शन' का निसर्ग सिद्धान्त है। 'खण्डिता के पदों' में से नेत्र

और अलक की उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य प्रदर्शित करने हेतु एक पद प्रस्तुत है।

> ए आज अरून अरून डोरे दृगन लाल के लागत है अति भले।
> बंदन भरे पगन अलि मानों कुंज दलन पर चले।
> लाल की पगिया में न समात कुटिल अलक आलस झलमले।
> नंददास प्रभु पुहुपन मध्य मानों मधुप गुंज सोवत वे कलमले।।

नेत्र मानों कंज दलों पर भ्रमण करने वाले भ्रमर हैं, साथ ही पगिया के नीचे धुंधुरीले अलक मानों पुष्पों के मध्य गूंजते हुए मधुप हैं।

इस प्रकार खण्डिता के पदों में "लघुमान" का रुप देखने का मिलता है जिसमें मात्र ईर्ष्या और आक्रोश की ध्वन्यात्मक व्यंजना होती है। प्रवास वर्णन, उद्धव–गोपी संवाद (भंवर गीत) में तथा करूण भाव पूर्ण विप्रलम्भ–श्रृंगार का वर्णन 'रास–पंचाध्यायी' में देखने को मिलता है। उक्त दोनों ही प्रसंगों का काव्य–कलेवर रोला आदि छन्दों में आबद्ध है। पदों से अतिरिक्त होने के कारण इस आलेख का वर्ण्य विषय नहीं है।

इस प्रकार नंददास रचित 'विरह के पदों' में भाव और भाषा का यथा तथ्य तारतम्य काव्य शिल्प को विशेष सौन्दर्य प्रदान करता है। अष्टछाप के लिए सभी कवियों ने पद–रचना की है लेकिन भाव गुम्फन के लिए शब्द चयन ने नंददास को विशिष्ट गरिमामय पद पर अवस्थित कर दिया है। भाव के अनुसार राग और स्वर की संयोजना का ध्यान रखते हुए पदों की रचना की गई है। अलंकारों के निरायास चमत्कार और लोकोक्ति व मुहावरों के सहज प्रयोग ने पदों को विशेष चमत्कृति प्रदान की है। काव्य रसिकों ने नंददास को 'जड़िया' कहकर उन्हें युक्ति युक्त अलंकरण प्रदान किया है। किमधिकम्।

काम्यवन शोध संस्थान,
पातालेश्वर, कामाँ (भरतपुर)

नन्ददास के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती भ्रमरगीत

✍ भगवती प्रसाद देवपुरा

भ्रमरगीत का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत महापुराण है। इस पुराण के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय से भ्रमरगीत का प्रसंग प्रारम्भ होता है जो ४७ वें अध्याय तक चलता है।

उसके प्रथम दो श्लोक इस प्रकार हैं –

कृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुदभवो बुद्धिसत्तमः।।

गच्छोद्धव ब्रज सौम्य पित्रोनो प्रीतिमावह।
गोपिनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैविमोचय।।

अर्थात् वृष्णि वंश वालों में एक प्रधान पुरूष कृष्ण के मन्त्री व प्रिय सखा थे। वे साक्षात बृहस्पति के शिष्य और बड़े बुद्धिमान थे। एक दिन श्रीकृष्ण को ब्रज की याद हो आई। उन्होंने उद्धव के हाथ को अपने हाथ में ले कर कहा – हे उद्धव! तुम ब्रज जाओ। मेरे माता–पिता को आनन्दित करो और मेरे वियोग में दुःखी गोपियों को मेरा संदेश दे कर उन्हें विरह व्याधि से मुक्त करो।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने गोपियों और अपने सम्बन्ध को स्पष्ट किया एवं गद्गद् होकर उनके स्नेह की प्रशंसा की। इस पुराण में 'श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति अगाध प्रेम है' उसी के बारे में उद्धव को समझाया गया है। भागवत के उद्धव भी बिना किसी तर्क–वितर्क के, श्रीकृष्णादेश से सन्देश ले कर गोकुल गाँव की ओर चल पड़ते हैं। इस समय उनमें न तो कोई अहम् भाव था न ज्ञान का गर्व और तर्क का प्राधान्य ही।

इस महापुराण ने उद्धव का ब्रज पहुँचने का समय गो–धूलि वेला बताया है। यह वह समय था जब धूल उड़ाती गायों सहित ग्वाल बाल प्रसन्न मुद्रा में घर लौट रहे थे। पेड़ों पर बैठे पक्षी कलरब कर रहे थे, पुष्प अपनी सुरभि बिखेर रहे थे और भ्रमर अपनी मधुर गुंजार प्रदर्शित कर रहे थे। इसी प्रकार घरों में भी गो ब्राह्मणादि की पूजा हो रही थी और मन्दिरों में गूँज रहे थे आरती समय के घण्टा – नांद। उद्धव के पहुँचते ही नन्द् बाबा श्रीकृष्ण की कुशल–क्षेम पूछते हैं। समीप बैठी माता यशोदा अतीत की स्मृतियों में खोई हुई, पुत्र वात्सल्य के वशीभूत हो कर अश्रु प्रवाहित करने लगती हैं। उनके वक्ष स्थल से दुग्धधारा निसृत हो उठती है। यह स्थिति देख कर उद्धव ने उन्हें समझाना शुरू किया कि "परमेश्वर के न माता पिता हैं न स्त्री है, न पुत्र, न कोई अपना है न पराया, न उनका जन्म होता है और न ही मृत्यु।" यह प्रसंग रात्रि भर चलता है। प्रातकालः होते ही अपने कार्यो में प्रवृत्त गोपियों को उद्धव

के आने का सन्देश मिलता है। वे दौडती हुई उद्धव के पास पहुँचती हैं और उन्हें देख कर ठगी सी रह जाती हैं क्योंकि उद्धव श्रीकृष्ण से बिल्कुल मिलते–जुलते हैं। स्वरुप भी बिल्कुल वैसा है। वार्तालाप करने पर गोपियों को पता लगा कि ये आगत व्यक्ति श्रीकृष्ण नही हैं और हमारे लिए श्रीकृष्ण का संदेश लाये हैं। गोपियों ने उद्धव का स्वागत किया। वे शीघ्र ही श्रीकृष्ण के प्रेम पर व्यंग्य करने लगीं। इसी समय एक भौंरा वहाँ आता है। उसे देखकर गोपियाँ उत्तेजित हो जाती हैं और भ्रमर को प्रतीक बना कर उद्धव की प्रताडना करने लगती हैं। वे अन्योक्ति के रुप में बातें तो कहती हैं भ्रमर को सम्बोधित करके किन्तु निशाना होता है श्रीकृष्ण। यही चर्चा 'भ्रमर गीत' के नाम से अभिहित हो जाती है। गोपियाँ भ्रमर और श्रीकृष्ण की साम्यता प्रदर्शित करती हुई कहती हैं –

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा,
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भावाद्दक।
परिचरति कथं तत्पादपदमं तु पद्मा,
ह्यापि बत हत्चेता उत्तम श्लोक जल्यैः।।

अर्थात् 'श्रीकृष्ण की वृत्ति भ्रमर जैसी है। उन्होंने अपना अधरामृत पिला कर हमें ऐसे त्याग दिया जैसे तुम पुण्प–रस पीने के पश्चात् उसे तत्काल छोड़ देते हो। न मालूम लक्ष्मी उनके चरण कमल की सेवा कैसे करती हैं ? सम्भवतः उनकी उत्तम बातों ने लक्ष्मी का चित भी अपनी और खींच लिया है।'

तत्पश्चात् भौंरे को गुनगुनाता देख तथा पुरानी बातों को स्मरण कर वे उद्धव को बडी फटकार लगाती हैं। वे श्रीकृष्ण के कार्यो को स्मरण करते हुए वर्तमान में उनकी निष्ठुरता को अनुभव कर अनेक उलाहने तथा ताने देती हैं। उनकी बातों को सुन कर उद्धव बड़े प्रभावित होते हैं और श्रीकृष्ण का यह संदेश भी देते हैं–

भवतीनांवियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित।
यथा भूतानि भूतेषु रवं वाय्वग्निर्जलं मही।।

अर्थात् ' हे गोपियों, आपका मुझसे कभी वियोग नहीं हो सकता है। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से ये पाँचों तत्व समस्त पदार्थो में व्याप्त रहते हैं वैसे ही ये सर्वत्र भी व्याप्त हैं। गोपियों के विरह को शान्त करने के लिये श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है–

यथा दूर चरे प्रेष्ठे मन आविश्यवर्ततं।
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेक्षिगोचरे।।

श्रीकृष्ण के संदेश पर गोपियों ने कोई प्रतिवाद व्यक्त नहीं किया। उन्होंने उद्धव से पूछा कि ''क्या, मथुरा रहकर भी कृष्ण हमें कभी स्मरण करते है?'' उद्धव के द्वारा जब उन्हें यह बताया गया कि 'श्रीकृष्ण सदैव ही गोपियों की स्मृति बनाये

रखते हैं तो उन्हें बड़ा संतोष मिलता हैं। उनका विरह शान्त हो जाता है। भागवतकार ने लिखा है–

ततस्ताः कृष्ण संदेशैर्व्यपेत विरह ज्वराः।

अर्थात् इसके अनन्तर गोपियाँ श्रीकृष्ण का संदेश सुनकर विरह ज्वरा से मुक्त हो जाती है।

गोपियों के इस पावन प्रेम से उद्धव भी बड़े प्रभावित होते हैं। उनके मानस में ब्रज की श्रेष्ठता प्रविष्ठ हो जाती है। भागवतकार इस बारे में कहते हैं–

आसामहो चरणरेणु जुषामंह स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम।
या दुस्व्यजं स्वजनमार्यपथं चाहित्वा,
भेजुमुकुन्द पदवी श्रुतिभिर्विभृग्याम्।।

अर्थात् 'मेरे लिये सबसे प्रिय बात यह होगी कि मैं वृन्दावन धाम में ही कोई झाडी, लता या औषधि बन जाऊँ जिससे मैं गोपिकाओं की चरण–धूलि प्राप्त करता रहूँ और उनकी चरण रज लेकर धन्य हो जाउँ।

धन्य हैं गोपियाँ, जिन्होने अपने स्वजनों को छोड़ दिया, मर्यादाओं का परित्याग कर दिया और प्रभु के प्रेम को तन्मय हो कर प्राप्त कर लिया। औरों की तो बात ही क्या जबकि भगवतवाणी, उनकी विश्वासरुप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषद् आदि उनके प्रेममय स्वरुप ढूँढते रहते हैं परन्तु प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

सूर का भ्रमर गीत : वल्लभ सम्प्रदास में श्रीमद्भागवत की पर्याप्त प्रतिष्ठा है। सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य जी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया तो आचार्यजी ने श्रीमद्भागवत में उल्लिखित श्रीकृष्णलीलाओं का वर्णन करने का सूरदास जी को आदेश दिया। सूरदास ने अपनी प्रतिभा व अन्तर्दृष्टि के बल पर श्रीमद्भागवत पर आधारित 'सूरसागर की रचना की। इसी में उनका भ्रमरगीत प्रसंग भी है। इसकी अवतारणा भी पूर्व में उल्लिखित भागवत् के दशम स्कन्ध के ४६ व ४७ वें अध्याय के अनुसार ही हुई है। निश्चित ही सूरदास हिन्दी के प्रथम कवि हैं जिन्होंने श्रीमद्भागवत से भ्रमरगीत प्रसंग ले कर एक विशिष्ट परम्परा को प्रारम्भ किया। इसमें भी सूरदास ने उद्धव को प्रतीक बना कर निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय प्रदर्शित की है।

भगवान कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं तथा कंस-वध के पश्चात् वे वहीं रह जाते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व मानती थीं। उनका वियोग उन्हें क्षणमात्र के लिये भी असहा था। यशोदा का मातृ–हदय वियोगजन्य वात्सल्य से कराह उठा। नन्दजी श्रीकृष्ण को मथुरा छोड कर अकेले गोकुल लौट आते हैं। उधर श्रीकृष्ण कुब्जा से प्रेम करने लगते हैं। यह बात गोपियों को ज्ञात हो जाती है। कुब्जा का नाम सुनते ही गोपियाँ विरह–विदग्ध ही उठती हैं। माता यशोदा भी नन्दजी को, उनके अकेले

लौट आने के कारण, प्रताडित करती हैं और स्वयं मथुरा जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। वे कहती हैं –

नन्द, ब्रज लीजै ठोकि बजाय।
देहु बिदा मिलि, जाऊँ मधुपुरी, जहँ गोकुल के राय।।

इस प्रताड़ना से नन्द भी क्षुब्ध हो उठते हैं। वे भी यशोदा को जली कटी सुनाते हैं–

तब तूँ मारिबोई करति।
रिसनि आगे कहे जो आवति, अब लौं भाण्डे भरति।।

इस प्रकार सूर ने इन दोनों की मर्मव्यथा को व्यक्त किया है।

उधर गोपियों की स्मृति में श्रीकृष्ण भी प्रेम विह्वल हो कर खोये खोये से रहते हैं। वहाँ उद्धव उनके प्रिय सखा हैं। उद्धव निर्गुण भक्ति को मानते हैं और अपने ज्ञान के बल पर बड़े बड़े विद्वानो को शास्त्रार्थ में पराजित करते रहते हैं। यहाँ तक कि वे श्रीकृष्ण को भी गोपियों के सात्विक प्रेम से मुक्त करने की कुचेष्टा करते हैं। श्रीकृष्ण को उद्धव का यह ज्ञान गर्व नाममात्र भी अच्छा नहीं लगता। उनके गर्व को खण्डित करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण उन्हें गोपियों को समझाने हेतु ब्रज भेज देते हैं –

उद्धव, बेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति संदेश सुनाय मेरो, बल्लभिन को दाहु।।
काम पावक तुल में तन विरह स्वाँस समीर।
भसम नाहिन होन पावत, लोचनि के नीर।।

कहौं काहि बनाय तुम सौं सखा साधु प्रवीन।
'सूर' सुमति विचारिये क्यों, जिएँ जल बिनु मीन।।

संदेश ले कर उद्धव ब्रज की ओर चल पड़े। उद्धव को कृष्ण समझ कर गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुई, किन्तु जब उन्हें पता चला कि ये कृष्ण नहीं है तो उनके हदय विदीर्ण हो गए। फिर भी कृष्ण के प्रिय सखा होने के कारण उन्होंने उद्धव को अर्घ्य दिया, आरती उतारी और उनसे बातचीत की। उद्धव के आसपास चारों ओर गोपियों की भीड़ लग गई। गोपियाँ कृष्ण के कुशल समाचार पूछती हैं। उनकी अत्यन्त प्रेमाभक्ति से उद्धव घायल हो जाते हैं, उनकी आँखें छलछला उठती हैं। वे गोपियों से कहते हैं –

जो व्रत मुनिवर ध्यावहीं, पर पावहिं नहीं पार।
सो व्रत सीखो गोपिकाहाँ, छाँडि विषय विस्तार।।

उन्होनें निर्गुण भक्ति का मण्डन किया है और साथ ही कृष्ण के प्रेमभाव को व्यर्थ भी बताया है। उद्धव की ये बातें गोपियों को अच्छी नहीं लगती हैं। ठीक इसी समय एक भौंरा वहाँ उडता हुआ आ पहुँचता है। उसे देख गोपियों को अवसर मिलता है, वे उसी को इंगित करती हुई उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को, अपने व्यंग्य का निशाना बनाते हुए कहती हैं–

निर्गुण कौन देश को बासी।
मधुकर हँसि समुझाय, सौंह दे बूझति साँचन हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।

काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप निर्गुण कण्टक, तें राज पंथ क्यों रुँधों।।
कै तुम सिखै पठाये कुब्जा, कै कहीं स्यामधन जैंधो।
वेद–पुरान स्मृति सब ढूँढ़ो, जुवतिन जोग कहूँ धौ?
ताको कहा परेखो कीजे, जानत छाछ न दूधौ।
'सूर' सूर अक्रूर गये लै, ब्याज निबेरत ऊधो।।

इस प्रकार गोपियाँ कभी व्यंग्य से, कभी उपालम्भ से, कभी दीनता से तो कभी अनन्यता से श्रीकृष्ण के प्रति भाव विह्वल हो कर अपना सम्पूर्ण एवं अपूर्व प्रेम प्रकट करती हैं तथा उनके सानिध्य व सामीप्य को स्मरण कर अश्रुधारा प्रवाहित करने लगती हैं। इसे देखकर ज्ञानी उद्धव का ज्ञान गर्व तिरोहित हो जाता है। वे स्वयं गोपियों की अनन्य भक्ति में लीन हो कर मथुरा प्रस्थान करते हैं। वहाँ वे अपने मित्र कृष्ण को भाव विह्वल हो उपालम्भ दे बैठते हैं। वे कहते हैं–

मैं समुझाई अति, अपनो सो।
तदपि उन्हें परतीति न उपजी, सबै लखो सपनो सो।।
कही तिहारी सबे कही, मैं और कछू अपनी।
श्रवन न बचन सुनत हैं उनके, जो घट महँ अकनी।।

आगे और कहते हैं-

सुनि लीन्हो उनकी कौ कह्यो।
अपनी चाल समुझि मन ही मन, गुनि अर गाय रह्यो।।
अबलनि सौं कहि परै जापै, बात तोरि कनिकानि।
अनबोले पूरौ दे निबह्यो, बहुत दिनन सो आनि।।
जानि बूझि के हौं क्यों पठयो, सठ बावरो अयानो।
तुमहू बूझि बहुत बातन कौं, वहाँ जाहु तौ जानो।।
आज्ञा–भंग होय क्यों मोपै, गयो तिहारे ठीले।
'सूर' पठावन ही को ओरी, रह्यो जु जग सौं लीले।।

और भी कहा है-

जो पै प्रभु करूना के आलै।
तो कत कठिन कठोर होत मन, मोहिं बहुत दुख सालै।।
बहो बिरद की लाज दीनपति, करि सुदृष्टि देखौ।
मोसों बात कहत किन सनमुख, कहा अबदि लेखौ।।
निगम कहत बस होत भक्ति तैं, सोउ है उन कीनी।
'सूर' उसास छाँडि हा हा, ब्रज जल अँखियाँ भरि लीनी।।
इसका उत्तर देते हुए अन्त में श्रीकृष्ण कहते हैं–
उधो! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुंदरि कगरी, डरू कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि–गहि बाँहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत, तनु नाहीं।।
अनगन भाँति करी बहुलीला, जसुदा नंद निबाही।
'सूरदास'प्रभु रहे मौन है, यह कहि कहि पछिताही।।

और अन्त में यह कहते हैं-

हे उद्धव ! जो लोग मुझे कभी भुलाते नहीं हैं, मैं उन्हें घड़ी भर के लिए भी नहीं भुलाता हूँ। मैं अपने भक्तजनों को संकटों से सदैव दूर रखते हुए उन्हें सुखी बनाये रखता हूँ। जो मेरा भजन करता है, मैं उसका भजन करता हूँ। मैं अपने भक्तों की सदैव सहायता करता रहता हूँ। मैंने आज तुम्हारे सामने अपने उस रुप को स्पष्ट कर दिया है जिसे अभी तक तुमसे छुपाये रक्खा था; अर्थात् मैं भक्तिभाव व प्रेम द्वारा वश में हो सकता हूँ, योग साधना द्वारा नहीं।

इस प्रकार सूरदास द्वारा विर्निर्मित भ्रमरगीत प्रसंग के इस अन्तिम पद में श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण छद्म आवरण को दूर कर भक्ति के एकान्त महत्व को स्थापित कर देते हैं। यही उनका मूल उद्देश्य भी था।

नन्ददास का भ्रमरगीत :– सूरदास के अनन्तर नन्ददास का भ्रमरगीत ही उल्लेखनीय है। नन्ददास यों भी अष्टछापी कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। अतः उन्होंने अपने भ्रमरगीत द्वारा अपनी कीर्ति में वृद्धि ही की है। इस भ्रमरगीत में उद्धव सीधे गोपियों के पास जा पहुँचते हैं और श्रीकृष्ण का सन्देश उनके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। गोपियाँ अपने तर्कों द्वारा उद्धव को हतप्रभ करने का प्रयत्न करती हैं। निर्गुण व सगुण तथा ज्ञान व भक्ति पर दोनों ओर से तर्क–वितर्क होते हैं। उद्धव कहते हैं– 'न उसके मुख है और न ही हाथ–पैर तथा न उनके कोई माता पिता हैं। वे अजन्मा हैं, अनादि हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। इसे सुनकर गोपियाँ उद्धव को निरूत्तर करने का प्रयास करते हुए कहती हैं –

जो मुख नाहित हुतो, कहो किन माखन खायो।
पायन बिन गो-संग कहो, बन बन को धायो ?
आँखिन में अंजन दयो, गोबरधनलयो हाथ,
नन्द-जसोदा पूत हैं, कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।।

सखा सुन स्याम के।

नन्ददास के भ्रमरगीत में तर्क के साथ साथ दार्शनिकता भी है। सूरदास के भ्रमरगीत में कुब्जा और राधा का नाम अनेक बार आता है, पर इनके भ्रमरगीत में कुब्जा का नाम तो है किन्तु राधा का नाम कहीं नहीं आया है। इनकी गोपियाँ अत्यन्त भावुक हैं। वे कृष्ण पर अनुरक्त हैं किन्तु इस समय कृष्ण द्वारा किये हुए छल-कपट लोभादि को ढूँढ निकालती हैं-

कोउ कहे री बिस्व माँझ जेते हैं कारे।
कपट - कुटिल भी कोटि परम मानुष मसिहारे।
एक स्याम तन परखि कै जरत आजु लौं अंग।
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुजंग।।

कहाँ इनको दया।।

कोउ कहे रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो।
मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो।।
बेद-उपनिषद् जो मोहन गुन गहि लेत,
तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संथादेत।।

जोग चटसार में।।

कोउ कहे रे मधुप निगुन इन बहु करि जान्यों।
तर्क बितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो।
पै इतनो नहिं जानहीं, वस्तु बिना गुन नाहिं,
निर्गुन भए अतीत के, सगुन सकल जग माहिं।

सखा सुन स्याम के।।

कोउ कहे रे मधुप, तुम्हैं लज्जा नहिं आवै।
सखा तुम्हारो स्याम, कूबरीनाथ कहावै।।
यह नीची पदवीहुति, गोपीनाथ कहाय,
अब जदुकुल पावन भयौ, दासी जूठन खाय।

मरत क़ह बोल की।।

कोउ कहे अहो मधुप, स्याम जोगी, तुम चेला,
कुब्जा तीरथ जाय, कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै, आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसै, तुमरो गाहक नाहिं।

पधारौ रावरे।।

इसके पश्चात् समस्त गोपिकाएँ अश्रु प्रवाहित करने लगती हैं। ऐसा लगता है कि उनका ह्रद्रय विदीर्ण हो गया है। उनकी इस स्थिति को देखकर उद्धव चित्रलिखे से रह जाते हैं। उसका वर्णन करते हुए नन्ददास कहते हैं –

पुनि पुनि कहि हरि कहन, बात एकान्त पठायो,
मैं इनकौ कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तो निज मरजाद सो ग्यान कर्म कह्यो रोपि,
ये सब प्रेमासक्ति है, कुल लज्जा करि लोपि।

धन्य ये गोपिका।।

जो ऐसे मरजाद मेटि, मोहन कौं ध्यावैं,
काहे न परमानन्द प्रेम पदवी कौ पावै,।
ग्यान जोग सब कर्म तें, प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हौं हीरा आगे काँच।।

विषमता बुद्धि की।।

धन्य धन्य जे लोग, भजन हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे ?
मेरे या लघु ग्यान को उर में मद रह्यों बाध,
अब जान्यो ब्रज प्रेम को, लहत न आधौ–आध।।

बृथा स्रम करि मर्यो।।

अन्ततः उद्धव गोपियों के पेम के आगे नत मस्तक हो जाते हैं। वे अपने सारे ज्ञान विस्मृत कर बैठते हैं। गोपियों के तर्क से वे परास्त हो जाते हैं। स्पष्ट है, नन्ददास की गोपियों का बौद्धिक स्तर उच्चकोटि का है।

अपने ज्ञान की गठरी कालिन्दी में प्रवाहित और गोपियों के भक्तिभाव से परिपूर्ण प्रेम को अपने हृद्य में स्थापित कर उद्धव मथुरा की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। वे गोपियों के गुणों का गान करने लग जाते हैं और मोहन के गुण भूल जाते हैं। वे गोपियों को दण्डवत करते हैं और उनकें दुःख को अपने श्याम की निर्दयता का प्रतिरुप मानते हैं। वे कृष्ण के समीप पँहुचते हैं और कहते हैं –

करूनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबहीं लौं नहिं लखौ, तबहि लौं बांधी मूठी।
मैं जान्यो ब्रज जाय कै तुम्हरो निर्दय रुप,
जो तुमको अवलम्बहीं, तिनकौं मेलो कूप।।

कौन यह धर्म है।।

पुनि पुनि कहैं अहो स्याम, जाय बृन्दावन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपिन संग लहिये।
और काम सब छाँडि कै, उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अबही नेह सनेहु।।

करोगे तौ कहा।।

श्रीकृष्ण पूर्णतया समझ जाते हैं कि उद्धव के ज्ञान का घमण्ड दूर हो गया है और वे गोपियों के प्रेम में डूब चुके हैं; अतः वे उद्धव के कठोर शब्दों को भी आत्मसात कर लेते हैं। गोपियों की दशा के विवरण से उनके दोनों नेत्र आँसुओं से भर उठते हैं। वे अपनी 'सुधि' खो बैठते हैं। रोम रोम में गोपियाँ समाहित हो जाती हैं। थोड़ी देर पश्चात् जब वे प्रकृतिस्थ होते हैं तो उद्धव से कहते हैं –

है सचेत कहि भलो सखा, पठयो सुधिल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन।
मौं में उनमें अन्तरो, एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यौं देखो मौं माहि वै, त्यौं मै उनकी माहिं।।
तरंगनि बारि ज्यौं।।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने -

गोपी रुप दिखाया तबै मोहन बनवारी,
ऊधौ भ्रमहिं निवारि अरि मुख मोह की जारी।
अपनौ रुप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय,
'नन्ददास' पावन भयो, जो यह लीला गाय।।
प्रेम रस पुंजनी।।

इस प्रकार स्पष्ट है नन्ददास का भ्रमर गीत, भ्रमरगीत परम्परा में एक सुन्दर व सफल रचना हैं।

परमानन्ददास का भ्रमरगीत - परमानन्द दास अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने भी भ्रमरगीत से सम्बद्ध कुछ पद लिखे हैं। हालांकि उनका विस्तार सूरदास अथवा नन्ददास की भाँति नहीं है। चौपाइयों और साखी छन्दों के सहारे इनका भ्रमरगीत विनिर्मित है। इनके भ्रमरगीत में 'मधुकर' शब्द अवश्य मिलता है किन्तु भ्रमर को कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। अपने पूर्ववर्ती कवियों के आधार पर इन्होंने भी ज्ञान का खण्डन और भक्तिमार्ग का मण्डन किया है। इनकी वर्णन पद्धति सूरदास से प्रभावित है। परमानन्ददास के उद्धव जब गोपियों को योग का सन्देश देते हें तब उसे वे निरर्थक मानती हैं। वे तो श्रीकृष्ण की मुरली की स्वर लहरी में मुग्ध थीं। अतः उन्हें इस निर्गुण सन्देश से पर्याप्त यन्त्रणा होती है–

मोहन, वह क्यों प्रीत बिसारी।
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी।।
एक दिवस खेलत वनि भीतर बैन सुहना संवारी।
बीनत फूल गयो चुभि कंटक, ऐसी बिथा बियारी।।
हम पर कठिन हृदय अब कीनों, लाल गोवर्धनधारी।
'परमानन्द' बलवीर बिना हम, मरत विरह की जारी।।

इस प्रकार परमानन्द दास के उद्धव गोपियों की इस दीन दशा से दुःखी हो जाते हैं। वे उनके प्रेम प्रभाव से प्रभावित हो कर मथुरा लौट आते हैं और अत्यन्त भावपूर्ण शब्दों में गोपियों की भक्ति भावना का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं–

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात।
तुम बिन कान्ह कमल दल लोचन, जैसे दुल्ह बिन जात बरात।।
वे ई मोर, कोकिल वेई, वेइ पपीहा हैं वन बोलत।
वेई ग्वाल, गोपिका वेई, वेई गोधन कानन डोलत।।
यह सब सम्पत्ति नन्द गोप की तुम्हारे प्रसाद रमा के नाथ।
'परमानन्द' प्रभु एक बार मिलि, यह पतियाँ लिखी मेरे हाथ।।

इसी के साथ परमानन्द दास का भ्रमरगीत समाप्त होता है।

यह कहा जाता है कि अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास तथा चतुर्भुजदास ने भी भ्रमरगीत के बारे में कुछ पद लिखे हैं जो गोपियों की विरह दशा को उद्‌घाटित करते हैं। किन्तु इनके पदों में भ्रमरगीत का नाममात्र ही वर्णन है।

भक्तिकाल के अन्य कवियों में महाकवि तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली) ने भी गोपियों का विरह वर्णन किया है एवं उद्धव के ज्ञान का अत्यन्त दीनता व विनयशीलता से खण्डन किया है। इसी सन्दर्भ में रसखान, मलूकदास आदि का नाम भी लिया जाता है।

रीतिकाल में भी मतिराम, देव, घनानन्द, पद्‌माकर, सेनापति, भिखारीदास आदि ने इस विषय पर अपनी कलम उठाई है। यही स्थिति आधुनिक काल के भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एवं बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' की भी है। इन्होंने फुटकर रचनाओं में भ्रमरगीत से सम्बन्धित विचार व्यक्त किये हैं।

सत्यनारायण 'कविरत्न' का भ्रमर - दूत : सत्यनारायण कविरत्न भावुक तथा सरल, शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे। इन्होंने जिस ढंग से भ्रमर दूत की रचना की है वह पर्याप्त प्रभावोत्पादक एवं अनूठी है। उसमें श्रीकृष्ण–भक्ति के साथ– साथ स्वदेश प्रेम का भी श्रेष्ठ, सुन्दर समन्वय है। इन्होने भ्रमरगीत प्रसंग को भ्रमरदूत के नाम से प्रस्तुत किया है और उनमें नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं। इस भ्रमरदूत में न गोपियाँ न उद्धव और न सगुण निर्गुण की ही चर्चा है।

श्रीकृष्ण मथुरा चले गये हैं वहाँ से वे द्वारिका प्रस्थान कर जाते हैं। माता यशोदा उनसे मिलने के लिए व्याकुल हैं। कवि उनका वर्णन करते हुए कहते हैं

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमती माई।
स्याम विरह अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई।।
जिय प्रिय हरि दरसन बिना, छिन छिन परम अधीर।
सोचति मोचति निसिदिना, निसरतु नैननु नीर।।
बिकल, कल ना हियें।।

इसके पश्चात् वे उन बातों को याद करती हैं जो कृष्ण के बचपन की थीं – श्रीकृष्ण हिण्डोले मे झूलते हैं गायों को चराकर लौटते और आवाज देते हैं, अनेक क्रीड़ाएँ करते हैं, सुन्दरराग में 'अलापते' हैं तो –

सुधि बुधि तजि, माथौ पकरि, करि करि सोच अपार।
दृगजल मिस मानहूँ निकरि, बही बिरह की धार।।
कृष्ण रटना लगी।।

कहति बिकल मन महरि, कहाँ हरि ढूँढन जाउँ।
कब गहि लालन ललकत, मन गहि हृदय लगाउँ।।
सीरी कब छाती छारौ, कब सुत दरसन पाउँ।
कबै गंद निज मन भरौं, किहिं कर धाई पठाउँ।।
संदेश स्याम पै।।

और भी कहते हैं -

कौने भेजौं दूत, पूत सौ बिथा सुनावे!
बातन में बहराई, जाई ताकों यहाँ लावे।
त्यागि मधुपुरी सों गयो, छाँडि सबन कौ साथ।
सात समुन्दर पै भयौ, दूरि द्वारिकानाथ।।
जाइगौ कौ वहाँ।।

इस प्रकार माता अपनी वात्सल्य विह्वलता प्रकट करती हैं। तब श्रीकृष्ण उनको सन्तुष्ट करने के लिए भ्रमर के रुप में स्वयं उपस्थित हो जाते हैं –

विलपति, कलपति अति जबै, लखी जननि निज स्याम।
भगत–भगत आए तबै, भाए मन अतिराम।।
भ्रमर के रुप में।।

माता यशोदा श्रीकृष्ण को भ्रमर के रुप में देख कर जो कुछ उनसे कहती हैं उसमें हमारे देश की दासता के दिनों का दर्द भी अभिव्यक्त हुआ है।

जननि, जन्मभूमि सुनियत स्वर्ग हूँ तें प्यारी।
सो तजि सबरो मोह, साँवरे तुमनि बिसारी।।
का तुम्हारी गति मति भई, जो ऐसो बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताकौ पर्‍यो प्रभाव।।
कुटिल विष कौ भर्‍यौ।।

इस माध्यम से कवि ने भारत जननी के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। भ्रमरदूत के ४५ एवं ५० वें छन्द में कविरत्न सत्यनारायण जी कहते हैं–

पहली सी नहिं जमुनाहू में अब गहराई।
जल कौ थल अरू थल कौ जल अब परत लखाई।।
कालीदह को ठौर जहँ, चमकत उज्ज्वल रेत।
काछी, माली करत हैं, अपने अपने खेत।।
घिरै झाउनि सों।।

नित नव परत अकाल, काल कौ चलत चक्र चहुँ।
जीवन को आनन्द न दैख्यौ जात यहाँ कहुँ।।
बढ्यो यथेच्छाचार कृत जहँ देखो तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत, दिन दिन आर्य समाज।।
दिनन के फेर सों।।

इस प्रकार कवि के भ्रमरदूत में माता यशोदा की वात्सल्य विह्लता एवं देश की दासता के दिनों की दुर्दशा का अद्‌भुत समन्वय है।

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का उद्धव शतक – इस काव्य ग्रंथ मे गोपियों व कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली उस घटना का चित्रण है, जो पूर्ववर्ती कवियों के द्वारा भ्रमरगीत के रूप में वर्णित है।

भगवान श्रीकृष्ण अपने ज्ञानी मित्र उद्धव को संदेश वाहक के रुप में गोकुल भेजते है। उद्धव वहाँ पहुँच कर गोपियों से मिलते उनसे ज्ञान व योग सम्मत वार्तालाप करते और निर्गुण भक्ति का उपदेश देते हैं। गोपियाँ प्रेमातुर हो कर उनसे श्रीकृष्ण का सन्देश पूछती हैं वे निर्गुण भक्ति का संदेश सुनाते हैं, किन्तु गोपियाँ उनके ज्ञान का विषय नहीं समझती और न समझना चाहती हैं। वे पुनः पुनः पूछती है कि हमारे प्यारे कृष्ण कब आएँगे और हम कब उन्हें देखेंगी–

उधो कहौ सूधो सौ सनेह पहिलें तै यह,
प्यारे परदेश तैं कबै धौं पग परिहैं।
कहै'रत्नाकार' तिहारी परिबातनि में,
मीड़ि हम कबलौं करेजा मन मारिहैं।
लाइ लाइ पाती छाती कबलौं सिरेहैं हाय,
धरि धरि ध्यान धीर कबलगि धारि हैं।
बैननि उचारि हैं उराहनौ कबेधौं सबे,
स्याम को सलोनो रुप नैननि निहारि हैं।।

उनका दूसरा प्रश्न है कृष्ण वहाँ क्या करते हैं? क्या कभी –

जाई जमुन तट पै कोउ बट छाहिं माहिं,
बाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं।।

उद्धव उन्हें योग का अनेक प्रकार उपदेश देते हैं किन्तु वे नाम मात्र भी उनके चक्कर में नहीं आती हैं। वे इस बात को याद करती हैं कि एक बार अक्रूर आये थे और विश्वासघात कर के श्रीकृष्ण को मथुरा ले गये थे। अतः अब वे उद्धव का विश्वास भी नहीं करतीं–

लै गयो अक्रूर तब सुख मूर कान्ह,
आये तुम आज प्रान–ब्याज उगहन कौ।।

साथ ही वे समझती हैं कि उद्धव को श्रीकृष्ण ने नहीं ,कुब्जा ने भेजा है। वे कहती हैं–

रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरी जान उधौ ! क्रूर कुब्जा पठाये हैं।

इसी प्रकार गोपियों की अथाह भक्ति में उद्धव का ज्ञान विलुप्त हो जाता है। वे चित्रलिखे से खड़े रह जाते हैं। उनका ज्ञान और योग, भक्ति और प्रेम के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। वे पराजित हो कर श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं और कहते हैं–

रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते,
ज्ञान, गुन, गौरव के अति उदगार मैं।
कहे 'रत्नाकार' पै चातुरी हमारी सबै,
कितधौं हिरानी दसा दारून अपार में।।
उड़ि अधिरानी किधौं ऊरध उसासनि में,
बहिधौं बिलानी कहूँ आँसुनी की धार में।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि में,
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार में।

संक्षेप में हम कह सकते है कि रत्नाकर जी ने उद्धव शतक में जो मर्मस्पर्शी भाव–व्यञ्जना की है, वह उद्भुत है।

प्रियप्रवास का भ्रमरगीत :– श्रीकृष्ण मथुरा में माता यशोदा, गोपियों तथा ब्रजवासियों को जब स्मरण करते हैं तो अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। वे उनसे मिलने का प्रयत्न भी करते हैं किन्तु मथुरा की तत्कालीन राजनीति के पेचीदे पचड़ो में उलझे रहने के कारण वे वहाँ नहीं जा पाते हैं। अतः वे अपने प्रिय मित्र उद्धव को अपना सन्देश लेकर गोकुल भेजते हैं। अन्य काव्यों के विपरीत उद्धव मथुरा से गोकुल जाते समय मार्ग के प्राकृतिक दृश्यों की छटा तथा गोवर्धन महत्ता, गरिमा और उच्चता को देखते चलते हैं। अनेक प्रकार के पुष्पों, वृक्षो तथा यमुना के सौन्दर्य को देख देख कर उद्धव आगे बढते जाते हैं। गोकुल में कृष्ण सखा उन ब्रजवासियों को ज्ञानोपदेश पसन्द नहीं आता, माता कहती हैं–

प्यासा प्राणी श्रवण कर के वारि के नाम ही को,
क्या होता है पुलकित कभी, जो उसे पी न पावे।
हो पाता है कब तरणि का नाम ही त्राणकारी,
नौका ही है शरण जल में मग्न होते जनों की।।

वे कहती हैं–

"हमारे द्वारा कृष्ण का नाम लेना ही पर्याप्त नहीं है। हमें तो उनके साक्षात दर्शन की अभिलाषा है। मेरे हृदय में श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास से पूर्व की सुखमय भावनाएँ, कल्पनाएँ और स्मृतियाँ जो उठा करती थीं, उनके चले जाने से दुःख रुपी ओलावृष्टि से सबका नाश हो गया है। मेरा ही नहीं, प्रकृति का प्रांगण भी ध्वस्त हो गया है–

सूखे जाते सकल तरू, नष्ट होती लता हैं,
निष्पुष्पा हो विपुल मलिना बेलियाँ हो रही हैं।

स्पष्ट है, यशोदा की जीवन संजीवनी कृष्ण के पुनर्मिलन की आशा ही है। इसके आधार पर ही उनका जीवन टिका हुआ है। इसके बाद उद्धव राधा से मिलते हैं और उन्हें श्रीकृष्ण का सन्देश देते हैं। राधा तो पहले ही श्रीकृष्ण प्रेम को संसार व समाज प्रेम में परिणत कर चुकी थीं। उद्धव के आने के पूर्व ही एक दिन वे पवन को दूत बना कर, उससे निवेदन करती हुई, मथुरा भेजती हैं–

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी,
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले और चला जा।
छू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आजा,
जी जाऊँगी हृदय तन में मैं तुझी को लगा के।।

राधा अत्यन्त विह्वल हो कर अश्रु बहाती हुई ब्रज में बैठी ही नहीं रही बल्कि व्यष्टि हित को छोड़ समष्टि हित के लिये आत्मोत्सर्ग करने हेतु खड़ी हो जाती हैं। वे अपने स्वार्थ का दमन कर कृष्ण के आदर्श को स्वीकार करती हैं। श्रीकृष्ण से मिलन की आकांक्षा को दमित कर वे सोचती हैं कि मैं अपने प्रेम के लिए अपने प्रिय को कर्त्तव्य विमुख क्यों करूँ। प्रेम और कर्त्तव्य में संघर्ष उत्पन्न हो अथवा व्यष्टि व समष्टि के हित में से एक को चुनना हो तो फिर अपने स्वार्थ की ही बलि देनी पड़ती है। राधा आदर्श प्रेमिका है। वह अपने हृदय के प्रबल प्रेम को दबाकर, लोकहित को चुनती हैं। वे कहती हैं–

प्यारे आवें, सुवचन कहें, प्यार से गोद लेवें,
ठण्डे होवें, नयन दुःख हो दूर, मैं मोद पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उर के और ये भाव भी हैं,
प्यारे जीवें, जग हित करें, गेह चाहे न आवें।।

आगे वे फिर कहती हैं -

सच्ची यों है न निज सुख के हेतु मैं मोहिता हूँ।
संरक्षा में प्रणयपथ के भावतः हूँ संयत्ना।।

ब्रजवासियों में तथा नन्द यशोदा में राधा का सेवा भाव व्याप्त है। वे सब उसी के आधार पर अपनी अपनी वेदना को दूर करने का प्रयास करते हैं। इसी पथ पर चलकर राधा को श्रीकृष्ण के असीमरूप की झाँकी मिलती है :–

मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।।

तदन्तर अपने प्रियतम के व्यष्टि रुप को परमात्मा में विलीन कर देती हैं –

पाती हूँ विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राण प्यारा,
ऐस मैनें जगतपति को, श्याम में ही विलोका।।

अन्त में श्रीकृष्ण की भाँति अपने को लोक–सेवा में ही समर्पित कर देती हैं। कवि कहता है –

वे छाया थीं सुजन जन शिर की शासिका थीं खलों की,
कंगालों की परम निधि थीं, औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थी बहिन, जननी थीं अनाथाश्रितों की,
आराध्या थीं ब्रज अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं।।

राधा के इस विश्व–प्रेम को देख कर महाकवि हरिऔधजी प्रभु से प्रार्थना करते हैं–

सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय हृदया, विश्व प्रेमानुरक्ता।
है विश्वात्मा! भरत – भुवि के अंक में और आवें,
ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न हैति।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्धव जब राधा से वार्ता करते हैं तब भी राधा अश्रुधारा बहाती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती हैं। वे समाज सेवा की भावना को ही अभिव्यक्त करती हैं। दुःखी प्राणियों के दुःखो का उन्हें ध्यान रहता है। समाज सेवा के श्रेष्ठ भावों को अपने हृदय में स्थान दे कर, उद्धव के द्वारा श्रीकृष्ण को यह निवेदन भेजती हैं –

जा के मेरी विनय इतनी नम्रता से सुनावें,
मेरे प्यारे कुँवरवर को आप सौजन्य द्वारा।
मैं ऐसी हूँ, न दुःख से कष्टिता, शोकमना,
हा! जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुःखों से।।

इसके पूर्व उद्धव गोपियों से भी मिलते हैं........ उनसे बातें भी करते हैं। उनके प्रेम मार्ग को ज्ञान मार्ग द्वारा परिवर्तित करने की चेष्टा भी करते हैं, किन्तु गोपियों ने भी राधा के समाज सेवा के आदर्श को स्वीकार कर लिया है। अतः न वे हाय हाय करती हैं न अश्रु प्रवाहित ही करती हैं। श्रीकृष्ण का विरह वहन करते हुए भी वे परिस्थितिजन्य विवशता के कारण, विवेकपूर्वक सन्तोष धारण करती हैं।

निश्चित ही प्रिय प्रवास में श्रीकृष्ण का, भ्रमरगीत कथा का, नवीन रुप प्रस्तुत हुआ है। यों तो इस ग्रंथ में भ्रमरगीत परम्परा की कड़ी अवश्य विद्यमान है, किन्तु नवीन दृष्टिकोण रखने से इस ग्रंथ का भ्रमरगीत प्रसंग भी अपने आप में नवीन हो गया है और यही कारण है कि न इसमें ज्ञान पर प्रेम की विजय है और न ही उद्धव गोपियों का तर्क वितर्क है। इसमें तो केवल सामाजिक भावों की अभिव्यञ्जना ही दिखलाई देती है। समय, युग के प्रभावानुसार राधा और श्रीकृष्ण का समष्टिरुप सुन्दरतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। लगता है, हरिऔध जी का उदेश्य प्राचीन रुढ़ियो को छिन्न भिन्न करके नवीन क्रांतिदर्शी आदर्शों को स्थापित करने का ही रहा है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'द्वापर' का भ्रमरगीत प्रसंग - श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धव गोकुल जाते हैं। माता यशोदा के दुःख को देखकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं–

अम्ब यशोदे, रोती है तू ?
गर्व क्यों नहीं करती ?
भरी भरी फिरती है तेरी,
आँचल धन से धरती।
अब शिशु नहीं, सयाना है वह,
पर तू यह जाने क्या ?
आया है वह तेरी माखन–
मिसरी ही खाने क्या ?
निकला है जिस व्रत को लेकर,
माँ, तेरा वनमाली।
पूरा किये बिना, घर कैसे
लौटे वह बलशाली ?
तेरा रोदन वहाँ गूँज कर,
बाधा विघ्न न डाले।
मंगल मना यहाँ तू, सुख से,
स्वकर्त्तव्य वह पाले।।

माता को समझाने के पश्चात् उद्धव गोपियों के पास पहुँचते हैं और कहते हैं--

अहो, प्रीति की मूर्ति, जगत में,
जीवन धन्य तुम्हारा।
कर न सका अनुकरण कठिनतम,
कोई अन्य तुम्हारा।।
चपल इन्द्रियों को भी तुमने,
तन्मय बना दिया हैं।
पावन हुआ पाप भी जिसमें,
वह पथ जना दिया है।।
धन्य दूरता ही प्रिय की, जो
और निकट ले आवे।
चर्मचक्षुओं के बदले यह,
आत्मा उसकी पावे।।
प्राप्य अन्ततः वह परमात्मा,
आत्मा ही के द्वारा।
मिथ्या माया का प्रपंच है,
दृश्यमान यह सारा।।
एक एक तुम सब राधा हो,
कहाँ तुम्हारी राधा ?
नहीं दीखती मुझे यहाँ, यह,
हुई कौनसी बाधा ?
सच कहता हूँ, मैने अपना,
राम तुम्ही में पाया।
किन्तु तुम्हारा कृष्ण कहाँ मैं,
यही पूछने आया।।

गुप्त जी की गोपिका उत्तर देती है--

राधा का प्रणाम मुझसे लो,
श्याम सखे तुम ज्ञानी।
ज्ञान भूल बन बैठा उसका,
रोम रोम ध्रुव ध्यानी।।
न तो आज कुछ कहती वह,
और न कुछ सुनती है।
अन्तर्यामी ही यह जानें,
क्या गुनती बुनती है।

कर सकती तो करती तुम से,
प्रश्न आप वह ऐसे–
''सखे, लौट आये गोकुल से,
कहो, राधिका कैसे ?
राधा हरि बन गई हाय ! यदि,
हरि राधा बन जाते।
तो उद्धव मधुवन से उलटे,
तुम मधूपुरी ही जाते।।

इसी बीच में एक 'अलि' उड़ता हुआ आता है। राधा की सखियाँ उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं–

सखि, वह आया, इस कलिका में,
क्या कुछ शेष रहा था ?

किन्तु शीघ्र ही त्यौरियाँ चढ़ाकर वे उद्धव रुपी भौंरे को कहती हैं –

सावधान अलि ! हट कर लेना,
तू प्यारी की झाँकी।

राधा, विरह में पूर्णतया डूब कर अपने को कृष्ण समझने लग जाती हैं और वे राधा को ही आवाज देने लग जाती हैं, कवि के शब्दों में –

डूबी सी वह बीच बीच में,
पलक खोल कर आधे।
'चिल्ला उठती है विलोल सी,
बोल राधिके, राधे !'
ज्ञान –योग से हमें हमारा,
यही वियोग भला है।
जिसमें आकृति, प्रकृति, रुप गुण,
नाट्य, कवित्व कला है।।
गोपियाँ उद्धव को उपालम्भ देती हुई कहती हैं –
होगा निर्गुण, निराकार वह,
छली तुम्हारे लेखे।
हमसे पूछो तुम, उसके गुन–
रूप हमारे देखे।।
चाहे क्या राधा वियोगिनी,
स्वयं योग लाये तुम।
आहा ! क्या ज्ञानग्नि रूप में,
भाग्य भोग लाये तुम।।

क्या जानें, ज्ञानी ने उसका,
ज्ञान कहाँ, कब सीखा।
ज्ञान और अज्ञान हमें तो,
यहाँ एक सा दीखा।।

इसके पश्चात् गोपियाँ श्रीकृष्ण के पिछले जीवन का वर्णन करने लग जाती हैं और अपने तर्कों के माध्यम से ज्ञान योग की धज्जियाँ उडाते हुए वे कहती हैं –

ज्ञान योग ले कर सुषुप्ति ही,
तुम न सिखाने आये ?
जागृति को समाधि निद्रा का,
स्वप्न दिखाने आये।।

नाम मात्रा का ब्रह्म तुम्हारा,
रहे तुम्हें फलदायक।
उद्धव,नहीं निरीह हमारा,
नटवर–नागर–नायक।।

निज विराट को छोड़ सूक्ष्म से,
कौन यहाँ सिर मारे ?
धार सके उसको जो जितना
जी भर भर कर धारे।।

कुछ चिढती हुई गोपिकाएँ कृष्ण के ब्रज न आने के कारण उद्धव से इस प्रकार पूछती हैं –

उद्धव, कहो नहीं लौटा क्यों,
हाय! हमारा राजा ?
बजा यहाँ उसके विरूद्ध था,
क्या विप्लव का बाजा ?

सिर माथे उस मनोज्ञ को,
हमने यहाँ लिया था।
लोक और परलोक, सभी कुछ,
अपना सौंप दिया था।।

कवि के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं – "जो योग तुम हमें प्रदान कर रहे हो, वह हमारे लिए रोग है। भला इस 'विष' को हम कैसे स्वीकार कर सकती हैं ? हमने तो सदा सर्वदा श्रीकृष्ण के अधर रस का ही पान किया है। आज चाहे मथुरा में कुब्जा या अन्य कोई 'राधा के धन' का हरण कर ले किन्तु –

कृष्ण उसीका केश पक्ष है,
सेंदुर राग उसी का !

अन्त में गोपिकाएँ उद्धव को समझाती हुई कहती हैं -

योग–वियोग हो चुके उद्धव,
चलें सन्धि विग्रह अब।
रस की लूट हुई मनमानी,
पलें नियम – निग्रह अब।।
मुरली तो बज चुकी बहुत, अब
शंख फुँकेंगे सीधे।
दूर मयूर पलेंगे रण में,
गीध गुणों के गीधे।।

और भी कहती हैं –

राधा जब तक है अमानिनी,
करें कृष्ण मनमानी।
उसमें यह अहंभाव तो आवे,
भरें न आ कर पानी।।
चरणों में न पड़ें तो कहना,
मुकुट रत्न, मालाएँ।
एक यही आशा लेकर है,
बैठी ब्रज बालाएँ।।

आगे गोपियाँ कहती हैं – "मथुरा में ही क्या, श्रीकृष्ण सारे संसार को छान डालें तो राधा के समान बहुमूल्य रत्न उन्हें कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। राधा की कीर्तिअमर है। कृष्ण को यहाँ आकर आखिर उन्हें मनाना ही होगा। हम सब तो राधा के मुखारविन्द में ही 'श्याम' के दर्शन पाती हैं। अन्तः में हार थक कर, इन गोपियों की जली–कटी सुनकर उद्धव राधा के दर्शनों की आकांक्षा करते हैं। गोपियाँ उन्हें कहती हैं –

यह क्या कहते हो तुम उद्धव,,
उसकी पद रज लोगे ?
उसे प्रणाम करोगे, तो फिर,
आशिष किस को दोगे ?
क्षमा करो चापल्य हमारा,
यही बहुत हम मानें,
चलो, करा दूँ दर्शन तुमको,
पर वह श्याम न जाने।।

उद्धव से बाते करती हुई गोपियों को राधा के पास से आये हुए लम्बा समय हो जाता है। राधा उनको ढूँढती हुई तथा सखी ! सखी ! कहती हुई

इधर ही आ निकलती है। उद्धव उनका दर्शन करना ही चाहते थे, इसलिए गोपियाँ उद्धव से कहती हैं –

लो, वह आप आ रही देखो,
'सखी, सखी, ' चिल्लाती।

उद्धव दृष्टि उठा कर उधर देखते हैं तो वे आश्चर्यचकित हो उठते हैं। कवि उसका वर्णन करते कहता है –

यह क्या, यह क्या भ्रम या विभ्रम,
दर्शन नहीं अधूरे।
एक मूर्ति आधे में राधा,
आधे में हरि पूरे।।

अन्त में क्या हुआ यह कहने की अभीप्सा गुप्त जी की नहीं है। इस स्वर्गिक प्रसंग को तो कोई भावुक ही समझ सकता है। यों तो मैथिलीशरण गुप्त के भ्रमरगीत का विस्तृत विस्तार नहीं है, किन्तु उन्होंने थोड़े से शब्दों मे जो कुछ प्रदर्शित किया है, वह इस परम्परा में उच्चकोटि का बन पड़ा है।

आधुनिक युग में अन्य कई कवियों – श्रीद्वारिका प्रसाद मिश्र (कृष्णायन), डॉ. रमाशंकर 'रसाल', हरदेव सहाय आदि – ने कृष्ण काव्य के भ्रमरगीत प्रसंग पर अपनी कलम चलाई है, किन्तु प्रसंगतः ही इस विषय का वर्णन उसमें हो पाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवतकालीन भ्रमरगीत परम्परा अनेक कालों में विकसित होती हुई – विस्तार पाती हुई आज तक चली आई है।

प्रधानमन्त्री
साहित्य मण्डल, श्रीनाथद्वारा.

नंददास के काव्य में श्रृंगार का विशद् वर्णन

✍ देवकीनन्दन कुम्हेरिया

अष्टछाप के काव्य में वात्सल्य, दाम्पत्य रति और भगवत् रति इन तीन भावों का प्राधान्य है, अतः यह श्रृंगार रस पूर्ण काव्य है। इसकी अधिकांश रचना मनोहर पदों में हुई है, जो श्रीकृष्णलीलाओं से सबंधित होने पर भी प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है, अर्थात् प्रत्येक पद स्वतंत्र है और कथा वस्तु के किसी अन्य पद पर आधारित नहीं है। इस प्रकार का काव्य मुक्तक कहलाता है, जो प्रबंध काव्य से भिन्न स्फुट शैली में आता है। यह काव्य गेय होने के कारण 'गीति–काव्य' कहलाता है। इसमें शब्दों की सजावट, भावों की अभिव्यक्ति और ताल–स्वरों की संयोजना बड़ी अनुपम है। पदों के अतिरिक्त भी दोहा, चौपाई, रोला, बारहमासा आदि छन्दों में भी विस्तृत काव्य लिखा गया है।

इस काव्य के रचयिता पहिले भक्त हैं और बाद में कवि। वे भक्त भी साधारण नहीं उच्चकोटि के महात्मा हैं, अपने इष्ट श्रीनाथजी के प्रति पूर्ण समर्पण के कारण काव्य में बडी मार्मिकता है। वर्णन की दृष्टि से चाहे इस काव्य का क्षेत्र श्रीकृष्ण की बाल क्रीडाओं का स्थल ब्रज मण्डल ही हो किन्तु प्रभाव की दृष्टि से इसका क्षेत्र भारत ही नहीं अपितु विश्व है।

अष्ट छाप के आठों कवियों के काव्य को , रचना की न्यूनाधिक संख्या के आधार पर तौलना व अन्य किसी प्रकार छोटा बड़ा समझना तो वास्तव में उनके काव्य के प्रति घोर अन्याय होगा, क्योकि उनके काव्य की प्रत्येक पंक्ति छंदशास्त्र की कसौटी पर खरी और पुष्टि मार्ग को पुष्ट करने वाली, भक्ति भाव से परिपूर्ण प्रभु श्रीनाथजी को समर्पित है, किन्तु फिर भी हिन्दी साहित्य में अष्टछाप कवियों में सूरदास और नंददास ही अपनी रचनाओं के कारण सबसे अधिक जाने जाते हैं। साहित्यकारों ने परमोत्कृष्ट कवियों के रुप में इन दोनों का ही गुण गान किया है। सूरदास के सूरसागर ने जहाँ जनमन को श्रीकृष्णा के प्रेम में सराबोर कर नंदनंदन की सरस बाललीलाओं से आल्हादित किया है वहीं नंददास के श्रृंगार रस ने रसिक जनों के हृद्‌य में आनंद की तरंग उमड़ाकर उन्हें लौकिक रस से विमुख कर लीलापति की दिव्य लीलाओं में लीन कराया है जिसे 'भगवत् रति' कहते हैं। नंददास का सौभाग्य ही था कि अष्ट छाप कवियों में सबसे कम आयु के होने के कारण उन्हें अन्य सभी सातों कवियों का पुत्रवत् प्यार दुलार प्राप्त हुआ। सूरदास के सानिध्य में उन्होंने सम्प्रदाय का दर्शन और श्रीकृष्णलीलाओं का दिव्य भाव समझा है।

नंददास के हृद्‌य में श्रृंगार भाव की प्रधानता तो प्रारम्भ से ही थी, छंद रचना भी

वह बचपन से ही किया करते थे। पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् उनका लौकिक श्रृंगार पक्ष दैवीय दिशा में मुड गया। वे सांसारिक मोह माया त्याग सच्चे भगवत्भक्त बन गये। गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने भी इन्हें भगवान श्रीनाथजी की अष्टयाम सेवा में, श्रृंगार की झाँकी में ही कीर्तन सेवा सौप दी। नंददास के ग्रंथो में अनेक ग्रंथों का नाम 'मंजरी' पर होना भी उनके हृद्‌य में रची पची श्रृंगाकिता को प्रकट करता है।

अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति नंददास ने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना तो की ही है, किन्तु उन्होंने अनेक ग्रथों का निर्माण भी किया है, जो इस प्रकार हैं – १. अनेकार्थ मंजरी, २. मान मंजरी, ३. रस मंजरी, ४. रुप मंजरी, ५. विरह मंजरी, ६. प्रेम बारहखडी, ७. श्याम सगाई, ८. सुदामा चरित्र, ६. रूक्मिणी मंगल, १०. भ्रमर गीत, ११. रास पंचाध्यायी, १२. सिद्धान्त पंचाध्यायी, १३. दशम स्कंध भाषा, १४. गोवर्द्धन लीला, १५. पदावली। इनके अतिरिक्त फूल मंजरी, रानी मंगौ व कृष्ण मंगल, तीन ग्रन्थ अप्रकाशित बताये जाते हैं। डा. दीन दयाल गुप्त के मतानुसार रस मंजरी नंददास की आरंभिक रचना है और रास पंचाध्यायी, भँवरगीत एवं सिद्धान्त पंचाध्यायी अन्तिम रचना हैं। नंददास की समस्त रचनाओं में भँवर गीत' और 'रास पंचाध्यायी' विशेष प्रसिद्ध हैं।

'रुप मंजरी' 'रस मंजरी' और विरह मंजरी' चौपाई छंद में लिखी रचनाएँ। रुप मंजरी में उपपति रस की योजना की गई है। नायिका भेद और रस शास्त्र के अनेक सांगोपांग वर्णन इस कथा काव्य में मिलेंगे। इस ग्रन्थ का चरम लक्ष्य पुष्टि सम्प्रदाय की श्रृंगार – भक्ति पूर्ण धार्मिक भावना का प्रतिपादन करना है, किन्तु ऊपरी दृष्टि से यह लौकिक श्रृंगार का एक सफल काव्य सा ज्ञात होता है।

रुप मंजरी के वर्णन में नंददास ने कहा है-

बुड़यौ जू मन रस, प्रिय प्रेम रस क्योंहू निकिस्यौ जाय।
कुंजर ज्यों चहले पर्‌यौ, छिन छिन अधिक समाय।।

बल्लभ सम्प्रदाय में चैतन्य सम्प्रदाय की भाँति परकीया भक्ति का महत्व नहीं है। बल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति भावना के अनुसार राधिका जी स्वकीया और चन्द्रावली जी परकीया हैं। अष्ट छाप – कवियों ने अपनी रचनाओं में अधिकतर स्वकीया भक्ति ही निरुपित की है, किन्तु नंददास ने रूप मंजरी में परकीया भक्ति को भी महत्व दिया है।

उन्होनें कहा है -

रस मे जो उपपति – रस आहीं।
रस की अवधि कहत कवितार्हीं।

परकीया भक्ति के आधार भूत इस उपपति रस की व्याख्या नंददास ने 'बिरह मंजरी' में भी की है। अपने 'दशमस्कंध' ग्रंथ में उन्होंनें गोपियों के मुख से उपपति रस की इस प्रकार पुष्टि करवायी है –

जो कहो उपपति रस नाहिं स्वच्छ। सब कोउ निंदत अरू अति तुच्छ।।
तहाँ कहति हैं, ब्रज भामिनी। लहलहाति जनु नव दामिनी।।
तुम्हारी ये कलगी तजि पिय। त्रिभुवन मांझ कवन अस तिय।।
सुनतहिं आरज पथ नहिं तजै। सुंदर नंद सुबन नहिं भजै।।

भ्रमरगीत में नंददास ने उद्धव गोपी संवाद के रुप में निर्गुण पर सगुण की और योग एवं ज्ञान मार्ग पर प्रेम की विजय दिलवाई है, तथा गोरखनाथ जैसे योगियों के योग पंथ और कबीर आदि संतो के ज्ञान मार्ग की अपेक्षा बल्लभाचार्य की प्रेम भक्ति का महत्व स्थापित किया है। भ्रमरगीत की रचना में ऐसा अद्भुत आकर्षण और प्रवाह है जो पाठक व श्रोता को बलात् अपनी और खींचता है और अपने साथ बहा ले जाता है। इसकी रचना भी विचित्र प्रकार के छंद में की गई है। रोला और दोहा मिश्रित छंद के अंत में दस मात्रा की एक टेक दे देने से भ्रमरगीत की संगीत योजना में अनूठापन और पूर्णता आ गयी है।

रास पंचाध्यायी में कवि की कला का और भी विकास हुआ है। अपनी कोमल – कांत पदावली तथा श्रुति मधुर भाषा शैली के कारण यह ग्रंथ हिन्दी का 'गीत गोविन्द' कहा जा सकता है। अपने सिद्ध छंद 'रोला' में कवि ने जिस प्रकार लालित्य और श्रृँगार को प्रवाह के साथ प्रस्तुत कर अपनी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है उसने 'नंददास जड़िया' की उक्ति को सर्वथा सार्थक करते हुए छन्दशास्त्र के आचार्य जैसे विशिष्ट पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है। दो पंक्तियों का प्रत्येक रोला छन्द श्रृंगार रस में कितना सराबोर और अपने में कितना परिपूर्ण है यह मात्र एक छंद पढने से ही ज्ञात हो जाता है।

प्रस्तुत है तीसरे अध्याय का एक रोला :–

इन नीके आराधे हरि ईश्वर बर जोई।
तातें निधरक अधर सुधा रस पीवत सोई।।

रास रस के इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए श्रृंगार को और विस्तार देते हुए वर्णन करते हैं –

पियहि निरखि तिय वृन्द, उठी सब इकै बार यौं।
परि घट आए प्रान, उझकत इन्द्री सों ज्यौं।।
कोऊ चटपटि सौं उर लपटी, कोऊ करवट लपटी।
कोउ गल लपटी, कहति भलें भलैं कान्हर कपटी।।
कोउ नगधर वरपिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नव धन तें सटकि दामिनी घटा सुं अटकी।
कोउ मुरली संग रली रँगीली रसहि बदाबति।
कोउ मुरली कौ छेंकि छबीली अद्भुत गावति।।
ताहि सॉवरौ कुँवर रीझि हँसि लेत भुजन भरि।
चुंबन करि सुख सदन बदन तैं दै तमोल ढरि।।

नंददास ने रास पंचाध्यायी में लौकिक एवं पारलौकिक श्रृंगार को समन्वित रुप मे प्रस्तुत करने का जो सफल प्रयास किया है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। रास पंचाध्यायी काव्य रुप में श्रृंगार रस का सार तत्व है जौ लौकिक रसास्वादन ही न होकर अलौकिकता दिव्यता का ज्ञान कराता है।

नंददास ने स्वयं ही कहा है –
नाहिन कछु श्रृंगार कथा इहि पंचाध्यायी।
सुंदर अति निरवृत परातैं इती बड़ाई।।
जे पंडित श्रृंगार ग्रंथ यामें हैं सानें।
ते कछु भेद न जानें, हरि कूँ बिषई मानें।।

नंददास कहते हैं – प्रेम की विचित्र चाल होती है, बिना आसक्ति के तो प्रेम की धरा ही नहीं होती, और आसक्ति को चाहिए श्रृंगार। इस सम्बन्ध में उनका दोहा है –

भूत छिये, मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधा रस जो पिये, तिहि सुधि रहै न कोय।।

रसमंजरी में नायिका भेद का विस्तार से वर्णन है, यह इस विषय की प्रारंभिक कृति होने से श्रृंगारिक काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। नंददास द्वारा रचित रुप मंजरी और रस मंजरी यह दोनों ऐसे श्रृंगारिक ग्रंथ हैं जो भक्ति काल में, भक्त कवि द्वारा रचे गये थे, किन्तु उनमें रीति–कालीन शैली की प्रमुखता है, और आने वाले रीतिकाल की स्पष्ट सूचना। यदि कहा जाये कि रीतिकाल के श्रृंगारिक काव्य के प्रेरक नंददास के यही दो काव्य ग्रंथ रहे होंगें तो अनुचित न होगा। रस मंजरी की कुछ चौपाई इस प्रकार हैं –

जग में जुबती त्रय परकार। करि करता निज रस विस्तार।।
प्रथम स्वकीया पुनि परकीया। इक सामानि बखानी तिया।।
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रोढ़ बिहार।।
मुग्धा हू पुनि द्वै विधि गनी। ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी।।
प्रथमहिं मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि विश्रंब्ध नऊढ़ा सोय।।

महामुनि भरत ने श्रृंगार रस के व्यापक महत्व का वर्णन किया है। उनके मतानुसार जगत में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय है, वह सब श्रृंगार रस के अंतर्गत है। इसी दृष्टिकोण से अष्टछाप के कवियों ने अपनी श्रृंगार

रस पूर्ण रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं से उनका अभिप्राय अपने इष्टदेव की भक्ति भावना का प्रदर्शन करना था। नंददास ने रस मंजरी में इसे स्पष्ट कर दिया है। उनका मत है –

नमो नमो आनंद धन, सुंदर नंद कुमार।
रस मय, रस कारन, रसिक, जग जाके आधार।।
रुप, प्रेम, आनंद रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनों ताहि।।

अष्टकछाप के कवियों की रचनाओं में स्वकीया परकीया से लेकर नायिकाओं के समस्त भेदों का समावेश है। खंडिता नायिका के बहुसंख्यक पदों की रचना तो अष्टछाप के प्रत्येक कवि ने की है। इस प्रकार के पद ठाकुर जी की मंगला आरती की झाँकी में सदा से गाये जाते हैं। नंददास जी श्रृंगार रस के विशिष्ट कवि कहे जाते हैं अतः उनकी कुछ पद रचना यहाँ दी जा रहीं हैं –

खंडिता ब्रजबाला

(१) (राग–देवगंधार)

उपरना बाही कैं जु रह्यौ।
जाई के उर बसे स्याम घन, निसि कों जहँ सुख गहयौ।।
छबि–तरंग अमित अँग अँग में, दृगन भेद नहिं जात कहँयौ।
'नंददास' प्रभु चलै सैन दै, जब दाँव न दौर रह्यौ।।

(२)

ढीले ढीले पग धरत, ढीली पाग ढरकि रही,
ढीले से ढए से फिरत, ऐसे कौन पै ढहे हौ।
गाढे जु पिय हिय के, पाई ऐसी गाढ़ी कौन तिया,
गाढ़े गाढ़े भुजन बीच गाढे कहि गहे हो।।
लाल लाल लोचन उनींदे लागि लागि जात,
साँची कहौ प्रान पति कौनै लाल लहे हो।
'नंददास' प्रभु प्यारे निसि के उनीदे आए,
भए प्रात कहौ बलिबात रात कहॉ रहेऔ।।

प्रोढा अधीरा

बन ठन कहाँचली ऐसी, को मन भाई साँवरें कुँवर कन्हाई।
मुख सोहै जैसें द्वैज कौ चंदा, छिप छिप देति दिखाई।।
भलै ही जाउ नैकु ठाड़े रहौं, किन ऐसी सीख सिखाई।
'नंददास' प्रभु अब न बनैगी, निकसि जाइ ठकुराई।।

प्रेम गर्विता

चाँपत चरन मोहन लाल ।
पलिका पौढी कुँबरि राधिका, सुंदरि नवल विलास।।
कबहुँ की गहि नैन सिरावत, कबहुँ छुवावत भाल।
'नंददास' प्रभु छवि निरखति अति प्रीति दियें प्रतिपाल।।

आगत पतिका (राग ईमन)

मेरे री बगर आबत, छबि सों कमल फिरावत।
औरन सौं बतराबत, मो तन चितवत, चतुर परौसिन देखि देखि मुसिक्यावत।।
नैनन मनुहार करत, बैनन समझावत, लिपटकें नेह जनावते, भौंह नचावत।
'नंददास' प्रभु अति लोक लाज, इत कहुं कैसे कै धीरज न आवत।।

बिरहनी (मालकोस)

जान न लागै री, लालन मिलि बिछुरन की बेदन।
दृग भरि आए री, मैं कही री कछुक तेरी प्रीति की रीति,
आना कानी में भई, घुमराई में गए दिन।।
नेह–कनौड़े की रुप–माधुरी अँग अँग,
लागी री सरस हियै भेदन।
'नंददास' प्रभु रसिक मुकुट मनि, कर पै कपोल धरैं,
ररकत ढरकत री तिलक मृग भेदन।।

काव्य शास्त्र के आचार्यो ने श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' बतलाया है। इसका अभिप्राय यह है कि 'रति' के स्वरुप पर ही श्रृंगार का आधार है। 'नंददास' ने 'रति' का जैसा सांगोपांग वर्णन किया है, उसे जान लेने पर ही अष्टछाप कवियों की श्रृंगारिक रचनाओं का महत्व समझ में आ सकता है। उन्होने लिखा है –

उचित धाम काम तौ करै। जानें नहीं कवन अनुसरै।।
भूख प्यास सबै मिट जाय। गुरूजन डर कछु रंचक खाय।।
मन की गति पिय में इक तार। समुद मिली जिमि गंग की धार।
तनिक बात जो पिय की पाबै। सो बिरियाँ तपत है आबै।।
यदपि बिधन गन आवहिं भारे। जो रति रस के भेटन हारे।।
तदपि न भृकुटी रंचक भटकै। एक रुप चित रस कूँ गटकै।।
स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैनन जल कन अस स्वर भंग।
तन विवरन, हिय कंप जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै।।
यह प्रकार जाकौ तन लहिऐ। सो वह रंग भरी 'रति' कहिऐ।।

इस प्रकार नंददास के काव्य में श्रृंगार रस का वह कल्याणकारी सुधा सागर प्रवहमान है जिसके अवगाहन से मनुष्य इस भौतिक रति को त्याग भगवत् रति में लीन हो गोलोक धाम जैसी देव दुर्लभ स्थली में वास करने का सौभाग्य प्राप्त कर सके।

बड़ा बाजार,गोवर्धन (५०६०)

पद लालित्य और भाषामाधुर्य के धनी:श्रीनन्ददास

✍ मनोहर कोठारी

नन्ददास अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि हैं। हिन्दी साहित्य में, काव्य कला की दृष्टि से, सूर के पश्चात् इनका ही स्थान है। सूर के अनन्तर ग्रंथों की संख्या भी इनकी ही सर्वाधिक है। पद लालित्य व भाषा माधुर्य में भी इनकी अपनी विशेषता हैं। विषय निर्वाचन, पद रचना एवं अभिव्यञ्जना कौशल में भी ये सूर के समकक्ष ही ठहरते हैं। श्रीनन्ददास ने श्रीकृष्णलीलाओं से सम्बन्धित अनेक छोटे छोटे ग्रंथों का स्रजन किया है।

ऐसा लगता है कि काव्य रचना में उन पर सूरदास जी का प्रभाव है तो प्रबन्ध रचना में तुलसीदास का। इन्हौंने तुलसी के रामचरित की भाँति भागवत के दशम् स्कंध के एक से २६ अध्यायों का दोहा, चौपाई में अनुवाद भी किया, किन्तु सम्पुर्ण दशम् स्कंध का अनुवाद नहीं हो सका।

श्रीमद्भागवत के रास पञ्चाध्यायी प्रसग का उन्होंने 'रास–पञ्चाध्यायी' नाम से भावानुवाद किया है। रचना शैली में पदों का लालित्य तथा कलात्मकता विद्यमान है। इसी प्रकार इनका 'भ्रमरगीत' भी अपनी विशिष्टता लिये हुए निर्मित हुआ है, जिसमें गोपियों के वाक्चातुर्य तथा सशक्त तर्को के कारण उद्धव जी पराजित हो कर अपनी निर्गुण भक्ति छोड़ बैठते हैं और गोपियों की तरह कृष्ण के रंग में रंग जाते हैं।

नन्ददासजी ने अनेकार्थ मञ्जरी, रसमञ्जरी, विरहमञ्जरी, ज्ञान मञ्जरी और नाम माला आदि का प्रणयन भी किया है। उनके ग्रंथ नाम माला और अनेकार्थ के दृष्टिकूट पदों में साहित्यिक क्रीड़ा है, जिसके अर्न्तगत अलंकार, नायिका भेद एवं रस का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अनेकार्थ मंजरी में पर्यायवाची कोश है, किन्तु उसे शब्द कोश ही नहीं, शब्द क्रीडा का ग्रंथ भी माना जा सकता है साथ ही इसमें भगवतस्मरण भी है। जैसे –

गरूड़, तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग, हरिण कुरंग, कुरंग सों, रंग्यो न हरिहर रंग।

इस दोहे में तुरंग और कुरंग के पर्यायवाची तो हैं ही, यमक का चमत्कार और भक्ति भावना भी हैं।

इसी प्रकार नाम मञ्जरी और नाममाला में पर्यायवाची शब्दों के माध्यम से राधा की मानलीला का वर्णन है। ऐसा लगता है कि इस ग्रंथ का निर्माण कवि हृद्य व्यक्तियों के मनोरंजन के लिए ही हुआ है।

नन्ददासजी के पद भी अपनी विशेषता लिये हुए हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति नन्ददास भी संगीतज्ञ थे। अतः इनके पदों में भी, अन्य कवियों की भाँति ही, राग भैरव, विभास, रामकली, सारंग आदि राग दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी छन्द योजना सर्वथा निर्दोष है। उसमें राग और रस का सुन्दर समन्वय है। पदों की शब्दावली भी पर्याप्त संगीतात्मक है, जिसमें उनकी अनुप्रास छटा अत्यन्त मनोहारिता उत्पन्न कर देती है, जैसे –

जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए।
सावन रमन भवन वृन्दावन, घुमड़ि घुमडि घन छाए।
नन्हीं नन्हीं बूँदन बरखन लागे, ब्रज मडल पै धाए।
'नन्ददास' प्रभु सखा संग लिए, मुरली कुंज बजाए।।

नन्ददास के प्रिय छन्द हैं –चौपाई, दोहा और रोला। उन्होंनें सुदामा चरित व गोवर्द्धन लीला में चौपाई तथा विरह मञ्जरी, रुप मञ्जरी, रस मञ्जरी एवं दशम् स्कन्ध भागवत भाषा ग्रथ में चौपाई और दोहों का प्रयोग किय है। नन्ददास के पूर्व रामचरित मानस की रचना हो चुकी थी, किन्तु नन्ददासजी के उपर्युक्त ग्रंथों में तुलसी के दोहा, चौपाई का अनुसरण नहीं हुआ है। मानस में चौपाई की आठ   अर्धालियों के अनन्तर एक दोहा प्रयुक्त हुआ है, किन्तु नन्ददास के 'सुदामा–चरित' व गोवर्द्धन लीला में दोहा है ही नहीं। दशम् स्कन्ध भाषा में स्कन्ध के अन्त में एक दोहा मिलता है। 'रसमञ्जरी' में कुल ग्यारह दोहे तथा ३२८ चौपाईयाँ हैं किन्तु 'रुप मञ्जरी' में कोई निश्चित विधान ही नहीं है।

भ्रमरगीत और श्याम–सगाई में नन्ददासजी ने रोला और दोहों का प्रयोग करते हुए अन्त में दस मात्रा की एक टेक भी लगाई है जैसे–

कहन स्याम संदेश एक मैं तुम पै आयौ।
कहन समै संकेत कहूँ अवसर नहिं पायौ।।
सोचत ही मन में रह्यो, कब पाऊँ इक ठाऊँ।
कहि संदेस नन्दलाल कौ, बहुरि मधूपुरी जाऊँ।। –सुनो ब्रजनागरी

इससे छन्द में पर्याप्त सौन्दर्य आ गया है।

नन्ददास के अभिव्यञ्जना कौशल का मुख्य गुण है उनकी कोमल कान्त पदावली। उनकी 'रास–पञ्चाध्यायी' इसी पदावली के बल पर जयदेव के गीत गोविन्द से टक्कर लेती सी प्रतीत होती है। यथा –

नूपुर, कंकन, किंकिनी, करतल मंजुल मुरली, ताल मृदंग, उपंग चंग एकै सुर जुरली।
तैसिय मधुपद पटकनि, चटकनि करतारन की, लटकनि, मटकनि, झलकनी, कल कुंडल हारन की।

यहाँ कवि नन्ददास की पदावली का प्रमुख गुण है उनकी संगीतात्मकता। जैसे –

कुँजनि कुंजनि डोलनि मनु घन ते घन आवनि।
रुप भरीं, गुन भरीं, भरीं पुनि परम प्रेम रस।
रूचिर दृगंचल चंचल अंचल में झलकत अस।।

शब्द योजना में भी शब्दों का बाहुल्य है जो मधुर गुंजार से अलंकृत है। उनके काव्य में उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, प्रतीप, अतिशयोक्ति आदि अलंकार पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नन्ददासजी अपने समय के उच्चकोटि के कवि थे।

अध्यक्ष, साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

भक्ति भावना एवं भाव प्रवणता के अनन्य कवि : श्रीनन्ददास

✍ श्याम प्रकाश देवपुरा

गोसाईं श्री विट्ठलनाथजी की शरण लेने के पश्चात् श्री नन्ददास, अपने आचार्य के आदेश से, गोकुलस्थ श्रीनवनीतप्रियजी के मन्दिर में कृष्ण–कीर्तन करने लगे। नन्ददासजी के भक्तिभाव पर गोसाईं जी अत्यन्त मुग्ध थे। इसलिए उन्होंने विष्णुदास छीपा के स्थान पर उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित कर लिया। नन्ददास के पदों की ख्याति दूर दूर फैलने लगी। एक दिन तानसेन ने नन्ददास का बनाया हुआ, रासलीला का, एक पद "देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिंदी तट" अकबर के सामने गा कर प्रस्तुत किया। इस पद को सुन कर अकबर मुग्ध हो गया। उसने नंददास को बुलाकर पूछा कि "आपने इस पद में गाया है– 'नन्ददास गावै तहाँ निपट निकट' तो आप कैसे निपट निकट पहुँचे" नन्ददासजी ने उत्तर दिया –'आप इसका भेद अपने रनिवास की अमुक दासी से पूछिये, वही आपको उत्तर देगी।' अकबर महल में पहुँचा और उसने उपर्युक्त पद का अर्थ उस दासी से पूछा। वह दासी परम वैष्णवी थी और उसे प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन प्रतिदिन होते थे। उसे नन्ददासजी से भी असीम स्नेह था। अकबर से जैसे ही यह बात सुनी, वह मूर्छित हो कर गिर पड़ी व तत्काल शरीर छोड़ दिया। कहा जाता है कि इधर नन्ददासजी भी नित्यलीलालीन हो गए। अकबर यह दृश्य देखकर अचम्भित रह गया। गोसाईं विट्ठलनाथजी ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने दोनों की बड़ी प्रशंसा की।

श्री नन्ददास एक ओर जहाँ प्रभु के परम भक्त थे वहीं दूसरी ओर वे एक महान साहित्यकार भी थे। फ्रांसीसी लेखक गार्सी द तासी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में नन्ददास के लिये कहा है– "गीत गोविन्द के ढंग पर नन्ददास ने रास पंचाध्यायी की रचना की है, इसमें राधा कृष्ण प्रेम लीला की ही प्रधानता है।" रास– पंचाध्यायी के अतिरिक्त नन्ददास ने अन्य कई ग्रथं लिखे हैं –

दशम स्कध भागवत, रूक्मिणी मंगल, रुप मंजरी, विरह मंजरी, नाम चिन्तामणि माला, अनेकार्थ माला, दान लीला, मान लीला, अनेकार्थ मंजरी, ज्ञान मंजरी, श्याम सगाई और भ्रमर गीत। हितोपदेश एवं गद्यात्मक नासिकेत पुराण भी इन्हीं द्वारा रचित कहे जाते हैं। नन्ददास के उपर्युक्त सभी ग्रंथ इतने भावपूर्ण और रोचक हैं कि इनसे टक्कर लेने वाले अन्य ग्रंथ हिन्दी साहित्य में बहुत कम ही होंगे। इन ग्रथों में कृत्रिमता नाम मात्र भी नहीं है। रास–पंचाध्यायी को तो हिन्दी का गीत गोविन्द कहा जा सकता है। इन्हीं सब बातों का ध्यान रखते हुए वर्तमान युग के सुप्रसिद्ध साहित्यकार व भक्त कवि श्री वियोगीहरि ने नन्ददास के बारे में कहा है– 'अष्टछाप में सूरदास यदि सूर्य हैं तो नन्ददास निश्चित ही चन्द्रमा हैं।"

रोला छन्द लिखने में नन्ददास से टक्कर लेने वाला अन्य कोई कवि नहीं हुआ। छन्दबद्ध कोश लिखने वालों में भी वे सर्वप्रथम हैं। उनकी अनेकार्थ माला में 'सारंग' शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं, यथा –

पिक, चामर, कव, संघ, कर, बायस, हू होय।
खंजन, चंचल, मिरगमद, काम, बिसन है सोय।।
छिती, तलाब, भुंजग पुनि, को बड़, भानु समान।
सारंग श्री भगवान को, भजिए कृपानिधान।।
सारंग सुन्दर को कहत, रात, दिवस, बड़भाग।
खग, पानी अरू धन कहिय, अंबर, अबला राग।।
रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कुंज, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिये सांरग।।

इनकी नाम माला में नामों के साथ साथ पर्याप्त साहित्यिक सामग्री संग्रहीत है। उसे पढ़ने से कोई भी व्यक्ति चमत्कृत हो सकता है, यथा–

अग, नग, भूभृत, दरीभृत, श्रृंगी, सिखरी होइ।
सैल, सिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, आद्रि पुनि सोई।।
गिरि गोवर्धन बाम की, घर्‌यो स्याम अभिराम।
तुव उस तै वह धुकधुकी, अबलौं मिटत न भाम।।

श्री ध्रुवदासजी ने, जो इने समकालीन थे, आपके यश, भक्ति भावना एवं भावरसिकता का वर्णन करते हुए लिखा है–

नन्ददास जो कछु कह्मो, राग–रंग में पागि।
अच्छर सरस–सनेह–युक्त, सुनत सुमन उठि जागि।।
रसिक दशा उद्‌भुत हुती, करत कवित्त सु–दारि।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटे नैन–जल धारि।।
बौरो सो रस में फिरैं, खोजत केहिन बात।
आछे रस के बचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात।।

वस्तुतः श्रीनन्ददास अपनी बहुमुखी प्रतिभा, सरस कविता, भाव प्रवणता एवं कोमलकान्त पदावली के कारण ब्रजभाषा साहित्य में अपना अलौकिक स्थान रखते हैं।

साहित्य मण्डल, श्रीनाथद्वारा

श्यामा सगाई

✍ पुरुषोत्तम पालीवाल

एक दिन श्रीराधाजी नन्दबाबा के घर खेलने आ गई। उनके रुप और चंचलता को देख कर माता यशोदा का मन उनकी रुप माधुरी पर मुग्ध हो गया। उन्होंने मन ही मन राधा और कृष्ण के सौन्दर्य की तुलना करते हुए सोचा कि इन दोनों की जोड़ी कितनी सुन्दर रहेगी। मैं इसे अपने श्याम के लिए मांगूगी। यह निश्चय कर उन्होंने एक ब्राह्मणी को बुलवाया और उसे अपने मन की सारी बात समझा कर वृषभानुजी के यहाँ राधा का हाथ मांगने भेजा। ब्राह्ममणी बरसाने पहुँच राधाजी की माता कीर्तिजी से मिली और यशोदाजी का सन्देश एवं निवेदन सुनाया। यशोदा जी ने कहलवाया था कि तुम्हारी पुत्री राधा अत्यन्त सुन्दर है, इसी प्रकार मेरा श्याम भी अत्यन्त सुन्दर है। इन दोनों की जोड़ी खूब जमेगी। अतः तुम कृपा कर इसकी मेरे श्याम से सगाई कर दो। हममें आपस में जो प्रेम है उसमें इस सम्बन्ध से और वृद्धि होगी।'

कीर्तिजी ने उत्तर भिजवाया "मेरी राधा तो अत्यन्त सीधी सादी और भोली है जबकि तुम्हारा पुत्र कन्हैया अत्यन्त चालाक एवं चंचल है। नन्दनन्दन महा उच्छृंखल तथा माखनचोर है। उसे लोगों के कहने सुनने पर भी अपने व्यवहार के प्रति लज्जा नहीं आती, मन में आता है वही करता है। अतः ऐसे बालक से मैं अपनी पुत्री की सगाई करने में असमर्थ हूँ।"

जब वह ब्राह्मणी पुनः लौटी और सारी बातें बताई तो यशोदा जी मन ही मन कन्हैया की बुराई सुन उदास हो गई? माँ के अन्तर में व्याप्त उदासी उस अन्तर्यामी से कैसे छुपती ? वे तत्काल घर पहुँच गये और माँ से पूछा–'माँ तुम उदास क्यों हो सिरझुका कर किस फिक्र में बैठी हो ? माँ ने कहा कि मैं तुम्हारे ही कारण उदास हूँ। मैं जहाँ जहाँ भी तेरी सगाई की चर्चा करती हूँ वहीं तेरी बुराइयाँ गिनाते हुए इन्कार कर दिया जाता है। आज मैंने वृषभानु के घर राधा से तेरी सगाई का सन्देश भेजा तो उन्होंनें भी तेरी बुराइयाँ गिनाते हुए इंकार कर दिया है। बताओं, अब मैं उदास न होऊँ तो क्या करूँ?

कृष्ण मधुर मुस्कान सहित बोले 'माँ, मैं उसी से विवाह करूँगा जिसे तू चाहती हैं। मैं नन्दबाबा की शपथ खा कर कहता हूँ कि उनको तुम्हारी बात माननी पड़ेगी और वे तुम्हारे चरण पकड कर इस सगाई हेतु निवेदन करेंगे। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। यह दिलासा देकर कृष्ण मित्रों सहित खेलने चले गये।

एक दिन कृष्ण सुन्दर नटवर रुप बनाकर बरसाने गये और बगीचे में बैठ गये। वहीं पर सखियों सहित राधाजी आई। जैसे ही उनकी दृष्टि कृष्ण पर पडी वैसे ही राधा जी के हृदय में कृष्ण की छवि बस गई। वे मुरझा सी गई। दौड़ कर कुंज मे चली गई

और आँखों से अश्रु गिराने लगी। जब सखियों ने उन्हें इस प्रकार व्याकुल होते देखा तो वे उनके पास बैठ कर सांत्वना देते हुए कहने लगीं कि "एक उपाय है जिससे तुम श्याम को पा सकती हो। हम तुम्हें घर ले जा रहीं हैं। वहाँ तुम अपने घर वालों से कहना कि तुम्हें नाग ने डँस लिया है। हम उन्हें बता देंगी कि विष उतारने वाले को हम जानती हैं। फिर हम कृष्ण को बुला लाएँगे। "राधा ने ऐसा ही किया। माँ उनकी दशा देखा घबरा उठी। अवसर देख राधा की सहेली बोली नन्द बाबा का पुत्र साँप का विष उतारने में बड़ा प्रवीण है। उसने कालिया नाग तक को वंश में कर लिया था। अतः आप कहें तो गोकुल जा कर उसे बुला लाऊँ ? माँ बोली– "हाँ हाँ जल्दी जाओ। उससे कहना कि यदि तुमने राधा की प्राण रक्षा कर दी तो मैं उसका विवाह तुमसे कर दूँगी। उसको यह भी कहना कि मै तुम्हारे पाँव पडती हूँ मेरी पुत्री के प्राणों की रक्षा करों।"

सुनते ही एक सखी गोकुल की ओर चली। देखा देखी एक के बाद एक सभी सखियाँ साथ हो लीं। वहाँ पहँच कर उन्होनें माता यशोदा को बैठे देखा। उनकी वन्दना करते हुए सखियों ने कीर्ति जी का सन्देश सविनय सुना दिया। यशोदा जी आनन्द से भर उठीं और तत्काल मनमोहन कृष्ण को बुलवा कर बरसाने जाने का आदेश दिया। कृष्ण दिखावे के लिये अनेक बहाने करने लगे। सखियों ने भी बहुत निवेदन करते हुए चलने की बात कही। अन्त में श्याम ने अपनी सहमति दी। फिर अपने साथियों सहित तत्काल रवाना हो कर वृषभानु जी के घर पहुँचे। राधा की माँ ने उन्हें आदर से ले जाकर राधा को दिखाया। कृष्ण ने अनेक प्रकार से विष उतारने का दिखावा किया। राधाजी न नेत्र खोल घनश्याम को सामने देखा तो तत्काल अपने सिर के बाल हाथों से ठीक करते हुए आसपास नजर दौडाई। सखियों और माँ को देख संकुचित होते हुए सिर ढँका और मन्द मन्द मुस्कुराने लगीं। एक सखी ने तत्काल सुझाव दिया कि विप्र के हाथों पुष्प माला गुंथवा, राधा के हाथों से छुवा, नंदलाल को पहना कर सगाई की रस्म पूरी कर ली जाय तो उत्तम रहेगा। बात सभी को भा गई और तत्काल यह रस्म पूरी कर ली गई। श्याम की सगाई से सभी ग्वाल बाल हर्षविभोर हो उठे। वे नाचते गाते गोकुल पहुँचे। माता यशोदा को अपार खुशी मिली। उन्होंनें तत्काल मोतियों से चौक पूरे, गोकुल में बधाइयाँ बजने लगीं। इस श्याम सगाई और सुन्दर जोड़ी पर नन्ददास बार बार बलि जाता है –

स्याम सगाई

एक दिन राधे कुँवरि, स्याम घर खेलनि आई,
चंचल और विचित्र देखि, जसुमति मन भाई।
मंद महरि ने तब कह्यो, देखि रुप की रास,
इहि कन्या मैं स्याम को गोविन्द पुजवैं आस।

कि जोरी सोहनी।।१।।

जसुमति महाप्रवीन, एक द्विज–नारि बुलाई,
लीनी निकट बिठाय, मरम की बात सुनाई।
जाय कहाँ वृषभाँनु सों, करियो बहु मनुहारि,
इहि कन्या मैं स्याम कों, माँगौं गोद – पसारि।
कि जोरी सोहनी।। २।।

द्विज नारी उठि चली, पौर बरसानैं आई,
जहँ राधे की माय, बैठि तहँ बात चलाई।
जसुमति रानी नंद की हौं पठई तुम पास,
बहुत भाँति बंदन कही, बहुतहिं करि अरदास।
कृपा करि दीजियै।। ३।।

नीकी राधे कुँवरि, स्याम इत मेरौ नीकौ,
तुम्ह किरपा करि करौ, लाल मेरे कौं टीकौ।
सब भाँतिन सों होइगी, हम तुम बाढ़ैं प्रीति,
और न कछु मन में चहौं, यही जगत की रीति।
परसपर कीजिये।। ४।।

रानी उत्तर दयौ, सुन हौं नहि करौं सगाई,
सुधी राधे कुँवरि, स्याम है अति चरबाई।
नंद ढोटा लंगर महा, दधि माखन कौ चोर,
कहति, सुनति, लज्जा नहीं, करति और ही और।।
कि लारिका अचपलों।। ५।।

द्विज नारी पुनि आई, महरी सौं बात कही सब,
सुनि करिकै करतूत, मनहिं मन सोच रही तब।
अंतरजामी साँवरो, तिहीं बेर गयो आई,
पुछनि लाग्यो माय तें, क्यों जु रही सिर नाई।।
बात मो सों कहो।। ६।।

जसुमति लालहिं कहति, लाल ! हौं नाकैं आई,
जहँ करियतु तो बात, तहाँ तेरि होति बुराई।
मै पठई वृषभानु कै, करनि सगाई तोय,
तिनहूँ उहि उत्तर दियौ, बाढ़ी चिन्ता मोय।।
कहौ कैसी करौं।। ७।।

भैया तें मुसकाई कहत यौं नंद दुलारौ,
ताहिंन करिहौ ब्याउ, करौ जिनि लाड़ हमारौ।
जो तुम्हरैं इच्छा यही, उनहीं की हम लैंइ,
तौ में ढोटा नंद कौ (जो) पाँइन परि परि दैंइ।।
सोच नहिं कीजिये।। ८।।

मोर चन्द्रिका धारि, सुनटवर भेष बनाई,
बरसाँने के बागहिं, मोहन बैठे जाई।
सब सखियन के झुंड में, देखति चली गुपाल,
अरस परस दोऊ भये, कुँवरि किसोरी, लाल।।
मनहिं फूले फिरैं।। ६।।

मन हरि लीनो स्याम, परी राधे मुरझाई,
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई।
दौरि सखी। कुंजन चलीं,नैननि डारति नीर,
अरी बीर ! कछु जतनि करि, हिरदै धरति न धीर।।
हर्‌यौ मन मोहना।। १०।।

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुँवरि न बोलै,
पूँछति बिबिध पुकार, लड़ैती नैन न खोले।
बड़ी बेरू बीती जबै, तब सुधि आई नैकु,
स्याम स्याग करिबे लगी, एकहि बेर जु ब्हैंकु।।
बढ़ति ज्यों बावरी।। ११।।

सखी कहैं सुनि कुँवरि ! तोई इक जतन बताऊँ,
चुप रहिकै सुनि लेउड उठौ अब घर लै जाऊँ।
कहियो काटी नाग नैं, जौ पूँछे तो माइ,
हम हैं मीत गुपाल को, लैहैं तुरत बुलाइ।।
कहैंगी पीर बहु।। १२।।

कर गहि लई उठाय, पकरि गृह भीतरि लाई,
बिबस दसा लखि माइ, दौरि कै कंठ लगाई।
कहा भयो मों कुँबरि कौ, कहौ तनक समुझाई,
हौं बरजति ही लाड़िली, दूरि खेलनि जिनि नाइ।।
कह्यो मानैं नहीं।। १३।।

गई धरी द्वै बीति, कुँवरि जब नैन उघारे,
लै लै बड़े उसास, डसी मैया मोहीं कारे।
नाग डसी मैया सुनत, गिरी धरनि मुरझाइ,
बार बार यौं भाँखही, कोउ जलदी करौ उपाइ।।
अरे ! कोउ दौरियो।। १४।।

सखी कहति समुझाई, कहौ तौं गोकुल जाऊँ,
मनमोहन घनस्याम, तुरत वाकौं लै आऊँ।
वह ढोरा अति सोहनों, पठवै वाकी माई,
बड़ौ गारूडी नंद कौ, तुरत भली करि जाइ।।
बड़ौ ही चतुर है।। १५।।

अरी बीर ! चलि जाउ, कहौ इहि बिनती मेरी,
जो जीवैगी कुँवरि, बीर मैं, करिहौं तेरी।
बेगि पठै नंदलाल कौं, जीउदान दै मोहि,
पाँय लगौं बिनती करौं, जग जस आवै तोहि।।
रावरी सरन हौं।। १६।।

एकु चली, द्वै चार चलीं, गोकुल में आई,
जसुमति बैठी जहाँ, बैठि तहँ बात चलाई।
पाँय लगौ कीरति कह्यो, तुम जसुमति किन लेउ,
जो तुम्हारी इच्छा यही, तो कुँवर संग करि देउ।।
सगाई लीजियों।। १७।।

जसुमति मन आनंद, दौरि नन्दलाल बुलाए,
सुनि भैया की हेर, चले मनमोहन आए।
लखि गुपाल झगरनि लगे, मैया सों मुसक्याइ,
ए तो नारि गँवारि हैं, मति बाहिकैं तू माइ।।
उगनि आई यहाँ।। १८।।

मैं वारी, मेरे लाल। तेरी हौं लेहुँ बलैया,
जित बरसानों नाम, सुतित तैं आई भैया।
एक कुँवरि वृषभानु की कारे डसी कुठौर,
ब्याकुल ह्वै धरनी पी, नैन पूतरी मोर।।
लाल तहँ जाइयो।। १६।।

कौन बाइगी सुनैं, ताहि किन मोंहि बतायौ,
परपंचिनि तुम ग्वालिनी, झूठ ही मोंहि बुलायो।
को राजा वृषभानु हैं, कितु बरसानो गाम,
कौन तिहारी कुँवरि हैं, हौं जानत नहिं नाम।।
कान्ह उत्तर दयौ।। २०।।

सुनो नंद के लाल ! साँवरे कुँवर कन्हाई,
बरसाँनो वह ग्राम, जहाँ तुम मुरलि बजाई।
नटवर भेष बनाइ कैं, बैठे आसन मारि,
धुनि सुनि मोही राधिका, और ब्रज सिगरी नारि।
मनौं टोना करयौ।। २१।।

अहो महरि के पूत ! साँवरे कुँवर कन्हाई,
जो न चलौगे बेगि , कुँवरी जीवन की नाई।
काली नाग जु नाधियो ,तुम सो और न कोई ,
वृन्दावन में साँवरे, कहा सिखावत मोइ।।
—बात जानति सबै।। २२।।

वह राजा बृषभानु ! एक ही डोल गढ़ावै,
मोइ कुँवरि बैठारी , सखिन पै झोंटा द्यावै।
अरध,दान इच्छा नहीं, पान,पात नहि लैउँ ,
जो इतनौं कारज करै, तो कुँवरि भली करि दैउँ।।

—बात एती अहै।।२३।।

जो माँगे सो लेउ, साँवरे कुँवर कन्हैया,
बिनु माँगे ही देहि तुम्हैं राधा की मैया।
इहि सुनि सुंदर साँवरे ! लीने सखा बुलाइ ,
सिंघ पौरि बृषभानु की, तत्छिन पहुँचे जाई।

लगन है नेह की।। २४।।

तब रानी उठि दौरी, पौरि में मोहन ल्याई,
सिंघासन बैठाई, हाथ गहि कुँवरि दिखाई।
दरस फूँक दै विष हर्‌यौ, निज सनमुख बैझाई,
बहु विधि वारति ए सखी। मुदित कुँवरि की माइ।।

धन्न है इहि घरी।। २५।।

सुनति बचन तत्काल, लड़ैती नैनि उधारे,
निरखति ही धनस्याम, बदन तें केस सँवारे।
सब अपने ढिग निरखि कै पुनि निरखी ढिग माइ,
अचरा डार्‌यौ बदन पैं मधुर मधुर मुसिकाइ।।

सकुच मन में बढ़ी।। २६।।

देखि दोउन कौ प्रेम जु, कीरति मन मुसिकाई,
जोरी जुग जुग जियौ, बिधाता भली बनाई।
सखी कहैं जुरि बिप्र सों पुहुपन तैं बनमाल,
राधे के कर छाइकैं गर मेलो नंदलाल।।

बात अच्छी बनी।। २७।।

सुनति सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले,
नाचत गावत चले, प्रेम रस में अनुकूले।
जसुमति रानी घर सज्यौ मोतिन चौक पुराइ,
बजति बधाई नंद कै 'नंददास' बलि जाइ।।

कि जोरी सोहनी।। २८।।

वरिष्ठ कार्यकर्ता
साहित्य-मण्डल, श्रीनाथद्वारा

श्री नन्ददास का श्रीराम-कृष्ण वन्दन

✍ संजय प्रकाश देवपुरा

अष्टछाप कवियो में नन्ददास का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। वे कृष्ण भक्त कवियों में अग्रणी कवि माने जाते हैं। नन्ददास की कृष्ण भक्ति की अनेक रचनाएँ अपनी श्रेष्ठता तथा गहन भक्ति रस से आज तक लोगों को कृष्णभक्ति की और उन्मुख करती रही हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि वे कृष्ण के अतिरिक्त श्री राम के भी भक्त थे। विद्वानों ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए श्रीनन्ददास को सुप्रसिद्ध रामभक्त तथा रामचरित के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का चचेरा भाई बताया है। अतः उन पर अपने अग्रज का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। वे श्री राम तथा श्री कृष्ण दोनों के प्रति भक्ति भावना रखते थे। उन्होंने श्रीराम कृष्ण पर तीन पदों की रचना की है यथा –

(१)

"राम कृष्ण कहिये उठि भोर।
ये अवधेस धनुष कर धारैं, ए ब्रज जीवन माखनचोर।
उनकैं छत्रा, चँवर, सिंहासन, भरत, सत्राुहन, लछमन जोर ;
इनकैं लकुट, मुकुट, पीताम्बर, नित गायन संग नन्दकिसोर।
उन सागर में सिला तिराई, इन राख्यो गिरि नख की कोर;
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजियै, जैसे निरतत चंद चकोर।।"

(२)

रामकृष्ण कहिये उठि भोर।
ओहि अवधेस, ओही ब्रज जीवन, धनुष धरन अरू माखन चोर।
इतमें अयोध्या निर्मल सरजू, उत यमुना जल करत किलोल।।
इतमें दसरथ पुत्र कहाये, उतमें कहाये (बाबा) नंद किसोर।
इतमें कौसल्या (मैया) गोद खेलावै, उतमें यसोदा (जी) झुलावे हिंडोर।।
इतमें धनुष बान कर राजे, उतमें मोर मुकुट की ओर।
इतमें धनुष बान कर राजे, उत मुरली धरे मुख की कोर।।
इतमें चरण अहिल्या तारी, उतकुब्जा से कियो कलोल।

इतमें जानकी बायें बिराजैं, उत राधे संग युगल किसोर।
इतमें सागर सिला तरानी, उत गिरिवर धरे नख की कोर।
रावण के दस मस्तक छेदे, कंस को मारि किये झकझोर।।
इतमें राज विभीषण दीनो, उग्रसेन कियो अपनी ओर।
'नंददास' के ये दोउ ठाकुर, दसरथ–सुत बाबा नन्दकिसोर।।

(३)

फूलन की माला हाथ, फूली फिरै आली साथ,
झाँकत झरोखे ठाड़ी, नंदिनी जनक की।
कुँवर कोमल गात, को कहै पिता सौं बात,
छाँडि दे यह पन तोरन धनुक की।।
'नन्ददास' प्रभु जानि तोरयो है पिनाक तानि,
बाँस की धनैया जैसे बालक तनक की।।

उक्त तीन पदों में से प्रथम दो में उन्होंने श्री राम एवं श्रीकृष्ण के स्वरुप, विशेषता एवं कार्यों का वर्णन करते हुए उनकी वन्दना की है।

तीसरा पद सीता स्वयंवर के अवसर का है। श्री सीताजी बरमाला लिये खड़ी हैं और श्रीराम के सुन्दर स्वरुप पर मुग्ध हो सोच रही हैं कि ये तो अत्यन्त कोमल शरीर वाले हैं। ये उस धनुष को कैसे उठा पाएँगे? कोई पिताजी से कहता क्यों नहीं कि वे अपना प्रण त्याग दें। इतने में श्री राम ने शिव पिनाक को बाँस से निर्मित साधारण धनुष की भाँति तोड़ डाला, जिससे जनकनन्दिनी की प्रसन्नता का पारावार न रहा।

साहित्य मण्डल, श्रीनाथद्वारा

हिन्दी साहित्य और अष्टछाप के नन्ददास

✍ श्रीधर डा. जगदीश लवानिया

हिन्दी-साहित्य रुपी 'हंडिया' के एक ऐसे सरस चावल सरिस हैं– 'महाकवि नन्ददास' जिनको बढ़िया बताने में जहाँ ''और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया'' की कहावत अपना अहोभाग्य जान मचलने लगती है; तो वहीं डॉ. सत्येन्द्र की लेखनी भी हिन्दी–साहित्य के इतिहास में 'नन्ददासजी' को 'प्रथम–रीति–आचार्य' के आसन पर प्रतिष्ठित करती हुयी 'ब्रज साहित्य का इतिहास' के पृष्ठों पर थिरकने लगती है; साथ ही एक ओर श्री नामादास जी उनकां ''नन्ददास आनन्द निधि'' के सम्बोधन से पुकारते हैं तो दूसरी ओर कवि प्राणेश जी उन्हे ''प्रान सनेही श्याम के नन्ददास बड़भाग'' कह कर पुचकारते हैं।

धन्य हैं ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि भक्त प्रवर श्री नन्ददासजी जिनको 'हर–हर–गंगे' के जय घोष से ध्वनित तीर्थ स्थली–सोरों–जन्म स्थली के रुप में मिलीं साथ ही मिला मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के अन्यन्य भक्त –रामचरितमानस' के अधिष्ठाता गोस्वामी तुलसीदास का चचेरे भाई के रुप में प्रारंभिक संरक्षण। अष्टछाप के संस्थापक काव्य संगीत–मर्मज्ञ गोस्वामी विट्ठलनाथजी की गुरूदीक्षा की असीम अनुकम्पा का शुभाशीष पाकर तो 'नन्ददासजी' का लौकिक आसक्तियों से सम्मोहित जीवन ही पूर्णतः ब्रज–ब्रजी और जीवन ब्रजराज मय हो गया। फलतः उनकी अन्तरात्मा से गुरू कृपा की प्रभुता अनायास ही फूट पड़ी–

यमुना पुलिन सुभग वृन्दावन, नवल लाल गोवरधन धारी।
नवल कुंज नव कुसुमित बल, नव–नव वृषभानु दुलारी।।
नवल हास, नव नव छवि क्रीड़त, नवल बिलास करत सुखकारी।
नव श्री विट्ठलनाथ कृपा बल, 'नन्ददास' निरखत बलिहारी।।

हिन्दी साहित्य के नन्ददास- ''कवित्व की दृष्टि से उच्च कोटि के कवि हैं, उनका टकसाली काव्य ब्रजभाषा साहित्य का श्रृंगार है।'' ब्रजभाषा तो श्री नन्ददासजी की सरस–वाणी पाकर ऐसी काव्यमयी वीणा बन गयी है जिसके झंकृत सितार–तारों की मधुरिम झनकार रसिक श्रवणों में ब्रज–रस घोले बिना नहीं रहती और जब संयोजित हो जाता है नन्ददासजी की काव्य–वाणी में ''माधुर्य और प्रासाद'' का संयोग तो उस समय उनका ''प्रत्येक पद मानो अंगूर का गुच्छा लगता है जिसमें प्रत्येक में मीठा रस भरा है।'' उनके काव्य में प्रयुक्त शब्दों की कोमलता का तो कहना ही क्या। ''अत्यन्त सरल और मधुर''. . . . मक्खन सरिस सुकोमल। ''पंक्तियों'' में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न ही लम्बे–चौड़े समास ही।'' मात्र ''शब्दों

की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है वह बहुत थोडे शब्दों और सुन्दरता के साथ ही।'' तभी तो अष्टछाप (इस सम्प्रदाय) में ही नहीं ब्रज साहित्य में भी सूरदास के बाद नन्ददास का नाम श्रेष्ठता की कसौटी से आता है। ''दृष्टव्य है श्री नन्ददासजी की काव्य मधुरता और सरलता–

रुप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरधर देव को, निधरक बरनौं ताहि।।

श्री नन्ददासजी का काव्य सौष्ठव- विविध काव्य कलाओं एवं अनेक काव्यगत विशिष्टताओं से विभूषित है। क्या 'रस! क्या छंद!! क्या अलंकार!!! यहाँ तक कि प्रवाहमयी प्रांजल ब्रजभाषा की मुहावरेदार रसधार एवं अनेक शैलियों की बहार–सभी को तो बड़ी मनुहारके साथ प्यार और दुलार दिया है नन्ददासजी ने अपने काव्य–सृजन–दरवार में; भले ही अनुप्रास–यमक की भरमार न सही परन्तु उपमाओं व उत्प्रेक्षाओं को अद्भुद आधार दिया है श्री नन्ददासजी ने। दृष्टव्य है एक उदाहरण –

पहलें तौ देखौ आय मानिनी की सोभा लाल,
पीछैं तौ मनाय लीजै प्यारे गोविन्द।।
कर पर धर कपोल रही है नैंननि मूँद,
कमल विछाय मानों सौयौ है चंद।।
रिसभरी भौंवां मानों भौंरा बैठि अरबरात,
इन्दु तरे अरविन्द भर्‌यौ मकरन्द।।
नन्ददास प्रभु प्यारे ऐसी रूठैयें बलि,
जाकौं मुख देखे तों कटत दुख द्वन्द।।

उक्त उत्प्रेक्षाओं ने जहाँ श्री राधिका मुखारबिन्द के बाह्य रुप–लावण्य को कमल–विछौना पर शयन करते चन्द्रमा बताकर साकार अभिव्यक्ति प्रदान की है, वहाँ गतिशील भ्रू–भंगिमा को मकरन्द भरे अरविन्द पर अरबराते भ्रमर बताकर हृद्‌य–प्रदेश में उठे प्रेम के सम्पूर्ण ज्वार भाटों को ही समुपस्थित कर दिया है। बस्तुतः नन्ददासजी का काव्य–लीला साहित्य–गीत व ध्वनि चित्रों का अक्षय कोष है। ध्वनि शक्ति का परिचायक प्रस्तुत है– एक उदाहरण जिसमें नृत्यरत गोपियों के आभूषणों की झंकार है, वाद्यों की टंकार है, मुरली की मनुहार है और सबके स्वर में स्वर मिलाती भ्रमरों की गुंजार है–

नूपुर–कंकन–किंकन, करतल मंजुल मुरली।
ताल–मृदंग–उपंग–रंग एकै सुर जुरली।।
मृदुल मुरज–टंकार, तार–झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र के तार, भँवर–गुँजार रली पुनि।।
तैसिय मृदु पद–पटकनि, चटकनि, कठतारन की।
लटकनि–मटकनि–झलकनि, कल, कुंडल हारन की।।
हार–हार में उरझि, उरझि बहियाँ में बहियाँ।
नील़ पीत पट उरझि, उरझि बेसर नथ महियाँ।।

उक्त पंक्तियों में संगीत ध्वनियों की केसी मनोहारी संश्लिष्ट चित्र–प्रस्तुति का दर्शन है, साथ ही नृत्यगति एवं भाव तनायता की अभिव्यंजनात्मक अस्तव्यस्तता के अनुपम चित्रता का तो कहना ही कया। संगीत की लय के साथ पड़ते चरण, नृत्यरत शरीर की मटकनि, झटकनि आदि भंगिमाएँ, कुण्डल की हलनि, चमकनि एवं लटकन आदि क्रियाएँ और सबके साथ पीठ पर हिलती गोपियों की वेणियाँ भी नन्ददासजी का रुप विधायिनी काव्य सृजन प्रतिमा के बल पर मूर्त रुपधारण करती हुयी प्रतीत होती है। श्रीकृष्ण के उलझे हुये आभूषणों और भुजाओं के चित्रण में कवि की चित्र–कल्पना वक्र एवं सरल रेखाओं का निर्माण करती दर्शित होती है, साथ ही नीले–पीले वस्त्रों के उलझने का उल्लेख और उनमें विभिन्न प्रकार के चटकीले रंगों की सफल नियोजना मन मोहे बिना नहीं रहती। गति एवं रुप का ऐसा अद्भुत मिश्रण लीला काव्य अन्यन्त दुर्लभ है।

नन्ददासजी का काव्य जहाँ अलंकारों से अलंकृत है वहीं 'रसों' के सरस रस में भी सरावोर है। उनका 'श्रृंगार' चित्रण तो देखते ही बनता है। 'शब्द' तो क्या 'भाव' और 'ध्वनि' भी श्रृंगार की ओढ़नी ओढ़े रस–मग्न प्रतीत होते हैं और 'रस–मंजरी' ने तो 'नायिका' को ऐसे विविध स्वरुपों में सजाया है कि कहीं स्वकीया–परकीया–अक्षत यौवना व मुग्धा सजी–धजी दिखाई पड़ती हैं तो कहीं मध्यमा–प्रौढ़ा–रुठा व खंडिता अपने अपने रुप को उजागर करते दर्शित होती हैं। श्रृंगार–रस के अस्तित्व एवं महत्त्व को बताते हुये स्वयं नन्ददासजी ने कहा है कि "जो व्यक्ति प्रेम–भाव के भेदों को नहीं जानता, वह प्रेम के रहस्य को नहीं समझ सकता। प्रेम मार्ग के अनुयायी को प्रेम का रहस्य अवश्य जानना चाहिये। अतः भगवत् भक्ति के लिए श्रृंगार रस को समझना आवश्यक है।"

संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार दोनों ही का अनूठा चित्रण नन्ददासजी के काव्य में सांगोपांग निरूपित है। एक ओर संयोग श्रृंगार की रसानुभूति से आल्हादित नायिका 'रस–मंजरी' के काव्य–कानन में किलकती दर्शित होती है तो दूसरी ओर वियोग–श्रृंगार की पीड़ा से व्यथित ब्रज–नायिका 'विरह–मंजरी' की विरहाग्नि में बिलखती दर्शित होती है। इतना ही नहीं 'रुप–मंजरी' के माध्यम से तो नन्ददासजी ने लौकिक श्रृंगार को ही आध्यात्मिक भावों की प्रेम लक्षराग–भक्ति में सराबोर कर परकीया प्रेमादर्श का साक्षातकार करा दिया है। तभी तो निःसंकोच नन्ददासजी "हिन्दी के भक्ति काव्य तथा लौकिक श्रृंगारी काव्य को जोड़ने वाली एक कडी" कहे जाते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भी नन्ददासजी पीछे नहीं रहे हैं। जहाँ अलंकार के श्रृंगार से और 'श्रृंगार' की मनुहार से काव्य–सौन्दर्य समुपस्थित किया है; वहाँ लोकोक्तियों और मुहावरों का समुचित प्रयोग भी नन्ददासजी ने अपने काव्य में किया है; यथा–

"घर आये नाग नहीं पूजैं, बाँबी पूजन जाँय। (भँवरगीत)

छंद विधान की दृष्टि से नन्ददास- का काव्य बहुरुपदर्शी है। इन्होंने मात्र पदों में ही काव्य सृजन नहीं किया अपितु काव्य की अनेक शैलियों से समविन्वत काव्य सर्जना की। रोला, दोहा, चोपाई ओर छोटे छेदों के तो नन्ददासजी सिद्धहस्त रचनाकार थे। उनके रोलाछंद का तो कहना ही क्या। उनके रोला हिन्दी साहित्य के अमोलक रत्न बन गये हैं। रोला–दोहा के संयुक्त छंद के अन्त में एक छोटा चरण जोड़कर एक अनुपम छंद की प्रस्तुति नन्ददासजी की हिन्दी साहित्य के लिये एक अमूल्य देन है। शब्द चयन के लिये तो वे सर्वदा साहित्य–पटल पर अंकित रहेंगे तभी तो उन्हें 'नन्ददास–जड़िया' कहा जाता है। और तो और नन्ददासजी ने परम्परागत छंदों के साथ लोक गायकी के अनुरुप कतिपय ऐसे छन्दों का निर्माण भी किया, जिसके कारण रासमंच की लीलाओं में लोक धुनों पर बनी अनेक रचनाओं का प्रचलन होने लगा। 'होरी लीला' से सम्बन्धित उनकी रचना का अंश दृष्टव्य है–

या ब्रज में कैसी धूम मचाई।।
इतते आई कुँवरि राधिका, उततें कुँवर कन्हाई,
खेलत फाग परस्पर हिलभिल, या छबि बरनि न जाई,
घरैं घर बजत बधाई।।
राधे सैन दई सब सखियन, यूथ यूथ मिलि धाई,
पकरौरि पकरौ श्याम सुन्दर कों, गृह अब जान न पाई,
करौ अपने मन भाई।।
छीन लिये मुरली पीताम्बर, सिर पै चुनरि उड़ाई,
बेंदी भाल नयन बिच कजरा, नक बेसरि पहराई,
मनों नई नारि बनाई।।
धनि गोकुल धनि धनि वृन्दावन, धनि यमुना यदुराई,
राधा कृष्ण युगल जोरी पै, नन्ददास बलि जाई,
प्रीति उर रही न समाई।।

इस प्रकार काव्य सौष्ठव की दृष्टि से नन्ददासजी उच्च कोटि के रचनाकार कहे जा सकते हैं, जिन्होंने काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं को अपनी रचनाओं मे अपनाया, जिसके फलस्वरुप ''हिन्दी साहित्य में उनका स्थान कुछ चुने हुये महान कवियों के बाद ही आता है।''

नन्ददासजी की काव्य-विषय वस्तु विविधता से परिपूर्ण है। श्रीकृष्ण उनके आराध्य हैं और उनका सम्पूर्ण काव्य सृजन श्रीकृष्ण की सेवा में ही समर्पित रहा है। भले ही प्रारंभ में अपने काव्य सृजन को उन्होंने लौकिक कथानकों से जोड़ा हो परन्तु अन्ततः उसे आनन्द के मूल स्रोत आनन्द धन–रस रुप नन्दकुमार की शरण में ही लाकर खड़ा कर दिया है। तदनन्तर वह सृजन रसात्मकता मे रसविभोर हो अपने आराध्य के गुणगान करता हुआ निरंतर प्रेम–भक्ति–पथ पर चलता रहा है।

श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का सांगोपांग विशद वर्णन ही नन्ददासजी की रचनाओं का मूल विषय रहा है। वस्तुतः ; श्रीकृष्ण की रासलीलाओं का विपुल साहित्य है नन्ददासजी द्वारा विरचित काव्य। सम्प्रति रास मंचों पर भी श्रीराधा का मान, श्रीकृष्ण का मान एवं उनके पारस्परिक मान की विविध स्थितियों को लेकर सम्पन्न होने वाली अनेक विद्यमान लीलाओं का कलेवर नन्ददासजी द्वारा विरचित रचनाओं के आधार पर गठित होता है। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त–कथन एवं श्रीकृष्ण भक्तिमय शास्त्रीय विवेचन से समन्वित काव्य के अतिरिक्त "नन्ददासजी ने कुछ ऐसे विषयों को भी रचना का विषय बनाया है, जो लौकिक और साहित्यिक कहे जा सकते हैं।

यह निर्विवाद तथ्य है कि नन्ददासजी की काव्य विषय वस्तु के प्रति मानसिकता बहुआयामी रही है। काव्य–सृजन की अद्भुत क्षमता के काव्य–कोष थे श्री नन्ददास। काव्य–सृजन की उत्कंठा ने अधिक जोर मारा तो सम्पूर्ण भागवत को ही ब्रज–काव्यमय कर दिया, किन्तु बाद में ब्राह्मणों व कथा वाचकों द्वारा श्री विट्ठलनाथजी से प्रार्थना करने पर अपने पूज्य गुरुवर श्री विट्ठलनाथजी का आदेश सिरोधार्य कर "ब्रज लीला सम्बन्धी पदों और रास–रस के वर्णन को अलग रख शेष भाग श्री यमुना जी में प्रवाहित कर दिया। अस्तु, "श्री नन्ददासजी के काव्य–विषय में विविधता दृष्टव्य है किन्तु मुख्य विषय के रुप मे भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का यश चिन्तन ही उनकी काव्य की आत्मा थी। नन्ददासजी स्वयं कहा करते थे– " जिस कविता मे हरि के यश का रस न मिले, उसे नहीं सुनना चाहिये" नन्ददासजी तो हर पल श्रीकृष्ण जी की सौन्दर्य माधुरी रास–रस और नित्य गोपी भाव मे 'सरावोर रहते थे तथा हरि–गुण–गान में ही जीवन के आनन्द का अनुभव करते थे। अतः मूल रुप मे उनकी काव्य विषय वस्तु श्रीकृष्ण से ही जुडी रही।

श्री नन्ददासजी की कृतियों के आंकलन के संदर्भ में विद्वानों में मत–एक्य नहीं है। 'नागरी प्रचारिणी सभा' के अनुसार नन्ददासजी की कृतियों की संख्या पन्द्रह निर्देशित है तो 'गार्सी द तासी" के मतानुसार 'उनकी चौदह कृतियाँ बताई जाती हैं। ठाकुर शिवसिंह 'सरोज' केवल सात ग्रन्थों का ही उल्लेख करते हैं। 'मिश्र बन्धु विनोद' और 'सुकवि सरोज आदि मे भी इनकी कई नई कृतियों का नामोल्लेख है, परन्तु अलग–अलग विद्वानों के विचार भिन्न–भिन्न हैं। फिर भी नन्ददासजी की सब कृतियों को मिलाकर लगभग दो दर्जन ग्रन्थ तो गणना में आ ही जाते हैं।

जहाँ "रास–पंचाध्यायी" में श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के रास सम्बन्धी पाँच अध्यायों की कथा मनोहर छंद और ललित पदावली में वर्णित की गयी हैं, वहीं "रासमंच पर रासानुकरण विधा के प्रयोक्ताओं को रास के सिद्धान्त पक्ष का साक्षात दर्शन सिद्धान्त–पंचाध्यायी में होता है। नन्ददासजी का 'भँवर गीत' शब्द चयन, संवाद, संगीत की झंकार, मनोरंजकता, वाक्चातुर्य आदि के लिये प्रसिद्ध है। भँवर गीत के संवाद तो इनते जीवन्त हैं कि उनसे प्रेरणा पाकर उद्धवलीला के दर्शक–भक्तों, लीला प्रेमियों, सन्त महात्माओं और

रास विद्या के प्रयोक्ता स्वामियों ने अनेक कवित्त–सवैया छंदों का निर्माण किया है जिससे रासमंच की लीला अत्यधिक प्रभविष्णु बनने में समर्थ हो सकी है।

एक ओर, 'स्याम सगाई' रास मंचीय लीलाओं की प्रसंगगत नवीन उद्‌भावनाओं में गारूडी कृष्ण द्वारा श्रीराधा का विष उतारने एवं अन्त में सगाई पक्की करवाने की प्रेरक प्रतीत होती है तो दूसरी ओर' विरह मंजरी' बारहमासे जैसी शैली के माध्यम से एक ब्रज युवती की विरह दशा का सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत करती है। साथ ही 'अनेकार्थ', 'मानमंजरी माला' अपने कोशों की काव्यमयी वाणी में शब्द ज्ञान कराने मे ही पीछे नहीं रहती; अपितु राधा मान आदि की भी रासमयी सरसता दर्शाती हैं। नन्ददासजी की कृति 'रुप–मंजरी' काव्य कला ओर रसात्मकता की दृष्टि से उत्कृष्ट कृति है, जिसके अन्तर्गत श्रीकृष्ण के प्रति एक सुन्दर स्त्री का प्रेम तथा उसकी सखी इन्दुमती के साथ उसके सम्बन्ध का मनोहारी वर्णन है। इस काव्य कृति की नायिका रुपमंजरी है और सखी स्वयं कवि नन्ददासजी हैं।

इस प्रकार सहज स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददासजी की कृतियाँ एवं रचनाएँ विविध ता सम्पन्न हैं, रोचक काव्य सामग्री से परिपूर्ण हैं तथा काव्य सौन्दर्य व रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से ब्रजभाषा का श्रृंगार हैं। तभी तो श्री वियोगी हरि ने उनके रचित ग्रन्थों के सन्दर्भ में स्पष्ट लिखा है कि "नन्ददासजी के ग्रन्थ इतने रोचक और भावपूर्ण हैं कि उनकी टक्कर लेने वाले ग्रन्थ हिन्दी में बहुत ही कम होंगे। कृत्रिमता का तो कहीं नाम ही नहीं है। रास पंचाध्यायी को यदि हिन्दी का 'गीत गोविन्द' कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।"

अष्ट छाप में नन्ददासजी का अस्तित्व एवं महत्त्व गरिमा से परिपूर्ण है। अष्ट छाप कवियों में यदि सूरदास जी साहित्यिक सन्दर्भो की दृष्टि से 'मुकुटमणि' हैं तो नन्ददासजी मणियों की माला।' तभी तो "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में स्पष्ट अंकित है कि "अष्टछाप के कवियों में सूरदास के पश्चात् नन्ददास निश्चय ही चन्द्रमा हैं।" वस्तुत ; श्री वियोगी हरि के इस कथन को नन्ददासजी की साहित्यक सेवा एवं पुष्टि सम्प्रदाय काव्य सेवा के प्रति समर्पण ही कसौटी पर कसा जाय तो खरा कंचन प्रमाणित होता है।

पुष्टि–मार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त नन्ददासजी की आसक्ति, जो लौकिक रुप तक सीमित थी, परिष्कृत होकर श्रीकृष्ण की रुप माधुरी में केन्द्रीभूत हो गयी।" गुरू चरण -रज कृपा से लौकिक श्रृंगारी काव्य श्री कृष्ण की रुप माधुरी तथा गोपी प्रेम के वर्णन में ऐसा रमा कि अन्य रसिक भक्त कवियों के साथ मिलकर कृष्ण–लीला का गुणगान करना ही नन्ददासजी की काव्य–साधना व जीवन–तपस्या बन गयी। नन्ददासजी का प्रति पल हरिगुणगान में व्यतीत होने लगा। उनका भक्तिमय मन श्रीकृष्ण चन्द्र की सौन्दर्य माधुरी, रास–रस एवं नित्य गोपी भाव के सरस–सागर मे डुबकी लगाने में ही मस्त रहने लगा–

कृष्ण नाम जब तें श्रवण सुन्यौ री आली,
भूली री भवन, हौं तौ बावरी भई री।
भरि–भरि अँखें नैन, चित्त हू न परत चैन,
मुख हू न आवे बैन, तन की दसा कछु औरें भई री।।
\+ + + + + + +

तनक सौ बदन, सदन शोभा कौ, तनक तिलक ढिंग तनक डिठोना।
तनक लटूरी सो है, मुनिन के मन मोहै, मनों कमलन ढिंग, बैठे अलि–छौंना।।
तनक सी रज लागी, निरखत सो बड़भागी कंठ कठूला सोहै और नख–बंधना।
'नंददास' जसोदा के आँगन में खेलें हरि, जाकौ जस गाइ–गाइ सिव भये मगना।।

अष्टछाप के "आठों महानुभाव दैवी जीव और श्रीनाथजी के अन्तरंग सखा माने जाते हैं . . . . उन्हें श्रीनाथ जी का साक्षात्कार प्राप्त था। वे अहर्निश श्रीनाथ जी के प्रत्यक्ष दर्शन करते थे– यहाँ तक कि श्रीनाथजी बाल रुप में उनके साथ खेलते भी थे। वे सबके सब श्रद्धालु, धार्मिक, सात्विक प्रकृति के पुरूष थे" ये सभी गुण नन्ददासजी के व्यक्तित्वमें भी पूर्णतः रमे हुये थे। नन्ददासजी में कुछ तो "ऐसी विशेषताऐं थीं जिनके कारण अष्टछाप कवियों में उनका स्थान अद्वितीय कहा जा सकता है। कृष्ण भक्ति के सन्दर्भ में उनकी सोच विशिष्टता से पूर्ण थी। वे कृष्ण भक्ति के महात्म्य को तर्क और पाण्डित्य द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे। श्रीकृष्ण भक्ति के लिये जिस सौन्दर्य में प्रेम और रसिकता की आवश्यकता है वह नन्ददासजी में अष्टछाप के अन्य कई कवियों से अधिक बढकर थी। इसीलिये "कविवर नन्ददासजी को वल्लभ सम्प्रदाय एवं अष्टछाप के कवियों में प्रमुख माना जाता है।

साहित्यिक दृष्टि से भी आष्टछाप कवियों में सूरदास जी के अनन्तर नन्ददासजी को ही अत्यन्त महत्त्व प्राप्त है।

अन्य अष्टछाप कवियों की भाँति नन्ददासजी के काव्य में भी वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत रुप की बड़ी ही प्रमाणिक तथा मनोहारी प्रस्तुति दर्शनीय है। इससे स्पष्ट होता है कि नन्ददासजी ने "कवि कर्म की दृष्टि से अपना प्रणयन नहीं किया अपितु भगवान श्रीनाथजी को प्रसन्न करने के लिये, उन्हें रिझाने के लिये, भाव विभोर होकर अपने काव्य की रचना की। इससे सहज विदित होता है कि "वे भक्त पहले थे, कवि बाद में।" नन्ददासजी के काव्य में 'प्रबन्ध–काव्य' के इतने गुण दृष्टिगोचर होते हैं जिन के आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि– "कृष्ण काव्य के वृहद् कलेवर में केवल 'अष्टछाप–काव्य' ही ऐसा है– जिसमें सम्यक प्रबन्ध रचना मिलती है।"

अस्तु; निष्कर्षतः श्री नन्ददासजी जहाँ महाकवियों की विलक्षण प्रतिभा एवं अद्भुत काव्यगत विशिष्टताओं से सम्पन्न उच्चकोटि के कवि थे; वहीं पुष्टि सम्प्रदाय के सरस–रस में पगे हुये अष्टछाप सुमाला के श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति–द्युति से द्युतिमान मुक्ता थे, जिनकी भक्ति एवं काव्य कीर्ति अमर–लता के सदृश सर्वदा पल्लवित, पुष्पित एवं सुरभित रहेगी।

सिंघानिया कालोनी, हाथरस

रास पंचाध्यायी

✍ डा. श्रीमती पुष्पा चौरसिया

रास पंचाध्यायी और भँवरगीत नन्ददास की दो ऐसी महान् कृतियाँ हैं जिनसे उनकी यशः कीर्ति कृष्ण काव्य–जगत में हीरक–ज्योति की तरह भास्वर हुई है।

'रास पंचाध्यायी' की मूल कथा (श्री मद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध) में भगवान् कृष्ण की बाल–कैशोर लीलाओं का अत्यन्त भव्य और सुललित वर्णन नब्बे अध्यायों में किया गया है। इसमें २६ वें से ३३ वें अध्याय तक रास लीला वर्णन मिलता है। इसे 'रास पंचाध्यायी' अभिधान दिया गया है।

श्रीमद्भागवत की कथा संक्षेप में इस प्रकार है– शरदपूर्णिमा की सुहानी रात के प्रारम्भ में श्री कृष्ण ने मुरली बजा कर गोपियों का आह्वान किया। सभी गोपियाँ अपने कामों को छोड़कर आकुल–व्यग्र भाव से वहाँ जा पहुँचीं। श्रीकृष्ण ने उनकी प्रेम–परीक्षा ली और उन्हें लौट जाने के लिए कहा, किन्तु गोपियाँ सत्यनिष्ठ भाव से सांसारिक मोह आदि छोड़ चुकी थीं और श्रीकृष्ण के प्रति ऐकान्तिक भाव से अनुव्रती थीं– वे कहाँ लौटने लगीं? श्रीकृष्ण उनके साथ लीला–विहार करने लगे। अपने–अपने साथ लीला–विहार मे गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के नृत्य, हास, विलास आदि में कृष्ण मय हो गईं और उनमें अहंभाव पैदा हुआ कि वे श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं, पर भगवान् को अहंकार नहीं भाता। उनके अहं को दूर करने के लिए भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर तो गोपियाँ वन में उन्हें खोजती फिरीं, उस सर्वव्यापी का पता वे वृक्ष, पशु आदि से पूछती फिरीं, उन्हें घर लौटने का ध्यान ही नहीं रहा, उनका सांसारिक मोह दूर हो गया– अन्ततः भगवान के चरण चिह्न मिले और वे पुनः खोजने लगीं साथ ही उच्चस्वर में रूदन करते हुए उनका लीलागान गाने लगीं। इसे सुनकर भगवान् उन्हीं के मध्य प्रकट हो गए।

गोपियों का आह्लाद अपनी पराकाष्ठा पर था और वे सब यमुना–पुलिन पर विहार करने लगीं। रास मण्डल की रचना हुई, प्रत्येक गोपी के साथ एक–एक श्रीकृष्ण प्रकट रुप में रासनृत्य में संलग्न हुए। प्रातः काल सभी गोपिकाएँ अपने घर लौटीं और किसी ने भी उन पर किसी प्रकार की शंका नहीं की।

नन्ददासजी ने 'रास पंचाध्यायी' में रास लीला का वर्णन 'रोला' छन्द में किया ह। इसमें पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में वृन्दावन–छवि और शरद–रात्रि की रमणीयता भी बड़े भव्य और दिव्य रुप में उरेही गई है और श्रीकृष्ण मुरली बजाते हैं। गोपियाँ उस स्वर से खिंच कर उस वन में आ जाती हैं। उन्हें श्रीकृष्ण स्त्री धर्म की शिक्षा देते हैं और उन्हें घर लौट जाने के लिए कहते हैं। गोपियाँ 'बालमृगन की माल' सदृश भौचक्की रह जाती हैं। कवि ने गोपियों की इस स्तब्ध दशा का अत्यन्त

मनोमय–भावपूर्ण चित्रण किया है। अन्ततः मनमोहन गापियों के साथ कुंज में विहार करते हैं, गोपियाँ गर्वित हो उठतीं हैं, श्रीकृष्ण अन्तर्धान होते हैं।

'रास पंचाध्यायी' के दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण को गोपियाँ खोजती हैं, वृक्षों, लताओं, पशुओं से पता पूछती हैं। नन्ददास का वर्णन बहुत ही सरस और करूणा–प्लावित है। तीसरे अध्याय में गोपिकाओं के विलाप का, उनके उपालम्भ का बड़ा ही मनोहारी अंकन मिलता है। उनके वैकल्य का कवि ने अत्यन्त वैदग्ध्यपूर्ण वर्णन किया है। चौथे अध्याय मे श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं, गोपियाँ सोत्साह उनसे मिलती हैं और श्रीकृष्ण उनसे क्षमा याचना करते हैं। पाँचवे अध्याय में रासलीला का परम भव्य और सुललित वर्णन है– यह वर्णन ऐसा है कि रास का दृश्य हृदय और नयनों के सामने खिंच उठता है। श्रीकृष्ण गोपियों के साथ यमुना में जलक्रीड़ा करते हैं और गोपियाँ प्रातः अपने–अपने घर चली जाती हैं। अंत में इस कथा का माहात्म्य वर्णन करते हुए नन्ददास कहते हैं कि यह गोपाललाल की लीला परम् रसावधि है जो इसको गाता है वह ''परमकांत एकांत भगति रस तो भल पावै।''

नन्ददासजी ने श्रीमद्भागवत की उपर्युक्त कथा में अपनी ओर से अनेकशः मौलिकताएँ और नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं, साथही कथा में कुछ परिवर्धन और संक्षिप्तकरण भी किया है।

'रास पंचाध्यायी' का मूल आधार मुख्यरुप से श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २६ से ३३ अध्याय तक की कथा है। नन्ददास ने हरिवंश पुराण के विष्णुपर्व वाले रास–वर्णन को भी दृष्टिपथ में रखा है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' भी नन्ददास की इस कृति का आधार है। गीत गोविन्द की मधुरता, प्रवाह, गति और शैली नन्ददास के पंचाध्यायी के रोला–साँचे में ढल गई हैं। गीतगोविन्द का माधुर्य भी पंचाध्यायी में रच–बस गया है। वियोगी हरि ने पंचाध्यायी को हिन्दी का गीत–गाविन्द माना है। (ब्रज माधुरी सार पृ. ५४)

'रास पंचाध्यायी' में रसों और गुणों की सर्जना अत्यन्त स्वाभाविक और सुन्दर रुप में की है। उसमें श्रृंगार, करूण और शान्त रसों के भव्य वर्णन मिलते हैं। श्रृंगार रस का एक सरस उदाहरण पर्याप्त है–

'इहि विधि विविध विलास हास सुख कुंज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न, ब्रीड़न कोटि मदन के।।

पंचाध्यायी में करूण रस–वर्णन में हृदय को बेधने वाली आँसुओं की प्रांजल मणिमालाएँ सुगुम्फित हैं–

''प्रनत मनोहर करत चरण सरसीरूह पिय के।
कह घटि जैहे नाथ, हरत, दुख हमरे जिय के।।
कहँ यह हमरी प्रीति, कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि परवान ते खचै दईतें कछु न बसाई।।
जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतन छिन।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जाने पिय बिन।।

रास पंचाध्यायी के अन्त में शान्त रस का अभिय–निर्झर प्रवाहित है–

'अघहरनी, मनहरनी सुन्दर प्रेम वितरनी।
नन्ददास के कण्ठ बसौ नित मंगल करनी।।

रास पंचाध्यायी में माधुर्य और प्रसाद गुण परिपूर्ण मात्रा में अनुस्यूत हैं। शब्दों की ध्वनि से कवि ने अर्थो की व्यंजना की है। इनके रस वर्णन के विषय में कहा जा सकता है कि रास पंचाध्यायी में "अरथ अमित अति आखर थोरे"

नूपुर, कंकन, - - - - - दामिनि माला।

रास पंचाध्यायी में पदयोजना का सुन्दर समायोजन मिलता है। अनुप्रास, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अत्यन्त स्वभाविक प्रयोग इसमें पदे–पदे मिलता है। रुपक का एक मनोहर प्रयोग दृष्टव्य है–

'नव मरकत मणि श्याम कनक मणिगण ब्रजबाला।'

वियोग और संयोग श्रृंगारों का यह आकर काव्य है। नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण भी इस काव्य मे बडे सहज रुप में किया है। उसमें उद्दीपन रुप में वृन्दावन, शरदचन्द्र, यमुना तट, निस्तब्ध रात्रि आदि हैं। नन्ददास की भाषा अत्यन्त व्यंजक, प्रवाहमयी, सरस और स्वाभाविक है। कहा जाता है कि सुवर्णकार सोने के आभूषण बनाता है, किन्तु कुशल सुवर्णकार वह है जो सोने के आभूषणों में मणि–रत्नों, हीरकों को जड़ता है। नन्ददास कुशल सुवर्णकार की भाँति सु–वर्णो–शब्दों में अलंकारों, व्यंजनाओं, अर्थो आदि की जड़ाई का काम करते हैं, इसलिए कहा गया है कि – 'और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।' शब्दों मे भावों के साथ–साथ चित्रों को मनोगोचर कराने में नन्ददास अप्रतिम हैं। चित्र मनः चक्षुओं के समक्ष उपस्थित हो जाता है–

"सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजत भारी।
हियो सरोवर रस भरी चलि मानो उमगि पनारी।।"
नन्ददास उपयुक्त शब्दों का चयन करने में भी अप्रतिम हैं–
"इत महकत मालती चारू चम्पक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मन्दार झकोरत।।"

रास पंचाध्यायी की सर्जना प्रबन्ध काव्य के रुप में की गई है। इसमें कथा भाग अत्यल्प है। लौकिक श्रृंगार के माध्यम से कवि ने अलौकिक आध्यात्मिक भावों को रुपायित किया है। इसमें आत्मा का परमात्मा से मिलकर नित्य लीला वाले चरम आनन्द को प्राप्त करने की रसात्मकता विद्यमान है।

६/२७० 'चन्द्रालय' ,फ्रीगंज,
उज्जैन (म.प्र.)

गोसाईं चरित और भक्तमाल में नन्ददासजी

✍ डा. घनश्याम व्यास

'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता'

जीवन प्रवाह के साथ ही मानव का क्रमबद्ध स्वरुप विकसित होता है। बालक जिस समय जन्म लेता है, उस समय उसे न तो कुछ ज्ञात होता है और न ही कुछ ज्ञात रहता है। अष्टछाप कवियों के जीवन प्रवाह की ओर ध्यान देने पर सुस्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में क्या थे और जीवन के अन्तिम क्षणों के समय उनकी कैसी स्थिति थी। यहाँ मैं अष्टछाप कवियों में महाकवि सूरदास जी के पश्चात् अद्‌भुत प्रतिभा के धनी कविश्रेष्ठ भक्तप्रवर नन्ददासजी का नाम ही विशेष महत्त्व के साथ सादर स्मरण करता हूँ और उनके सम्बन्ध में विचार करने की ओर अग्रसर होता हूँ। भक्त कविनन्ददासजी के सम्बन्ध में दो विद्वानों का उल्लेख किया जाता है जिन्होंने अपने ग्रंथों में उनके सम्बन्ध में कुछ लिखा है। वे हैं बेनामाधवजी और श्रीनाभा जी। बेनीमाधव का महत्त्व उनकी रचना 'मूल गोसाईं चरित' के कारण है। बेनीमाधवदास ने अपने इस ग्रंथ में महाकवि तुलसीदासजी का विस्तृत विवरण दिया है। इसी के साथ उन भक्त कवियों के सम्बन्ध में भी लिखा है जिनकी भेंट तुलसीदास से हुयी थी या स्वयं तुलसीदास ने उनसे भेंट की थी। बेनीमाधवदास के ग्रंथ "मूल गोसाईं चरित" के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य में भ्रांतियाँ हैं तथा इसे अप्रामाणिक कृति सिद्ध किया है। प्रथमतः इस सम्बन्ध में निरुपित तथ्यों की ओर दृष्टिपात करते हैं।

बेनीमाधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" - महाकवि तुलसीदास के सम्बन्ध में जिन विद्वानों ने विचार किया है उन्होंने बेनीमाधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" के सम्बन्ध में भी विचार किया है। डा. माताप्रसाद गुप्त ने अपने ग्रंथ "तुलसीदास" में स्पष्टतः लिखा है कि 'मूल गोसाईं चरित' प्रामाणिक ग्रंथ नहीं है। उसमें अनेक ऐसी अलौकिक और अस्वाभाविक घटनाएँ दी गयी हैं, जिन पर विश्वास ही नहीं किया जा सकता है। डा. माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है– 'चरित लेखक कहता है कि सं. १६४६–५० के लगभग उनके चरित नायक तुलसीदास वृंदावन जाकर अपने शिक्षा–गुरू बंधु नन्ददासजी कनौजिया से मिले।

"नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े। जिन सेष सनातन तोर पढ़े।

सिच्छा गुरू–बंधु भए तेहिते। अति प्रेम सो आय मिले येहिते। (मू.गो.च.75)

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता में उल्लेख है कि नन्ददास मिलने वर तुलसीदास को गोसाईं श्री विट्ठलनाथजी के पास लिवा ले गए, जहाँ गोस्वामी जी ने एक चमत्कार भी देखा। (पृ.३४–३५ 'तुलसीदास)। गोसाईं विट्ठलनाथजी का देहान्त सं.१६४२ में हुआ था। (ग्राउस : मथुरा पृ. २६२)

डॉ. उदयभानुसिंह ने अपने ग्रंथ ''तुलसी काव्य–मीमांसा'' में बेनीमाधवदास के ग्रंथ ''मूल गोसाईं चरित'' के सम्बन्ध में विचार किया है। डा. उदयभानुसिंह ने लिखा है – ''वृन्दावन में वे नाभादास से मिले। तुलसी को रामोपासक जानकर कृष्ण ने धनुर्धर–रुप धारण कर लिया था। वहाँ पर तुलसी के गुरू–बंधु नन्ददास मिले।

''मूल गोसाईं चरित'' अप्रामाणिक पुस्तक है। लेखक ने अविश्वयनीयता के कारण दिये हैं। वे इस प्रकार हैं –

१. यह पुस्तक ऐसे अलौकिक चमत्कारों से भरी पड़ी है जिन पर विश्वास करना किसी विवेकशील के लिए असम्भव है।

२. इसमें कहा गया है कि तुलसी के बाल्यकाल में उनके भरण–पोषण की चिन्ता चुनियाँ, पार्वती, शंकर और नरहर्यानंद ने की। स्पष्ट है कि तुलसी जीविका के विषय मे निश्चिन्त रहे। इसके विपरीत, कवि के स्वर में स्वर मिलाकर यह भी कह दिया गया कि उस बालक का द्वार–द्वार डोलना हृद्‌य–विदारक था। ये परस्पर विराधिनी उक्तियाँ असंगत हैं।

३. प्रेत की घटना।

४. विनयपत्रिका को रामावनयावली आदि घटनाओं का उल्लेख किया है, जो कुल १४ कारण हैं।

(तुलसी काव्य–मीमांसा : उदयभानुसिंह पृष्ठ सं. १६ से २५ तक)

श्री कुलदीपनारायण राय 'झड़प' ने अपने ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास जीवन वृत्त और व्यक्तित्व में 'मूल गोसाईं चरित' के सम्बन्ध में विचार करते हुये लिखा है :– 'मूल गोसाईं चरित' का सर्वप्रथम नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९२६ (सं.१९८३) क्रम–संख्या ४४ द्वारा होता है। लेखक ने डा. माताप्रसाद के ग्रंथ का उल्लेख करते हुए मान्य किया है कि ग्रंथ अप्रामाणिक है। लेखक ने अन्य दो विद्वानों के मत भी दिये हैं।

एक : आचार्य चन्द्रबली पाण्डे का कथन है कि 'अवध के सूकर क्षेत्र को लेकर जो मूल गोसाईं चरित बना था वह भी बनावटी ही निकला।' (तुलसीदास पृ.१६) अस्तु यह ग्रंथ भी प्रमाण के रुप में स्वीकार नहीं किया जा सका।

दो : पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उसे स्पष्ट रुप से जाली और अप्रामाणिक कहा है। (गोस्वामी तुलसीदास पृ. ३०२ और २७६) श्री झढप के ग्रंथ की पृष्ठ संख्या है– ३० से ३३ तक।

"हिन्दी साहित्य कोश, भाग–२" में गोसाईं चरित का विवेचन संक्षिप्त में दिया गया है। (पृ॰१४७) इसी के अन्तर्गत बेनीमाधवदास की रचना का नाम है "मूल गोसाईं चरित।" शिवसिंह सेंगर ने 'सरोज' में गोसाईं चरित के लेखक बेनीमाधवदास उल्लिखित हैं। इसी के सम्बन्ध में डा॰ माताप्रसाद गुप्त ने अप्रामाणिक होने के तर्क दिये हैं। उन्होंने एक अन्य 'गोसाईं चरित' की खोज की है, जिसके लेखक भवानीदास हैं, सिद्ध किया है। इस विवाद में मुझे नहीं पड़ना है। हिन्दी साहित्य कोश, भाग–२ में 'गोसाईं चरित' के विवरण में आगे लिखा है कि बेनीमाधवदास की रचना का नाम है "मूल गोसाईं चरित"। "मूल गोसाईं चरित" में कुछ ऐसी शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है, जो उसे आधु-निक कृति सिद्ध करती है। "धुनि सुने सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" ऐसी ही एक शब्दावली है। अन्त में दिया है– "भवानीदास कृत "गोसाईं चरित" से इसकी अनेंक प्रकार से समता होने के कारण यह सम्भव है कि या तो "मूल गोसाईं चरित", गोसाईं चरित" के आधार पर लिखा गया हो या इन दोनों का आधार जनश्रुतियाँ हों, जो पूर्णतया प्रामाणिक नहीं है।" (पृ॰१४७–१४८)

बेनीमाधवदास के सम्बन्ध में "हिन्दी साहित्य कोश, भाग–२ में संक्षिप्त विवरण दिया है। ये तुलसीदास के साथ रहे। इन्हें तुलसीदास का शिष्य भी कहा जाता है। "सरोज" के अनुसार इनकी मृत्यु १६४२ ई॰सन् दी है। बेनीमाधवदास के "मूल गोसाई चरित" में तुलसीदास का विस्तृत जीवन–वृत्त मिलता है। सन् १९३४ ई॰ में गीता प्रेस ने इसे प्रकाशित किया। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से विदित हो जाता है कि बेनीमाधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" की प्रामाणिकता पर सन्देह है। साथ ही ग्रंथ भी उपलब्ध नहीं है। अतः भक्तप्रवर श्री नन्ददास के सम्बन्ध में "मूल गोसाईं चरित" में जो कुछ दिया है वह सन्देहास्पद ही है। दूसरी बात, कुछ विद्वान् इसे आधुनिक कृति भी कहते हैं। अतः मैं उस समय के भक्त श्रेष्ठ "नाभादास कृत भक्तमाल" के आधार पर नन्ददासजी का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हूँ। बेनीमाधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" के अप्रामाणिकता की ओर ध्यान देने पर भी उसमें नन्ददास के सम्बन्ध में जो उल्लेख है, उससे यह ज्ञात हो जाता है कि "नन्ददास तुलसीदास के सगे भाई नहीं थे, अपितु शिक्षागुरू बंधु अवश्य थे। उन पर गोसाईं श्री विट्ठलनाथजी की विशेष कृपा थी। उन्होंने ही नन्ददास को वैष्णव सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों में स्थान प्रदान किया था। बेनीमाध-वदास ने अपने ग्रंथ में खत्री परिवार की पत्नी का भी उल्लेख किया है। नन्ददास उच्चकोटि के रसिक थे तथा काव्य के प्रति उनकी विशेष रुझान थी। बेनीमाधवदास ने नन्ददास के अनेक ग्रंथों का भी उल्लेख किया है।". हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों ने इनके ग्रंथ की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। भक्त श्रेष्ठ नाभादास जी के "भक्तमाल" पर ऐसा कोई विवाद नहीं है। अब मैं भक्तमाल के आधार पर नन्ददासजी के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण देता हूँ।

श्री नाभादास कृत "श्री भक्तमाल" में नन्ददास - सुहृद भक्त

श्री नन्ददास का अष्टछाप कवियों में महाकविसूरदास जी के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ स्थान है। ज्ञान के आगार, भक्ति के सागर, जीवन रस के पूर्ण मर्मज्ञ, कवत्वि–शक्ति के अद्वितीय मानक, भावुकता में अद्‌भुत, माधुर्य के धनी और प्रसाद गुण के सशक्त अधिवक्ता भक्तप्रवर नन्ददास विलक्षण प्रतिभा के पूर्ण स्वरुप थे। अष्टछाप कवियों में नन्ददास जिस विन्दु पर खड़े हैं – वहाँ से एक साथ भक्ति, ज्ञान, जीवन–रस, कवित्व, माधुर्य, प्रसाद भावुकता, सिद्धान्तवादिता, शास्त्रीयता और सम्यक् प्रबन्ध योजना की किरणों के पुंज की स्निग्ध धाराएँ प्रवाहित होती हैं। इन धाराओं का प्रवाह समवेत रुप धारण कर ऐसी अनुपम सरिता का अस्तित्व प्राप्त कर लेता है कि उसमें जो भी अवगाहन करता है, उसमें समाये रहना चाहता है। इतना ही नहीं, सरिता के दोनों तीरों पर खड़े प्रवासी उनकी सरसता, सरलता, सुगमता तथा अनुपम बोधगम्यता की समीरीय लहरों से इतने निमज्ज और सराबोर हो जाते हैं कि स्वयं की सुध–बुध खो बैठते हैं। यही कारण है कि गोस्वामी भक्त नाभादास ने "भक्तमाल" में नन्ददासजी के सम्बन्ध में प्रारम्भ में छप्पय दिया है। उससे ही उनकी महिमा सुविदित हो जाती है। छप्पय निम्नतः है :–

"लीला पद रस रीति ग्रंथ–रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पदरेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै में पगे।।
(श्री) नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे।।

(तृतीयावृत्ति : श्री भक्तमाल – भक्ति रसबोधिनी पृ॰४६२) तृतीय खण्ड

नाभादास जी ने उपर्युक्त छप्पय के माध्यम से नन्ददासजी के अनेक पक्षों को उद्‌घाटित किया है। भक्त श्रेष्ठ नाभादास के उपर्युक्त छप्पय का विस्तारपूर्वक विवेचन छप्पय के नीचे उल्लिखित ग्रंथ में दिया है। उपर्युक्त छप्पय के सम्बन्ध में प्रथमतः संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हैं। छप्पय का विवेचन करने के पूर्व मैं यहाँ एक तथ्य अवश्य ही अपनी सन्तुष्टि हेतु निरुपित करना चाहता हूँ। मैंने प्रारम्भ में उल्लेख किया है कि "हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता।" के माध्यम से अनुसंरक्त भक्तों का अगाध भावबोध व्यक्त अवश्य होता है।

भावबोध हरि को अन्नत कहता है तो "हरि" ने भी अपने भक्तों के सम्बन्ध में "च मे भक्तः प्रणायात" कहकर भक्तों की अनुक्रमता सिद्ध की है। भक्तों के बिना हरि का लीलामय संसार ही अस्तित्व में नहीं आ सकता। इसी के साथ एक पक्ष और उभरकर हमारे समक्ष आता है– "मदभक्तानां च ये भक्ता मम भक्तास्तु ते नराः।" अतः मैं स्वयं को धन्य समझता हूँ कि मुझे भक्त प्रवर श्री नन्ददासजी की महिमा का गान का अवसर प्राप्त हुआ है। कार्य की आज्ञा प्रदान हेतु वंदन करता हूँ।

छप्पय की प्रथम पंक्ति का प्रथम शब्द ही नन्ददास के महत्व को प्रतिपादित करता है। उनके भक्ति रस के प्रवाह को विभूषित करता है। ''लीला'' के पद भक्त भगवान का महिमा गान हेतु ही गाता है, जिससे भक्ति–रस निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। नन्ददासजी लीला पद के माध्यम से भक्तों को प्रेरित करने में अनुपम थे तथा काव्यत्व में पूर्णतः सफल थे। भगवत् लीला का गान नन्ददासजी ने छोटे–बडे अनेक प्रकार के छन्दों में किया है, रचा है। ''रस रीति ग्रंथ रचना में नागर'' नन्ददासजी के काव्य के दो पक्षों को उजागर करते हैं। ''लीला पद'' से भगवत्–भक्ति का भाव अर्थात् चतुर अर्थात् प्रवीण। यहाँ ''रस'' शब्द दोनों पक्षों के काव्य हेतु प्रयुक्त हुआ है। लीला पद भक्ति रसका अजस्र प्रवाह करते हैं और रीति ग्रंथ काव्य–लक्षण तक ही सीमित नहीं रहते सागर में अवगाहन कराते हैं। अस्तु नन्ददासजी का दोनों पक्षों पर समान अधिकार था। नन्ददास अप्रतिम कवि थे। उन्होंने काव्य में भाव एवं भाषा का समायोजन अद्‌भुत ढंग से किया है। नाभादास जी ने नन्ददासजी के सम्बन्ध में प्रथम पंक्ति में एक साथ यह भाव तरंग दी है कि वे लीला पद और रीतिग्रंथ रचना में नागर थे। नन्ददासजी के ग्रंथों की ओर ध्यान देने पर सुस्पष्ट हो जाता है कि दोनों रुपों में सिद्धहस्त कवि हैं। इस दृष्टि से उनके ग्रंथ दृष्टव्य हैं –

नन्ददासजी की रचनाओं के सम्बन्ध में मत भेद हैं। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लेखक ''गार्सा द तासी'' ने इनके ग्रंथों की संख्या ''चौदह'' उल्लिखित की है। शिवसिंह, मिश्रबन्धु, आदि ने भी इस सम्बन्ध में अपने मत दिये हैं। रचना ग्रंथों की संख्या २४ तक पहुँचा दी है। मैं इस विवाद में न पड़ते हुये ''चौदह'' रचनाओं तक अपने को सीमित कर लेता हूँ। रचनाओं के नाम से ज्ञात हो जायेगा कि नन्ददासजी की प्रतिभा अद्‌भुत थी। :: रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रुप मंजरी, रस मंजरी, भ्रमरगीत सार, विरह मंजरी, श्याम सगाई, गोवर्धन लीला, रूक्मिणी मंगल, सुदामा चरित, भाषा दशमस्कन्ध, पदावली। कुल चौदह ग्रंथों के रचयिता भक्त नन्ददास के ग्रंथों के नाम की ओर ध्यान देने से सुस्पष्ट हो जाता है कि वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे।

भक्त नाभादास कृत श्री भक्तमाल में नाभादास जी ने अपने छप्पय की दूसरी पंक्ति में भी नन्ददास के काव्य के सम्बन्ध में ही कहा है। प्रथम पंक्ति के विवेचन से ज्ञान हो जाता है कि नन्ददासजी भक्तिभावना में तन्मय होकर भगवत् लीला का गान करते थे। इसी के साथ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं को खण्ड–काव्य मे प्रबन्ध के रुप में निबंधन कर अष्टछाप के कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान बनाया है। यहाँ यह अवश्य ही ध्यान रखा जाय कि मैं इसके पूर्व स्पष्ट उल्लेख कर चुका हूँ कि महाकवि सूरदास जी के पश्चात् ही इनका सर्वश्रेष्ठ स्थान मान्य किया जाता है। अत्यधिक भावुक कवि नन्ददासजी के हृदय में भक्ति का सागर निरन्तर लहराता रहता था। परिणामतः नाभादास जी लिखते हैं – ''सरस'' द्वितीय पंक्ति का प्रथम शब्द है। सरस सराबोर होने का भाव अन्तर्निहित है। रसमय होने मे पूर्णतः भींग जाना का भी भाव सन्निहित है। यही

कारण है कि नाभादास जी ने उनके काव्य की उक्तियाँ तक के लिए भी सरस शब्द का प्रयोग किया है। सामान्यतः साहित्य में उक्तियों काव्यत्व की दृष्टि से न्यून मानी जाती हैं। परन्तु नन्ददासजी की उक्तियों में भी ऐसी सरसता भरी रहती है पढकर युक्ति–युक्त शब्द–विन्यास तथा भाव–युक्त प्रवाह का सहज, सरल एवं सरससंयोजन है। नन्ददास के रचना–शिल्प पर विचार करते समय यह स्पष्ट हो गया है कि वे जीवन के अनेक पक्षों से सम्बन्धित रहे हैं। विविण पक्षों का निरुपण सहज ढंग से किया है। इतना ही नहीं वे विविध विषयों के ज्ञाता थे। उनका अध्ययन क्षेत्र विस्तृत था। संस्कृत के ज्ञाता होने के साथ साहित्य के भी मर्मज्ञ थे। परिणामतः नन्ददासजी की शब्द–चयन शक्ति में अनुपमता थी, अद्‌भुतता थी और थी उसमें सर्वथा अनुकूल भाव–व्यंजना का प्रभाव। इसका भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। वह है– संगीत। भक्त प्रवर नन्ददास शास्त्रीय संगीत के लयमय छात्र थे। मर्मज्ञ थे। ताल और लय की एकात्मता को भलिभाँति भावगत स्वरुप प्रदान करने में समर्थ थे, सक्षम थे। नन्ददासजी का वैशिष्ट्य इससे ही ज्ञात हो जाता है कि वे दोहा जैसे छन्द में भी शब्दों की खनखनाहट भर देते थे और उसकी क्षमता अद्वितीय हो जाती। यहाँ दो दोहे उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :–

मृगज लजे खंजन लजे कंज लजे छवि छीन।
दृगन दोख दुख दीन है मीन भये जल लीन।।
जहँ जहँ चरन धरै तरूनि अरून होत सो लोह।
जनु धरती धरती फिरै तहँ तहँ अपना जोह।।

दोहा जैसे छन्द में नन्ददासजी ने एक साथ शब्दों की तरास, लयबद्धता, ध्वन्यात्मकता, प्रभविष्णुता, भावप्रवणता, सरलता, सहजता, चयनता, निरुपित कर दी है। इतना सब कुछ होते हुये भी काव्य–गति का प्रवाह कृतिमता से परे है। अस्तु भक्त कवि नाभादासजी ने कह दिया कि "सरस उक्ति" के साथ नन्ददासजी युक्ति से पुष्ट हैं। संगीत मर्मज्ञ होने के कारण ताल और लय को खडित नहीं होने देते थे। शास्त्रीय संगीत का ज्ञाता ही नहीं थे अपितु उच्चकोटि के गवैये थे। तदर्थ नाभादास जी ने लिखा है– "भक्ति रस गान उजागर।" अर्थात् भक्ति रस का गान उच्चकोटि के गवैये के रुप में किया है जो सबकों अपनी संगीत लहरियों में डुबो देता है। नन्ददासजी में एक साथ काव्य सम्बन्धी चतुर्दिक् वैशिष्ट्य दृष्टिगत करने के पश्चात् ही कहा गया कि – "और कवि गढिया, नन्ददास जड़िया।" कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ और कवि "गढ़िया" है, नन्ददास "जडिया" हैं। सत्य ही है। वास्तवं में नन्ददास ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ट "जड़िया" हैं।

नाभादास जी के छप्पय की अन्य पंक्तियों में उनका परिचय दिया है। साथ महिमाका गान भी किया है। 'प्रचुर पयधलौं सुजस' रामपुर ग्राम निवासी। भक्त के सम्बन्ध में भक्त कवि कहते हैं कि उनका यश चारों ओर फैल गया था। कारण वे अविनाशी नन्ददासजी "रामपुर" ग्राम के निवासी थे। तदनन्तर नाभादास जी कहते हैं – नन्ददास ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये

थे तथा उच्च भावों पुष्ट थे। सनाढ्य ब्राह्मण में ये शुक्ल ब्राह्मण थे ये भक्त की पद की रेणु के उपासक थे, सेवी थे। वास्तव में भक्त के चरणों की रज की उपासना के बिना भगवत् प्रेम की प्राप्ति कदापि भी नहीं हो सकती। नाभादास जी ने दो पंक्तियों में नन्ददासजी का परिचय भी दे दिया है। अगली पंक्ति में नाभादास जी उललेख किया है– "परम प्रेम पै में पगे।" इस पंक्ति का अर्थ होता है नन्ददासजी परम के प्रेम में सराबोर रहते थे। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि नन्ददासजी भगवत् भक्ति में, भवगत् प्रेम में हर क्षण मस्त रहते थे, तन्मय रहते थे। नाभादास जी की यह बात पूर्णतः ग्राह्य है। इसके पूर्व नाभादास जी ने तीन शब्दों का प्रयोग किया है– "चन्द्रहास अग्रज सुहृद।" इसका तात्पर्य है– नन्ददासजी चन्द्रहास जीके पुत्र थे और अपने बंधु के अत्यन्त प्यारे थे। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि "अग्रज" का अर्थ होता है भाई, और साथ में दिया है "सुहृद" "श्रीभक्तमाल तृतीय खण्ड : भक्तिरस–बोधिनी टीका सहित : प्रकाशन तिथि श्री भक्तमाल जयन्ती, फाल्गुन कृष्ण सप्तमी सं. २०४३" में इसके दो अर्थ दिये हैं। दोनो अर्थो के अनुसार नन्ददासजी को चन्द्रहास का भाई ही बताया है। परन्तु मेरा मत है कि नन्ददासजी का परिचय देते समय उनके भाई का उल्लेख करने की आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ मैं "अग्रज" और "सुहृद" दोनों के सम्बन्ध में विचार करना आवश्क समझता हूँ। भार्गव आदर्श हिन्दी शब्द कोश में "अग्रज" के अर्थ दिये हैं – (संपु) बड़ा भाई, जिसका जन्म पहले हुआ हो, नेता, विष्णु, ब्राह्मण।" इसी कोश में शब्द "सुहृद" के अर्थ दिये हैं – (संपु) मित्र, बन्धु, सखा, (वि.) अच्छे हृद्यवाला। शब्दों के अर्थो की ओर ध्यान देने पर समझ में आ जाता है कि नाभादास जी ने भक्त कवि नन्ददासजी के पिता के नाम का ही उल्लेख किया है। "चन्द्रहास अग्रज सुहृद" का मेरी दृष्टि से अर्थ होता है– "स्वच्छ और निर्मल हृद्य वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीचन्द्रहास के नन्ददासजी पुत्र थे। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है– शब्द कोश मे "अग्रज" को केवल संज्ञा पुल्लिग के रुप में ही बताया गया है। "सुहृद" का अर्थ देते समय शब्द कोश मे दो रुपों में अर्थ दिये हैं। अर्थ ऊपर दिये हैं। एक, संज्ञा पुल्लिग के रुप में तथा दूसरा अर्थ विशेषण के रुप। नाभादासजीके छप्पय की पंक्ति को समझने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि "नन्ददासजी सुहृद ब्राह्मण चन्द्रहास के पुत्र थे।" मैंने एक स्थान पर पढ़ा है कि "रुपकला जी ने भक्तमाल के अपने 'भक्ति–सुधा–स्वाद तिलक" में नन्ददास विषयक छप्पय की टीका करते हुये पाद–टिप्पणी' 'अग्रज' शब्द का पाठान्तर – 'अंगत' शब्द का उल्लेख किया है। 'अग्रज' का अर्थ होता है– पुत्र। मैं नहीं समझता कि "अग्रज" के स्थान पर "अंगज" पढ़ने की आवश्यकता है। पंक्ति का सीधा अर्थ शब्दों के अर्थ को समझने के पश्चात् कर सकते हैं– चन्द्रहास=पिता का नाम। अग्रज=ब्राह्मण, और सुहृद=अच्छे हृद्य वाला। वास्तव में सुहृद शब्द का प्रयोग विशेषण के रुप में भी होता है। यहाँ एक साथ अग्रज और सुहृद दोनों शब्दों के संज्ञा पुल्लिग के रुप में अर्थ ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। अग्रज = ब्राह्मण अर्थ ग्रहण करने के साथ, सुहृद का विशेषण के रुप में 'अच्छे हृद्यवाला" ग्रहण कर सकते हैं। अतः नन्ददासजी के पिता कानाम चन्द्रहास नाभादासजी के अनुसार ज्ञात हो जाता है।

नाभादास जी ने छप्पय की अन्तिम पंक्ति में स्पष्ट किया है कि श्रीनन्ददास आनन्द निधि है। आनन्द स्वरुप श्रीकृष्ण हैं, उन्हें अपने में पूर्णरुपेण बसा लिया है, अतः नन्ददासजी स्वयं आनन्द निधि श्रीकृष्ण हैं कारण श्रीकृष्ण ही आनन्द निधि हैं। सच तो यह है कि नन्ददासजी अद्‌भुत रसिक हैं जो निरन्तर प्रभु प्रेम में ही रंगे रहते हैं। मस्त रहते हैं। परिपूर्ण रहते हैं। श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त नन्ददास आनन्द निधि ही हैं। भक्तप्रवर नाभादास के छप्पय से नन्ददासजी के सम्बन्ध में निम्नतः तथ्य प्रमुख रुप से ज्ञातव्य हैं–

१. अष्टछापके कवियों में नन्ददास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। श्रीकृष्ण आनन्द निधि हैं अतः नन्ददास ही भी आनन्दनिधि हैं, आनन्द के सागर हैं। भक्ति–रस के आगार हैं। उसमें ही लीन रहते हैं। रंगे रहते हैं।

२. नन्ददासजी भक्ति रस के साथ साहित्य के रीति पक्ष के अनुपम व्याख्याता हैं। उन्होंने दो प्रकार की रचनाएँ की हैं। एक : भक्ति–भाव पुष्ट और दूसरी : साहित्य रीति से सम्बन्धित। परन्तु दोनों मे वे अत्यधिक प्रवीण और मुखर हैं। दोनों प्रकार की रचनाओं के माध्यम से रस वर्षा ही की है तथा भक्त जनों को आत्म विभोर किया है। सरस उक्ति, युक्ति–युक्त भाषा के कारण ही – विद्वानों ने कहा "और सब गढ़िया श्री नन्ददास जड़िया।"

३. भक्त प्रवर नन्ददास "रामपुर ग्राम के निवासी थे। यह गाँव गोकुल–मथुरा के पूर्व की ओर स्थित है। रामपुर से "कछुक दिन" में गोकुल–मथुरा पहुँच सकते हैं।

४. नन्ददास सनाढ्य ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न शुक्ल आस्पद् वाले थे।

५. नन्ददासजी के पिता का नाम चन्द्रहास था। कुछ विद्वानों ने चन्द्रहास को नन्ददास का भाईं कहा है। वास्तव में ऐसा नहीं है। मैंने नाभादास जी के छप्पय में दी हुयी पंक्ति के माध्यम से ही समझा दिया है कि वे चन्द्रहास के पुत्र थे।

बेनीमाधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" और भक्त प्रवर नाभादास जी के भक्तमाल के आधार पर संक्षिप्त में नन्ददासजी का विवरण प्रस्तुत है। अब मैं यहाँ नन्ददासजी के सम्बन्ध मे कुछ अन्य तथ्य प्रस्तुत करता हूँ, जो प्रचलित हैं। उनमें भी उनकी कुछ विशिष्टताएँ स्पष्ट होती हैं। जीवन के क्रम मे कभी ऐसी स्थितियाँ आती हैं, जिनमें व्यक्ति का चल रहा निर्धारित क्रम ही अद्‌भुत ढंग से परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही कुछ घटनाओं के उल्लेख के साथ भक्त प्रवर नन्ददासजी को वंदन करते हुये निबंधन को विश्राम दूंगा।

नन्ददासजी ने गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी की प्रथमतः वन्दना इस प्रकार की थी–

प्रातः सूर्य श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिये नाम।

नन्ददासजी ने गो॰ विट्ठलनाथजी की चरण वंदना में भी अनुपम पद की रचना की थी–

वह इस प्रकार है–

''श्री विट्ठल मंगल रुप निधान। ''   और भी॰
तुमरे चरन कमल के मकरंद मन मधुकर लपटान।
नंददास ''प्रभु द्वारे रहत है, रूचत नहि कछु आन।''

ऐसा कहा जाता है कि जिस समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने अष्टछाप की स्थापना की थी उस समय नन्ददासजी का नाम नहीं था। तदनन्तर उन्होंने विष्णुदास छींपा के अन्य स्थान पर जाने पर उनके स्थान पर इनका नाम सम्मिलित किया था।

गोस्वामी तुलसीदासजी और नन्ददासजी : इसके पूर्व स्पष्ट उल्लेख कर चुके हैं कि नन्ददासजी तुलसीदासजी को अपना बड़ा गुरू भाईं मानते थे। तुलसीदासजी चाहते थे कि नन्ददासजी रामोपासना की ओर बढ़े, परन्तु इन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेकर उनकी शिष्यता स्वीकार करली। तुलसीदासजी को जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने नन्ददास को भाव पूर्ण पत्र लिखा–

घर को परनौ परिहर्‌यौ, कहौ कौन उपदेश।
तुलसी यासों जानिए नहीं धर्म को लेश।।
नन्ददासजी ने तुलसीदासजी को उत्तर लिखा–
''हम चाकर रघुनाथ के, जन्म जन्म के दास।
रुप माधुरी मन हर्‌यौ डार प्रेम की फांस।।''

तुलसीदासजी नन्ददासजी से ब्रज में मिलने आये थे। उन्होंने नन्ददासजी से पूछा था। कि–

''कहा कमी रघुनाथ के छाँड़ी कुल की कानि। तब नन्ददासजी ने कहा था– मन अनुरागी है गयौ, सुनि मुरली की तान। साथ ही यह भी कहा कि मेरा नाम पहले से ही नन्ददास रख दिया था तदर्थ नन्दनन्दन ने अपना कहकर खींच लिया यदि दशरथदास रखा होता तो ऐसा न होता। नन्ददास का अद्‌भुत तर्क सुन कर सभी हँस दिये। तुलसीदास जी ने राम कृष्ण में अभेद बताकर नन्ददासजी की उपासना को समुचित ही कहा।

गोपाल भवन, भाजी इतवारी,
नागपुर (महाराष्ट्र)

नन्ददास और उनकी कृतियाँ

डा. श्रीमती पुष्पा चौरसिया

नन्ददास सूरदास के समसामयिक थे। नाभादासजी ने इन पर एक छप्पय लिखा है, उसमें उनके जीवन के विषय में संकेत किया है–

'लीला-पद - - - - -हित रंगमगे।।

इससे ज्ञात होता है कि इनके भाई का नाम चन्द्रहास था। इस छप्पय की पंक्ति में नन्ददास 'चन्द्रहास के अग्रज सुहृद थे।

गोकुलनाथ जी की दो सौ वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास का विस्तार से परिचय दिया गया है। इन्हें तुलसीदासजी का भाई बताया गया है।

सम्प्रति यह पूर्णतः सिद्ध और प्रमाणित हो चुका है कि तुलसीदासजी का नन्ददासजी से कोई सम्बन्ध नहीं था। वस्तुतः अपर्युक्त बातें वल्लभ सम्प्रदाय की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए बहुत बाद में लिखी गई और वे अप्रामाणिक हैं। उसी वार्ता में उल्लेख मिलता है कि द्वारका जाते हुए नन्ददासजी सिंधुनद ग्राम में एक सुन्दरी खत्राणी पर आसक्त हो गये। अन्ततः विट्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनकी रुपासक्ति छूटी और वे कृष्ण के अन्यतम भक्त हो गये। वार्ता की इस कथा में सार तत्व इतना ही है कि इन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथजी से दीक्षा ली थी।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद इन्हीं का नाम प्रख्यात है। इनकी रचनाओं की सरलता, मधुरता और अलंकृति अद्भुत बन पड़ी है और इनकी रचनाओं के विषय में यह कहावत प्रचलित है–

"और कवि गड़िया, नन्ददास जड़िया।"

इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य कृति 'रास पंचाध्यायी' है, जो रोला छन्दों मे निबद्ध है और इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण की रासलीला का रुपक, अनुप्रास आदि की साहित्यिक भाषा में विस्तार पूर्वक वर्णन है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि सूर ने स्वाभाविक चलती भाषा का ही आश्रय लिया है, अनुप्रास और चुने हुए संस्कृत पद विन्यास आदि की प्रवृत्ति नहीं दिखाई है पर नन्ददास में ये बातें पूर्ण रुप से पाई जाती हैं।

नन्ददास कृत 'नाममाला' की रचना तिथि संवत् १६२४ है। इसके साक्ष्य पर नन्ददास तुलसीदास और सूरदास के समकालीन सिद्ध होते हैं, वे विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए।

बाबा बेनीमाधवदास ने उन्हें कनौजिया ब्राह्मण लिखा है। नन्ददास को मिश्र बन्धुओं ने 'केवत' ब्राह्मण माना है और 'सुकवि सरोज' में नन्ददास को शुक्ल कहा गया है।

इनका जन्म सौलह सौ विक्रमी के आसपास एटा जिले के रामपुर ग्राम, जो

अब श्यामपुर कहलाता है, में हुआ था। उनके शिक्षा गुरू वेदज्ञ नृसिंह जी थे और उनके दीक्षा गुरू गोस्वामी विट्ठलनाथजी थे। ये ब्रजमण्डल में रहते थे। इनके मित्रों में रुपमंजरी और वैष्णवी कृष्ण उपासिका थीं। इनकी मृत्यु १६६२ के पहले किसी समय हुई, नन्ददास ने रासपंचाध्यायी के प्रारम्भ में लिखा है–

'परम रसिक एक मित्र, मोहिं तिन आज्ञा दीन्हीं।
ताहि तैं यह कथा, जथा मति भाषा कीनी।। (पद्य–२०)

इस रसिक मित्र का नाम नन्ददासजी ने नहीं दिया। वियोगी हरि की मान्यता है कि– 'मित्र से यहाँ गंगा बाई जी से आशय है। गंगाबाई विट्ठलनाथजी की शिष्या थी और कविता में अपना नाम श्री विट्ठल गिरिधरन लिखा करती थी।

'दसम स्कन्ध भागवत' नामक ग्रन्थ में नन्ददास ने अपने उस एक मित्र का संकेत दिया है–

'परम विचित्र मित्र इक रहै, कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै।
तिन कही दसम स्कंध जु आहि, भाषा करि कछु बरनौ ताहि।।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१६०१ ई०) में सम्पादक ने लिखा है– इस ग्रंथ के कर्त्ता नन्ददास हैं जो एक मित्र के कहने पर दशम स्कन्ध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं–कहीं तो ऐसा वर्णन है मानों दोनों मित्रों का यह परस्पर संवाद हो। उनके ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्यों से यह विदित होता है कि नन्ददास ने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना मित्रों के आग्रह से ही की है।

ब्रजरत्नदास ने इनकी १४ रचनाएँ मानी है किन्तु पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके मानमंजरी, दान लीला, मान लीला, ज्ञान मंजरी, हितोपदेश और नासिकेतपुराण ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है। मिश्र बन्धुओं ने विज्ञानार्थ प्रकाशिका नामक गद्य–गन्थ का भी उल्लेख किया है। नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्टों में नन्ददास की फूल मंजरी, रानी मंगौ और कृष्ण मंगल नामक तीन रचनाओं का भी उल्लेख किया है।

गांर्सा द तासी ने इस्त्वार द ल – लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐं ऐदुस्तानी' में सर्वप्रथम नन्ददास के चौदह ग्रन्थों के नाम दिये हैं। तासी ने डा० स्पैंगर के संग्रह में इन चौदह ग्रन्थों को देखा था जिसमें कुल ५७६ पृष्ठ थे और जिसे किसी करीमुद्दीन ने संगृहीत किया था। तासी ने – जोग लीला और प्रबोध चन्द्रोदयका भी उल्लेख किया है। सम्प्रति स्पैंगर के संग्रह की यह अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति नन्ददास–ग्रन्थावली जर्मनी के बर्लिन–संग्रहालय में संगृहीत है। आवश्यकता इस बात की है कि उपर्युक्त समस्त उल्लेखित नन्ददास के ग्रन्थों का वैज्ञानिक रुप में पुनः सम्पादन किया जाए। ऐसी स्थिति में नन्ददास की कृतियों का भास्वर स्वरुप हिन्दी संसार के सामने आ पाएगा।

६/२७० चन्द्रालय, फ्रीगंज,
उज्जैन (म.प्र.)

नन्ददास के काव्य-ग्रंथ

❒ श्रीगुरु-विट्ठलनाथ-स्तवन :

प्रात समें श्रीवल्लभ–सुत के, बदन–कमलकों दरसन कीजै।
तीन लोक–बंदित, परसोत्तम, उपमा कहा जो पटतर दीजै।।
श्रीवल्लभ–कुल उदित चंद्रमा, लखि छबि नैनि चकोरन पीजै।
''नंददास'' श्रीवल्लभ सुत पै, तन–मन–धन नौछावर कीजै।।१।।

श्रीवल्लभसुत के चरन भजौं।
अति सुकुमार भजन–सुख–दायक, पतितन–पावन करन भजौं।
दूरि किये कलि–कपट–वेद–विधि, मत प्रचंड बिसतरन भजौ।।
उतुल प्रताप महामहि सोमा, ताप–सोक–अघ–हरन भजौ।
पुष्टि–म्रजाद, भजन–सुख सीमा, निजजन पोषन भरन भजौ।।
''नंददास'' प्रभु प्रगट भये दोउ, श्रीबिट्ठल, गिरिधरन भजौं।।२।।

जयति रुक्मिनी–नाथ पद्मावती,
प्रानपति बिप्र–कुल–छत्र आनंदकारी।
दीप–बल्लभ–बंस, जगत–निस्तार–करन,
कोटि–उडुराज–सम तापहारी।
मुक्ति–कांछीय जन भक्तिदायक प्रभु,
सकल सामर्थ गुन–गनन भारी,
जयति पति भक्त–जन, पतित–पावन–करन,
कामिजन–कामना पूर्ण चारी।
जयति सकल–तीरध फलित नाम सुमिरन मात्र,
बास बृज नित्त गोकुल बिहारी।
''नंद'' दासनि नाथ, पिता गिरिधर आदि,
प्रगट अवतार गिरिराज धारी।।३।।

भजौं श्री वल्लभ–सुत के चरन।
नंदन्कुमार भजन सुखदाइक, पतिपन–पावन करन।।
दूरि किए कलि–कपट बेद–विधि मन–प्रचंड बिस्तरन।
अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।।

पुष्टि म्रजाद, भजन, रस, सेवा, निज–जन पोषन भरन।
''नंददास'' प्रभु प्रगट रूप धरि श्री विट्ठल गिरिधरन।।४।।

श्री लछमन–धर बाजत आजु बधाई
पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई
नाचत तरून वृद्ध औ बालक उर आनंद न समाई,
जै–जै जस बंदी–जन बोलत बिप्रन बेद पढ़ाई
हरद, दूब, अच्छत, दधि, कुंकुम आँगनि कीच मचाई,
बंदन–बार सुमालिन बाँधति मोतिन चौक पुराई
फूले द्विज बरदान देत हैं, पट भूषन पहिराई,
मिटि गए द्वन्द्व 'नंददासन' के मन–वांछित फल पाई।।५।।

प्रकटित सकल सृष्टि–आधार। श्रीमद्‌वल्ल्भ राजकुमार।।
धेय सदा पद–अंबुज सार। अगणित गुण महिमा जु अपार।।
धर्म्मादिक द्वारे प्रतिहार। पुष्टि भक्ति को अंगीकार।।
श्री बिट्ठल गिरिधर–अवतार। 'नंददास' कीन्हो बलिहार।।६।।

प्रात समै श्रीबल्लभ–सुत को उठतहि रसना लीजै नाम।
आनँदकारी मंगलकारी, अशुभहरन जन पूरन काम।।
इहलोक परलोक के बंधु, को कहि सकल तिहारो गुनग्राम।
'नंददास' प्रभु रसिक शिरोमनि, राजकरौ श्री गोकुल धाम।।७।।

प्रात समै श्री बल्लम–सुत को पुष्प पवित्र विमल जस गाऊँ।
सुंदर सुमग बदन गिरिधर को निरखि निरखि कै दृगन सिराऊँ।।
मोहन मधुर बचन श्रीमुख के स्त्रवननि सुनि सुनि ह्रदय बसाऊँ।
तम मन प्रान निवेदन करिकै, सकल अपुन पौ सुफल कराऊँ।।
रहौं सदा, चरनन के आगैं महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ।
''नंददास'' इहि माँगत हौं श्री वल्लभकुल को दास कहाऊँ।।८।।

श्रीगोकुल जुग–जुग राज करौ।
या सुख भजन–प्रताप तजैतें छिन इत उत न टरौ।।
पावन रूप दिखाइ प्रानपति पतितन पाप हरौ।
बिश्वबिदित तुम दीनन–पालक निज गति दै उधरौ।
श्रीवल्लभ कुल–कमल अमन रवि जस मकरंद भरौ।
'नंददास' प्रभु षटगुन–संपन, श्रीबिठलेश वरौ।।६।।

❑ रास पंचाध्यायी :

बन्दन करौ कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रुप, सदा सुन्दर अविकारी।।
हरिलीला-रस-मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्‌भुतगति, कहुँ नहिं अटक, है निगसे मग में।।
नीलोत्पल-दल-स्याम अंग नवजोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल, मनों अलि-अवलि बिराजै।।
सुन्दर भाल विसाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भक्ति-प्रतिबिम्ब-तिमर कौं कोटि दिवाकर।।
कृपा-रंग-रस-अयन नयन राजत रतनारे।
कृष्ण-रसामृत-पान-अलस कछु घूमघुमारे।।
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गण्ड-मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द-मलिन्द मन्द मुसकनि मधु बरसै।।
उन्नत नासा, अधर-बिम्ब, सुक की छबि छीनी।
तिन बिच अद्‌भुत भाँति लसत कछु इक मसिभीनी।।
कंबु-कंठ की रेख देखि हरि धर्म प्रकासें।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह जिहिं निरखत नासें।।
उरवर पर अति छबि की भीरा बरनि न जाई
जेहि भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर कन्हाई।
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय सरवर रस भरि चली मनु उमगि पनारि।।
ता रस की कुंडिका नाभि सोभित असि गहरी।
त्रिवली तामें ललित भाँति जनु उपजति लहरी।।
उति सुदेस कटिदेस सिंह सोमित सघनन अस।
जोबन-मद आकरषत,बरसत प्रेमसुधा-रस।।
गूढ जातु, आजानुबाहु, मदं-गज गति लौलैं।
गंगादिकन पवित्रकरन अवनी में डोलैं।।
सुन्दर पद अरविन्द मधुर मकरन्द मुग्ध जहँ।
मुनिमन मधुकर निकर सदा सेवत लोभी तहँ।।
जब दिनमणि श्रीकृष्ण द्रगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि पर्‌यो अँधियार सकल संसार घुमड़ धुरि।

तिमिर ग्रसित सब लोक–ओक–दुख देखि दयाकर।
प्रगट कियो अद्‌भुत् प्रभाव भागवत विभाकर।।
जे संसार अँधियार अगर में मगन भये वर।
तिन हित अद्‌भुत दीप प्रगट कीनों जु कृपाकर।।

❍

'श्रीभागवत' सुनाम परम अभिराम, परममति।
निगम सार सुकुमार बिना गुरू कृपा अगम अति।।
ताही में मणि अति रहस्य यह 'पञ्चाध्यायी'।
तन में जैसे पंचप्रान, असि सुक मुनि गाई।
परमरसिक इक मित्र मोहिं तिन आज्ञा दीनीं।
ताहींतें यह कथा जथामति भाषा कीनीं।।१।।

❍ ❍ ❍

ताहीं छिन उड़राज उदित रस–रास–सहायक।
कुमकुम–मंडित बदन, प्रिया जनु नागरि–नायक।।
कोमल किरन अरून मानों वन व्याप रही त्यों।
मनसिज खेल्यौ फागु धुमड़ि धुरि रह्यो गुलाल ज्यों।।
फटिक–छटा–सी किरन कुंज–रंध्रन जब आई
मानहुँ वितन वितान सुदेस तनाव तनाई।
मंद–मंद चल चारू चन्द्रमा अति छवि पाई
झलकत है जनु रमारमन पिय कौतुक आई।
तब लीनीं कर कमल जोग–माया सी मुरली।
अघटत–घटना–चतुर, बहुरि अधरन सुर जु–रली।।
जाकी धुनि तें निगम अगम प्रगटित बड़नागर।
नाद ब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख–सागर।।
पुनि मोहन सों मिलि कछु कल गान कियौ अस।
बाम बिलोचन बास तियन मनहरन होय जस।।
मोहन–मुरली नाद स्रवन कीनों सब किनहुँ।
जथा–जथा–विधि रुप, तथा विधि परस्यो तिनहुँ।।
तरनि–किरन ज्यौं मनि पषान सबहिन के दरसे।
सुरज काँति मणि बिना नहीं कछु पावक परसे।।
सुनत चलीं ब्रजवधू गीत–धुनि कौ मारग गहि।
भवन भीत द्रुम–कुंज–पुंज कितहूँ अटकी नहिं।।
नाद–अमृत कौ पंथ रंगीलो सुच्छम भारी।
तेहि मग ब्रजतिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी।।

सुद्ध प्रेममय रुप पंचभूतनि तें न्यारी।
तिन्हैं कहा कोउ कहै, ज्योति–सी जगत–उजारी।।
जे रूकि गई घर अति अधीर गुनमय सरीरबस।
पुन्य–पाप–प्रारब्ध–रच्यो तन नाहिं पच्यौ रस।।
परम दुसह श्रीकृष्ण–विरह–दुख व्याप्यो जिनमें।
कोटि बरस लगि नरक–भोग–अघ भुगते छिन में।।
धातु पात्र पाषान परसि कंचन द्वै सो है।
नंदसुवन–सौं परमप्रेम यह अचरत को है ?
ते पुनि तिहिं मग चलीं रंगीली तजि ग्रह–संगम।
जनु पिंजरन तें उड़े, छुडे नवप्रेम–विहंगम।।२।।

-दोहा-

कुंज–कुंज ढूँढत फिरीं, खोजत दीनदयाल।
प्राननाथ पाये नहीं, बिकल भई ब्रज–बाल।।

-रोला-

बिरहाकुल द्वै गई सबै पूँछत बेली बन।
को जड को चैतन्य, न कछु जानत बिरहीजन।।
हे मालति, हेजाति, जूथके, सुनि हित दे चित।
मान–हरन मन–हरन लाल, गिरिधरन लखे इत ?
हे केतकि इततें कित हूँ चितये पिय रूसे।
के नन्दनन्दन मन्द मुसुकि तुम्हरे मन मूसे ?
हे मुक्ताफल, बेलिधरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नंद के लाला।।
हे मन्दार, उदार बीर करबीर महामति।
देखे कहुँ बलबीर धरि मनहरन धीरगति ?
हे चन्दन, दुख–दन्दन सब की जरनि जुड़ावहु।
नन्दनन्दन जगबन्दन चन्दन हमहि बतावहु।।
पूछौ री, इत लतनि फूलि रहिं फूलनि–जाई
सुन्दर पिय क़े परस बिना असि फूल न होई।
हे सखि, हे मृग–वधू इन्हें किन पूछहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि।।
अहो सुभग बन गंधि, पवन संग थिर जु रही चलि।
सुख के भवन दुखदमन रमन इततें चितये, बलि ?

हे चम्पक, हे कुसुम, तुम्हें छबि सब तें न्यारी।
नैकु बताय जु देऊ, जहां हरि कुंज–बिहारी।।
हे कदम्ब, हे निम्ब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ?
हे बट, उतंग सुरंग बीर कहुँ तुम इत उत लहि ?
हे अशोक, हरिसोक, लोकमनि पियहि बतावहु।
अहा पनस, सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु।।
जमुन निकट के बिटप पूँछि भई निपट उदासी।
क्यों कहि हैं सखि अति कठोर ये तीरथ–बासी।।
हे जमुना, सब जानि–बूझि तुम हठहि गहति हो।
जो जल जग उद्धार ताहिं तुम प्रगत बहति हौ।।
हे अवनी, नवनीत–चोर चित–चोर हमारे।
राखे कितहुँ दुराय बता देउ प्रान–पियारे।।
हे तुलसी कल्यान सदा गोविन्द–पद–प्यारी।
क्यों न कहौ तुम नन्दसुवन सों बिथा हमारी।।
जहँ आवत तमकुंज–पुंज गहवर–तरू–छाई।
अपने मुख चाँदने चलत सुन्दर बन माई।।
इहि विधि बन धन ढूँढि बूझि उनमत की नाई।
करन लगीं मनहरन लाल–लीला मन भाई।
मोहनलाल रसाल की लीला इनहीं सोहैं।
केवल तन्मय भई न कछु जानैं हम कोहैं।।३।।

❍ ❍ ❍

जो अनेक जोगेश्वर–हिय में ध्यान धरत हैं।
एकहिं बेर रुप इक सब कौ सुख वितरत हैं।।
जोगीजन बन जाय जतन करि कोटि जनम पचि।
अति निर्मल करि राखत हिय में आसन रचि–रचि।।
कछु छिन तहँ नहिं जात नवलनागर सुन्दर हरि।
ब्रजजुवतिन के अम्बर पर बैठे अति रूचि करि।।
कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड जदपि एकहि ठकुराई
ब्रजदेविन की सभा साँवरे अति छबि पाई।
ज्यों नवमंडल–मध्य कमल–कणिका सुभ्राजै।
त्यों सब सुन्दरी–सन्मुख सुन्दर स्याम बिराजै।।४।।

❍ ❍ ❍

तब बोले ब्रजराज–कुँवर हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मन तें दूरि करौ किन दोष हमारो ?

कोटि कल्प लगि तुम प्रति, प्रति–उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरूनी ! उरिनी नाहिं तबौं तौ।।
सकल विस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुम्हरी माया सों मोहिं मोहति है।।
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवल किसोरी।
लोक–वेद की सुदृढ संृखला तृन–सम तोरी।।५।।

❍ ❍ ❍

सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि–मधि नीलमनी अद्‌भुत झलकै जस।।
नवमरकतमनि स्याम कनक–मनिगन–ब्रजबाला।
बृन्दाबन को रीझि मनों पहिराई माला।।
नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकै सुर जुरली।।
मृदुल गधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि।।
तैसिय मृदु पद पटकनि, कटकनि करतारनि की।
लटकनि, मटकनि, झलकनि कल कुण्डल–हारन की।।
साँवल पिय के संग नृतति यों ब्रज की बाला।
जनु घन मंडल मंजुल खेलति दामिनि माला।।
छबिलि तियनिं के पाछें आछें बिलुलित बेनी।
चंचलरुप–लतानि–संग डोलति अलिसेनी।।
मोहन पिय की मुसुकनि, ढलकनि मोर–मुकुट की।
सदा बसो मन मेरे फरकनि पियरे पट की।।
बदन कमल पर अलक छुटी कछु श्रम झलकनि।
सदा रहो मन मेरे, मोर मुकुट की ढलकनि।।
कोउ सखी कर पकरति, निरतति यों छबिली तिय।
मानों करतल फिरत देखि नट लटू होत पिय।।
कोउ नायक के भेद–भाव लावन्य–रुप–बस।
अभिनय कर दिखरावति, अरूगावति पिय के जस।।६।।

पिय के मुकुट की लटकनि, मटकनि मुरली–रव अस।
कुहुकि–कुहुकि मनु नाचत मंजुल मोर भरे रस।।
सिरतें सुमन सुदेस जु बरसत अति आनन्दभरि।
मनु पदगति पर रीझी अलक पूजनि फूलनि करि।।
स्रमजल सुन्दर बिन्दु रंग भरि अति छबि बरसत।
प्रेम–भक्ति–विरवा जिनके, तिनके हिय सरसत।।
बृन्दाबन के त्रिविध पवन बिजना जु बिलौलैं।।
जहँ–जहँ स्रमित बिलोकत, तहँ–तहँ रस भरि डोलैं।।
बड़े अरून पट बासन मंडल मंडित ऐसे।
प्रेमजाल के गोलक कछु छबि उपजत जैसे।।
कुसुम–धूर धूरमरीकुंज मधुकरनि–पुंज जहँ।
ऐसेहुँ रस–आवेस लटकि कीन्हों प्रवेस तहँ।।७।।

❍ ❍ ❍

भीजि बसन तन लिपटि निपट छबि अंकित है अस।
नैननि के नहिं बैन, बैन के नैन नहिं जस।।
नित्यरास–रस–मत्त नित्य गोपीजनवल्लभ।
नित्य निगम जो कहत नित्य, नवतन अति दुरलभ।।
यह अद्भुत रस–रास महाछबि कहति न आवै।
सेष सहसमुख गावत तौहूँ अन्त न पावै।।
सिव मनहीं मन ध्यावै, काहू नाहिं जनावै।
सनक, सनन्दन, नारद, सारद अति मन भावै।।८।।

❍ ❍ ❍

यह उज्वल रस–माल कोटि जतनन करि पोई
सावधान होई पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई।
स्रवन–कीरतन–ध्यान–सार सुमिरन कौ है पुनि।
ग्यानसार, हरिध्यानसार, स्रुतिसार गुथी पुनि।।
अघहरनी, मनहरनी, सुन्दर रस–बिस्तरनी।
'नंददास' के कण्ठ बसौ नित मंगलकरनी।।९।।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

❐ श्रीकृष्ण-सिद्धांत-पंचाध्यायी :

जै जै जै श्रीकृष्ण रुप गुन कर्म अपारा।
परम धाम जग धाम परम अभिराज उदारा।।
आगम निगम पुराण स्मृती गन जे इतिहासा।
अवर सकल विधा विनोद जिहि प्रभुक उसासा।।
रुप, गंध, रस, शब्द (स्पर्श) जे पंच विषय वर।
महाभूत पुनि पंच पवन पानी अंबर धर।।
दस इंद्रिय अरू अहंकार महँ तत्व त्रिगुन भन।
यह सब माया बर विकार कहे परमहंस मन।।
सो माया जिनकै अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व–प्रभव–प्रतिपाल–प्रलय कारक आरसु–बस।।
जागृति स्वप्न सुषुप्ति धाम परब्रह्म प्रकासें।
इंद्रियगन, मन, प्रान इनहिं परमातम भासें।।
षटगुन अरू अवतार धरन नारायन जोई
सबकौं आश्रय अवधि भूत नँदनंदन सोई।
शिशु कुमार पौगंड धर्म पुनि वलित ललित लस।
धर्मी नित्य किशोर नवल चितचोर एकरस।।
जे जग में जगदीस कहै अति रहे गर्व भरि।
सब कर कियौ निरोध अपुन निज सहज खेल करि।।
महा–मोहनी मय माया मोहे तिरसूली।।
कोटि–कोटि ब्रह्मांड निरखि बिधिहू गति भूली।।
महाप्रलै कौ जल बल लै गिरि पर बरस्यौ हरि।
न जानों गरब गिरि तें गिरि कत गयौ धूरि मूरि ररि।
बह्मादिक कों जीति महामद मदन भरयौ जब।
दप्प–दलन नँद–ललन रास–रस प्रगट कर्‌यौ तब।
अवधि–भूत गुन रुप नाद तर्जन जहँ होई।
सब रस कौ नित्तसि रासरस कहिए सोई
न नु विपरित धरम यह परम सुंदर परसन करि।
कवन धर्म रखवारो अनुसर जीव सदृश हरि।।

○○○

बहे जात संसार घार जिय फंदे फंदन।
परम तरून करूना करि प्रगटे श्रीनँदनंदन।।

श्री वृंदाबन चिद्धन घन घन घन छबि पावें।
नंद सूनु को नित्य सदन श्रुतिगन जिहिं गावें।।

❍ ❍ ❍

सुनि उमगीं अनुराग भरी सावन–सरिता–जस।
सुंदर नगधर नागर–सागर मिलन बढ़ी रस।।

❍ ❍ ❍

त्रिगुन पवन लै आगैं है अलि धाए आए।
अवर सहेली चेली तिनहूँ अति सुख पाए।।

❍ ❍ ❍

अनाकृष्ट मन कृष्ण दुष्ट–मद हरन पियारे।
जहँ जहँ उज्जल परम धरम ताके रखवारे।।
धर्म अर्थ पर बचन कहे ते काहे तें इत।
ब्रज देविन के शुद्ध प्रेम रस प्रगट करन हित।।
सुनि पिय के अस बचन चकित भई ब्रज की बाला।
गद्गद कंठ रसाला बोलीं यौं तिहिं काला।
अंहो अहो जसुमति–प्यारे (तुम) नँदलाल दुलारे।।
जिनि कहौ बचन अन्यारे तुम तौ प्रान पियारे।

❍ ❍ ❍

दार गार सुत पति इन करि (कहो) कवन आहि सुख।
बढ़ै रोग सम दिन दिन छिन छिन दैहि महा दुख।।

❍ ❍ ❍

तैसेहि हम सब छाँड़ि तिहारे चरननि आई
नहिंन तजौ, पिय भजौ, तजौ ए सब निठुराई।
सुनि गोपिन के प्रेम–बचन हँसि परे भरे रस।
जदपि आत्माराम रमन भए नवल नेह बस।।

❍ ❍ ❍

कमलनयन करूनामय सुंदर नंदसुवन हरि।
रम्यो चहत रस रास इनहिं अपनि समसरि करि।।

❍ ❍ ❍

कृष्ण विरह नहिं बिरह–प्रेम उच्छलन कहावै।
निपट परम सुख–रुप इतर सब दुख बिसरावै।।
ढूँढन लगि ब्रजबाल लाल मोहन पिय कों तहँ।
नूत, प्रयाल, कदंब, निंब अरू अंब पनस जहँ।।
आवहु री ए बड़ महान बट पीपर बूझैं।

मोहन पियहिं बतैहौ जौ कहुँ इन कौं सूझैं।।
सखि ए तीरथ बासी पर–उपकारी सब दिन।
बूझहु री नँदनंदन मगु इक सूझत हैं किन।।

❍ ❍ ❍

इहि बिधि बन धन बूझि प्रेम बस लगति सुहाई
करन लगीं मनहरन लाल लीला मन भाई।

❍ ❍ ❍

ताते जग गोपी पुनि सुक मुनि हू गावैं।
सनक सनंदन जग बंदन तेऊ सिर नावैं।।
नँदनंदन लीला करि ललना धन्य भई जब।
सुंदर चरन सरोज खोज निकटहिं पायौ तब।।
सुनि सब धाई आई जीवनि मूरि सी पाई
पुनि पुनि लेहिं बलाई आपुनी करति बड़ाई।
सखि इह कृष्ण–चरन–रज अज शंकर शिर धारैं।
रमा रमन पुनि धारैं अपनें दोष निवारैं।।

❍ ❍ ❍

नहिं कछु इन्द्रिय–गामी कामी कामिनि कै बस।
सब घट अंतरजामी स्वामी परम एक रस।।
नित्य, आतमानंद, अखंड स्वरुप, उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा।।

❍ ❍ ❍

जैसोई कृष्ण अखंड–रुप विद्रूप उदारा।
तैसोई उज्जल रस अखंड तिन कर परिवारा।।

❍ ❍ ❍

धाय भुजन भरि लै पुनि तिहि जमुना तट आई
कृष्ण दरस लालसा सु तरफै मीन की नाई।।
अपुनैं ई प्रेम–सुधानिधि बढ़ि गई (प्रेम) कलोलैं।
बिह्वल है गई बाल बाल सों अलबल बोलैं।।
तब प्रगटे नँदनंदन सुंदर सब जग–बंदन।
गोपी–ताप–निकंदन को हैं कोटिक चंदन।।

❍ ❍ ❍

पुनि ब्रज–सुंदरि सँग मिलि सोहे सुंदर वर यों।
अनेक शक्ति करि आवृत सोहै परमातम ज्यौं।।
पुनि जस परम उपासक ज्ञानादिक करि सोहै।

यौं रस वोपी गोपी मिलि मनमोहन मोहे।।
काहू के काहू न गीत संगीत छूयो जहँ।
भिन्न भिन्न अपनाय अनागत प्रगट कियो तहँ।।
बनिता जहँ शत कोटि कहत कछु नहिं कहि आवै।
अपनें गुन गति नृत नाद कोउ पार न पावै।।

○ ○ ○

जो ब्रज देवी निरतति मंडल रास महा छबि।
तिहि कोउ कैसैं बरनै ऐसो कौन आहि कवि।।

○ ○ ○

जैसे कृष्ण उमित महिमा कोउ पार न पावै।
ऐसै ही ब्रजबनिता गुनगन गनत न आवै।।
जब नायक के भेद भाय लावन्य रुप गुन।
अभिनय दिखरावें गावें अद्भुत गति उन।।
तहाँ साँवरे कुँवर रीझि कैं रीझि रहत यौं।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौं।।
जिनकी गति धुनि घटा सकल जग छाइ रही है।
जिमि रंचक लक्ष्मी कटाक्ष सब बिभव कही है।।
ते तौ मदन मोहन पिय रीझि भुजन भरि लीन्ही।
चुंबन करि मुख सदन बदन ते बीरी दीन्ही।।
लटकि लटकि ब्रजबाला लाला उर जब फूलीं।
उलटि अनंद अनंग दह्यौ तब सब सुधि भूलीं।।
रीझि सरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
बिहरत सजनी स्याम यथारूचि अति रति काढ़ी।।
थके उडुप अरू उडुगन उनकी कौन चलावे।
कालचक्र पुनि चकित थकित भयौ (कछु) मरम न पावै।।
निरखत सारद नारद संकर सनक सनंदन।
हरषत बरखत फूलन जै जै जै नँदनंदन।
अद्भुत रस रह्यौ रास कहत कछु नहिं कहि आवै।
शेष सहस मुख गावै अजहूँ अंत न पावै।।
हो सज्जन जन रसिक सरस मन कै यह सुनियौ।
सुनि सुनि पुनि आनंद हृदै है नीकें गुनियो।
सकल शास्त्र सिद्धान्त परम एकांत महारस।।
जाकै रंचक सुनत गुनत श्रीकृष्ण होत बस।
रास सकल मंडल रस के जे भँवर भए हैं।।
नीरस विषय बिलास छिया करि छाँड़ि दए हैं।
'नंददास' सौं नंद सुवन जौ करूना कीजै।
तिन भक्तन की पदपंकज रस सों रूचि दीजै।

❑ भंवरगीत :

ऊधौ को उपदेश सुनो ब्रजनागरी,
रुप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा रसरुपिनी उपजावति सुख पुंज,
सुन्दर स्याम बिलासिनी नव बृन्दाबन कुंज।
— सुनो ब्रजनागरी ।।१।।

कहन स्याम संदेस एक मैं तुमपै आयौ,
कहन समै संकेत कहूँ, औसर नहिं पायौ
सोचत ही मन में रह्यो कब पाऊँ इक ठाऊँ,
कहि संदेस नँदलाल को बहुरि मधूपुरी जाऊँ।।
— सुनो ब्रजनागरी ।।२।।

सुनत स्यास को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,
भरि आनंद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।
पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन।
— ब्यवस्था प्रेम की।।३।।

अर्घासन बैठारि बहुरि परिकरमा दीन्ही,
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही।
बूझत सुधि नंदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल,
नीके हैं बलवीर जू बोलति बचन रसाल।
— सखा सुन स्याम के।।४।।

कुसल स्याम औ राम कुसल संगी सब उनके,
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद सबन के।
बूझन व्रज कुसलात को हौं आयौ तुम तीर,
मिलिहैं थोरे दिवस मैं जनि जिय होहु अधीर।
— सुनो ब्रजनागरी ।।५।।

सुनि मोहन संदेस रुप सुमिरन ह्वै आयो,
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो।
विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रजबनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं उधौ बैन सुनाय।
-- सुनो ब्रजनागरी ।।६।।

वै तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ,
अखिल बिस्व भरपूरि रुप सब उनहिं बिसेखौ।
लोह दारू पाषान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास।
– सुनो ब्रजनागरी ।।७।।

कौन ब्रह्म की जोति ग्यान कासौं कहो ऊधौ,
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधो।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रुप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय।
– सखा सुन स्याम के ।।८।।

यह सब सगुन उपाधि रुप निर्गुन है उनको,
निराकार निर्लेप लगत नहिं तीनों गुन को।
हाथ न पाऊँ न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकास हीं सकल बिस्व को प्रान।
– सुनो ब्रजनागरी ।।६।।

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आंखिन में अंजन दयो गोवरधन लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
–सखा सुन स्याम के ।।१०।।

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,
अखिल अंड ब्रह्माण्ड बिस्व उन्हीं में जाता।
लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति ही पाइये परंब्रह्म पुर धाम।
– सुनो ब्रजनागरी ।।११।।

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भावै,
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावै।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियुषहिं छाँडि के कौन समेटै धूरि।
– सखा सुन स्याम के ।।१२।।

धूरी बुरी जौ होय ईस क्यों सीस चढ़ावै,
धूरी छेत्र में आय कर्म करि हरीपद पावे ।
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहिं तें ब्रह्मंड,
लोक चतुर्दस धूरि तें सप्तदीप नवखंड।
– सुनो ब्रजनागरी ।।१३।।

कर्म धूरि की बात कर्म अधिकारी जानैं,
कर्म धूरि को आनि प्रेम अमृत में सानैं।
तबहीं लौं सब कर्म है जब लौं हरि उर नाहिं,
कर्मबद्ध सब बिस्व के जीव बिमुख है जाहिं।
– सखा सुन स्याम के ।।१४।।

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,
कर्मरुप तें बली नाहिं त्रिभुबन में कोई
कर्महिं तें उतपत्ति है कर्महि तें है नाम,
कर्म किये तें मुक्ति है परंब्रह्मपुर बास।
– सुनो ब्रजनागरी ।।१५।।

कर्म पाप अरू पुन्य लोह सोने की बेरी,
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरै विषय बासना रोग।
– सखा सुन स्याम के ।।१६।।

कर्म बुरे जो होंय जोग काहे को धारैं,
पद्मासन सब धारि रोकि इन्द्रिन को मारैं।
ब्रह्म अगिन जरि सुद्ध है सिद्धि समाधि लगाय,
लीन होय सायुज्य में जो तिहि जोति समाय।
– सुनो ब्रजनागरी ।।१७।।

जोगी जोति हि भजै भक्त निज रुपहि जानैं,
प्रेम पियूषहि प्रगट स्याम सुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं।
– सखा सुन स्याम के ।।१८।।

जो उनके गुन होंय बेद क्यों नेति बखानैं,
निर्गुन सगुन आतमा रचि ऊपर सुख सानैं।
बेद पुराननि खोजि कै पायौ नहिं गुन एक,
गुनहूँ के गुन होहिं जौ कह अकास किहि टेक।
– सुनो ब्रज़नागरी ।।१९।।

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँतें,
बीज बिना तरू जमै मोहि तुम कहो कहाँ तें।
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन बीच,
गुनतें गुन न्यारे भये अमल बारि मिलि कीच।
– सखा सुन स्याम के ।।२०।।

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,
उन गुन को इन माँहि आनि काहे को सानो।
जाके गुन अरू रुप को जान न पायो भेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म कों बदत उपनिषद बेद।
– सुनो ब्रजनागरी ।।२१।।

बेदहु हरि के रुप स्वांस मुख तें जो निसरै,
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पिछली सुधि बिसरै।
कर्म मध्य ढूढै सबै किन्हु न पायो देख,
कर्म रहित हो पाइये तातें प्रेम बिसेख।
– सखा सुन स्याम के ।।२२।।

प्रेम जो काऊ वस्तु रुप देखत लौ लागै,
बस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै।
तरनि चन्द्र के रुप को गुन नहिं पायो जान,
तौ उनको कह जानिये गुनातीत भगवान।
– सुनो ब्रजनागरी ।।२३।।

तरनि अकास प्रकास जाहिमें रह्यौ दुराई,
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ कौन पै देख्यों जाई
जिनकी वै आँखैं नहीं देखैं कब वह रुप,
तिन्हें साँच क्यौं ऊपजै परे कर्म कि कूप।
– सखा सुन स्याम के।।२४।।

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जामैं आई,
कर्म रूप कातें कहौ कौन पै छूट्यौ जाई
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास है जाय,
तब आतम निहकर्म है निर्गुन ब्रह्म समाय।
– सुनो ब्रजनागरी ।।२५।।

जो हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यों आवै,
तौ निर्गुन है बस्तु मात्र परमान बतावै।
जो उनको परमान है तो प्रभुता कछु नाहिं,
निर्गुन भये अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
– सखा सुन स्याम के ।।२६।।

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईश्वर सारे,
इन सबहिन तें वासुदेव अच्चुत हैं न्यारे।
इन्द्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोछज जोति,
सुद्ध सरुपी जान ज्ञेय तृप्ति जु ताते होति।
– सुनो ब्रजनागरी ।।२७।।

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित रुपै,
प्रगट भानु को छोडि गहै परछाहीं धूपै।
हमकों बिन वा रुप के और न कछु सुहाय,
ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय।
— सखा सुन स्याम के ।।२८।।

ऐसे में नन्दलाल रुप नैनन के आगे,
आय गये छबि छाय बने पियरे उर बागे।
उधौ सों मुख मोरि कै बैठि सकुचि कह बात,
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुचात।
— तरक रसरीति की ।।२६।।

अहो नाथ श्रीनाथ और जदुनाथ गुसाई,
नन्द नन्दन बिडराति फिरति तुम बिन सब गाई।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुधि लेहु,
दुख जलनिधि हम बूडहीं कर अवलंबन देहु।
— निठुर ह्वै कहँ रहे।।३०।।

कोउ कहैं अहो दरस देहु पुनि बेनु बजावौ,
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ।
हमकों तुम पिय एक हौ तुमकों हमसी कोरि,
बहुत भाँति नीके रहो प्रीति न डारौ तोरि।
— एक ही बार यौं।।३१।।

कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई,
यह छल विद्या कहो कौन पिय तुम्हैं सिखाई
यह परबस आधीन हैं तातें बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियै गहिरे जल की मीन।
— विचारहु रावरे।।३२।।

कोउ कहैं अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,
मधुरा को अधिकार पाय महाराज भये हौ,
ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत काऊ जाहिं,
अवला बुद्धि हम डर गई बली डरैं जग माहिं।
— पराक्रम जानि कै ।।३३।।

कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोबर्धन धारि करी रच्छा तुम कैसे।
ब्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिशोर।
— चोरि चित्त लै गये।।३४।।

कोउ कहैं ये निठुर इन्हें पातक नहिं ब्यापै,
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै।
इनके निर्दय रुप में नाहिन कछु विचित्र,
पय पीवत ही पूतना भारी बाल चरित्र।

– मित्र ये कौन के ।।३५।।

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई,
रामचंद्र के धर्म रुप में ही निठुराई
जग्य करावत जात हे बिस्वामित्र समीप,
मग में भारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप।

– बालही रीति यह।।३६।।

कोउ कहै जे परम धर्म इत्रीजित पूरे,
लच्छ लच्छ संधान धरे आयुध के रुरे
सीताजू के कहे तें सूपनखा पै कोपि,
छेदि अंग बिरुप कै लोगन लज्जा लोपि।

– कहा ताकी कथा।।३७।।

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली,
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।
माँगत बामन रुप धरि नापत करी कुदॉव,
सत्य धर्म सब छाँडि कै धरयौ पीठ मै पाँव।

– लोभ की नाव ये ।।३८।।

कोउ कहै री कहा हिरनकस्यप तें बिगर्यौ,
परम ढीढ प्रहलाद पिता के सनमुख झगर्यौ।
सुत अपने को देत हो सिच्छा खंम बँधाय,
इन बपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय।

– बिना अपराध ही।।३९।।

कोउ कहै इन परसुराम है माता मारी,
फरसा काँधे धरी भूमि छत्रिन संधारी।
सोनित कुण्ड भराय के पोषे अपने पित्र,
इनके निर्दय रुप में नाहिन कछु बिचित्र।–

बिलग कह मानिये।।४०।।

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै,
ब्याह करन कौ गयौ नृपति भीषम के देसै।
दलबल जोरि बरात कौं ठाढ़े हैं छबि बाढ़ि,
इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढ़ि। –

आपने स्वारथी ।।४१।।

यदि विधि होई आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रुप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रोम–रोम रहे ब्यापि कै जिनके मोहन आय,
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय।
रंगीली प्रेम की ।।४२।।

देखत इनको प्रेम नेम उधौ को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यौ त्रिभुवन आनँद बारि।
– बंदना जोग ये ।। ४३।।

कबहुँ कहै गुनगाय स्याम के इनहिं रिझाऊँ,
प्रेम भक्ति तें भले स्याम सुन्दर को पाऊँ।
जिहि बिधि मोपै रीझहीं सो बिधि करौं बनाय,
ताते मो मन सुद्ध ह्वै दुबिधा ग्यान मिटाय।
– पाय रस प्रेम को ।।४४।।

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें उड़ि तहँ आयो,
ब्रज बनितन के पुंज माँहि गुंजन छबि छायो।
बैठ्यौ चाहत पायँ पर अरून कमल दल जानि,
मनु मधुकर उधौ भयौ प्रथमहि प्रगटयौ आनि।
– मधुप को भेस धरि।।४५।।

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं,
तर्क वितर्कनि जुक्त प्रेमरस रुपी घातैं।
जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
तुमही सों कपटी हुते मोहन नंदकिशोर।
– यहाँ तें दूरि हो ।।४६।।

कोउ अहै री बिस्व भाँझ जेते हैं कारे,
कपट कुटिल की कोटि परम मानुष मसिहारे।
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग,
ता पाछे यह पधुपहू लायो जोग भुवंग।
– कहाँ इनको दया।।४७।।

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्‌यौ,
स्याम पीत गुञ्जार बैन किकिंनि झनकार्‌यौ।
वा पुर गोरस चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मांनहु कोऊ कपटी इनको भेस।
– चोरि जनि जाय कछु।।४८।।

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमको,
कौने गुन को जानि यही अचरज है हमको।
कारो तन अति पातकी मुख पियरो जगनिंद,
गुन अवगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद।
– देखि लै आरसी ।।४६।।

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै,
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
द्विविध ग्यान उपजाय कै दुखित प्रेम आनंद।
– कपट के छंद सों।।५०।।

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै,
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छबि पावै।
जानति हौ सब भाँति कै सरबस लयो चुराय,
यह बौरी ब्रजबासिनी को जो तुम्हे पतियाय।
– लहे हम जानिकै।।५१।।

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी,
लिये फिरत मुख जोग गांठि काटत बेकारी।
रूधिर पान कियो बहुत कै अरून अधर रंगरात,
अब ब्रज में आये कहा करन कौन कों घात।
– जात किन पातकी ।।५२।।

कोउ कहै रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यो,
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो।
द्वै सिंग आनन उपर रे कारो पीरो गात,
खल अमृत सम मानही अमृत देखि डरात।
– बादि यह रसिकता ।।५३।।

कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो,
मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो।
बेद उपनिषद सार जो मोहन गुन गहि लेत,
तिनकों आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संधा देत।
– जोग चटसार में ।।५४।।

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो,
तर्क बितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो।
पै इतनो नहिं जान हीं बस्तु बिना गुन नाहिं,
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
– सखा सुन स्याम के।।५५।।

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै,
सखा तुम्हारो स्याम कूबरीनाथ कहावै।
यह नीची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय,
अब जदुकुल पावन भयो दासी झूठन खाय।
–मरत कह बोल को।।५६।।

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
– पधारों रावरे ।।५७।।

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुबन के ऐसे,
और तहाँ के सिद्ध लोग है हैं धौं कैसे।
ओगुन गुन गहि लेत हैं गुन को डारत मेटि,
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन कों भेंटि।
– गाँठि को खोय कै ।।५८।।

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमरो जो संगी,
क्यों न होहिं तन स्याम सकल बातन चौरंगी।
गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहिं मुरारि,
मदन त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि।
– रुप गुन सील की।।५९।।

यहि बिधि सुमिरि गुबिन्द कहत उधौ प्रतिगोपी,
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी।
ता पाछे इकबार ही रोई सकल ब्रजनारि,
हा करूनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
– फाटि हियरो चल्यो।।६०।।

उमगै जो कोउ सलिल सिन्धु लै तन को धारनि,
भींजत अम्बुज नीर कंचुकी भूषन हारनि।
ताही प्रेम प्रबाह में उधौ चले बहाय,
भली ग्यान की मेंड हौं ब्रज में दीन्हीं आय।
– सकल कुल तरि गयो।।६१।।

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,
दुबिधा ग्यान गिलानि मंदता सिगरी नासी।
कहत मोहिं बिस्मय भयो हरि के ये निज पात्र,
हौं तो कृतकृत है गयो इनके दरसन मात्र।
– मेटि मल ग्यान को।।६२।।

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,
मैं इनकौ कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तो निज मरजाद सों ग्यान कर्म कह्यौ रोपि,
ये सब प्रेमासक्ति है कुल लज्जा करि लोपि।
— धन्य ये गोपिका ।।६३।।

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौं ध्यावैं,
काहे न परमानंद प्रेम पदवी कौ पावैं।
ग्यान जोग सब कर्म तें प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हौं हीरा आगे काँच।
— विषमता बुद्धि की ।।६४।।

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौ जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे ये लघु ग्यान को उर में मद रह्यो बाघ,
अब जान्यों ब्रज प्रेम को लहत न आधौ आघ।
— बृथा स्रम करि मर्‌यों ।।६५।।

पुनि कह सब तें साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन है जाई
गोपी प्रेम प्रमाद कौ हौं अब सीख्यौ आय,
ऊधव तैं मधुकर भये दुबिधा ग्यान मिटाय।
— पाय रस प्रेम को ।।६६।।

पुनि कहि परसत पाँय प्रथम हौं इनहिं निवार्‌यौ,
भृँग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डार्‌यौ।
अब रहिहौं ब्रजभूमि की है पग मारग धूरि,
बिचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन भूरि।
— मूनिन हूँ दुर्लभे ।।६७।।

कैस होंहु द्रुम लता बेलि बल्ली बन माहीं,
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय,
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह बर माँगौं जाय।
— कृपा करि देहु जैं ।६८।।

ऐसे मग अभिलाष करत मथुरा फिरि आयौ,
गदगद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ।
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,
जीवन कों लै का करौं पायौ जीवन मूलि।
— भक्ति कौ सार यह ।। ६६ ।।

ऐसे सोचत जहँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरमा दंडौत बहुत आवेस जनायो।
कछु निर्दयता स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु ब्रजबनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
— सुनो नंदलाड़िले।।७०।।

करूनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबहीं लौ नहिं लखौ तबहिं लौं बाँधी मूँठी।
मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रुप,
जे तुम को अवलंबही तिनकों मेलौ कूप।
— कौन यह धर्म है ।।७१।।

पुनि पुनि कहैं अहो स्याम जाय बृंदाबन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहँ गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि के उन लोगन सुख देहु,
नातरू टूट्यो जात है अबही नेह सनेहु। —
करौगे तौ कहा।। ७२।।

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ,
बिबस प्रेम आवेस रही नाहिं सुधि काऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका है रहि साँवर गात,
कल्पतरोरूह साँवरो ब्रजबनिता भई पात।
— उलहि अँग अंग तें।।७३।।

है सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन।
मो मैं उनमैं अन्तरों एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यौं देखै मो माहिं वै त्यौं मैं उनहीं माहिं।
— तरंगनि बारि ज्यौं ।।७४।।

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधौ भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय,
नंददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
— प्रेम रस पुंजनी।।७५।।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

❐ सुदामा चरित :

दुजवर एक सुदामा नामा। पुरी द्वारिका ढिग बिसरामा।।
जामैं बसै जु अलिपति ऐसैं। सरवर में सरसीरूह जैसे।।
परम अकिंचन कछु नहिं चहैं। जथा लाभ संतोषित रहैं।।
दीन कृष्ण–चरननि रति सरसै। इहि संसार बयार न परसै।।
जानै जिय सब बिषम–बगर सों। देखन कों गंधर्व–नगर सों।।
इह ममता सपनो सों लागै। माया सन सपनो सो जागै।।
नेह न देह गेह सन कबहुँ। उनसम चिंतन समता सबहूँ।।
सखा आपुने श्रीजदुनाथा। गुरूकुल पढ़े एक ही साथा।
तातैं तिसा अनी न बिचारै। बिषयन दीन देह प्रतिपारै।।
तातैं दुरबलता तनु ताकैं। नाहिंन कछुक दरिदता जाकैं।।
तिय ताकी पतिवरता अहै। पति ही पोख्यो तोख्योचहै।।
जानत सब सेवा के धर मैं। औरू बिमूति नहीं कछु घर मैं।।
निपटहिं लटयौ दैखिके गातैं। कहन लगी कंत सों बातें।।
इततै निकट जदूपुरी आँही। तनक चाह है आओं ताँही।।
जहँ प्रभु कमला कंत पियारे। तुम जु कहत है सखा हमारे।।
कीजै दरस अरस नहिं कीजै। जीवन सकल सफल करि लीजै।।
बिप्र कहत नहिं घर कछु साजा। तिन्हैं मिलत मोहि आवत लाजा।।
तीय कहै व त्रिभुवन स्वामी। अखिल लोक के अंतरजामी।।
रीझत देरि कछू नहिं आनैं। केवल प्रीत–रीति पहिचानैं।।
कहत जदपि जदुपति हैं ऐसे। चक्रपानि प्रभु परसहूँ कैसे।।
तब तिय उठी चलत पिय जाने। माँगी मुँठि द्वै चिरवा आने।।
चीर लपेटि सु पिय पकराए। नीकैं लिएँ सु द्विज उठि घाए।।
दृष्टि परी जदूपुरी सुहाई जगभगात छबि बरनि न जाई
बन उपबन फल फूल सुहाई सब रितु रहत समान सुछाई।
सरवर की छबि बरनि न जाई मलिन होत सुमलिनता आई।
ऊँचे कनक–भवन जगमगहीं। चखन मांहि चक चौंधा लगहीं।।

लगे जु नग जगमग रहे ऐना। मानहूँ सरस भवन के नैना।।
तापर चपल पताका चमकै। बिनु घन जनु दामिनी सी दमकै।।
सुंदर सुथरी डगर जो पुर की। चोवा चंदन बंदन बुरकी।।
हाथी हय रथ गहे सुसंबर। निकसिन सकत अटनि तनु अंबर।।
महा बिभूति कछु न सुधि परहीं। क्रम क्रम द्विजबर मग अनुसर हीं।।
पहुँचे पौरि रौरि तहँ छबि की। बरनि न सकै महामति कबि की।।
जहँ शंकर नारद मुनि ठाढ़े। औ सुरपति नरपति अति बाढ़े।।
समय स्याम को नाहिंन अबहीं। रोकैं रहत पौरिया सबहीं।।
ठाढ़ो भयो द्वार पै द्विजवर। एक पौरिया आई गह्यौ कर।।
लै गयो जहँ रूकमिनि को मंदिर। बैठे तहँ जदुनायक सुंदर।।
चँवर चाक ढोरत है ठाढ़ी। प्रिय मुख निरखति अति रति बाढ़ी।।
जदपि सहस दस दासी आहीं। प्रेम बिबस रस देति न काहीं।।
दृष्टि परे द्विजबर तहँ जबहीं। अरबराई हरि दौरें तबहीं।।
भले मिले कहि अति मृदुबानी। भेंटत भरि आए दृग पानी।।
अपुने आसन द्विज बैठारे। निज कर–कंजनि चरन पखारे।।
पोंछत रूचि कर पग जगनायक। अपुने पियरे पट सुखदायक।।
चरन माँहि पट अटक रहत जब। रमा सुंदरी मुसकि परत तब।।
सुंदर भोजन बिबिध प्रकारी। आनि धरे भरि कंचन थारी।।
जे सपने कबहुँ नहिं दरसे। श्रीपति–ललना निज कर परसे।।
ताहि पाइ द्विज सुख नहिं मान्यों। परमानंदकंद रस सान्यों।।
लै बैठे पुनि श्री जदुनाथा। सुधि कीनीं गुरूकुल की गाथा।।
अहो मित्र जब ईधन आनन। गुरू–पतनी पठए तब कानन।।
तोरत ईधन धन घिरि आए। अमित जोर सों जल बरसाए।।
बरसत बरसत परि गई रजनी। कितहु नगर की डगर सुन जनी।।
भूले फिरे रैन तँह सगरी। तऊ न गुरू की पाई नगरी।।
भयों प्रभात तब गुरू पै आये। धरि ईधन तब सीस नवाए।।
वे दिन भले हुते अहो तब तों। बँट गए ठौर ठौर चित अबतों।।
भली भई फिरि मिल हे तुमकों। भाभी कछू दियो है हमकों।।
चिरवा छोरि चीर तैं लीने। भर मूठी निज मुख में दीने।।

तिसरी बेर बहुरि मन कीने। तब उठि रमा, रमन गहि लीने।।
करत बात पौढ़े द्विज राती। खान पान करि नाना भाँती।।
प्रात होत निज धाम सिधारे। रहे नाहिं बहुतक पचि हारे।।
करत चबाव जात निज घरकों। मन में कहत कहा कहौं हरि कों।।
पुनि पुनि कहैं अतिहि भल कीनों। जो हरि हमकों कछु नहिं दीनों।।
राखि लयो अपुनों करि जान्यो। परम अनुग्रह इतनों (हम) मान्यो।।
सब मद तैं धन–मद दुखदाइक। नहिं पायों भए पुन्न सहाइक।।
अंधरो करै बधिर पुनि करहीं। उत पथ चलत बिचार न टरहीं।।
दिन न चैन निसि नींद न परहीं। मोद–मुदित मन अति सुख मरहीं।।
मन सों बात करत चलि आए। चकित भए निज ठौर न पाए।।
कहन लगे इहि भवन कौन के। ऐसे हैं वहाँ रमा–रमन के।।
अब लौं इहाँ हुतो नहीं ऐसो। अबहीं इहों भयो है जैसो।।
कहन लगे पुनि संभ्रम पायो। कै बहुरि द्वारिका आयों।।
देखत इन्हैं सु–सेवक धाए। अभरनि तैं वे अधिक सुहाए।।
अटा चढी अवलोकन तिरिया। टिकत धाम बाम दिय भरिया।।
आतुर तिय लखि पियहिं सु चमकी। जनु सुमेर तैं दामिनी दमकी।।
मुदित बदन छबि कौन बखानै। अवनी उतरति उडुपति जानैं।।
सहस अली लिएँ संग सुंदरी। उडुगन मधि राजत ज्यों चँदरी।।
करि आरति निज भवन सुलीने। सबै मनोरथ पूरन कीनै।।
ऐसे जो कोउ हरि को भजै। हरि–उदारत तैं सुख सजै।।
दीननको बरदायक नित ही। रहत अधीन भक्त के हित ही।।
चरित स्याम को इहि है ऐसों। बरन्यौ 'नंद' जधामति जैसों।।
दसम स्कंध बिमला सुख बानी। सुनत परीछित अति रति मानी।।
परम चरित सुदामा नित सुनी। हृद–कमल में राखों गुनि गुनि।।
'नंददास' की कृति संपूरन। भक्ति पावै सोइ तूरन।।

* * * * * * *

❑ गोर्वधन लीला :

श्रीगुरू चरन सरोज मनावौं। गिरि गोबरधन–लीला गावौ।।
कलि–मल–हरनी मंगल करनी। मनहरनी श्री सुकमुनि बरनी।।
जग्ग करन जब गोप कलोले। तिन प्रति साँवर सुंदर बोले।।
कहौ तात, यह बात कहा है। भुवन भाव आनंद महा है।।
सयन कब हूँ कर मकरै दू की। सोई असाय कर मकरै लू की।।
मंद मंद हँसि नंद महर तब। अपन तात सौ बात कही सब।।
मघवा है मेघनि कौ राजा। यह उछिम सब उनके काजा।।
बरषै जल तिन उपजै भारी। गाइनि के गन हौंइँ सुखारी।।
तब बोले निज नाम उमाहै। मुरलीधर गिरधर भयौ चाहै।।
जहँ पर गिर गोवरधन सौहे। इन्द्र बराक या आगे को है।।
पूजौ याहि भलौ जौ चाहौ। बिन माँगै कीतबु सर गाहौ।।
इही मेघ है बरषा बरषै। काल रूप है यह आकरषै।।
हमरे मते यहै मति कीजै। सब बलि लै गोबरधन दीजै।।
सुनतहि मोहन मुख मृदु बानि। भली भली कहि सबहिन मानि।।
जाकी रचना वाकै आगें। आँय बाँय सारे भै भागें।।
कुल मंडन सपूत सुख देना। सबके जीवनि सबके देना।।
घर घर बरा पकवान कराए। बिंजन षट रस सकट भराए।।
चले गोप अति ओप बिराजे। भेरी मंदर कंदर बाजे।।
सोहत सीसनि पाग जरकसी। सुरपति उर की कठिन करकसी।।
सकंटनि चढ़ि छबिली गोपी। गावहिं पिय जस अति रस ओपी।।
भागनि भरी जसोमति रानी। बैठी सकट न परत बरबानी।।
रमा उमा सी दासी जाकी। सुरपति–रवनी कौन बराकी।।
पूत गोद में कान्ह तहाँ है। सुंदर सुत गुन गान जहाँ है।।।
पहिलैं गोधन पूजा कीनीं। तब बलि लै गोबरधन दीनीं।।
पूजा करि पाँई परि बिगसे। सैल रूप धरि तब हरि निकसे।।

कान्ह कहै देखौ तुम काजा। प्रगट भयौ है गिरि कौ राजा।।
जितनौ भोजन ब्रज ते आयौ। गिरि रूपी हरि सगरौ खायौ।।
भई परतीति भरे मद भारी। दैहिं प्रदच्छिन नर अरू नारी।।
इक मूरति हरि भोजन करई इक लोगन सँग फेरी फिरई।
फिरत जु छबि बाढ़ि तिहिं काला। गोबरधन मनु पहिरी माला।।
गिरिवर कहौ कछु लै नाहीं। फूले गोप न अंग समाहीं।।
सुन्यौ इंद्र मेरौ जग मेटा। यह मद मत्त नंद कौ बेटा।।
कान्ह के बल मौसौं करि खाती। हरि है कहा, गोप किहिं बाती।।
जौ कोऊ उन पछ कर यारै। तो यौ चहैं सुख सींय अपारै।।
झूँठ की जौ कोऊ नाव बनावै। झूँठ तहाँ लै कुटुंब चढ़ावै।।
ऐसैं ही गोप श्रीकृष्ण भरौसैं। महा बैर कीन्हौं हैं मोसैं।।
अब देखैं कैसी सिखलाऊँ। गोकुल गाँवहिं खोदि बहाऊँ।।
बोले मेघन के गन सोई जिनके जल जग परलै होई।
बेगि जाहु जहँ नन्द कौ गोकुल। दूरि करौ तहँ तें सबकौ कुल।।
कान्ह कौ डर जिनि जिय मैं आनौ। पाछै मोहिं आयौ ही जानौं।।
कारी घटा डरावनी आई पापिनी साँपिनि सी थरि छाई।
बिजुरी लपकि लपकि यो आवै। मानौ उरगन जीभ चलावै।।
फन फुंकार पवन अति ताते। हरि न होय तौ सब जरि जाते।।
गरजनि तरजति अनु अनु भाँति। फूटैं कॉन अरू फाटै छाती।।
परन लगी नान्हीं बुँद बारी। मोटै थंभन हूँ तैं भारी।।
तब ब्रज जन जहँ तहँ तैं धाए। सुंदर नंद सुवन पैं आए।।
बोले हरि बिलोकि तिन माहीं। कित भै करत इहाँ भै नाहीं।।
आतुर इन्द्र महा अभिमानी। हम पैं कोप कियो यह जानी।।
बिहँसन लगे नंद के लाला। और न कछू कियौ तिहिं काला।।
सकल सृष्टि जा चितवन माहीं। कोटिक उपजै कोटिक जाहीं।।
ऐसे प्रभु पैं कीन हँकारे। तौं तौं बढ़े गुपाल पियारे।।
चलि आए ब्रजराज कुँवर बर। झट दै उचकि लियौ गिरि कर पर।।
नहिंन कछु स्रम सहजहिं ऐसैं। साप बेसना कौं सिसु जैसैं।।
गोपी गोप गाय बछ जेते। अपने सुख रहे तिहिं तेते।।

जलद जु बरषन लागे पानी। कहा कहिय कछु अकथ कहानी।।
घरहराई अति बरखा करई। कोटि कोटि मन की सिल परई।।
तरकि तरकि अति ब्रज पै डारैं।। मदमत इंद्र ठढ़ौ फलकारैं।।
यह तौ इंद्र की करनी बरनी। अब गिरि कथा सुनौं मनहरनी।।
ऊपरि खग मृग अरू तरू बेली। तिन पें फुहीं न परैं अकेली।।
नाचैं मोर कुलाहल कीजैं। इंद्र की छाती लौंन सौं मीजैं।।
देखि–देखि सुख सुरपति मरई दौरि दौरि घन पाँइन परई।
पाँख पेक मोरनि कौं मारौं। कोइक पाठ दुर मन तैं झारौ।।
पातन मारौ, पाखन टारौ। मेघ मरद घन सब पचि हारौ।।
इंद्रह आपनौ बज्र चलायौ। पान लगे तेहूँ नहिं आयौ।।
ये पग मृग कहूँ षट मै नाहीं। इंद्र के आव जिन्ह त्रागी जाहीं।।
जो अंतरजामी ढिग आँहीं। का करि सकै इंद्र इन ताहीं।।
सात दिवस अद्‌भुत झर ठान्यौं। व्रजवासी तनकौ नहिं जान्यौ।।
सुंदर बदन बिलोकनि आगै। भूख–प्यास उर कौं नहिं लागै।।
निकसे सब जब गिरिधिर भाष्यौ। गोबरधन फिर तहँही राख्यौ।।
प्रेम भरी बनिता जुरि आई बारैं अमरन लेत बलाई।
धुरि रहि जसुमति लेत बलाई इत धुरि रह्नों बड़ौ बलि भाई।
ऊपरि ठाढ़ौ नंद अनंदै। चुंबत अपने आनँद कंदै।।
यह नागर नगधर की लीला। सुधा सींय सम सुन्दर लीला।।
मन क्रम बचन जु यौ अनुरागै। ताहि मुकुति अति फीकी लागै।।
अरथ धरम अरू कामजीत सुख। निपट कुटल ते कौन धरै मुख।।
अधिकारी धौं भलौं रस जानैं। अलि बिन कमलहिं को पहिचानैं।।
नवल किसोर सुँदर गिरिधारी। स्रवन नैन (मन) अमृत रूप भारी।।
''नंददास'' कौं इतनौं कीजैं। पावन गुन–गावत रति दीजै।।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

❐ रूक्मिणी मंगल :

श्री गुरूचरन–प्रताप सदा आनन्द बढ़ै उर।
कृष्ण–कृपा तै यधा कहूँ सुख पावत नर सुर।।१।।
रूक्मिनी–हरन पुनीत चित दै सुनैं सुनावैं।
जाहि मिटै जम त्रास, बास हरि के पद पावैं।।२।।
सिसुपालहि कों देत, रूक्मिनी बात सुनीं जब।
चित्र लिखी सी रही, दई यह कहा भई अब।।३।।
चकितं चहूँ दिसि चहति, बिछुरि मनु मृगी मालतैं।
भयौ बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं।।४।।
भरि आए जल नैन, प्रेम रस ऐन सुहाये।
जनु सुंदर अरविंद अलिंदन बैठ हलाये।।५।।
अलि पूँछत बलि बात ! कहौ नैननि क्यों पानी।
पुहुप रेनु उड़ि परयौ, कहत तिनसों मधु–बानी।।६।।
काहु के ढिग कुँवरि बड़हि बड़ स्वासनि लेई
कहत बात मुख मूँद मूँद उत्तर तिहिं देई।७।।
जो कछु तपत–उसास, उदास बदन तैं लहिहैं।
कन्या कन्या–विरह–दुःख को कासों कहिहैं।।८।।
सुभग कुसुम की माल सखी जब जब गुहि लावैं।
कर सो कुँवरि न परसै, अर सों निकट धरावैं।।६।।
अपने कर जो बिरह जरैं जानत अति तातैं।
मति मुरझाय सो माल, बाल डरपति है यातैं।।१०।।
मिटी मूख अरू प्यास, पास काउ न भावै।
कोनें जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै।।११।।
दुरी रहति क्यों प्रिय–रति प्रकटहि देंत दिखाई
पुलक अंग, सुरभंग, स्वेद कबहुँ जड़ताई।१२।।
उर थर थर अति कँपत जपत जब कुँवर कन्हाई
कबहुँ टकी लगि जाइ, कबहुँ आवत मुरझाई।१३।।
ह्वै गयो कछु बिबरन–तन, छाजत यौं छबि–छाई
रूप अनूपम बेलि, तनक मनु धाम में आई।१४।।
मंगल दुंदुभि सुनैं धुनै–धुन जो मन माँही।
निरखि निरखि कर कंकन दृग जल भर भर आहीं।।१५।।
टप–टप टप–टप, टपकि नैन सो अँसुआ दरहीं।

मनु नव नील कमल-दल तैं भल मुतिया झरहीं।।१६।।
उपजि बिरह-दुख दवा, अँवा तन तापत ये हैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि-तचि लाल भये हैं।।१७।।
कबहुँ मनहि मन सोचत, मोचत स्वास-ठरारे।
मोहन सोहन-स्याम, न है हैं पिया हमारे ?।।१८।।
करत बिचार मनहि मन, अब धौं कैसी कीजै।
लोक लाज कुल कानि किये मोहिं सरबसु छीजै।।१६।।
ज्यों पिय हरि अनुसरौ सोई अब जतन करौ हठि।
मात, तात अरू भ्रात, बन्धु-जन सबै परौ भट।।२०।।
आगि लागि जरि जाहँ लाज जो काज बिगारै।
सुंदर नंदकुँवर नगधर सो अंतर पारै।।२१।।
पति परिहरि हरि भजत भई गोकुल की गोपी।
तिनहुँ सबै बिधि लोपि, परम-प्रेमै-रस ओपी।।२२।।
जिनके चरन-कमल रज, अजहू बाँछन लागे।
सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद, अनुरागे।।२३।।
इहि बिधि धरि मन धीर चीर अँसुवन सिरायकै।
लिख्यो पत्र सुविचित्र, चित्र रूक्मिनि बनायकै।।२४।।
तब इक द्विज बर बोलि खोलि निज बात कही सब।
अहो देव ! जदु-देव पिया पैं तुरत जाहु अब।।२५।।
यह पाती मो नाथ-हाथ पै तुमहीं दीजो।
काहू नाहिं पतीजो, बलि-बलि एती कीजो।।२६।।
द्विज न गयो निज भवन, गवन किय धरि जु पवन-गति।
आरति लखि रूकमिनी और श्रीकृष्ण-चरन-रति।।२७।।
पुरी परम-माधुरी, बिप्र लखि रह्यौ चकित चित।
श्री निवास को निज-निवास छबि का कहियै तित।।२८।।
बन उपवन के रूँख मूख भाजै तिहि देखैं।
अमृत फलन सों फले फरे सुर बर मन लेखैं।।२६।।
ललित-लतानि की फूलनि, झूलनि अति छबि-छाजैं।
जिन पर अलि बर राजैं मधुरे जंत्र से बाजैं।।३०।।
सुक, पिक, चातक, सबद सुमीठी धुनि अस रटहीं ।
मनौं मार चटसार सुढार चटा से पटहीं।।३१।।
और बिहंगम रंग भरे बोलत हिय हरहीं।
मनु तरूवर रसभरे परस्पर बातैं करहीं।।३२।।
सुभग सुगंध सरोवर निरमल मुनि मन जैसैं।
प्रफुलित बरूई इंदु सरोवर राजत तैसैं।।३३।।

कुंज–कुंजप्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे।
मनु रवि–डर तम भजे तजे रोवत हैं बारे।।३४।।
उज्जल मनि–मय अटा, घटा सों बातैं करई
जगमग जगमग ज्योति होति रवि ससि सो अरई।३५।।
चपल पताका फरकैं झलकैं अरक–किरन जहँ।
घाम न कबहुँ परसै नित ही छाँह रहत तहँ।।३६।।
जाल रंध्र मुख अगर घूम जनु जल–घर धुरवा।
आनँद भरि भरि उरवा, नाचत मधुरे मुरवा।।३७।।
बगर बगर सब नगर रहीं नव–गुड़ी उड़ी छबि।
मनौं गगनमैं अंग चौखटे–चंद रहे फबि।।३८।।
जैसेई देव विमाननि चढ़ि द्वारावति आये।
देखि देखि मन हरषे बरषे सुमन सुहाये।।३९।।
कृष्ण भावती पुरी, निरखि द्विज हरख भयो अस।
जगत द्वन्द्व तैं छुटयौ, ब्रह्म–आनन्द मिल्यो जस।।४०।।
सिंह पौरि छबि खौरि कहत कछु नहिं बनि आवै।
अर्थ, धर्म औ काम, मोक्ष जिहि निरखत पावै।।४१।।
जहँ अनेक परिचार मार से बनि बनि ठाढ़े।
कृष्ण–कल्पतरू–सुंदर, सीतल–छाँह के बाढ़े।।४२।।
ब्रह्म, रूद्र, अमरेन्द्र वृन्द की भीर मुलावैं।
भीतर जान सुपावैं जिहि हरि देव बुलावैं।।४३।।
चल्यौ गयौ तहँ बिप्र क्षिप्र–गति कितहूँ न अटक्यौ।
प्रभू जान ब्रह्मन्य, पौरिया पायनि लटक्यौ।।४४।।
जदुपति को लखि द्विजपति मन में अति सकुचायो।
जनु उडुपति उडुमंडल तैं महिमंडल आयौ।।४५।।
किधौं कमल–मंडल मैं अमल दिनेस बिराजैं।
कंकन, किंकिनि, कुंडल करन महा छबि छाजैं।।४६।।
द्विजहिं दूरि तै निरखि–निरखि हरि हरखित होई
प्रिय सन्देस कहैया है यह द्विजबर कोई।४७।।
उठि नँदनंदन जगबंदन, पगबंदन करिकैं।
लै चले घर द्विजबर कों हरि कर पै कर धरिकैं।।४८।।
दुग्ध फैन सम सैन रमा मनो ऐन सुहाई
ता ऊपर बैठाय, पाँय धोये जदुराई।४९।।
अष्ट गंध उसनोदक सों असनान कराये।
मंजुल मृदुल महीन नवीन सुपट पहिराये।।५०।।
खान पान, बहुमान, पान निज पानि खवाये।

कहौ कहाँ ते आये, बोले बचन सुहाये।।५१।।
तब रूकमिनि कौ कागर नागर नेह नवीनों।
बसन–छोरि तै छोरि, बिप्र श्रीधर–कर दीनों।।५२।।
मुद्रा खोलि गुविन्दचन्द जब बाँचन आँचे।
परम प्रेम रस साँचे अच्छर परत न बाँचे।।५३।।
श्री हरि हियो सिरावत लावत लै–लै छाती।
लिखी बिरह के हाथ सुपाती अजहूँ ताती।।५४।।
हिय लगाय सचुपाय, बहुरि द्विजबर कौं दीनी।
रूकमिनि अँसुवन–भीनी, पुनि हरि अँसुवन भीनी।।५५।।
पढ़न लग्यौ द्विज गुनी रूक्मिनी बचन सुहाये।
तब हरि के मन नैन सिमटि सब स्रवनन आये।।५६।।
सिद्धि श्री श्रीनिवास, पास श्रुतवास सहायक।
सुंदर सुचिबर, श्री गुविंद तुम सब बरदायक।।५७।।
नृप विदर्भ की कन्या रूक्मिनि, अनुचरि गनियै।
ताकों प्रथम प्रनाम बाँचि पुनि बिनती सुनियै।।५८।।
बिलगु मानियैं नाहिं जानियैं अपनी करिकैं।
मग्न होय दुख–जलनिधि में, उधरो कर धरिकैं।।५६।।
जब तैं तुम्हरे गुनगन मुनि जन नारद गाये।
तब तैं औरू न भाये अमृत तैं अधिक सुहाये।।६०।।
मैं तुम मन करि बरे कुँवर गिरिधरन पियारे।
हौं भई तुम परिचारि, नाथ ! तुम भये हमारे।।६१।।
अब विलंब नहिं करौ, बरौं त्रिभुवन–पति सुंदर।
नाथ परम सुखधाम, स्याम सुखभोग पुरंदर।।६२।।
औरू सबै दुखभरे सरे अंतर ही अंतर।
काल कौल से करे, परे छिन छिन परतंतर।।६३।।
देखतके सब गोरे नव नव पानिप ढोरे।
हार काजु नहिं आवैं जैसे उज्जल ओरे।।६४।।
तिन मै इक सिसुपाल ताहि मुहि देत रूकुम सठ।
तात, मातु पचिहारि होत नाहिंन चटतै मठ।।६५।।
उचित होय सो करिय करत लाजहिं नहिं मरियैं।
बारन–बृंद बिदारन बलि गो मायन डरियैं।।६६।।
महा–हंस जदुबंस, बीर जू बलहि बिचारौ।
है यह तुमरो भाग काग सिसुपाल बिडारौ।।६७।।
परत परेवा नभ तैं पर कर देखत याकौं।
तुम सब लायक अछत छुए सिसुपाल–छिया कौ ?।।६८।।

जो नगधर, नँदलाल मोहि नहिं करिहौ दासी !
तो पावक पर जरिहौं, बरिहौं तन तिनका सी।।६६।।
जरि–मरि–धरि–धरि देह न पैहौं, सुंदर हरि बर।
पै यह कबहुँन होय स्याल सिसुपाल छुएँ कर।।७०।।
सुनि रूकमिनी की पाती, छाती पुनि लगायकैं।
सारथि पैं रथ माँगि रूक्म पै अति रियासकैं।।७१।।
तुरत चढ़े छबि बढ़े चढत बानक बनि आयौ।
हरबर मैं खसि पर्यौ पीत–पट द्विज पकरायौ।।७२।।
कहत विप्र सों हँसत लसत बिकसत सुंदर मुख।
जनु कुमुदिन घर चल्यौ चंद्रमा देन परम सुख।।७३।।
हों द्विजवर ! सब दलमलि रूकमिन ल्याऊँ ऐसैं।
दारू–मथन कर सार अगिन को काढत जैसैं।।७४।।
जानि प्रिया की आरति हरि अरबर सों धाये !
मन की सी गति करें चले कुंड़िनपुर आये।।७५।।
ह्याँ दुलहिन तरफरें फिरत घन–आँगन ऐसैं।
रबि तेजहि सों, दुखित मछरि थोरे जल जैसें।।७६।।
चढ़ि चढ़ि अटनि, झरोखनि झाँकत नवल किसोरी।
चंद उदै बिनु जैसे आतुर, त्रिषित चकोरी।।७७।।
फुरकन लागी भुजा बाम, कंचुकि बँध तरकन।
हिय तें सूल लग्यौ सरकन, उर अंतर धरकन।।७८।।
तिहि छिन द्विजवर चल्यौ–चल्यौ अंतापुर आयौ।
बदन डहडह्यौ दिखि कछू मन धीरज पायौ।।७६।।
पूँछि न सक मुख बात दई यह कहा कहैगो।
कै अमृत सों सोंच, किधैं विष देह दहैगो।।८०।।
निकसि प्रान तब तन तें द्विज के बचननि आये।
तबहिं कह्यौ हरि आये, मनु फिर बहुर्यों पाये।।८१।।
दियौ चहैं कछु द्विजहिं नहीं देख्यौ तिहि लायक।
तब उठि पायन परी भरी आनंद महा इक।।८२।।
सुर, नर जाकों सेवत सेवतहू नहि लहियै।
सो लक्ष्मी जिहि पाय परत ताकी का कहियै।।८३।।
पुर के लोगन सुनि कै श्री सुंदर बर आए।
जहँ तहँ तैं आये देखनि हरि बिसमय पाये।।८४।।
कोटि काम–लावन्य, अंग सुख दैन जु हित के।
जे तित दौरे परे भये ते तित ही तित के।।८५।।
जो अलकन छबि उरझे, तें अजहूँ नहिं सुरझे।

ललित लसैं सिर पागु तकैं तक तहँ तहँ मुरझे।।८६।।
कोउ कटीली भौंह निपट ही बिबस करे हैं।
कोउ दृगन छबि गिनत–गिनावत हार परे है।।८७।।
कोउ लखि ललित कपोलन मधुरी बोलन अटके।
परे ज्यों मद–गज चहले दहले फेर न भटके।।८८।
कोउ श्रवननि कुंडल मंडल चंचल जोती।
निरखत ही मिलि गए भए जल निधि के मोती।।८६।।
कोउ रीझे श्रीवत्स वक्ष की लखत लुनाई
मृदु मरकत मणि कोटि नैक जस दामिनि छाई।६०।।
को जु रहे चकचौंध, कचिर पीतांबर छबि पर।
मनौं छबीली छटा रही थकि सुंदर घन पर।।६१।।
कोउ इक नैननि अटकि गये है लोभ लुभारे।
भरे भवन के चोर भये बदलत ही हारे।।६२।।
कोउ जु रूचिर चरनारविंद–मकरंद लुभाये।
चंपमाल सिसुपाल परस अलि बहुर न आये।।६३।।
कोऊ कहै, यह नायक रूकमिनी या के लायक।
मनि बाँधी कपि–कंठ सुनहु रूकमी दुखदायक।।६४।।
कोउ कहै, बढ बली, बीर–बर याही बरि हैं।
जरासिंधु, सिसुपाल–स्याल मुख धूरि जु परि हैं।।६५।।
पुनि सब भूपन सुनी कि हरि मद–मथन पधारे।
परे बिखाद जिय मारे, मिट गए ओज उचारे।।६६।।
मतौ कियौ मिलि इनहूँ किनहूँ भेद बतायौ।
महाबली अतिछली भली नहिं जो यह आयौ।।६७।।
जहँ देवी अंबिका, नगर बाहर मठ ऊजन।
है आई कुल 'रीति चली दुलही तिहि पूजन।।६८।।
भेरी मंदिर बजैं गगन में नभ–घन गाजैं।
पहिर बरम, असि, चरम खरे सो सुभट बिराजैं।।६६।।
सावधान है चले घेरी दुलहिन कों ऐसै।
गरूड–वेग भयभीत सुधा ढिग बिषधर जैसै।।१००।।
देवी द्वार पखारि पाय दुलहिनी सुहाई
थलहिं जलज से चरनन चलि देवालय आई।१०१।।
विधिवत् देवी अरचि चरचि बहु बंदन करिकै।
बिनती कीनी कुँवरि गोरि–पद–पंकज परिकै।।१०२।।
अहो ! देवी, अंबिकै ! गौरी, ईश्वरि, सब लायक।
महा–माय, बरदाय, सु संकर तुमरे नायक।।१०३।।

तुम सब जिय की जानति तुम सों कहा दुराऊँ।
गोकुल–चंद, गुबिंद, नंदनंदन पति पाऊँ।।१०४।।
ह्वै प्रसन्न अंबिका कहत हे रूकमिनि सुंदरि।
पैहो अबहिं गुविंद–चंद जिय जिन बिषाद करि।।१०५।।
पाय मनोरथ बिकसी निकसी सुंदरि मठ तैं।
बेगि चलो सब कहैं झकैं तिन सों निज हठ तैं।।१०६।।
मंद मंद पग धरै चंदमुख किरन बिराजै।
मनिमय नूपुर बजै बीन मनमथ सी बाजै।।१०७।।
अरून चरन प्रतिबिंब अवनि मैं यौं उनमानी।
जनु धर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी।।१०८।।
देखति छबि सों छली अपन बर आरत उलही।
निरखत नरपति सगरे डरपत नेकुंन न दुलही।।१०९।
घूँघट पट दियो हुतो सु खोल्यो बदन डहडह्यौ।
जनु अंबर तैं अब ही निकस्यौ चंद गहगह्यौ।।११०।।
सोभा सदन सुबदन रदन की छबि द्युति ऐसी।
अरून बदरि मैं दमकत दामिनि–अंकुर जैसी।।१११।।
श्रवननि सुंदर खुभी, चुभी सबके मन ऐसे।
काम कलभ की अबहीं उलही दतियाँ जैसे।।११२।।
अली अंस भुज दिये निहारत अलक सुधारत।
सर कटाच्छ सन भरे सुतकि तकि भूपन मारत।।११३।।
परे जहाँ तहँ मुरझि भूप सब उरझि उरेझा।
पंच सरन छिद डारि किए मनमथ को बोझा।।११४।।
दृष्टि परे जब मोहन सोहन कुँवर कन्हाई
तिहि छिन दुलहिनि–दसा भई जो बरनि न जाई।।११५।।
अरबराइ मुरझाय कछू न बसाय तिया पैं।
पंख नाहिं तन बने, नतरू उड़ि जाय पिया पैं।।११६।।
हरै हरैं पग धरैं हरी रूकमिनि नियराई
इक टक सब नृप लखैं मनौ ठगमूरी खाई।।११७।।
इमि दुलहिनि चलि आई हरि लै रथ बैठासई
घनतैं बिछुरी बिजुरी मनु धन मैं फिरि आई।।११८।।
लै चले नागर नगधर नवल तिया कों ऐसे।
माँखिन–आँखिन–धूरि–पूरि मघुहा मधु जैसें।।११९।।
गरूड़ हरी जिमि सुधा दर्प सरपन कों सब हरि।
तैसे हरि लै चले आपुनो सहज खेल करि।।१२०।।
लसत साँवरे सुंदर–सँग सुंदरि आभासी।

जनु नव नीरद निकट चारू चंद्रिका प्रकासी।।१२१।।
हरी हरी दुलहिनिं यों कहि सब लोग पुकारे।
कित गये वे सब भूप जूप लारे बजमारे।।१२२।।
जरासिंध तै आदि नृपति सजि–सजि कैं दौरे।
महासिंह के पाछे कूकत कूकुर बौरे।।१२३।।
देखे रिपु दल भारे तब बलदेव सँभारे।
मद–गज ज्यौं सर पैठि कमल को दलिमलि डारे।।१२४।।
मरन सौ अधिक जु मान भंग मागध दुख पायौ।
जहँ दूलह–सिसुपाल तहाँ मन राखन आयौ।।१२५।।
कर–कंकन दुख दूनौं दुख करि रोय जु दीनौं।
चपल चखन कों काजर बहि मुख कारौ कीनौं।।१२६।।
तब निकस्यौ नृप रूक्मि, धरैं सिर कंचन कुलही।
रंचक तुम ठहराहु आनि दैहौं तुम दुलही।।१२७।।
इमि कहि रिस भरि धायौ हरि पैं आयौ ऐसे।
दुरबल अंग पतंग प्रबल पावक पर जैसे।।१२८।।
जो काऊ मति मंद चंद पैं धूरि उड़ावै।
उलटि दृगनि जब परै मूढ़ को तब सुधि आवै।।१२९।।
जितिक छोहु हरि–हियैं हुतो, तेतिक नहिं कीने।
मूँड मूँड़ि सत–चुटिया रखि पुनि छोरि जु दीने।।१३०।।
इहि बिधि सब नृप जीति हरी रूकमिनी लै आये।
विधिवत् कियौ विवाह, तिहुँपुर मंगल गाये।।१३१।।
जो यह मंगल 'गाय चित दै सुनै–सुनावै।
सो सब मंगल पावै हरि–रूकमिनि मन भावै।।१३२।।
हरि रूकमिनी मन भावे सो सबके मन भावे।
'नंददास' अपने प्रभु कौ नित मंगल गावै।।१३३।।

❒ नाममाला :

दोहा -	तन्नमामि पद परम गुरू, कृष्ण कमल–दल–नैन।
	जग–कारन करूनायतन, गोकुल जाको ऐन।।१
	उचरि सकत नहिं संस्कृत, जान्यो चाहत नाम।
	तिनहित 'नंद' सुमति जथा, रचत नाम के दाम।।२
	गँथति नाना नाम को, अमरकोष के भाय।
	मानवती के मान पर, मिले अर्थ सब आय।।३
	नाम रूप गुन भेद के, सोई प्रगट सब ठौर।
	वा बिन तत्व न और कछु, कहैसु अति बड़ बौर।।४
मान -	अहंकार, मद, दर्प, पुनि, गर्व स्मय, अभिमान।
	मान राधिका कुँवरि को, सब को करू कल्याण।।५
बुद्धि या प्रज्ञा -	बुद्धि, मनीषा, सौमुखी, मेधा, धिसना, धीय।
	मति सों मति करतै चली, भली विचच्छन तीय।।६
सरस्वती -	बानी, बाक, सरस्वती, गिरा शारदा नाम।
	चली मनावत भारती, बचन चातुरी काम।।७
शीघ्र -	आशु, झटिति, द्रुत तूर्ण, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल।
	तुरत चली चातुर अली, आतुर लखि नँदलाल।।८
मयूर -	नीलकंठ, केकी, बरहि, शिखी, शिखंडी होय।
	शिव–सुत–बाहन, अहिभषी, मोर, कलापी सोय।।६
	नटत मयूर अटान चढि, अतिहि भरे आनंद।
	निस दिन उनए रहत हैं, नव नीरद नँद–नंद।।१०
सिंह -	पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव, मृगराय।
	सिंह पौरि वृषभानु की, सहचरि पहुँची जाय।।११
सिद्धि -	अणिमा, महिमा, गरिमता, लछिमा, प्राप्ति, प्रकाम।
	बशीकरन अरू ईशिता, अण्ट सिद्धि के नाम।।
	एकहु सिद्धी बस करे, तेहि सिध कह संसार।
	ते वृषभानु भुआल के, द्वार बोहारनहार।।१३
नवनिधि -	महा पद्म अरू पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुंद।
	शंख, खर्व अरू नील ये, कपर कहावत नंद।।१४
	ये नवनिधि जे जगत में, बिरले काहू दीख।
	ते वृषभानु भुआल के, परत भिखारिन भीख।।१५
अमृत -	शोम, सुधा, पीयूष मधु, अगदराज, सुरभोग।
	अभी, अमृत जहँ हरि कथा, मत्त रहत सब लोग।।

मंगल -	कुज, अंगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महिबाल।
	मंगल से ठाढे उदित, धरे जु दीपक लाल।।१७
शुक्र -	उशना, भार्गव, काव्य, कवि, असुर–पुरोहित सोहि।
	गजमुक्तन को माल यह, शुक्र धरे जनु पोहि।।१८
लक्ष्मी -	श्री, मद्मा, मद्मालया, कमला, चपला होय।
	सिंधु–सुता, मा, इंदिरा, विष्णु–वल्लभा सोय।।१९
	जाकी नैन–कटाक्ष–छबि, रही सकल जग छाय।
	सो लक्ष्मी वृषभानु–गृह, आपुहि प्रगटी आय।।२०
माता -	अंबा, सावित्री, प्रसू, जननी, माता नाम।
	जननी राधा कुँवरि की, बैठी मंगल–धाम।।२१
नमस्कार -	बंदन, अभिवादन, प्रनति, नमस्कार करि ताहि।
	आगे अलि सकुचत चली, जहाँ कुँवरि–बर आहि।।२२
नेत्र -	लोचन, अंबक, चक्षु, दृग, ईछन रूप अधीन।
	कछु रिस राते नैन जनु, जावक भीजे मीन।।२३
अधर -	ननित, ओष्ठ पुनि रदन छद, अधर मधुर एहि भाय।
	नाम लिखत जाको तुरत, किलक ऊख होइ जाय।।२४
बृहस्पति -	धिषण, शिखंडी, आंगिरस, सुराचार्य, गुरू जीव।
	वाचत्पति जनु ससि तरे, बनी निबौरी ग्रीब।।२५
उरोज -	उरज, पयोधर, कुच कहिय, अस्तन उर छबि–ऐन।
	कंचन–संपुट देव जनु, पुजि छिपाए मैन।।२६
अंबर -	चोल, निचोल, दुकुल, पट, अंशुक, बासस, चीर।
	षियतन बास जु बसन में, छिन छिन होत अधीर।।२७
कीर -	रक्त–चंचु, शुक, कीर जब, पढ़न लगत पिय नाम।
	झुकि झहरावति मुसुकि तब, अति छबि पावति बाम।।२८
वीणा -	तंत्री वीणा, वल्लकी, बहुरि विपंची आहि।
	यंत्र बजावति सहचरी, बहुरो बरजति ताहि।।२९
पानी -	अंबु, कमल, कीकाल जल, पय, पुष्कर, बन, बारि।
	अमृत, अर्ण, जीवन, भुवन, घन रस अरू पापारि।।३०
बह्मा -	अज, कमलज, बिधि, जगपिता, धाता, सतधृत होइ।
	स्रष्टा, चतुरानन, धिषण, द्रुहिण, स्वयंभू सोइ।।३१
	लै लै सत सब छबिन की, जिती हुती जग माँझ।
	तोहि रची बिधिना निपुन, बहुर्यो ह्वै गयो बाँझ।।३२
गंगा -	विष्णुपदी, निर्जर नदी, निगम नदी, हरिरूप।
	ध्रुवनंदा, मंदाकिनी, भागीरथी अनूप।।३३
	सुरसरि ज्यों तिहुँ लोक में, पाप–हारि सुभ–कारि।
	तिमि तुव कीरति–सरित बिय, किय पुनीत नर–नारि।।३४

कमल -	पुंडरीक, पुष्कर, कमल, जलज, अब्ज, अंभोज।
	पंकज, सारस, तामरस, कुवलय, कंज, सरोज।।३५
	मकरंदी, अरविंद पुनि, पद्म, कुसेसय नाँऊँ।
	क्यों मुख–नलिन मलिन कछू, देखति हौं बलि जाऊँ।।३६
चंद्रमा -	इंदु, कलानिधि, सुधानिधि, जैवात्रिक, ससि, सोम।
	अब्ज अमीकर, छपाकर, बिधु, कहियत हिम रोम।।३७
	बिछुरि चंदते चंद्रिका, रहति न न्यारी होइ।
	इमि अवलोकति बाल कहुँ, कहि बलि कारन सोइ।।३८
काम -	मदन जु मन्मथ, मनोभव, अतनु, पंचसर, मार।
	मीनकेतु, कंदर्प पुनि, दर्पक बिरह बिहार।।३६
	पुष्प–चाप, मनसिज, बितनु, शंबरारि, स्मर, काम।
	पति सों रति जिमि मैंन रूठि, इमि दिखियति तोहि भाम।।४०
प्रिया -	द्वारा, दयिता, वल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ।
	पिय कें तोसी प्राणपति, और न देखि कोई।४१
मित्र -	सुहृद, दयत, वल्लभ, सखा, प्रीतम परम सुजान।
	सहकारी, सहकृत पियन, करै अकारन मान।।४२
वेद -	आम्राय, श्रुति, बह्म, पुनि, धर्म–मूल सब काम।
	निगम, अगम जाकौं कहत, सोईसुन्दर स्याम।।४३
शेष -	शेष, महाअहि, सर्पपति, धरनीधरन, अनंत।
	सहस–बदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अंत।।४४
धर्मराज -	वैवस्वत, मृतु, पितरपति, संजमनी–पति होइ।
	महिषध्वज, नरदंडधर, समवर्ती पुनि सोइ।।४५
	अंतक, काल, कृतांत, जम, जातें जग डरपंत।
	सो तौ पिय भ्रूभंग तें, भरभर अति काँपंत।।४६
कुबेर -	पुन्य जनेश्वर, वैश्रवन, धनद, अैलविल होइ।
	गुह्मकपति, त्र्यंबक–सखा, राजराज पुनि सोइ।।४७
	नर–वाहन, किंनर–अधिप, द्रव्याधीस कुबेर।
	हरि–पद–पंकज परस कों, पावत नाहिंन बेर।।४८
वरूण -	वरूण, प्रचेता, पांसुपति, जलपति, जलचर–ईस।
	सो मुनि तुवपिय पगनि पर, परयौधसत नित सीस।।४६
दुर्गा -	उमा, अपरना, ईश्वरी, गवरी, गिरिजा होइ।
	मृडा, चंड़िका, अंबिका,भवा, भवानी सोइ।।५०
	अर्प्या, मेनकजा, अजा, सर्व मंगला नाम।
	माया जहाँ अधीन जग, विस्तारित है भाम।।५१

गणेश - लंबोदर, हेरंब पुनि, द्वैमातुर, इकदंत।
मूषकवाहन, गज–बदन, गनपति, गिरिजा तंत।।५२
कोटि बिनायक जो लिखें, महि से कागर कोटि।
ता परि तेरे पीय के, गुन नहिं आवै टोटि।।५३

धूर्त - ब्याजी, जिह्म, कुटिल, कितव, छद्मी, कुहक छली जु।
कपटी कान्हर कुँवर की, केती, कहत भली जु।।५४

कुरंग - अेंण, हरिण, वातप, प्रषद, हरि, सारँग पुनि आहि।
करसायल मृग दृग लियें, बलि थोरौ इतराहि।।५५

महादेव - गंगाधर, हर, शूलधर, ससिधर, शंकर वाम।
शर्व, संभु, शिव, भीम, भव, भर्ग, काम–रिपु नाम।।
त्रिनयन, त्रिबंक, त्रिपुर–अरि, ईस, उमापति होइ।
जटी, पिनाकी, धूर्जटी, नीलकंठ, मृदु सोइ।।५७
वामदेव से देव बलि, जाकौ धरत धियान।
ताकों तू कपटी कहत, यह धौं कौंन सयान।।५८

सूर्य - देव, दिवाकर, विभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस।
मिहर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मंस।।५६
रवि–मंडल मंडन जु को, कहत जु मुनि–जन जाहि।
सो यह नागर नंद कौ, क्यों बलि कपटी आहि।।६०

चंदन - गंध–सार, श्री खंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर।
चंदन कौं ईधन करति, मलया–वासी भीर।।६१

बलभद्र - रौहिणेय, बलभद्र, बल, संकर्षण, बलिराम।
नीलाबंर, रेवतिरमण, मुसली, पालक काम।।६२
अब रंचक क्यों चुप करै, कितै बैठ जिउ लेत।
हरि हलधर के बीर कौं, कितक बड़ाई देत।।६३

पृथ्वी - पृथ्वी, छिति, छौनी, छिमा, धरनी, धात्री गाइ।
उर्वी, जगती, बसुमती, वसुधा सर्व सहाइ।।६४
अचला, बिपुला, सागरा, धरा, लोर्वरा होइ।
गोत्रा, अवनी, कुंभिनी, मही, मेदनी, सोइ।।६५

मूर्ख - मुग्ध, मंद, जड़, मूक, नड़, अज्ञ, कटुक–वद संठ।
मूरख नर जाने कहा, मनि जैसे कपि, कंठ।।६६

विष - गरल, हलाहल, गर, अमृत, कालकूट रस, मार।
रस में विष जिन धोरि, चलि अब करि न अबार।।६७।।

नदी - सरिता, धुनी, तरंगिणी, तटिनी, ह्वदिनी होई
श्रोता, श्रवती, निम्नगां, पगा, द्विरेफा सोई।
शेवालनि, श्रोतस्वनी, द्वीपंती, जलमाल।
आपगान को बाट में, सोच कहा है बाल।।६८

मदिरा -	मधु, माध्वी, मदिरा, इरा, सुरा, वारूणी होय। आसव, मय, कादंबरीं, मधुबारा मैरेय।।६६
पवन -	श्वसन, सदागति, मरूत, अरू, मारूत जगत परान। अनिल, प्रभंजन, गंधबह, विवस्वान, पवमान।। तुब तन परिमल परसि जब, गवनत धीर समीर। ताकौ बहु सनमान करि, परिरंभत बलबीर।।७०
आम्र -	पिक वल्लभ, कामांग पुनि, मदरासरव, सहकारि। यह रसाल की माल बलि, नै जु रही फल भार।।७१
कदली -	रंभा, मोचा, गजवसा भानु–फला सुकुँवार। ए कदली जिनमें कछू, तुव उरू उनहार।।७२
बिल्व -	सुरभि, शिलूषी, सदाफल, ताल, बिल्व मालूर। ए श्रीफल तुव कुचन सम, कहत बहुत कवि कूर।।७३
तमाल -	कालकंध, तापिच्छ पुनि तिंडुक सहज तमाल। बैठे हैं जहँ काल्हि बलि तुअ अरू मोहनलाल।।७४
कदंब -	तूल, नीप, प्रिय–अंग सो, मदिरा–गंध, सुवाह। यह कदंब बलि कान्ह जिहि, चढ़ि कूदे दह माँह।।७५
किंसुक -	बात, पोथ पुनि ब्रह्मद्रुम, किंसुक, पर्ण, पलास। टेसू बिरही जननि कों, नाहर नहन बिलास।।७६
नारियल -	वानर मुख, लांगूर पुनि नारिकेलि, शुभ काम। अहो नारि वर नारियर, तोहिं करत परनाम।।७७
सुपारी -	घोटा, क्रमुक, गुवाक पुनि पूँग सुपारी आहि। वारी वारी कहत बलि रंचक इन तन चाहि।।७८
मिर्च -	तिक्ता, उष्णा, कोलिका, कृष्णफला पुनि नाऊँ। मिरच लता पाँ परि कहति, भली करि बलि जाऊँ।।७६
बट -	जटी, कपर्दी, रक्तफल, बहुपद, ध्रुव, निग्रोध। यह वंशीवट देखि बलि सब सुख निरवधि रोध।।८०
सरोवर -	ह्रद, पुष्कर, कासार, सर सरसी, ताल, तड़ाग। यह देखौ बलि मानसर, फूल्यौ तुव अनुराग।।८१
कालिंदी -	जम अनुजा, रविजा, जमी, कृस्ना, स्यामल–आप। यह जमुना सब समुद फिरि आवति तुव परताप।।८२
तरंग -	भंग तरंग, कलोल पुनि, बीची उर्मि सुभाई लहरी हाथ पसारि जनु जमुना पकरति पाई।।८३
कोकिला -	परभृत, कलरव, रक्तद्दग, पिक ध्वनि तहँ रस पुंज। जनु पिय–आरति निरखि तुहिं टेरति बलि एहि कुंज।।८४

माला - माला, भ्रक्र स्त्रज गुनवती, यह जु नाम की दाम।
जो नर कंठ कहैं सुनैं जानै श्री घनश्याम।।८५

जुगल - जमल, जुगल, जुग द्वंद्व द्वै उभय, मिथुन, बिबि, बीय।
जुगल–किशोर सदा बसौ, 'नंददास' के हीय।।८६
बिन जाने घनश्याम के आवागमन न जाइ।
तातें हरि, गुरू, वैष्णवन, भज निसि दिन चित लाइ।।८७

❒ रूप-मंजरी :

दोहा - प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूपऊ पावन रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि।। (१)

चौपाई - परम प्रेम पद्धति इक आहि। नंद जथामति बरनत ताहि।।
जाके सुनत गुनत मन सरसै। सरस होय रस बस्तु हि परसै।।
रस परसे बिनु तत्व न जानै। अलि बिनु कँवलहिं को पहिचानै।।
पुनि प्रनऊँ परमातम जोई घट घट विघट पूरि रह्यो सोई।
ज्यों जल भरि बहु भाजन माही। इंदु एक सबहीं मैं छाँहीं।।
इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे। जैसिय वस्तु प्रकासक तैसे।।
जो कुछ मान सरसि की झाँई सो न छुद्र छीलर छबि पाई।
तरनि--किरन सब पाहन परसै। फटिक माँझ निज तेजहिं दरसै।।
स्वाति बूँद अहि मुख विष होइ। कदली--दल कपूर होइ सोइ।।
जुबन रूप सँग सोभा पावै। सोइ कुरूप ढिग बदन दुरावै।।
एकै पट अनेक रँग गहै। सुरँग रंग सँग अति छबि लहै।।
पुनि जस पवन एक रस आही। वस्तु कै मिलत भेद भयो ताही।।
रबि–कर परसि अगिनि जिहि होइ। सोइ दर्पन जग बिररौ कोई।

दोहा - जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सँग होइ।
काच करकचन बिचि खचे, भलौ कहै नहिं कोइ।।

चौपाई - पैबे कों प्रभु के पंकज–पग। कबिन अनेक प्रकार कहे मग।।
तिन मैं इह इक सूखिम रहे। हौं तिहि बलि जो इहि चलि चहै।।
जग में नाद अमृत मग जैसौ। रूप अमीकर मारग तैसौ।।
गरल अमृत इकंगकरि राखै। भिन्न भिन्न कै बिररै चाखै।।
छीर नीर निरवारि पिवै जौ। इहि मग प्रभु पदई पावै सो।।
दृष्टि अगोचर कमल जु होई बास खोज परि पैये सोई।

दोहा - इंदुमती मतिमंद पैं, अवर नहिंन निबहंति।
नागर नगधर कुँवर–पग, इहि मग छूट्यौ चहंति।।

चौपाई - रसमय सरसुति कै पग लागौं। अस अक्षर द्यो इहिबर माँगौं।।
सुंदर कोमल बचन अनूठे। कहत सुनत समुझत अति मीठे।।
नाहिंन उधरे गूढ़ न ऐसे। मरहठ देस–बधू–कुच जैसे।।
पुनि कबि अपनै मन मैं गुनै। मो कबित कोउ निरस न सुनै।।
रस विहीन जे अच्छर सुनहीं। ते अच्छर फिरि निज सिर धुनहीं।।
बाला–स्मित कटाच्छ अरू लाजा। अँधरे बालम कै किहि काजा।।
ज्यों तिय सुरत समय सितकारा। निफल जाहिं जौ बधिर भतारा।।
कवि–अच्छर अरू तरूनि–कटाछै। ए दोहु सुलग लगै हिय आछै।।
जो हिय अच्छर–रस नहिं भिदै। सो हिय अर्जुन–बानन छिदै।।
कबि तौ तेइ पाहन सम मानै। नहिंन पखान पखान बखानै।।
इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं। प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौ।।
तुव जस रस जिहि कवि न होइ। भीति–चित्र सम चित्र है सोई।

दोहा - हरि जस रस जिहि कबित नहिं, सुनैकवन फल ताहि।
सठ कठपूतरि संग धुरि, सोए कौ सुख आहि।।

चौपाई - अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कछु मो उर–अंतर आही।।
धर पर इक निर्भयपुर रहै। ताकी छबि कवि का कहि कहे।।
नए धौरहर सुखद सुपासा। जनुधर पर दूसर कैलासा।।
ऊँचे अटा घटा बतराहीं। तिन परि केकी केलि कराहीं।।
नाचत सुभग सिखंड डुलत यौं। गिरधर पिय की मुकट–लटक ज्यौं।।

दोहा - गुडी उडी छबि देत अति, अस कछु बनि रह्यौ बान।
देखन आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि बिमल बिमान।।

चौपाई - आसपास अमराय बरारी। जहँलग फूल तिती फुलवारी।।
चुनहि फूल मालिनि छबि भरी। अवनी उतरि परी जनु परी।।
बोलहिं सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक–पोत कपोती।।
मीठी धुनि सुनि अस मन आवै। मैन मनौं चटसार पढ़ावै।।
फलन कै भार नमित द्रुम ऐसे। संपति पाय बड़े जन जैसे।।
का कहिये कासार निकाई सारस हंस बंस छबि छाई।
निर्मल जल जनु मुनि–मन आही। परसत छन तन–पातक जाही।।
फूल फूलि रहे जलज सुदेसे। इंदीबर, राजीव कुसेसे।।
पानी पर पराग परि ऐसी। बीर फुटक भरी आरसि जैसी।।
पदमिनि कहुँ जब पौन डुलावै। तब लंपट अलि बैठि न पावै।।
जनु ननुकारति मानिनि तिया। आन जुवति रत जान्यौ पिया।।

दोहा - रूपमंजरी छबि कहन, इंदुमती मति कौन।
ज्यों निर्मल निसिनाथ कौं, हाथ पसारै बौन।।

चौपाई - सखि अस अद्भुत रूप निहारै। मोसति मन कोसति करतारै।।
कहत कि कछु इक करऊँ उपाई जो इह रूप अफल नहिं जाई।
रसनि मैं जो उसपति रस आही। रस की अवधि कहत कबि ताही।।
सो रस जौ या कुँवरिहि होई तौ हौं निरिखि जिऊँ सुख सोई।
ऐं परि जौ या लाइक पैये। तो नाइक दिखि आनि मिलैये।।
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै। दइ अस नाइक कोऊ कहै।।
जहँ जहँ नरबर सुरबर सुने। देखि फिरी अरू मन मन गुने।।
देखत के सब उज्जल गोरे। हार काम नहिं आवत वोरे।।

दोहा - ताकै रूप अनूप रस बौरी हौं मेरी आलि।
आज तनक सुधि परन दै सबै कहौंगी कालि।।

चौपाई - सुनतहि मुरझि परी सहचरी। आनँद भरी अचंमै भरी।।
बड़ी बेर जागी अनुरागी। मनहीं माँझ कहन यौं लागी।।
कहँ हौं कुटिल कुचील कुहिय की। कहँ इह दया साँवरे पिय की।।
अनेक जनम जोगी तप करै। मरि पचि चपल चित्त कहूँ धरै।।
सो चितुलै उहि वोर चलावै। तौ वह नाथ हाथ नहिं आवै।।
अब गोपिन कौं सो हितु होई तब कहुँ जाय पाइये सोई।
कवन पुन्य या तिय कै माई नंद–सुवन पिय सौं मिलि आई।
निरवधि रमारमन बिश्रामा। तातैं बसी लसी इह बामा।।

दोहा - प्रेम एक इक चिंत सौं, एकहि संग समाय।
गंधी कौ सौंधौ नहीं, जन जन हाथ बिकाय।।

चौपाई - कुँवरि कहै कछु साँच है अली। किधौं सपन की सपनहि मिली।।
सखी कहै बलि बरखा बीतै। तब हौं लाय मिलाऊँ मीतै।।
अब निसि दिन घन बरस्यो करै। ऊँच नीच कछु सुधि नहिं परै।।
बाट घाट तृन छादित ऐसे। बिनु अभ्यास बलि विद्या जैसे।।
अरू बलि जाऊँ कहै सब कोई धीरै धीरै सब कुछ होई।
कवन भाँति धनि धीरज धरै। अँवा अगिनि जिमि अंतर जरै।।
सब निसि प्रान निहोरत बीते। का कहिये दुख या दुखही ते।।
राजकुँवरि जब अति दुख पावै। सहचरि लै तब बीन बजावै।।
पानी होय तौ जाय बुझाई घी सींची किन आगि सिराई
षिय मूरति जु आनि उरी अरै। कामिनि कलमल कलमल करै।।

दोहा सूधौ जौ कछु उर गड़े, सो न कढ़ै दुख होय।
ललित त्रिभंगी जिहि गडै, सो दुख जानै सोय।।

चौपाई - जबई सरद उवामी जानी। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी।।
सखी कहै मैं पठये चारा। आजि काल्हि ऐ है समचारा।।
कुँवरि कहै सुकवन दिसि अहै। जहँ वह साँवर पीतम रहै।।
जो दिसि हाथ कै सखिन बताई सो दिसि जीवनि भूरि सी पाई।
पंकज पत्तनि पंख बनावै। उड़न लगै सो क्यों उड़ि आवै।।
मन सौं कहै कुटिल् तू आहीं। अकिलौई उठि पिय पै जाही।।
रंचक नैनन हू संग लैरे। मोहन–मुख दिखि आबन दै रे।।
साँवरे पियहिं सुमिरि बर बाला। भरइ उसास दुसास बिहाला।।
ते ऊसास अगिनि की उषी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।।
अंजन बिनु दिखि नैन सुहाये। खंजन दुरे कहूँ तें आये।।
निरखि कुँवरि कौ बदन उदासा। इंदु मुदित है उदित अकासा।।

दोहा - नेह नबोढ़ा नारि कौं बारि–बारूका न्याय।
थलराये पै पाइये नीपीड़े न रसाय।।

चौपाई - बोलि बोलि मादक मधुबानी। कुँवरि निहोरि कुंज मैं आनी।।
का कहिये तिहि कुंज निकाई जनु सुख पुंजन की करि छाई।
तामैं सेज सुपेसल ऐसी। आल बाल रति–बेली जैसी।।
कछु छल कछु बल कछु मनुहारी। लै बैठे तहँ लाल बिहारी।।
मन चह रम्यो चहै तन भग्यो। कामिनि के इक कौतुक लग्यो।।
जो पारद कहुँकर थिर करै। सो नवोढ़ बाला उर धरै।।
पुहपनिही के दीपग जहाँ। जगमग जोति लगी रही तहाँ।।
प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया।।
दीप न बुझहि बिहँसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला।।
भोजन भूख मिलत मैं लहै। ऐ परि इन सरि परत न कहै।।
प्रेम पुलक अंतर तिहिकाला। सो अंतर सहि सकति न बाला।।
चित बिबधान सहति नहिं सोई रूप मंजरी अस रस भोई।

दोहा - कथनी नाहिंन पाइये, पाइये करनी सोय।
बातन दीपग नां बरै, बारे दीपग होय।।

❑ रस मंजरी :

दोहा - नमो नमो आनंद घन, सुंदर नंद–कुमार।
रस–मय, रस कारन, रसिक, जगजाके आधार।।

चौपाई - है जो कछु रस इहि संसार। ताकहूँ प्रभु तुम ही आधार।।
ज्यों अनेक सरिता जल बहै। आनि सवै सागर मैं रहै।।

जग मैं कोउ–कबि बरनौ काही। सो जसु–रस सब तुम्हरो आही।।
ज्यौं जलधर तैं जलधर जल लै। बरषै हरषि आपनैं कलै।।
अगनि तें अनगन दीपक बरैं। बहुरि आनि सब तिन मैं ररै।।
ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तैं है तुम ही करि सोहै।।

दोहा - रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सौ सब गिरधर देव कौं, निधरक बरनौं ताहि।।

चौपाई - एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइका–भेद नहिं सुन्यो।।
अरू जु भेद नाइक के गुनें। ते हू मैं नीकें नहिं सुनें।।
हाव भाव हेलादिक जिते। रति समेत समझावहु तिते।।
जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम न तत्त्व पिछानैं।।
जाको जहँ अधिकार न होई निकटहि बस्तु दूरि है सोई।
मीन कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै।।
निकटहि निरमोलिक नग जैसैं। नैन हीन तिहि पावै कैसैं।।
तासौ 'नंद' तब ऊतर। मूरख जन मन मोहित दूतर।।
बात अवर कछु अवरहि बूझै। अलप ग्यान गुनि अनमन दूझै।।
अब सुनिलै मूरख मन कैसौ। बरनि सुनाऊँ तो कहुँ तैसौ।।
महा नक्र–मुख जो मनि होई ताही कर करि काढ़ै कोई।
कुपित भुजंगम सिर पग धरै। हाथनि पाथ–रासि पुनि तरै।।
तेल लहै करि धूरि की धानी। मृगतृष्णातैं पीवै पानी।।
खोजि ससा के श्रंगनि पावै। पै मूरख मन हाथ न आवै।।
तू तौ सुनि लै रस मंजरी। नरव सिख परम प्रेम रस भरी।।

दोहा - रस मंजरी अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार।
बरनत बनिता–भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार।।

चौपाई - जग मैं जुबती त्रय परकार। करि करता निज रस–बिस्तार।।
प्रथम स्वकीया पुनि परकीया। इक सामानि बरवानी तिया।।
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार।।
मुग्धा हूँ पुनि द्वै बिधिगनी। ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी।।
प्रथमहि मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि विश्रब्द्धं नऊढ़ा सोय।।

मुग्धा नवोढ़ा- जिहि तव नव जोबन अंकुरै। लाज अधिक तन मन संकुरै।।
अलि आधीन होय रति जाकैं। भूषन रूचि तैसी नहि ताकैं।।
प्रीतम जब कर–पंकज धरै। बल करि सेज निवेसित करै।।
क्रोड़ी करि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय वह गवन्यो चहै।।
तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाय जस बैसँधि समै।।
जो पारिदि कहूँ कर थिर करै। सो नऊढ़ बाला उर धरै।।

विश्रब्ध-नवोढ़ा- अँग अँग जोबन जोति संचार। कंचन ढ़री मनोनग जरी।।
उपजी कछुक दृगनि आतुरी। लज्जित जहँ खंजन चातुरी।।
तन लावन्य झलक परि ऐसी। मुक्ताफल नव पानिप जैसी।।
पिय सँग सोवति अतिछबि लहै। कर करि कलित कुचस्थल गहै।।
नीबी बंधन दृढ़ कैं धरै। ऊरू जमल बाँधि इक करै।।
अध मुंदित नैनन छबि पावै। मृग छौनहिं मनौ औंघ सी आवै।।
कोमल कोप कबहुँ जो गहै। कूप छाँह जिमि हिय ही रहै।।
इहि परकार परखिये जोई है बिश्रब्द्ध नवोढ़ा सोई।

दोहा - गाढ़ालिंगन पीय सौं, दै न सकै तिय सोय।
नव अनंग अंकुर हिये, डरति भंग जिमि होय।।

आज्ञात यौवन- सखि जब सरस्स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माँहीं।
पौछें डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल की डारा।।
दीरघ नैन चलति जब क्रोनें। सरद कमल-दल हूँ तैं लौनें।।
तिनहिं श्रवन बिच प्रकट्यो चहै। अंबुज-दल से लागे कहै।।
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञात जौबना कहिये।।

ज्ञान यौवना- सहचरि के उरजन-तन चहै। अपनै चहै मुसकि छबि लहै।।
सखी कहै बलि तुव कुच नये। इकठे उभय संभु से भये।।
सो सुकृती वह निज नरव धरिहै। इन कहुँ चंद्र चूड जो करिहै।।
मुसकि सखी कौं मारै जोई ज्ञात जोबना कहिये सोई।

माध्या - लज्जा मदन समान सुहाई दिन-दिन प्रेम चोप अध्किाई।
पिय सँग सोवत सोय न जाई मनमन सौचे इमि सुखदाई
सोयें प्रीतम सोहन मुखकी। हानि होय अवलोकनि सुखकी।।
सोई न सकै न जागन कहै। अति मध्या सु नवोढ़ा अहै।।

प्रौढ़ा - पूरन जोबन है गहगोरी। अधिक अनंग लाज तिही थोरी।।
केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद गज जिमि चहै।।
दीरघ रैनि अधिक कै भावै। भोर कौं नाम सुनत दुख पावै।।
अति प्रगल्भ वैनी रस रैंनी। सो प्रौढा प्रीतम सुख दैनी।।

अन्य भेद - तहँ केई धीरा केई अधीरा। केई धीरा धीरा रस भीरा।।
मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन। प्रगट नहीं पै लखैं बिच्छिन।।
ज्यों सुंदर तरू अंकुर माँहीं। दल फल फूल डार सब ताहीं।।
मध्या मै ते प्रगट जनावैं। पल्लव कली फूल होय आवै।।

मध्या धीरा - सापराध पिय कौं जब लहै। बिंगि कोप के बचननि कहै।।
जगत निकुन्ज-पुंज मैं मोहन। तुम अति श्रमित भये पिय सोहन।।
बैठहु बलि काहे कौ रवीजौ। नलिनी दल बिजना करि बीजौ।।
रंचक भौंह करेरी लहिये। सो तिय मध्या धीरा कहिये।।

मध्या अधीरा - जागे तुम निसि प्रानपियारे। अरून भये ये नैन हमारे।।
अधर सुधा सब पिय तुम पियो। घूमत है इह हमरो हियो।।
प्रखर नखन सर लगे तिहारे। पीर होत पिय हिये हमारे।।
बन मैं श्रीफल बनि गये तुमकौं। काम क्रूर मारत है हमकौं।।
बचन अबिंबि कहे रिस भोय। है अधीर मध्या तिय सोय।।

मध्याधीरा धीरा प्रीतम कौं जब सागस लहै। व्यंगि अब्यंगि बचन कछु कहै।।
अहो अहो मोहन सोहन पिया। नव अनुराग चुचात है हिया।।
चतुर सिरोमनि नंद के लाला नव जोबन गुन रूप रसाला।।
यौं कहि दृग भरि आवै जोय। धीरा धीरा मध्या सोय।।

प्रौढ़ा धीरा - सागस जानि साँवरे पिया। गूढ़ मान करि बैठी तिया।।
प्रीतम तासों विनय जु करैं। बार बार कर–अंबुज धरैं।।
बोलति क्यों न सुधा सी धारा। डोलती क्यों न रूपसी डारा।।
केतकि कुस मग रभस प्रगोरी। सेज मान लाजसि क्यों भोरी।।
भृकुटि भ्रमर जिमि भ्रमनिजु लहिये। सो तिय प्रौढ़ा धीरा कहिये।।

प्रौढ़ा अधीरा - पिय उर मुकुर समान सुहाय। तामै निरखि आपनी झाँय।।
अन तिय की जिय संका मानै। रंचक पिय सों रूठन ठानै।।
पुनि अवधारै को पुनि हारै। हँसि हँसिता प्रतिबिंबहि मारै।।
इहि परकार परखिये जोई है अधीर प्रौढ़ा तिय सौई।

प्रौढ़ाधीरा धीरा-सागस जानि रसीले लाला। कोमल मान गहे बर बाला।।
प्रेम भरे सुनि बचन पिया के हँसहि कपोल सलोल तिया के।।
राते दृग रिस रस सों भोये। मानहूँ मीन महावर धोये।।
कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये। प्रौढ़ा धीरा धीरा कहिये।।

सुरति गोपना- सखि सौ कह सखि उहि गृह अंतर। अब ते हौं सोऊँन सुतंतर।।
सासु लरौ भैयो किन लरौ। भैया जो भावै सौ करौ।।
आँषु धरन हित दुष्ट मंजारी। सो मरि उचरि परी दइ मारी।।
दै गई तीखन नख दुखदाई कासौं कहौं दरद सो माई।
इहि छल छतनि छिपावै जोई परकिय सुरत गोपना सोई।

परकीया वाग्विदग्धा- अहो पथिक अति बरसत धामा। रंचक कहूँ करौ बिश्रामा।।
इहँ तें निकट कलिंदी तीर। सीतल मंद सुगंध समीर।।
गहबर तरू तमाल है तहाँ। प्रफुलित बल्लि माल्लिका जहाँ।।
छिनक छाँह लीजै रस पीजै। बहुरयो उठि मारग मन दीजै।।
पियहिं सुनाय पथिक सों कहै। वाग विदग्धापरकिय सु है।।

लक्षिता परकीया-लच्छन चिहनन जो लछि पाई बुधि बल छलन छिपाई जाई।
सतर भौंह गुरजन की सहै। जो पूछै तासौं इमि कहै।।
जो कछु भई सुभई गति भली। हौंनी अहि सु है है अली।।

अरूजु होति है होहु सु सिर पर। पेट पातरै नहिंन बचै सर।।
निधरक भई कहति इम लहिये सो परकिया लच्छिता कहिये।।
नायिका भेद– प्रोषित पतिका अरू खंडिता। कलहंतरिता, उत्कंठिता।।
अवर विप्रलब्धा नाइका। वासक सज्जा, अभिसारिका।।
पुनि स्वाधीन–वल्लभा गुनी। नवमी प्रीतम–गवनी सुनी।।
प्रोषितपतिका– जाको पति देसांतर रहै। अति संताप बिरह–जुर सहै।।
दुर्बल तन मन ब्याकुल होई। प्रोषित पतिका कहिये सोई।।
मुग्धा प्रोषितपतिका– मुग्धा बिरह बिथाहिय सहै। सखि जन हूँ सो नाहिन कहै।।
सीतल सेज सँवारि बिछावै। सोय न सकै लाज जिय आवै।।
गद्‌गद कंठ रहै अकुलानी। नैनन माँह न आनै पानी।।
जामिनी सँग मनसिज दुख पावै। सो मुग्धा प्रोषिता कहावै।।
मध्या प्रोषित पतिका– मध्या पिय जब बिरह जुर दहै। इहि परकार सखी सों कहै।।
सखि हो वहै वहै कर बलै। ऐपरि करकरिये नहिं चलै।।
बसन तेई कटि किंकिनि सोई छिन छिन आधि अधिक क्यों होई।
कबन समय आयो इह सजनी इंदु अनल बरषै सब रजनी।।
इहि परकार कहति जो लहिये। मध्या प्रोषित पतिका कहिये।।
प्रौढा प्रोषित पतिका– पिय परदेस धीर नहिं धरै। पीर भीर कछु सुधिनहि परै।।
तरून अनंग तरून दुख बढ्‌यो। अँग अँग महा गरल जिमि चड़्यौ।।
बिरह लहरि जब उठि मुरझावै। बाहु की बलय ढरकि कर आवै।।
जनु इह बलय नाड़िका लहै। जिति है किधौं मरि गई अहै।।
परकीया प्रोषित पतिका–प्रानपियारे पियहिं न पैखे। सो तिय सब जग सूनौ देखै।।
आनकी ढिग उसास नहिं लेई। मूँदै मुख तिहि ऊतरू देई।।
तपत उसासन जो कोउ लहै। परकिय बिरहिनि कातव कहै।।
सखि जौ कमल फूल पकरावै। हाथ न छूवै निकट धरावै।।
अपने कर जु बिरह–जुर तातें। मति जरि जाँहि डरति तिय यातें।
अँवा अगनि जिमि अंतर दहिए। सो परकीया प्रोषित कहिए।।
\+ + + + + +
दोहा – रस हूँ लगि कल कंत सौं, कलह न कीजै काउ।
का नहिं जो उनौ करै, सो सोनौ जरि जाउ।।
उत्कांठिता – उहि संकेत पीव नहिं आवै। चिंता करि तिय अति दुख पावै।।
आरति कंपसँताप जुड़ाई तनु तोरति अरू लेत जँभाई।
भरि भरि नैन अवस्था कहै। उत्कंठिता नायिका सुहै।।
मुग्धा उत्कंठिता– प्रान पियारे जु न आये। हूँ जानौ किन ही बिरमाये।।
लाज तें सखि कौ नाहिन बूझै चिंता करि मन ही मन मूझै।।
चकित भई घर आँगन फिरै। कौंने जाय उसासनि भरै।।

दुख ते मुख पियरो परि आवै। मुगधा उत्कंठिता कहावै।।
मध्या उत्कंठिता– करि विचार मन ही मन भई क्यों नहीं आये प्रीतम दई।
के इह सखि गई नहिं लैना। कै कछु डरपे पंकज–नैना।।
भरि आवै जब लोचन पानी। घूम परयो तब कहै सयानी।।
सोचति इमि जल मोचत लहिये। मध्या उत्कंठिता सु कहिये।।
प्रौढ़ा उत्कंठिता– प्रीतम अन आये जब लहै। ठाढी कुंज–सदन मैं कहै।।
अहो निकुंज, भ्रात इत सुनिधौं। हे सखि जूथि–बहन मन गुनिधौं।।
हे निसिमात, तात अँधियारे। पूछति हौं। तुम हितू हमारे।।
हो तमाल, हो बंधु रसाला। क्यों नहिं आये मोहन लाला।।
ऐसे बिलपति प्रलपति लहिये। प्रौढ़ा उत्कंठिता सो कहिये।।
परकीया उत्कंठिता–जिहि मनमोहन पिय–हित भाई अकिली बन धन बसि न डराई।
कवन कवन तप मैं नहिं कियो। बादिर बारि अन्है बोलियो।।
मनसिज देव सेव दृढ़ कीनी। लाज तहाँ मैं दक्षिना दीनी।।
सुपिय आज दृग अतिथि न भये। भोरे किनहू भोरे लये।।
यौधन मैं मन मैं दुख पावै परकिये उत्कंठिता कहावै।।
विप्रलब्धा नायिका– पिय संकेत आप दुख पावै। तहँ प्रीतम कहुँ नाहिन पावै।।
साँस भरे लोचन जल भरे। प्रिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै।।
मन बैराग धरै दुख पावै, जुवति बिप्रलब्धा सु कहावै।।
मुग्धा विप्रलब्धा– कपट सौंह करि करि सखि जाकौं। लै आवहि निकुंज मँह ताकौं।।
तहँ प्रीतम कौ नाहिंन पावै। छुभति होय छबि नहिं कहि आवै।।
सतर भौंह मौरनि झहरावै। मुग्धा बिप्रलब्ध सु कहावै।।
मध्या विप्रलब्धा– पिय संकेत आयबर बाला। पावै पियहिन रूप रसाला।।

अध मूँदित नैंनन चकि रहै, आधी बात बदन छबि चहै।।
आधी बीरी दसनन धरै। ठाढी गूढ़ उसासन भरै।।
कछु इक मन बैरागहि पावै। मध्या विप्रलब्धा सु कहावे।।
प्रौढा बिप्रलब्धा– कुंज सदन सूनौं जब देखै। सखि जनहू कौ संग न देखै।।
कुटिली कामदेव तें डरे। कामदेव सौं विन्ती करै।।
भो संभो सूलिन सिव संकर। हर हिमकर धर उग्र भयंकर।।
मदन–मथन मृड अंतर जामी। त्राता होहु जगत क़े स्वामी।।
भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै। प्रौढ़ा बिप्रलब्धा सु कहावै।।
परकीया विप्रलब्धा– धीरज अहि कै सिर पग धरै। लज्जा तरल तरंगिनि तरै।।
तिमिर–महागज हाथनि ठेलै। पति–डर–नाहर पाइन पेलै।।
इहि बिधि कुंज–सदन चलि आवै। तहँ मनमोहन पियहि न पावै।।
लता कर धरै चिंता करै। साँस भरै लोचन जल भरै।।

इहि परकार परषिये तिया। सु है बिप्रलब्धा परकिया।।

दोहा - अंजन मंजन पट पहिरि गरब करौ जिनि कोय।
अवरै प्रेम सुलच्छिनौ जिहि प्रीतम बस होय।।

प्रीतमगमनी - जाको प्रीतम गवन्यो चहै। भीत भई कछु बैनहि कहै।।
गवन बिघन कहुँ मन मन सोचै। लोचन हो जल नाहिंन मोचै।।
चित ही चित चिंता परि लहिए। सो तिय प्रीतमगमनी कहिए।।

मुग्धा प्रीतमगमनी- गवन बात पिय की जब सुनै। सुनतहि मन मैं धुन ज्यौं धुनै।।
ताकी सखी गुपत भई डोलै। कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै।।
रूप लता सी मुरझत लहिए। मुग्धा प्रीतमगमनी कहिए।।

मध्या प्रीतमगमनी- पिय कहुँ चलत जानि बर बाला। बोलैं नहिं कछु रूप रसाला।।
भरई न दीरघ स्वाँस सयानी। नैनन माँझ न आनै पानी।।
धरि रहै हाथ माथ कै धोरै। मनहुँ आप अक्षर टकटोरै।।
इहि परकार परखिये जोई मध्या प्रीतमगमनी सोई।

प्रौढ़ा प्रीतमगमनी–हो श्रीपति पति पूछति तोहि। सत्य कहो संदेहै मोहि।।
तन त्यागे हूँ जुवति न कहिया। इह बियोग जारत किन हिया।।
अरूए कुसुमित बोरे पटीर। देत जु बंधु मरे कहुँ नीर।।
जो परलोक हु गरल समान। क्यौं है देत बंधु अज्ञान।।
ऐसै कहिकै चुपकै रहै। प्रौढ़ा प्रीतमगमनी सु है।।

परकीया प्रीतमगमनी-प्रानपिया कहुँ गवन जु लहै। रहसि पाय पिय सौ इमि कहै।।
तुम हित कौन दुकृत नहिं किए। पन्नग–फन परि मैं पग दिये।।
पति द्विज देव सेव सब तजी। नीति तजी कुल लाज न लजी।।
तिनके फल ते नरक बताये। ते सब मोकहुँ जीवत आये।।
तपन जाचना आई तन कौं। कुंभीपाक पराभव मन कौं।।
महाघोर रौरव जु बतायो। क्रोध रूप ह्वै नैनन आयो।।
जुगत आहि पिय गवनत तोहि। क्यों होय ऐसी गति मोहि।।
इह परकार कहत् तिय जोई परकिय प्रीतमगमनी सोई।

❑ विरह मंजरी :

दोहा - परम प्रेम उच्छलन इक, बढयौ जु तन मन मैन।
ब्रजबाला बिरहिनि भई, कहति चंद सौं बैन।।
अहो, चंद रस कंद हो, जात आहि उहि देस।
द्वारावति नँदनंद सौं, कहियो बलि संदेश।।

चौपाई - चले चले तुम जैयौ जहाँ। बैठे होंहि साँवरे तहाँ।।
निधरक कहियो जिय जिनि डरौ। हो हरि अब ब्रज आवन करौ।।

तुम बिनु दुखित भई ब्रजबाला। नागर नगधर नंद के लाला।।
प्रसन भये किधौं सुंदर स्यामा। सदा बसौ वृंदावन धामा।।
याकै बिरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद, सो कारन कहा।।
नंद समोद्यत ताकौ चित्त। ब्रज कौ बिरह समुझि लै मित्त।।
ब्रज मैं बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो जानन हारा।।
प्रथम प्रतच्छ बिरह तू गुनिलै। तातैं पुनि पलकांतर सुनिलै।।
तिसरौ बिरह बनांतर भए। चतुरथ देसांतर कै गए।।
प्रतछि बिरह के सुनि अब लच्छिन। चकित होत तहँ बड़े बिचच्छिन।।

प्रत्यक्ष-विरह वर्णन-

ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा। बिहरति पिय सँग रूप अगाधा।।
पौढ़ी पीतम अंक सुहाई कछु इक प्रेम लहरि सी आई।
संभ्रम भई कहत रस बलिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता।।

दोहा - भूत छिये, मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय।
प्रेम–सुधा–रस जो पिए, तिहि सुधि रहै न कोय।।१०।।

पलकांतर विरह- सुनि पलकांतर बिरह की बातैं, परम प्रेम पहिचानत तातैं।।
सोभा–सदन बदन अस लोनौ। कोटि मदन छबि करि नहिं होनौं।।
सो मुख व्रज अवलोकन करै। तब जु आई बिचि पलकैं परै।।
व्याकुल है ब्रजनारी भारी। तिहिं दुख देत बिधातहिं गारी।।

दोहा - बड़ौ मंद अरविंद–सुन, जिहि न प्रेम पहिचानि।
पिय–मुख देखत दृगन कै, पलक रची बिचि आनि।।१३।।

वनांतर विरह- बिरह बनांतर को सुनि लीजै। गोपिन के मन मैं मन दीजै।।
जब बृंदावन गोगन गोहन। जात हैं नंद–सुवन मनमोहन।।
तब की कहिन बनति कछु बात। इक इक पलक कलप सम जात।।
इक टक दृगनि लिखी सी डोलै। बोलै जब जनु पुतरी बौलै।।

दोहा - नैन बैन मन श्रवन सब, जाय रहत पिय पास।
तनक प्रान घट मैं रहे, फिरि आवन की आस।।

देशांतर विरह- सुनि देसांतर बिरह–बिनोद। रसिक जनन–मन बढ़वन मोद।।
नंद सुवन की लीला जिती। मथुरा द्वारावति बहु भँती।।
सुमिरत तदाकार है जाहीं। इहिं बियोग इहि बिधि ब्रजमाहीं।।
ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई बिसरै बन बन ढूँढ़ै सोई।
सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला।।
पियहि फूल माला ही दीनी। सुंदर अंग राग रस भीनी।।
ताहि पहिरि कै कनक अटारी। पौढ़ि रही भरि आनँद भारी।।
रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज बर गोरी।।

द्वारावति लीला सुधि भई ताही छिन जु बिकल है गई।
दृष्टि परि गयो चंदा गैन। लागी ताहि संदेसा दैन।।
द्वादसमास बिरह की कथा। बिरहिनि कौं दुखदायक जथा।।
छिनक माँझ बरनी तिहि बाला। महाबिरहिनी है तिहिकाला।।

दोहा- निकट अटपटौ चटपटौ, ब्रज कौ प्रेम बियोग।
सुरझाएँ सुरझै नहीं, अरूझे वड्डे लोग।।

बारह्मासा

सोरठा चैत्र- चैत चलो जिनि कंत, बार बार पाँ परि कहौं।
निपट असंत बसंत, मैन महा मय मंत जहँ।।

चौपाई - तदपि न रहे चलेई चले। कहियो चंद भले जु भले।।
तब ही कुहुक कोकिला कियो। सुनतहि दहकि बहकि गयो हियो।।
जनु किलकार मैन मोहिं दई जु कछु कहत ही सोई भई।
मदन जाल गोलक से भौंरा। फिरि गए उपरि ठौर ही ठौरा।।
सुखद जु हुतौ तुम्हारे संग। सो वह बैरी भयो अनंग।।
नव पुहुपन के धनुष बनावै। मधुप भाँति तिनि तंति चढ़ावै।।
नूत के नूतन अंकुर बाना। तकि तकि मरम करत संधाना।।
अरू इह त्रिगुन पवन कित हू कौं। पुहुप पराग लिये कर बूकौं।।
फागु सो खेलत बन मैं फिरै। रस अनरस सब काहू भरै।।
पंचबान के प्रान समान। तिन अति चंचल किये परान।।

दोहा - जलचर ज्यो जलभीर मैं, जानत नाहिंन पीर।
बिछुरि परै जब नीर तैं, सच सचु जानै नीर।।

सोरठा,वैशाख- आवहु बलि बैसाख, दुख–निदरन सुख करन पिय।
उपज्यो मन अभिलाष, बन बिरहन गिरिधरन सँग।।

चौपाई - कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंजै। मधुकर निकर करत तहँ गुंजै।।
गुहि गुहि नवल मालती–माला। मोहिं पहरात हु मोहन लाला।।
ललित लवंग लतनि की छाँही। हँसि बोलौ डोलौ गहि बाँही।।
पुलिन कलिंदी कौ अति रम्य। त्रिगुन पवन ही को तहँ गम्य।।
किसलय सयन सुपेसल कीजे। सिरतर सुमन उसीसा दीजे।।
इक पट वोट वोटि सुख कीजै। आवहु बलि छिन छिन छबि छीजै।।
द्रुमनि सौं लपटि प्रफुल्लित बेली। जनु मोहिं हँसति है देखि अकेली।।
जौ कबहुँ पिय ध्यानहि धर्यो। परिरंभन चुंबन पुनि करयो।।
रंचक सुख बहुर्यों दुख भारी। काहि बिससिये दसा हमारी।।

दोहा - इहि बिधि बलि बैसाख इह, बीत्यो दुख सुख लागि।
सँडसी गई लुहार की, खिन पानी खिन आगि।।

सोरठा,ज्येष्ट- रही न तनक अमेठ, तुम बिन नदकुमार पिय।
निपट निलज इह जेठ, धाय धाय बधुवनि गहै।।३८।।

चौपाई - वृष की तपति तपति अति बई धर बन अनलभई सब भई।
तैसिय बिरह बिथा तन नई अगिन मैं अगिन और ज्यों दई।
चंदन चरचे अति परजरै। इंदु–किरनि घृत बूँद सी परै।।
चदन चंद तौ तिनकौ सियरे। जिन तैं नंदसुवन पिय नियरे।।
अहो चंद, मो दुख तन झाँकौ। मंद मंद ए मृग जिनि हाँकौ।।
झमकि जाय हरि पियहिं सुनाई करिहौ कहा बहुरि ब्रज आई।
दावानल जु पान हौ करयौ। सो वह बहुरि बिपिन संचरयो।।
अरू कहियो सब ही दुख पायो। काली फिरि कालिंदी आयो।।
बेगि जाहु ब्रज–बिपतिहि हरौ। गुन अवगुन कछु जिय जिनि धरौ।।

दोहा - क्षीर–समुद के मीन जिमि, बसत चंद ढिग आहि।
चंदहि मंद न जानहीं, जलचर मानत ताहि।।४४।।

सोरठा,आषाढ़- विपत न बरनी जाति, दई जु मास असाढ़ मोहि।
औचक आधी राति, पीव पीव पपिहा कर्‌यौ।।४५।।

चौपाई- वह दुख वह रजनी ए जानै। कासौं कहौं कहें को मानै।।
कौनहि भाँति भोर जब भयो। दुख ही मैं दुख उपज्यो नयो।।
पावस–सैन मैन लै चढ्‌यो। बिरही जन मारन रिस बढ्‌यो।।
बदर बनैत चहुँ दिस धाये। बूँद बान धन बरसत आये।।
घन मैं चमकति अति दामिनि। भौन मैं भोजि दुरति है भामिनि।।
घेरी मैन–सैन दुख दाइक। तुम बिन कौन छुड़ाबन लाइक।।

दोहा- मोर सोर निसि सुंदरी, डरी खरी सुनि ताहि।
काहू बिरहिनि पर मनौं, मैन पर्‌यौ रतवाहि।।

सोरठा,श्रावण- हो, मनभावन पीव, सावन आवन कहत सब।
अवगुन कवन जु तीय, आयो नहीं जु खन भवन।।५०।।

चौपाई - अब देखिव उमगी घनमाला। जनु मदमत्त मदन की ढाला।।
छुटे जु बंधन तोरि मरोरी। धनुष धरे जनु पँचरँग डोरी।।
बगनि की पाँती बड्डे ढंत। धुखा भद के पटा बहंत।।
गरजनि गँजनि सुनि सुनि महा। ढलकत हिय दुख कहिये कहा।।
भरि भरि सुंडनि डारत पानी। डारत मोहि करत नकवाँनी।।
घूमत चलत कहा मतवारे। ढाहत पिय के अवधि करारे।।

दोहा - अवगुन होय जो मित्त मैं, मित्त न चित्त धरंत।
केतकि रस बस मधुप जिमि, दुख–कंटक न गनंत।।५४।।

सोरठा, भाद्रपद- भादौ अति दुख–ऐन, कहियो इंदु गोविंद सौं।
घन अरू तिय के नैन, होडनि बरसत रैन दिन।।५५।।

चौपाई - गति बिपरीत रची तब मैन। गरजै घन बरसै तिय नैन।।
सींचत भुज–मूलनि दृग नाई छिन छिन बिरह–बेलि अधिकाई।
भादौं रैन अँध्यारी भारी। तिन मैं तिय अति होति दुखारी।।
घन हर घोरै पवन झकोरै। दादुर झींगुर काननि फोरै।।
आँगन बीज करत मनु चोटैं। घर मैं अति अँधार घट घोटैं।।
इकली देहरी ठाढ़ी रहै। बढ़ि गई रैनि घटन नहिं कहै।।
अहो चंद गतिमंद न गहौ। सुंदर गिरिधर पिय सौं कहौ।।
इंद्र कोप कीनो पुनि अबै। जल व्याकुल गोकुल है सबै।।
आवहु बलि बिलंब जिनि करौ। बहुर्‌यौ फिरि गोबरधन धरौ।।

दोहा - प्रान रहे घट आय इमि, जिमि जब अंकुर तोय।
अन आवन जु प्रबल पवन, उर पर है पिय सोय।।६१।।

सोरठा, आश्विन- कहियो उड़ुप उदार, सुंदर नंदकुमार सों।
अस कछु कीनी क्वाँर, हार भार तें डारि दिय।।६२।।

चौपाई - खंजन प्रगट किये दुख दैना। संजोगिनि तिय के से नैना।।
निरमल जल महँ जलजहु फूले। तिन पर लपंट अलि–कुल झूले।।
सुधि आवत वा मोहन–मुख की। कुटिल अलक जुत सीवाँ सुख की।।
मोरनि नव तन चंदव धारे। देखि देखि दृग होत दुखारे।।
आवहु बलि वै सिर पर धरौ। पंख पुरातन व्हाँ ते करौ।।
साँझ समै बन तैं बनि आवो। गो–रज–मंडित बदन दिखावो।।
वा छबि बिन ये नैन हमारे। जरत हैं महा बिरह–जुर जारे।।

दोहा - और ठौंर की आगि पिय, पानी पाय बुझाय।
पानी मैं की आगि बलि, काहे लागि सिराय।।६७।।

सोरठा, कार्तिक- प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहिं आय हौ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम ही पै आय है।।६८।।

चौपाई - अहो चंद बलि चलि जिति मंद। जाहु बेग जहँ पिय नँदनंद।।
समौ पाय कहियो अरू गाई जैसे बलि बलि उनहिं सुहाई।
आई सरद सुहाई राती। प्रफुलित बलित मल्लिका जाती।।
उदित उहै उड़ुराज सदा कौं। रहत अखंडित मंडल जाकौं।।
छुटि रहि ज्योति बिमल चंदिनी। सुभग पुलिन कलिंद–नंदिनी।।
सीतल मृदुल बालुका सच्यों। जमुना सुकर तरंगनि रच्यों।।
कलपत कत रे मंजुल मुरली। मोहन मधुर सुधा रस जुरली।।
ठाढे है पिय बहुरि बजाओ। ताकरि ब्रज सुंदरी बुलाओ।।
मिलि खेलो चलि रास बिलासा। परिरंभन चुंबन परिहासा।।
सहज सुगंध रावरी बाहू। कंठनि मेलि मिटावो दाहू।।

दोहा - प्रजरि परत अब अंग सब, चोबा चंदन लागि।
बिधि–गति जब बिपरित तब, पानी ही मैं आगि।।७४।।

सोरठा, मार्गशीर्ष- अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर–ससि।
दीजै दरसन दान, अगहन होय जु पुन्यबल।।७५।।

चौपाई - बिछुरन जोग बनि गयो आय। विरह–राहु को बनि गयो दाय।।
पूरब बैर सुमिरि रिस भरयौ। मो तन चंद आनि कै धरयौ।।
दिये जु दंत बिधुंतुद गाढ़े। ते क्यों हूक कढत नहिं काढ़े।।
बहत न रहत नयन इकसारा। ते जनु चलत अमृत की धारा।।
पिय दरसन जु सुदरसन आही। रंचक आनि दिखावहु ताही।।
हो ससि जौ पिय नंदकिसोर। अवगुन कहन लगै कछु मोर।।
तौ तुम तिन सों कहियो ऐसैं। बहुरि कहूँ न अभ्यासै जैसे।।

दोहा - मित्त जु अवगुन मित्तके, नहिंन अनत भाषंत।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिय ही मधि राखंत।।८०।।

सोरठा, पौष - विपत्ति परी इहि पूस, अहो चंद नँदनंद बिन।
सबै तापनौ फूस, बिन धुरि सोए स्याम उर।।८१।।

चौपाई - बड्डी रैन तनक से दिना। क्यों भरिए पिय प्यारे बिना।।
महाबकी जिमि आवति राति। झट दै मोहिं लीलि है जाति।।
मदन ढाढ़ बिच दै दै चंपे। तिहि दुख ताकौ तन मन कंपे।।
रवि जौ तनक न लेय छुड़ाई तो मोहि निसा–बकी गिलि जाई।
मास दिवस के हे जब पीय। तब तुम हती हुती इह तीय।।
अब तो बलि बलवंत पियारे। कंस केसि चाँनूर सँधारे।।

दोहा - अहो चंद ब्रजचंद बिनु, परै सबै दुख आय।
सदन अधासुर से भये, तिन तन चह्यौ न जाय।।८५।।

सोरठा, माघ - मकर जु दारून सीत, कहियो ससि पिय सों रहसि।
घर आवहु हरि मीत, छिन छिन छति सौं लागि कै।।८६।।

चौपाई - कपि गुंजा लौं जतन बनावै। तिन तें अधिक अधिक दुख पावै।।
बेदन आन औषधी आन। क्यों दुख मिटै जान–मनि जान।।
दिन अरू रजनी परै तुसारा। सीतल महा अगिनि की झारा।।
मृदुल बेलिसी ब्रज की बाला। मुरझि चलीं हो गिरिधर लाला।।
अरू कहियो बलि हरि सौं ऐसै। देखे जात दुखहि तुम जैसे।।
जौ कबहुँ हठि नींद अनैये। साँवरे पिय सुपने मैं पैये।।
तदपि न सुख तहँ परिये जागि। प्रजरत महा आगि ते आगि।।
ज्यों चकई नित झाँई चाहि। मुदित होत पति मानत ताहि।।
प्रबल पवन पुनि आय डुलावै। चकई बिलपि परम दुख पावै।।
तैसौ इह कहिये अब कौन। दाधे पर जस लागत लौन।।

दोहा - मास मास के दिवस करि, माँस रह्यो नहिं देह।
साँस रह्यो घट लागि कैं, बदन चहत कै नेह।।६२।।

सोरठा, फाल्गुन- जौ इह फागुन पीय, फाग न खेलहू आय ब्रज।
कै हौं कै इह जीय, कोउक तुम पै आय है।।६३।।

चौपाई - मोहि तौ लै चलि चंदा मंदा। जहँ मोहन सोहन नँदनंदा।।
कहा करैंगे गुरूजन मेरो। दुरजन क्यों न हँसो बहुतेरो।।
जाकै अंग रोग है महा। औषध खात लाज है कहा।।
इह बिधि धरि इक रही चपपटी। बात प्रेम की निपट अटपटी।।
बहुर्यो ब्रज लीला सुधि आई जामैं नित्य किसोर कन्हाई।
सुपनै कोउ दुख पावत जैसे। जागि परे सुख पावत तैसै।।
तबही कान्ह बजाई मुरली। मधुर मधुर पंचम सुर जुरली।।
गैयाँ मिलवन मिस उठि भोर। गहगोरी गवनी उहि वोर।।
ठाढ़े निकसि कुँवर वर पौरी। बन हरिभाल चँदन की खौरी।।
लटपटि पांग कछुक धुकि रही। सो छबि परति कौन पै कही।।
आरस रस भरे चंचल नैन। जिनहिं निरखि मुरझत मन मैन।।
इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरष भरे नैन सिराये।।
ताकौं निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे।।
समाचार जाने तिहि तिय के। अंतरजामी सबके हियके।
इहि परकार बिरह मंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी।।
जो इहि सुनैं गुनैं हित लावै। सो सिद्धांत तत्व कों पावै।।

दोहा - अवर भाँति ब्रज को बिरह, बनै न क्यौं हू 'नंद'।
जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद।।१०२।।

❑ अनेकार्थ-ध्वनि-मंजरी :

जो प्रभुजोति जगतमय, कारन करन अभेव।
बिघन–हरन सब सुभ–करन, नमो नमो ता देव।।१।।
एकै वस्तु अनेक हैं, जगमगात जगधाम।
जिमि कंचन तें किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम।।२।।
उचरि सकत नहिं संस्कृत, अर्थ ज्ञान असमर्थ
तिन हित नंद सुमति जथा, भाषा कियो सुअर्थ।३।।

गो - गो इंद्री, दिवि, वाक, जल, स्वर्ग, सुदृष्टि अनिंद।
गो धर, गो तरू, गो किरन, गो पालक गोविंद।।४।।

सुरभि- सुरभी चंदन, सुरभी मृग, सुरभी बहुरि बसंत।
सुरभी चंपक बन कहै, जो जग कर्ता कंत।।५।।

मधु – मधु बसंत, तरू चैत्र, नभ, तिय, मदिरा, मकरंद।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधु–सूदन गोविंद।।

धनंजय - अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि।
अर्जुन बहुरि धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि।।१०।।

धाम - धाम तेज औ धाम तनु धाम किरन, गृह धाम।
धाम जोत जो ब्रह्म है, धनीभूत हरि स्याम।।१४।।

काम - काम भोग, अभिलाष पुनि, मन्मथ कहिए काम।
काम काज, जनि भूलि मन, भजिले हरि अभिराम।।१५।।

भव - भव शंकर, संसार भव, भव कहिए कल्यान।
भव सुंदर जस जगत फल, जब भजिये भगवान।।१७।।

वृष - वृष सुरपति, वृष कर्ण पुनि, वृष जु वृषभ, वृष काम।
वृष सुधर्म करि हरि भजौ, जो चाहौ सुखधाम।।

अल - अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन कौ नाम।
अल अभरन, अल अलस तजि, भजौ मनोहर श्याम।।

जीव - जीव बृहस्पति कों कहत, जीव कहावै चंद।
जीव आतमा नित जिये, जग–जीवन नँद–नंद।।

कलभ - कलभ कहत करि–साव कों, कलभ बहुरि उत्ताल।
कलभ कलुष कलिक्लेश तें, काढ़हु दीनदयाल।।

तुरंग, कुरंग - गरूड़ तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग।
हरिन कुरंग कुरंग कुरंग सो, रंग्यो न हरि–हर रंग।।

हंस - हंस तुरंगम हंस रवि, हंस मराल सु छंद।।
हंस जीव को कहत कवि, परमहंस गोविन्द।।

पयोधर, भूधर - मेघ, अर्क, कुच, शैल, द्रुम, एजु पयोधर आहि।
भूधर गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि वराह।।

बाल - बाल सिरोरूह बाल सिसु, मूक कहावे बाल।
बाल सोई है जगत में, भजै न बाल गोपाल।।

ताल - ताल ताल हरिताल पुनि, दोई कर सों करताल।
ताल वृक्ष फल खाय कर, हत्यो दनुज नँदलाल।

व्याल - व्याल कहत हैं कूर नर, दुष्ट स्वपद गज व्याल।
व्याल सर्प–सिर चढि नचे, नटवर बपु नँदलाल।।

जलज - जलज मीन, मोती जलज, जलज शंख अरू चंद।
जलज जु कमल फिरावते, ब्रज आवत नंदनंद।।

बन - बन पानी कों कहत कवि, बन बारिद की जाल।
बन कानन तें सुरभि सँग, बनि आवत नँनलाल।।

घन - घन दृढ, घन विस्तार पुनि, घन जिहिं गढ़त लोहार।
घन अंबुद, घन सघन घन, घन–रूचि नंदकुमार।।

शुक्र - शुक्र वीर्य अरू अग्नि पुनि, शुक्र जेठ को मास।
शुक्र अजहुँ बावनहिं प्रति, पल पल भरत उसास।।

खग - खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अंबुद, खग देव।
खग बिहंग हरि सुतरू तजि, जड़ जड़ सेंवल सेव।।

ब्रह्म - ब्रह्म ब्रह्म–कुल, ब्रह्म बिधि, ब्रह्म वेद औ जीय।
ब्रह्म नंद के सदन में जाहि नचावति तीय।।

नाग - नाग पत्र औ नाग गज, नाग दुष्ट नर बाम।
नाग सर्प संसार को, सिद्ध मंत्र हरि नाम।।

द्विज - द्विज पंछी को कहत कवि, द्विज कहिए पुनि दंत।
तीन बरन तें द्विज बड़ो, सब जाने भगवंत।।

बलि - बलि हरि–पूजा, असुर कहि, बलि भोजन, बलि भाग।
बलि राजा, बलि लच्छमी, जा हिय हरि अनुराग।।

रंभा - रंभा कहिए अप्सरा, रंभा कदली नाम।
रंभा गोकुल गाय–धुनि जिहि मोहे घनश्याम।।

सारंग - पिक, चामर, कच, संख, कुच, कर बाइस, ग्रह होय।
खंजन, कंजल खातमद, काम बिसन है सोय।।
क्षिति तालाब, भुजंग पुनि, को बड़ मानस मान।
सारंग श्री भगवान को, भजिए आठो जाम।।
सारंग सुंदर को कहत, रात दिवस बड़ भाग।
खग पानी अरू धन कहिय, अंबर अबला राग।।
रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कंज, कुरंग।
चात्रिक, दादुर, दीप, अलि ये कहिए सारंग।।

हरि - इंद्र, चंद्र अरविंद, अलि, कपि, केहरि आनंद।
कंचन, काम, कुरंग, बन, धनुष, दंड, नभ चंद।।
पानी, पावक, पवन, पथ गिरि, गज, नाग, नरिंद।
ये हरि इनके मुकुट–मनि, हरि ईश्वर गोविंद।।

ध्रुव - ध्रुव निसचल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जो ध्रुव–पद ताल।
ध्रुव तारे तिहि अटल गुन, गुन गोविंद गोपाल।।

सुमन - सुमनसु सुर, सुमनसु पुहुप, सुमनसु बहुरि बसंत।
सुमनसु जेहि मन में बसहिं, केसव कमला–कंत।।

बिटप - बिटप अरग, पल्लव बिटप, बिटप कहत बिस्तार।
बिटप बृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंद कुमार।।

दान - दान द्विजनों देत सो, गजमद कहिये दान।
दान साँवरे लेत बन, गोपी–प्रेम–निधान।।

रस – रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस विषया अरू नीर।
रस बर को रस प्रेम रस, जाके बस बलबीर।
स्नेह - तेल सनेह, सनेह घृत, बहुरो प्रेम सनेहु।
सो निज चरनन गिरधरन, 'नंददास' कहँ देहु।।

❐ कुछ पद :

मंगलाचरण :

वेद रटत, ब्रह्मारटत, संभु रटत, सेस रटत,
नारद सुक व्यास रटत पावत नहिं पार री।
ध्रुव–जन, प्रहलाद रटत, कुंती के कुँवर रटत,
द्रुपद सुता रटत नाथ, नाथन–प्रति पार री।।

❍

गनिका–गाज–गीघ रटत, गौतम की नारि रटत,
राजन की रमनी रटत सुनत दे–दै प्यार री।
''नंददास'' श्री गुपाल गिरिवर–धर रूप जाल
जसुदा कों कुँवर लाला, राधा उर हार री।।

बाल-लीला :

अपने सुतहिं जगावति रानी।
उठो मेरे लाल मनोहर सुंदर कहि–कहि मधुरी बानी।।
माखन, मिश्री और मिठाई, दँध मलाई आनी।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे सब सुख दानी।।
जननी वचन सुनत उठि बैठे, कहत बात तुतरानी।
'नंददास' प्रभु निरखि जसोदा, मन ही मन हरषानी।।१।।

❍

जागिये मेरे लाल हो, चिरैयाँ चुहुचुहानी।
निरखि विविध भाँति नंद, खिलौना ढिंग लाए,
धरे भँवरा, ललदुवा सुभग फिरकियाँ फिरानी।।
अपुनौं कर कमल साजि, चुटिया गुहौं सुरंग पान,
चलु हो लाल, तात कों सुनाऊ मधुर बानी।
बचन सुनत मात के, जु उठे प्रभु सुभाव तजि,
दोहू कर मींडत अति, अँखियाँ अलसानी।
लेहू चंद चूँमत मुख, तनमन अति भयो है सुख,

गद–गद अंग ढरकि–ढरकि, नैन आयो पानी।
स्याम–सुंदर सुभग तिलक, धुँधर वारि अलक झलक,
बार–बार देत दान, मैया हरषानी।।
ऐसौ समयौ जु निरखि, 'नंददास' मन ही हरखि,
लियौ है मात भक्ति, दान दियौ श्री नंदरानी।।२।।

❍

चिरैया चुहचुहानी सुनि चकई की बानी,
कहति जसौदा रानी, जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानीं, कुमुदिनी सकुचानी,
कमल विकसानी दधि मथै बाला।।
सुबल सुदामा, तोक उज्ज्वल बसन पहिरैं,
द्वारे ठाड़े हेरत हैं, बाल गोपाला।
'नंददास' बलिहारी उठि बैठो गिरिधारी,
सब कोउ देख्यौ चाहैं, लोचन विसाला।।३।।

❍

बाल गोपाल ललन को, मोद भरी जसुमति दुलरावति।
मुख चुँमति, देखति सुंदर तन, आनंद भरि–भरि गावति।।
कबहुँक पलना मेलि झुलावति कबहुँक अस्तन पान करावति।
'नंददास' प्रभु गिरिधर कों रानी, निरखि–निरखि सुखपावति।।४।।

सुंदर स्याम पालने झूलै :
जसुमति माय निकट अति बैठी, निरखि–निरखि मन फूलै।
झुंझुना लैके बजावत रूचि सों, लालही के अनुकूलै।
बदन चारू पर छुटी अलक रही, देखि मिटल उर सूलै।।
अंबुज पर मानहुँ अलि–छौंना, धिरि आए बहु दूलै।
दसन दोउ उघरत जब हरि के, कहा कहूँ समतूलै।।
'नंददास' घन में ज्यों दामिनि, चमकि डरति कछु खूलै।।५।।

❍

जुरि चली हैं बधावन नंद महर घर, सुंदर ब्रज की बाला।
कंचन थार हार चंचल, छवि कहि न परत तेहि काला।।
डहडहे मुख कुमकुम रंग रंजित, राजत रस के ऐना।
कंजन पर खेलत मनों खंजन, अंजनयुत बने नैना।।
दमकत कंठ फाटिक–मनि कुंडल, नवल प्रेम रंग बोरी।
आतुर गति मानों चंद उदै भयौं, धावत तृषित चकोरी।।

खसि–खसि परत सुमन सीसन तें, उपमा कहा बखानों।
चरन चलन पर रीझि चिकुर वर, बरषत फूलन मानों।।
गावत गीत पुनीत करत जग जसुमति मंदिर आई।
बदन बिलोकि बलैयाँ लै–लै देत असीस सुआई।।
मंगल कलस निकट दीपावली, ठॉव देखि मन झूल्यौ।
मनों आनंद नंद सुवन के, सुवन फूल ब्रज फूल्यौ।।
ता पाछें गन गोप ओप सों, आए अतिसै सोहैं।
परमानंद–कंद रसभीने, निकर पुरंदर को हैं।।
आनंदघन ज्यों गाजन राजत, बाजत दुंदुभी भेरी।
राग–रागिनी गावत, हरषत बरषत, सुख की ढेरी।।
परम धाम जगधाम स्याम, अभिराम श्री गोकुल आए।
मिटि गए द्वंद 'नंददासन' के, भए मनोरथ भाए।।६।।

❍

कहै न आय देखिऐ जू रानी, अपने सुत के करम।
भाजन भवन एकौ न रह्यौ कंह्यौ तो आगें हँसि परी, ऐसें, जानें की काहु कौ मरम।।
दिन–दिन की हान, दूजै नैक न राखत कान, निकुंज बसिवे कौ कौन धरम।
'नंददास' प्रभु मैया के आगें साधु है बैठे, चोर कौ कहाँ जनम।।७।।

❍

सब ब्रज–गोपी रहीं तकि ताक।
कर कर गाँठि लसत सब हिंन के, बन कों चलत जब छाक।
मधु–मेवा पकवान मिठाई, घर–घर तें लै निकसी थाक।
'नंददास' प्रभु कों यह भावत, प्रेम–प्रीति के पाक।।८।।

❍

मंडल जोर हरि जेंवन बैठे, रितु असाढ़ के बदरा छाए।
अर्जुन भोज सुबल श्री दामा आपुन हंसत हलधर ही बुलाए।।
आपुन खात खवावत गवालन, बिंजन दै–दै सब ही मन भाए।
'नंददास' प्रभु की छबि निरखत, ब्रह्मा सिव सुरपति पछताए।।९।।

❍

कान्ह कुँवर के कर–पल्लव पर, मानों गोवर्धन नृत्य करै।
ज्यों–ज्यों तान उठत मुरली की, त्यों–त्यों लालन अधर धरै।।
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत, दामिनी दमक मानों दीप जरै।
ग्वाल ताल दै नीके गावत, गायन के सँग सुर जु भरै।।
देत असीस सकल गोपीजन बरसा को जल अमित झरै।
अति अदभुत अवसर गिरिधर कौ, नंददास के दुख हरै।।१०।।

राजै गिरिराज आज, गाय–गोप जाके तर,
नैकसी बानिक बनें, धरे भेष नटवर।
लियौ है उठाय, ब्रजराव के कुँवर कर,
अरग–धरग राख्यौ मुरली की फूँक पर।।
बरसै प्रलय के पानी जात न काहू पै बखानी,
ब्रज हू पै अति भारी टूटत हैं तरू–तर।
ता पर के खग, मृग, चातक, चकोर मोर,
बूँद न काहू के लागी, भयौ है कौंतुक भर।।
प्रभु जू की प्रभुताई इंद्र हू की जड़ताई,
मुनि हँसे हेरि–हेरि, हरि हँसे हर–हर।
'नंददास' प्रभु गिरिधारी जू कौ हाँसी–खेल,
इंद्र को गरव गयौ, भए दूर दुःख डर।।११।

दान :

कहो जू ये कैसौं दान दानी।
ब्रज में ये चाल लाल, कैसे बसवौ होई गुपाल,
ज्यौ–ज्यौं बडे होत, त्यों–त्यों भली ठान ठानी।
दूध दही मही कौ दान, अबलौ हम सुनी न कान,
काहु सो कहत गढ्यो जम्यो, काहु सो कहत पानी।।
'नंददास' प्रभु के यों आस–पास लपटि रहीं,
कनक बेल भौंह की ऐठंन में सब की अंरूझानी।।१२।।

❍

कहो जू कैसों दान माँगों,
हम तो देव गोवरधन पूजन आई
कोऊ दह्यौ कोऊ मह्यौ, कोऊ माखन,
जोरि–जोरि आछौ–अछँतौ ही लाई।।
तुम कों कैसे दीजें कान्हा जू,
तुम तो सब विधी करत बरियाई
'नंददास' प्रभु बालकपन में,
निडर भए ऐसे, जो कछु न चलाई।।१३।।

विवाह :

दूलह गिरिधर लाल छबीलौ, दुलहिल राधा गोरी।
जिन देखत जिय में मन लाजत, ऐसी बनी है जोरी।।
रतन जडित कौ बन्यौ सेहरौ, गजमोतिन की माला।
देखत बदन स्यामसुंदर कौ, मोहि रहीं ब्रज–बाला।।

मदन मोहन राजत घोरा पर, और बराती संगा।
बाजत ढोल दमाम चहूँ दिसि, ताल मृदंग उपंगा।।
जाय जुरे बृषभान की पौरी, उततें सब मिलि आए।
टीकौ करि आरती उतारी, मंडप में पधराए।।
पढ़त वेद चहुँ दिसा विप्रजन, भये सबन मन भाए।
हथलेवा करि हरि–राधा सों, मंगल चार कराए।।
ब्याह भयौ मोहन कौ जब हीं, जसुमति देत बधाई
चिरजीवो भूतल ये जोरी, नंददास बलि जाई।।१४।।

आसक्ति :

ठाढ़ौ री खरौ माई कौन कौ किसौरं।
साँवरौ बरन, मन हरन, बंसी घरन,
काम करन, कैसी गति जोर,
पौन परसि जात चपल होत, देखि,
पियरे पट कौ चटकीलौ छोर।
सुभग साँवरी छोटी घटातें निकसि आवै,
छबीली छटा कौ जैसो छबीलौ छोर।।
सुभग साँवरी छोटी घटातें निकसि आवै,
छबीली छटा कौ जैसो छबीलौ छोर।।
पूछति पाहुनी ग्वारि हा हा हो मेरी आली,
कहा नाम को है चितवन को चोर।
'नंददास' जाहि चाहिं चकचौधी आई जाहि,
भूल्यों री भवन–गमन,, भूल्यौ रजनी भोर।।१५।।

O

हिंडोरे माई झूलत गिरिधर लाल।
सँग राजत वृषभानु–नंदिनी, अँग–अँग रूप रसाल।।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, उर मुक्ता बनमाल।
रमकि–रमकि झूलत पिय–प्यारी, सुख बरसत तिहिं काल।।
हँसत परस्पर इत–उत चितवत, चंचल नैन विसाल।
'नंददास' प्रभु की छवि निरखत, बिवस भई ब्रज–बाल।।१६।

O

खंभ की ओझल ठाढ़ौ सुबल सखा प्रवीन,
कर में जटित डिब्बा सीरा सों भरें जेंवत हैं री मोहन।
परदा परे लाल ललित तिवारिन पैं,
ता मधि झलकत अँग–अँग रंग सोहन।।

जाही कों देखत रानी, ताही सौं उठत झुकी,
कोऊ न पावत कह समयौ जोहन।
नंददास भोजन करि बैठे तब मै दई सैन,
पान खाय आवत हौं कह्यौ री मोंहन।।१७।।

❍

रही हो मेरी अँखियाँ लाल संग अटकी।
सुरति की मूरत चित में चुभि रही, छूटत नाहिंन झटकी।
भौह की मरोर मारि डारत है बानी पीर मेंरे हिय में छिटकी।
'नंददास' प्रभु प्यारी लाज तजि चली है डगर बंसीवट के निकटकी।।१८।।

❍

आवत ही जमुना भरि पानी।
काम रूप काहू कौ ढोटा निरखि बदन गृह गैल भुलानी।।
मोहन कह्यौ तुम कों या ब्रज में नाहिंन है पहचानी।
ठगि जु रही चेटक सौ लाग्यौ, तन व्याकुल मुख फुरहि तन बानी।।
जा दिन तें चितए री मोहन, ता दिन ते हरि हाथ बिकानी।
'नंददास' प्रभु यों मन मिलयौ, ज्यों सारंग में बँद समानी।१६।।

❍

नंद–सदन गुरू जन कीं भीर तामें,
लालन बदन नीके देख न पाऊँ।
बिनु देखै जिय अकुलाय जाय, दुख पाय,
जदपि बड़ेई खन उठि–उठि आऊँ।।
लै चलरी मोहि जमुना के तीर जहाँ बलबीर,
सुंदर बदन देखि नयन सिराऊँ।
नंददास प्यासे कों पानी पिवाय, ले जिवाय,
जिय की तू जानै, तोसों कहां हौ जनाऊँ।।२०।।

❍

चंचल लै चली रीं चित चोर।
मोहन को मन यौं, बस कर लियौ, ज्यों चकरी सँग डोर।।
जौलौं न, देखत तब मूरति तौलौं, पलक न लागत निमिषन ओर।
'नंददास' प्रभु प्रेम मगन भए नागर नंदकिसोर।।२१।।

❍

कृष्ण नाम जब तें श्रवण सुन्यौ री आली,
भूली री भवन, हौं तौ बाबरी भईरी।
भरि–भरि आवे नैन, चित हू न परत चैन,
मुख हू न आवै बैन, तन की दसा कछु औरें भईरी।।

जेतेक नैम–धरम ब्रत कीनेरी मैं बहु विधि,
अंग–अंग भई हौं तौ श्रवनभई री।
नंददास जाके श्रवण सुनें ये गति।
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दईरी।।२२।।

❍

यमुना पुलिन सुभग वृंदावन, नवल लाल गोवरधन–धारी।
नवल कुँज नव कुसुमित दल, नव–नव वृषभानु दुलारी।।
नवल हास नव–नव छवि क्रीड़त नबल विलास करत सुखकारी।
नव श्री विट्ठलनाथ कृपाबल, नंददास निरखत बलिहारी।।२३।।

❍

गोकुल की पनिहारी पनियाँ भरन चली,
बड़े बड़े नयना तामें सुभि रह्यौ कजरा।
पहिरै कुसूभी सारी अंग–अंग छबि भारी,
गोरी–गोरी बहियन में मोतिन के गजरा।।
सखी संग लिए जात, हँसि–हँसि बूझत बात,
तनहूँ की सुधि भूली सीस धरै गगरा।
नंददास बलिहारी बीच मिले गिरिधारी,
नैन की सैन में भुलि गई डगरा।।२४।।

❍

चिबुक–कूप पियमन परचौ, अधर सुधारस आस।
कुटिल अलक लटकत काढ़न कों, कंटक डार्यौ प्रेम के पास।।
चंचल लोचन ऊपर ठाढ़े है, पीवन कों मानों मधुहास।
नंददास प्रभु प्यारी छबि देखै बाढ़ति अधिक पियास।।२५।।
चलति बाल लाल संग, कुंज भवन में लटकि–लटकि।
अंग–अंग की छबि कही न परत कछु, रोम–रोम रमि रह्यौ अटकि–अटकि।।
रवि ससि को सरूप ऐसौ देखियत, तन कौ तुषार डारों फटकि–फटकि।
'नंददास' प्रभु की छवि निरखत पीवत नैन पुट गटकि–गटकि।।२६।

❍

देखन देत न बेरनि पलकें।
निरखत बदन लाल गिरिधर कौ, बीच परत मानों ब्रज की सलकें।
बन तें जू आवत बेनु बजोवत, गो रज मंडित राजत अलकें।।
माथे मुकट श्रवन मणि–कुंडल, ललित कपोलन झाई झलकें।
ऐसे मुख देखन कों सजनी कहा कियौ यह पूत कमल कें।।
नंददास सब जड़न की यह गति, मीन मरत पाऐं नहिं जलकें।।२७।।

जागे हो रैन तुम सब नयना अरूण हमारे।
तुम कीयौ मधुपान घूँमत हमारौ मन, काहे तें जु नंद दुलारे।।
उर नख चिह्न तुम्हारें पीर हमारें, कारन कौन पियारे।
नंददास प्रभु न्यायी स्याम धन, वेंरष अनत जाय, हम पर झूम–झुमारे।।२८।।

छवि वर्णन :
मुख पर वारौं सुन्दर टोंना।
बेंनी बारन की, मृदु बैना, मृगमद भाला डिठोंना।।
खंजन नैननि अंजन दिऐं, मोंहन लोयन लोना।
तिरछी चितवनि यों छबि लागै, कंज–दलन अलि–छोंना।।
जो छबि है वृषभान–सुता में, सो छबि नाँहिन सोना।
'नंददास' अविचल ये जोरी, राधा सयाम सलोंना।।२६।।

❍

प्रातकाल नंदलाल पाग बनावति,
बाल दिखावति दरपन रह्यौ लसि।
सुंदर नव किरनन में मंजु मुकुर की झलक,
हीग फब्रि मानों गहि–आन्यौ है बिंबक झलनि ससि।।
बीच–बीच चित के चोर, मोर–चंद माधें दिऐं,
ता पर पुनि रतन–पेच, बाँधत हैं कसि–कसि।
'नंददास' ललितादिक ओट है अवलोकति,
कही न परत अतुलित छवि, फूलि रहे हँसि।।३०।।

❍

देखि सखी चंदवा मोरके।
आजु बने सिर साँवरे पिय के, पीत छबीली छोर के।।
पुनि लखि ललित सलौने लौने, लोचन नंद किसोर के।
बाँकी चितवन, चलन तिरछी सी, छेदत उर के ओर के।।
बार–बार भुव कुटिल होत जब, गावत राग मरोर के।
मानों पंख सँवारन बैठे, पंकज पर अलि भोर के।।
मुख पर कछुक अमी–निधि माई, मोहन चित के चोर के।
'नंददास' तेरे नैन भए तहाँ, बरबस मीन हिलोर के।।३१।।

❍

तनक सौ बदन, सदन सोभा कौ, तनक तिलक ढिंग तनक डिठोना।
तनक लटूरी सो है, मुनिन के मन मोहै, मनो कमलन ढिंग, बैठे अलि–छोंना।।
तनक सी रज लागी, निरखत सो बड़ भागी कंठ कठूला सोहे और नख–बंघना।
'नंददास' जसोदा के आँगन में खेलें हरि, जाकौ जस गाइ–गाइ सिव भए मगना।।३२।।

लीला वर्णन :

देखो–देखो री नागर नट, निर्तत कालिंदी–तट, गोपिन के मध्य राजै मुकुट–लटक।
काछिनी किंकिनी कटि, पितांबर की चटक, कुंडल की रति, रवि रथ की अटक।।
ततथेई, ताताथेई सबद करन उघट, उरप–तिरप गति, परै पग की पटक।
रास में राधे–राधे, मुरली में एक रट, 'नंददास' गावै, तहाँ निपट निकट।।३३।।

❍

दौरी–दौरि आवति, मोहिमनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
अचरा पसारति, मोहि कों खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री।।
जारी जा, दूती तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री।
'नंददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, अनके पाँयन कहा महेंदी दईरी।।३४।।

❍

अहो तोसों नंद–लाड़िले झगरूँगी।
मेरे संग की दुरी जात हैं, मटुकी पटकि डगरूँगी।।
भोर की ठाड़ी कित करी मोकूँ, तुम जानि कुछ कीनी न करूँगी।
तुम्हारे संग सखा नहीं देखत, अब हीं लाउ उतारि धरूँगी।।
सूधे दान लेहु देखत किन, मोपै औरू कहा कछु, पाय परूँगी।
'नंददास' पति यों न रहैगी कछू, जब बातन उधरूँगी।।३५।।

भक्त की भावना :

जो गिरि रूचै तो बसौ श्री गोवर्धन, ग्राम रूचै तो बसौ नँदगाँम।
नगर रूचे तो बसौ श्री मधूपुरी, सोभा–सागर अति अभिराम।।
सरिता रूचै तो बसौ श्री यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
'नंददास' काननहिं रूचै तौ, बसौ भूमि वृंदावन धाम।।३६।।

उत्सव संबंधी :

छबीली राधे पूजि लै री गनगौर।
ललिता–विसाखा सब मिलि निकसीं, आय वृषभान की पोर।।
सघन कुंज, गहवर बन हीकौ, मिल गयौ नंद–किसोर।
'नंददास' प्रभु आय अचानक, घेर लियौ चहुँ ओर।।

फूलडोल :

भाई फूलन कौ हिंडोरा बन्यौ झूलि रही जमुना।
फूलन के खंभ दोऊ, फूलन की डाँडी चार, फूलन की चौकी बनी, हीरा जगमना।।
फूले अति बंसीवट, फूले हैं जमना तट, सब सखी मिल गावें, मन भयौ मगना।
फूली सखी चहुँ ओर थोरें–थोरें, 'नंददास' फूले जहाँ, मन भयौ मगना।।

अक्षय- तृतीया :

चंदन पहरि नाव हरि बैठे, संग वृषभान–दुलारी हो।
यमुना–पुलिन तहाँ सोभित हैं, खेलत लाल बिहारी हो।।
त्रिविध पवन बहति सुखदायक, सीतल मंद सुगंध हो।
कमल प्रकासित, द्रुम बहु फूले, जहाँ राजत नँद–नंद हो।।
अक्षय–तृतीया अक्षय लीला, संग राधिका प्यारी हो।
करत विहार संग सब सखियाँ, 'नंददास'बलिहारी हो।।

रथ-यात्रा :

देखो माई नंदनंदन रथहिं बिराजै।
संग सोहै वृषभान–नंदिनी, खेलत मनमथ लाजै।।
ब्रज जन सब मिलि रथ खैंचत हैं, सोभा अदभुत छावै।
सीतल भोग धरि करत आरती, 'नंददास' गुन गावै।।

हिंडोला :

डोल झुलावत सब ब्रज–सुंदरि, झूलत मदन गोपाल।
गावत फाग धमार, हरषि भर, हलधर और सब ग्वाल।।
फूले कमल, केतकी–कुंजन, गुंजत मधुप रसाल।
चंद बदन पै चावा छिरकत, उड़त अबीर–गुलाल।।
बाजत बेनु, विषान, बाँसुरी, ढफ मृदंग और ताल।
'नंददास' प्रभु के संग विलसति, पुन्य–पुंज ब्रजबाल।।

महिमा वर्णन :

नंद–भवन कौ भूषन माई
जसुदा कौ लाल, बीर हलधर कौ, राधा–रमन परम सुखदाई।
सिव कौ धन, संतन कौ सरबस, महिमा वेद–पुरानन गाई
इंद्र कौ इंद्र, देव देवन कौ, ब्रह्म कौ ब्रह्म, अधिक अधिकाई।
काल कौ काल, ईस ईसन कौ, अतहि अतुल, तोल्यौ नहि जाई
'नंददास' कौ जीवन गिरिधर, गोकुल गाँम कौ कुँवर कन्हाई।

○

निगम अगम जाकों निगम कहत हैं।
जोगी जन, मुनि जन, ढूँढत जतन कीऐं,
संकर समाधि नित लाऐं ही रहत हैं।।
सारत गनेस सेष सहस बदन सों,
गुननि गिनत अपार, अज हू न लहत हैं।
'नंददास' सोई ब्रह्म नंद की अंगुरी लागें,

मंद-मंद चाल लाल चलन चहत हैं।।
अरी, जाकों वेद रटत, ब्रह्मा रटत, सिभु रटत,
सेस रटत, नारद-सुक व्यास रटत, पावत नहीं पार री।
ध्रुव जन प्रहलाद रटत, कुंती के कुँवर रटत,
द्रुपत-सुता रटत, नाथ-अनाथन प्रतिपार री।।
गौतम की नारि रटत, गनिका, गज, गीध, रतट,
राजा अंबरीष रटत, दे दै थार री।
'नंददास' सोई गुपाल, गिरिवर धर रूप जाल,
जसोदा कौं कुँवर, प्यारी राधिका उर-हार री।।
धन्य जसोदा धन्य, तैं कौन पुन्य कीने।
जाके ऑगन मधि रेंगन करत, गोविन्द गो-रेंनु-मीनें।।
दृगन आगे तें दुरत मगन भए, नँचावें खिलावें हितु-वितु चित दीने।
'नंददास' ते प्रभु निरंजन, सो तौ तैं अंजन से करि लीने।।

❒ भाषा दशम् स्कन्ध :

प्रथम अध्याय :

नव लच्छन करि लच्छ जो, दसयैं आश्रय रूप।
'नंद' बंदि लै प्रथम तिहि, श्रीकृष्णाख्य अनूप।।१
परम बिवित्र मित्र इक रहै। कृष्ण-चरित्र सुन्यौ सो चहे।।
तिन कहीं दशम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनौ ताहि।।
सबद संसकृत के हैं जैसें। मो पै समुझि परत नहिं तैसें।।
ताते सरल सु भाषा कीजै। परम अमृत पीजै, सुख जीजै।।
तासौं "नंद" कहत हैं तहाँ। अहो मित्र ! एती मति कहाँ।।
जामैं बडे कविजन उरझे। ते वे अजहूँ नाहिंन सुरझे।।
तहँ हौं कवन निपट मति मंद। बौना पै पकरावौ चंद।।
अरू जु महामति श्रीधर स्वामी। सब ग्रंथन के अंतरजामी।।
तिन जु कहे यह भागवत ग्रंथ। जैसें दूध-उदधि कौ मंथ।।
तामैं यह श्री 'दशम स्कंध'। आश्रय बस्तु कौ रसमय सिंधु।।
तिहि मधि हों किहि बिधि अनुसरौं। क्यौं सिद्धांत रतन उद्धरौं।।
मित्र कहत है तौ यह ऐसैं। अहो 'नंद' ! तुम कहत हौ जैसैं।।
ए परि जथा सक्ति कछु कीजै। अमृत को एक बुंदही जीजै।।

द्वितीय अध्याय :

अब सुनिलै द्वितीय अध्याई जामैं ब्रह्मादिक सब आइ।।
गर्मस्तुति करि हैं सिर नाई चरन–कमल बैभव दिखराई।
जे हैं नीच बुरे ही बुरे। ते सब आनि कंस पै जुरे।।
अघ, बक, बकी, प्रलंब, अरिष्ट। तृनार्क्त, खर, केसी नष्ट।।
मागध जरासिंध बल–अंध। तासौं जाहि ससुर संबंध।।
जादवन कौ दैन दुख लागे। ते तजि देस बिदेसन भागे।।
कैइक रहे ताहि अरगाने। अक्रूरादिक अनसनमाने।।
देवकी के षट सिसु जबि कंस। हते महाबल, महानृसंस।।
सप्तम गर्भ विष्णु कौ धाम। भयौ अनंत जाहि है नाम।।
देवकि तहाँ अति न परकासी। हर्ष–सोक दोऊ मिलि भासी।।
कछु फूली, कछु नाहिंन फूली। जैसै प्रात कमल की कली।।
जदुकुल कौ दुख दिखि भगवान। व्याकुल भये जानमनि जान।।
बोलि जोगमाया मनहरनी। तासौं प्रभु सब बातैं बरनी।।
हे भद्रे ! बड़भागिनि महा। भाग महिम तुव कहियै कहा।।

दोहा- गर्मस्तुति हरि अर्भ की, सुनै जु द्वितीय अध्याइ।
सो न परै फिरि गर्म–मल, नर निर्मल़ है जाइ।।

तृतीय अध्याय :

सुनि लै तृतीय अध्याइ अब, सुंदर परम अनूप।
प्रेम भरे जग प्रगटि हैं, हरि परिपूरन रूप।।
पहिले उपज्यौ सुंदर काल। सब गुन भरयौ, जु परम रसाल।।
अति सोहन रोहिनी नछत्र। जाके सब ग्रह है गये मित्र।।
ठाँ ठाँ मंगल पूरत मही। बहुतक नदी दूध–धृत बही।।
सब के मन प्रसन्न भये ऐसैं। निधन महाधन पायें जैसैं।।
भदौं सलिल सुच्छ अस भये। जैसैं मुनिमन निर्मल नये।।
सरनि मध्य सरसीरूह फूले। तिन पर लंपट अलिकुल झूले।।
दिसा प्रसन्न सु को छबिगनौं। दिसिदिसि चंद उगहिंगें मनौं।
कुसुमित बनराजी अति राजी। ऐसी नहिंन बसंत विराजी।।
बुझे अगिनि आपुहि बरि उठे। हँसि हँसि मिले, हुते जे रूठे।।
मंद सुगंध पवन अस बहै। जिहि सुबास त्रिभुवन चकि रहै।।
मंद मंद अंबुद गन गजे। धर्म के जनु कि दमामे बजे।।
तैसियै बजत देव–दुंदुभी। दुर्जन मन कंटक जिमि चुभी।।
हरषै मुनिवर अमर पुरंदर। बरषैं सुमन सु सुंदर सुंदर।।

निर्तति देवनटी छबि–जटी। लटकै जनु की छटन की छटी।।
सुंदर अर्द्ध रैनि जब गई अति सिंगार–भई छबि–छई।
तब देवकि तैं प्रगटि ऐसैं। पूरब तैं पूरन ससि जैसैं।।
जो क्रेउ जोति ब्रह्ममय, रसमय सब ही भाइ।।
सो प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसरे अध्याइ।।

चतुर्थ अध्याय :

अब चतुर्थ अध्याई सुनि, परम अर्थ कौं दैन।
संस परी जहँ कंस–जिय, चंड चंडिका–बैन।।
बालक धुनिसुनि परी जु रौर। उठे पहरूवा ठौरहि ठौर।।
धाये गये कंस के ऐन। अठयौं गर्भ महा भय देन।।
सुनतहि उठयौ तलपते कंस। कहत कि आयौ काल नृसंस।।
कर करबार, सु बगरे बार। न कछु सँभार, महा बिकरार।।
अखुटत परत, सु बिहबल भयों। डरत डरत सुती–गृह गयौ।।
बोलि उठि देवकी छबिमई भैया न डर भनैजी भई।
याहि न मारि देखि दिसि मेरी। हौ अनुजा मनुजा धिप तेरी।।
डारे हैं तैं हति बहुतेरे। पावक की उपमा सुत मेरे।।
इक इक मो कौं मांगी दीजै। बलि बलि, अति अनीति नहिं कीजै।।
नीचन के को सुह्रद सुभाउ। तामैं यह नीचन कौ राउ।।
चपरि छती तैं लई छड़ाई पकरि ऊँचे उचकाइ।।
सिल पर पटकन कौं भयौ जबैं। करे तै निकसि गई सों तबे।।
जाई गगन मैं देबी भई महा तेज छाजति छबिछई।
राजति राजिबदल से नैना। बोली बिहँसि कंस सौ बैना।।
रे रे मंद ! न करि जिय गारौ। उपज्यौ है तुव मारन हारौ।।
ताके बचन सुने जब कंस। बिस्मय भयौ, परयौ जिय संस।।
कहत कि दैवी बानी महा। झूठ परी सो कारन कहा।।
देवकी वसुदेव दीने छोरि। बिनती करत कंस कर जोरि।।
अहो भगिनि ! अहो भगिनीमर्ता। मोसम नहिंन पाप कौ कर्ता।।
राच्छस ज्यौं अपने सुत रवाइ। सो मैं कीनी नीच सुभाइ।।
ज्यौं ब्रह्मह्म जीवत ही मरयौ। ऐसौ हौं हूँ विघना कर्यौ।।
नर तौ जनौं अनृत ही पगे। अमरौ अनृत बकन पुनि लगे।।
बुरी हौन कौ हौइ जब, तब उपजत ये भाइ।
बेद–बिप्र निंदा करैं, कहौ चतुर्थ अध्याइ।।

पंचम अध्याय :

अब पंचम अध्याइ सुनि जो है माथें भाग।
नंद महोछौ नवल धन बरषैगो अनुराग।।१
नंद महर घर जब सुत जायौ। सुनतहि सबन प्रान सो पायौ।।
परम उदास नंद मुद भरे। फूले नैननि राजत रवरे।।
पूत उदय ज्यों पयनिधि पेखि। बढतु है रंग तरंग बिसेषि।।
बोले ब्रज के द्विज बडभागी। जिनके हुती यहै लौ लागी।।
आपुन सुचि सुगंध जल न्हाये। विप्रनि चंदन तिलक बनाये।।
नंद के भूषन दिखि मन भूल्यो। मनों अनन्द मही रूह फूल्यो।।
बिधिवत जात कर्म करवाई लागे दान देन ब्रजराई।
द्वै लख धेनु सबछ बहु दूधी। प्रथम प्रसूता सुंदर सूधी।।
कंचन् सींग मढ़ी सोहनी। कंचन की बड्डी दोहनी।।
बहुरौ तिल अरू रतन मिलाइ। कीने बड्डे सैल बनाइ।।
उपर कंचन छादन छाइ। दीने ब्रज के द्विजन बुलाइ।।
अवर बहुत दीनौ व्रजराज। अपने कुल मंडन के काज।।
तिहि छन नंद सदन की सोभा। नहिं कहि परति लगति जिय लोभा।।
इतजु बेद धुनि की छबि बढी। मंगल बेलि सी त्रिभुवन चढ़ी।।
गावत इत जु रागिनी राग। चुवै परत जिन कैं अनुरांग।।
आनँदधन जिमि दुंदुमि बजे। जिन सुनि सकल अमंगल भजैं।
सुनिकैं गोप महामुद भरे। चले सु बनि बनि रंगनि ररे।।
पहिरे अंबर सुंदर–सुंदर। जे कबहुँ निरखे न पुरंदर।।
मंगल भेंट करनि में लियें। मैंन से लरिकनि आगे कियें।।
गोपी मुदित भयो मन भायौ। महरि जसोदा ढोटा जायौ।।
चलीं तुरत सजि सहज सिंगार। छतियनि उचरत मोतिन हार।।
श्रवननि मनि कुंडल झलमलैं। बेगि चलन कों जनु कलमले।।
चले जु चपल नयन छबि बढ़े। चंदनि मन हुँ मीन हें चढे।।
सुषम कुसुम सीसनि तें खसै। जनु आनंद भरे कच हँसैं।।
हाथनि थार सु लागत भले। कंजनि जनु कि चंद चढ़ि चले।।
मंगलि गीतनि गावति गावति। चहुँ दिंसि तें आवति छबि पावति।।
मंद अजिर में लगीं सुहाई जनु ए सब कमला चली आई।
सींचति सबनि हरद अरू दही। तब की छबि कछु परति न कही।।
सुंदर मंदिर भीतर गई जसुमति अति आदर करि लई।
ले ले अंचल ललित सुहाई पूजे सबनि सासु के पाई।
पौढे ललन जसोमति आगें। झीने पट में नीके लागें।।
बदन उघारि उघारि निहारें। देहिं असीस अपनपों वारें।।

हो हरि ! यह लरिका चिरू जीजौ। बहुत काल हम को सुख दीजौ।।
ब्रज की छबि कछु कहत बने न। जहँ आये श्री पंकजनैन।।
जदपि नित्य किसोर हरि बदत बेद इमि बैन।
सबै बयस ब्रज देन सुख प्रगटे पंकज नैन।।

पष्ठ अध्याय :

सुनि लै छठौ अध्याय अब अहो मित्र अति चित्र।
जहाँ सकल मल कौ हरन बकी चरित्र पवित्र।।१
सोचत चले नंद मग माहीं। बसुदेव बचन मृषा तौ नाहीं।।
हो हरि ईश्वर सरन तुम्हारी। वा सिसु की कीजहु रखवारी।।
इकतौ सहजहिं हुती नृसंस। पुनि चेरी करि प्रेरी कंस।।
चली पूतना सिसुन सँघारति। केइ पटकति केइ खाइहि डारति।।
इहिं बिधि बिचरति बिचरति बकी। इक दिन ब्रज आई तक तकी।।
श्री शुक यौं जब कही सुभाइ। राजा सुनत बिकल है जाइ।।
ताकौ समाधान सुक करै। हो राजन! इहि डर जिनि डरे।।
नाम मात्र जिहि प्रभु को जहाँ। ऐसे कों प्रभाव नहिं तहाँ।।
सो साक्षात नंद कौ धाम। भय संका को ह्याँ का काम।।
अद्‌भुत बनिता वेष बनाइ। अँग-अँग रूप अनूप चुवाइ।।
ललित सुभूषन ललित दुकूल। खसि खसि परत सीस ते फूल।।
कण्ठ में हीरा, आनन्द बीरा। पाइनि बाजत मंजु मंजीरा।।
लटकि चलति तब को छबि गनौ। परिहै टूटि लटी कटि मनौ।।
कमल फिरावति नैंन ढुरावति। मधुर मधुर मुसकति छबि पावति।।
गोप रहे सब जोहे मोहें। जानहिं नहिंन कछू हम को हैं।।
गोपी चरित चाहि कैं ताहि। कहन लगीं कि रमा यह आहि।।
अपने पिय को देखति डोलति। या ते नहिंन काहु सों बोलती।।
लरिकनि लहति लहति छबि छई नंद के सुंदर मंदिर गई।
आच्छी बनक कनक को पलना। पौढ़े तहाँ तनक सेललना।।
स्यामल अंग सु को छबि गनों। मृदुल नीलमणि प्रुतरी मनो।।
बाल भाव में दुरि रहे ऐसें। तीछन अगिनि भसम मधि जैसैं।।
आवति बकी तकी जब ऐना। मूँदे नैन कमल-दल-नैना।।
मेरे हेरत बेस कपट कौ। रहिहै नहिं पूतना अपट कौ।।
यातें मूँदि रहे दृग नाथ। विस्व चराचर जाके हाथ।।
मुसकति मुसकति तहँ चलि गई लालहिं लपकि लेतिही भई।
देवत कौं तौ घुटनो बाल। ऐ परि आहि काल कौ काल।।
सोवत परयौ भुजंगम ऐसें। रज्जु-बुद्धि कोऊ गहतु है जैसें।।

अस कछु रूप प्रेम करि छई जसुमति पुनि न निवारति भई।
जैसें अति तीछन करतार। उपर रतन जटिल परियार।।
जसुमति कहति चाहिकै ताहि। हौ जननी कि जननि यह आहि।।
आई ही ज्यों जुगति बनाइ। तरल गरल दुहुँ थननि लगाई।
प्यार सों ललन पिवावन लगी। चूमति जाति कपट रस पगी।।
इक कुच मुख, इक कर मैं लियै। पियत गोविंद चंद हित दियैं।।
अकिलौ विष अवश्य दुखदायी। लीने ताके प्रान मिलाई।
पियत भये सुंदर नँद नँद। मुसकत जात मंद छबिकंद।।
दानव कुल भोजन विविध कियौ चहत भगवान।।
प्रान पूतना के मनौ कियौ प्रथम सोपान।
नंद न डरि, हिय हेतु करि उर धरि छठौ अध्याइ।।
पूत भई जहँ पूतना प्रभुहिं अपेय पिवाई।

सप्तम अध्याय :

अब सप्तम अध्याय सुनि सुंदर श्रुति कौ सार।
जामें लाल रसाल को बाल चरित मधु धार।।
सुनि सप्तम अध्याय उदारा। जामें बाल चरित मधुधारा।।
जिहि रस सिंधु मगन भयो राजा। फिरि पूछत सुक अतिसुख साजा।।
हो मुनि ! हरि कौ बाल चरित्र। अति अद्भुत अरू परम पवित्र।।
पियत नृपति नहिं मानत कान। औरौ कहौ जानमनि जान।।
फुरे जु बाल चरित रस रंग। कहन लगे सुक पुलकित अंग।।
इक दिन करवट आपुहि लई जननी निरखि मुदित अतिभई।
बोलि सबै गोकुल की बाला। उच्छव कियौ महा तत्काला।।
सकट के अध धरि कंचन पलना। सुतहिं सुबाई नंद की ललना।।
बिदा करन लोगन कों लगी। डोलति सुत सनेह रँगमगी।।
रतन मिलै तिल चावरि कीनी। भरि भरि गोद सबनि को दीनीं।।
पूत उदय के हित ललचाई मति कोउ मन मैलो करि जाई।
दीपक प्रगट्यो नंद घर निर्मल जोति अभंग।।
उड़ि उड़ि परन लगे तहाँ दानव दुष्ट पतंग।।
तृनावर्त आवनि में बाल। भयो जु अति भारी तिहिं काल।।
जननि के जिय संका रहै। हरि वह भार जनायौ चहै।।
इक दिन ललहिं लिये गोद में। जसुमति मगन महा भोद में।।
बैठी मधुर पयोधर प्यावति। मुँह अंगुरि दै दै मुसुकावति।।
अरून अधर दँतियन की जोती। जपा कुसुम मधि जनु बिधि मोती।।
ललनहिं तनक जँभाई आई तब जसुमति अति बिस्मय पाई।

घर अंबर ससि सूरज तारे। सर सरिता सागर गिरि भारे।।
बिस्व चराचर है यह जितौ। सुत सुख मध्य बिलोक्यो तितौ।।
नैन मूँदि अति विस्मय भरी। बहुरि बिचारि परी सुधि करी।।
कहन लगी कि जु ईश्वर कोई मेरे घर यह बालक सोई।
ऐसें करि जब जसुमति जानें। तक हरि हँसिकै गर लपटानें।।
ईस्वरता कछु नहिं दुरी सब कोउ जानत ताहि।
सौ प्रभु सुत करि पाइयौ यह अति दुर्लभ आहि।।

अष्टम अध्याय

अब अष्टम अध्याइ सुनि मित्र। नाम करन मनहरन पवित्र।।
सुत–मुख–मध्य विश्व जब चह्यौ। सो जसुमति ब्रजपति सों कह्यौ।।
ब्रजपति हूँ के मन भय भयौ। नाम करन जु नाहिंनै भयौ।।
तातें होति है छाया आई लीजै लारिकनि नाम धराई।
तब ही निरखि अति हरखे नंद। बरखे तन मन परमानंद।।
प्रथमहि अभी बचन करि अरचे। बहुरयौ चंदन बंदन चरचे।।
कही कि तुम परिपूरन नाथ। रिधि–निधि–सिधि सब तुम्हरे साथ।।
कवन बस्तु करि पूजा कीजै। ज्यौं दिनमनि कहुँ दीपकु दीजै।।
महापुरूष जु चलत ठौर तें। नहिं कछु चाहत काहु और तें।।
कृपन जु गृह–ममता करि बँधे। चलि न सकत दृढ़ फंदनि फँधे।।
केवल नितको करन कल्यान। दिखियत नहिं न प्रयोजन आन।।
ज्योति सास्त्र अति इन्द्री ज्ञान। ताकें तुम ही बीज निदान।।
पूरब जनम सुभासुम करै। जा करि जन्तु जगत संचरै।।
आगें होनहार पुनि होई प्रभु तुम सम्यक जानत सोई।
नामकरन लरिकनि कौ कीजे। कौन सुविधि मोहिं आयसु दीजै।।
गर्ग कहौ अहो सुनि ब्रजराज। यातें और न उत्तम काज।।
ऐ परि हौं गुरू जदू बंस कै। मोहिं बड़ौ डरूवा कंस कौ।।
सुनि पावै नीचनि कौ राइ। तौ यह होइ बडौ अन्याइ।।
नंद कहत तौ ऐसै करौ। गृह मधि गुपित ठौर अनुसरों।।
नैंक स्वस्तिवाचन करिलीजै। लरि कनि कछुक नाँउ धरि दीजै।।
गरगहि अरग गए लै नंद। अगिन होत्र करि मंदहि मंद।।
प्रथम हि रोहिन–सुन के नाम। धरन लगे द्विज सब गुनधाम।।
याकौ एक नाम संकर्षन। जन हर्षन सबके मन–कर्षन।।
बहुरयौ राम परम अभिराम। अति बलतें कहियै बलराम।।
अब सुनि अपने सुत के नाम। अद्‌भुत–अद्‌भुत गुन के धाम।।
इक श्रीकृष्ण नाम अस है है। ससि सम सुधा सवनि परत्तै है।।

कबहुँ पूर्ण–जन्म सुत तेरौ। पूत भयौ हो बसदेव केरौ।।
तातें बासुदेव इकु नाम। पूरन करि है सब के काम।।
याके अवर जु नाम अनंत। गनत गनत कोउ लहै न अंत।।
डरे जु जननी डाँट तें साँट निरखि पुनि हाथ।
मुख मै बिस्व दिखाइकै बचे नाथ इहि साथ।।

नवम अध्याय :

अब सुनि मित्र नवम अध्याइ। जामें अद्‌भुत अद्‌भुत भाइ।।
जोगीजन मन ढूँढत जाकौं। बाँधैगी हठि जसुमति ताकौं।
इक दिन भोर उठी नँदरानी। आपुहि मंजु मथानी आनी।।
थोरोई दूध पूत के हितही। राखति जसु जमाइ निस नितही।।
और जु नंद महर घर दह्यौ। कितकु आहि कछु परत न कह्यौ।।
प्रेरी जहाँ अनेकनि दासी। मंथन करैं सब कमला सी।।
ठाँ ठाँ मधुर मथानी बजैं। जनु नव आनँद–अंबुद गजैं।।
मथत जु आय तहाँ नँदरानी। सोभा नहिं कछु परति बखानी।।
सुंदर गौर बरन तन सो है। औटे कंचन रँग कौ है।।
मृदुल उजल गंगाजल पहिरें। उठत जु तन तें छबि की लहरें।।
पृथु कटि कल किंकिनि की बाजनि। बिलुलित बर कबरी की राजनि।।
नेत की करखनि बदन की हरखनि। तैसियै सिर तैं कुसुम सुर बरखनि।।
आनन पर श्रमकन कत बनी। कनक कमल जनौं ओस की कनी।।
किधौं चंद मधि प्रगटे मोती। आये जानि आपनो गोती।।
लाल के बाल चरित कछु गावति। भाग भरी सब राग रिझावति।।
लगी जु भूख कुँवर बर जगे। मींजत नैन अलस रस पगे।।

दशम अध्याय :

अब मुनिलै दसऔं अध्याई पूत शुक जु परीछित राइ।।
हो प्रभु परम भागवत नारद। जाकों दरस सहज भव–पारद।।
तिन करि कवन कर्म अस कन्यौ। जाकरि इनहिं क्रोध संचन्यौ।।
बोले बिहँसि व्यास के तात। सुनि नृप सत्तम मोते बात।।
सुत कुबेर के अति अभिराम। नलकूबर मनिग्रीव सुनाम।।
गंगा मधि ललनागन लियें। बिहरत हुते बारूनी पियें।।
तहँ है नारद निकसे आइ। बीना कर आपुने सुभाइ।।
तिहिं दिखि तिय सबल लज्जित भई। चटपट अपुने पट गहि गई।
ये दोउ नगन मगन अस भये। मद बाढ़े ठाढ़े रहि गये।।
कहन लगे मुनि तिन तन चाहि। जग में बहुत अवर मद आहि।।

ऐ परि यह श्रीमद है जैसो। बड अनर्थकर अवर न ऐसो।।
मति–भ्रंसक सब धर्म बिधंसक। निरदै महा बिरथ पशु हिंसक।।
नस्वर हेह सबै कोउ जानें। ताकहुँ अजर अमर करि मानें।।
रच्यो पाँच भौतिक यह देह। अंत सबै क्रिमि, विष्ठा खेह।।
जाकहुँ कहत कि यह तन मेरौ। तामैं बहुरि बहुत अरझेरौ।।
माँ कहै मेरौ, पितु कहै मेरौ। मोल लयो सुकहै मो चेरौ।।
अन्नन कौ दाता कहै की मेरौ। स्वान कहै अवर न किहि केरौ।।
ऐसें साधारन यह देह। तिन सों करिकै परम सनेह।।
भूत द्रोह आचरत न डरैं। धमक धमक नरकनि में परैं।।
श्रीमंद करि जु अंध है जाइ। दारिद अंजन बड़ौ उपाइ।।
तन दुर्बल मन दुर्बल रहै। अपनी उपमा करि सब चहै।।
कंटक चरन चुम्यो होइ जाके। और को दुख हिय कसकै ताकैं।।
जाके कंटक चुभ्यौ न होइ। का जानै पर पीरहि सोइ।।
पुनि मुनि बोले करूना भरे। क्यों तुम द्रुम से रहि गये खरे।।
तब अति डरे दौरि पग परे। परम दयाल दया अनुसरे।।
मथुरा मंडल गोकुल जहाँ। अद्रुन द्रुम तुम उपजहु तहाँ।।
नंद के नंदन बालक है हैं। बँधें उलूखल तुम को छ्वै हैं।।
मो प्रसाद तें पुनि धर ऐ हौ। दुर्लभ बस्तु सुलभ ही पैहौ।।
आयु तनक बंधन बँधं तासौं कछु न बसाइ।
दृढ़ बंधन संसार तें गुह्यक दिये छिडाइ।।

एकादश अध्याय :

अब सुनि गयारहौं अध्याइ की कथा। सुंदर शुक मुनि बरनी जथा।।
सुनि द्रुम सबद सवै ब्रज डरयौ। कहत कि इहाँ ब्रज जनु परयौ।।
नंदादिक तहाँ धाये आये। द्रुमनि निरखि अति बिस्मय पाये।।
पतन कौ कारन लगे बिचारन। प्रबल पवन नहिं नहिं बड़दारन।।
कारन कवन जु ए तरू परे। दिखि सब लोक अचंभे भरे।।
तिनसों कहन लगे सिसु बात। अहो महर यह तेरौ तात।।
आपुन इनके अंतर वरयौ। ऊखल तनक तिरीछो करयौ।।
दये उखारि दुवै द्रुम भारे। ए हम सिगरे देखन हारे।।
निकसे उभय पुरूष दुख भरे। या ढोटा के पाइनि परे।।
ऐसे जब उन लरिकनि कह्यौ। किनहू गह्यो किनहू नहिं गह्यौ।।
तिन बिच हरि बैठे छबि ऐना। डरपे सिसु मृग के से नैना।।
अति बत्सल रस भरि ब्रजराइ। द्रुमनि मध्य तें लये उठाइ।।
बंधन छोरि छती लपटाये। पौंछत सुंदर अंग सुहाये।।
जसुमति पर ब्रजराज रिसाइ। ऐसे सिसु कोउ बाँधत माइ।।

पुनि बिहरन लागे ब्रज महिमाँ। दैंन लगे सुख अपनन कहियाँ।।
कहुँ ब्रज नवल बधू नंदलालहिं। पकरि नचावहिं मैंन बिसालहिं।।
जे जे बिकट मान उपजावहिं। ते ते सहज नाच दिखरावहिं।।
रीझि रीझि ब्रज की बर बाला। वारहिं भूषन कंचन माला।।

इतिबत्सासुर लीला :

पुनि इक दिन बल अरू बलबीर। सखन सहित गये सरवन तीर।।
पहिले पानी बछरन दियो। ता पाछें आपुन पय पियो।।
ता ढिग महाअसुर इक आइ। बैठ यौ बक कौ बेषु बनाइ।।
कहन लगे बक होत न ऐसो। गिरितें गिरियौ श्रृंग होइ जैसो।।
ऐसे ठाढ़े करत विचार। धाइ आइ गह्यो नंदकुमार।।
सुंदर कोमल अंग सुहायौ। लीलि गयो कछु मरमु न पायौ।।
जरन लग्यौ जु कंठ संठ कौ। बिकल भयों मन बक ठंठ कौ।।
अबकै डारि चुंचु की मारि। तब लीलों यह जीय बिचारि।।
डारिकै उगिलि सुबल्लभ बालक। जगपालक ऐसेइ घर घालक।।
डरिकैं बहुरि ग्रसनि को गयौ। तिहि छन अद्‌भुत कौतुक भयौ।।
रबकि कै रंचक बदन पसारयौ। पकरिकै चंचु फारिही डारयौ।।
फटत पटेरहि लागत बार। अस कछु कीनों नंदकुमार।।
जय जय धुनि अंबर में भई बरषत फूल सूल मिटि गई।
धुरि गये सखा प्रान सब पाये। हँसि हलधर हू कंठ लगाये।।

द्वादश अध्याय :

अब सुनि लै द्वादस अध्याइ। महा सर्प बपु धरि अघ आइ।।
गिलिहै बाल बच्छ वह नीच। हतिहैं हरि तिहि बुढ़ि गल बीच।।
इक दिन बन–भोजन मन आनि। सोए सुंदर सारँग पानि।।
बेनु बजाइ जगाये ग्वाल। सुनत उठे सब तेही काल।।
जैसें कमल अमोदहिं पाइ। ठाँ ठाँ उठत मधुप अकुलाइ।।
बन भोजन जु कान्ह मन आनी। बेनु बजावति ही तें जानी।।
सुंदर बिंजन सुंदर छीके। काँधनि धरि लिये लागत नीके।।
अपने बछरनि लैलै आये। कान्ह के बछरनि आल मिलाये।।
नंद सुवन सों मिलिके चले। लागत सबै मैन से भले।।
तिन मधि मोहन अति सुखदाइक। नग जराइ मधि ज्यौं मधि नाइक।।
छीकनि तें व्यंजननि चुरावत। ते तौ इहि कछु और बनावत।।
हँसि हँसि कहत कि देखि कन्हैया। कहा दयौ है याकी मैया।।
और खेल खेलत छबि पावत। महुअरि बेनु बजावत गावत।।

बगनि खिजावत खगनि खिजावत। केइ खग की छाया गहि धावंत।।
केइ मधुमत मधुप सँग गावत। केइ मिलिकल कोकिल कुहु कावत।।
केइ मदमत्त मोर ज्यों नचैं। तैसेंहि नचैं तनक नहिं बचैं।।
केइ बनचर के सनमुख जाइ। आवत तैसेहि ताहि खिजाइ।।

O

तदनंतर अध नामा दुष्ट। आयौ सुख दिखि सक्यौ न नष्ट।।
बक अरू बकी दुहून तें छोटौ। ऐंपरि यह उन तें गुन मोटौ।।
जाके डर सुर थर–थर डरैं। जद्यपि अमृत पान हू करैं।।
तदपि कहत जब लौं अध जीवै। तब लौं कहत अमी को पीवै।।
सहज नृसंस कंस पुनि प्रेर्यौ। गोप–बंस–अवतंसहि नरयौ।।
हरि तन चित्तै कहत काकोदर। यकि उदर दोउ मेरे सोदर।।
तातें भगिनि भइया की ठौर। पठऊँ इहिं अरू ये सब और।।
जो मैं इतैं तिलोदक करे। ब्रज माँझ के सहजहिं मरे।।
प्रान गये ज्यों बहु दाम के। देह रहे तौ किहि काम के।।
इहि बिधि अध बिचार पर परिकै। महा बड़ौ अजगर बपु धरिकै।।
इक जोजन बिस्तर बिस्तरयौ। आनि नीच मग बीचहि परयौ।।
अध कौ अधर धरा पै धरयौ। उर्द्ध अथर जलधर मैं करयौ।।
बालक चके चाहिकै ताहि। कहन लगे कि कहा यह आहि।।
कोउ कह कछु वृंदावन सोभा। तापर भैया अजगर ओभा।।
है तौ यह परवत की दरी। अजगर आनन आभा धरी।।
श्रृंग जु मनौ बने अहि दंत। निबिड़ तिमिर सुबदन को अंत।।
मधि को मगु जनु रसना आहि। लपकति भिया लहत हौ ताहि।।
कर्कस पवन गुहा तें ऐसो। आवत अजगर मुख तें जैसो।।
दव जु लगी कछु लगति न रोचन। ताते राते जनु अहि लोचन।।
कोउ कहै तुमरौ करि है कहा। यह तो केवल अजगर महा।।
हमहिं सबन ग्रसिबे कें काज। मग में आनि पर्‌यो सजि साज।।
कोउ कहै जो है अजगर महा। तौ यह महरौ करिहै कहा।।
नंद–सुवन ऐसौं कछु करिहैं। बक लौं यहौ नीच को मरिहैं।।
सुंदर बदन निरखि मुद भरे। दै दै करतारी तहँ बरे।।
अलबेले ईश्वर नँदनंदन। बालक नृप से सब जगबंदन।।
जब सब अजगर मुख संचरे। तब ह्याँ हरि विचार पर परे।।
यह तौ सति ही अजगर महा। बरजै नाहिंन कियौ हम कहा।।
प्रभु पछतात अनमने भये। अपने कर अजगर मुख दये।।
अब ह्याँ कौन जतन अनुसरौं। इहि मारौं अपने न उद्धरौं।।
आइ गई ईश्वरता ऐसें। बालक नृप के रक्षक जैसें।।

ब्रजपति–सुवन तनिक मुसुकाइ। पैठे ताके आनन जाइ।।
अंबर माँझ अमरगन जिते। देखत हैं धन ओटनि लिते।।
हाहाकार परे अति डरे। कहत कि अब सिगरे हम मरे।।
अजगर तुंड तमक जब नयौ। तिहि छन अद्‌भुत कौतुक भयौ।।
नैसुक सिसु मुख द्वारें खरौ। रूकि गयो ताको सिगरौ गरौ।।
भयो निरोध प्रान घट घुटयौ। ब्रह्मरंध ताकौ तब फुटयौ।।
निकसि जोति तब अंबर गई दामिनि सी फिरि ठाढ़ी भई।
जब लगि नंद–सुवन गोविंद। बछरा अरू ब्रज बालक वृंद।।
अमृत दृष्टि करि सींचि जिवाइ। लै आये बाहिर इहि भाइ।।
तब लौं रही गगन में जोति। सब दिसि जगमग जगमग होति।।
उलका ज्यों तहँते उलटानी। आनंद भरि हरि माँझ समानी।।
तदनंतर सुर मुनि सब हरषे। जय–जय करि पुनि पुहुपनि बरषे।।
रटन लगे गंधर्व जितेक। नटन लगीं अपछरा अनेक।।
कोलाहल सुनि निज लोक में। ब्रह्मा आयौ ब्रज ओक में।।

नंद हियें धरि नेह भरि यह द्वादस यें अध्याय।
अध से मल निर्मल जहाँ परस कृष्ण पदलाइ।।
यह द्वादस अध्याय जो सुने तनक चित्तलाइ।
अध न रहे अध ज्यों सुनत नंद अनध है जाइ।।

त्रयोदश अध्याय :

अब सुनि लै तेरहौ अध्याइ। हरिहै बिधिबछ–बालक आइ।।
श्री हरि तैसेंई फेरि बनाइ। खेलिहैं एक बरष इहि भाइ।।
जातैं कृष्ण–कथा रसमई सुनत हौं छिनही छिन करि नई।
जिन के उपज्यौ हरि–रस–भाउ। हे नृप ! तिन कौ यहै सुमाउ।।
रति सौं कृष्ण–कथा अनुसरैं। छिन छिंन प्रति नूतन सी करैं।।
जैसे लंपट बनिता बात। सुनत सुनत कबहुँ न अघात।।
अब सुनि सावधान है कथा। बरनन करौ आहि यह जथा।।
जद्यपि गाप्य रहै मो हिये। कहौं तदपि तव हित के लिये।।

❍

बछरा जब बन धन अनुसरे। दिखि सब ग्वाल–बाल भय भरे।।
तिन कहँ कहत कमल–दल लोचन। अद्‌भुत सिसु भय के भय मोचन।।
अहो मित्र, तुम भोजन करौ। अपने मन तिनकौ जिनि डरौ।।
बछरनि हम ले ऐहैं अबै। बैठे रहौ लहौ सुख सबै।।
ऐसें कहि बन गहबर कुंज। तम करि भरी दरी तहँ पुंज।।
ढूँढत बच्छ बिस्व के नाथ। भोजन कवल लियें ही नाथ।।

ऐसैं माँझ कुबुधि बिधि आयौ। अब तैं अधिक भयौ अनभायौ।।
कैसैं ए ईश्वर इमि कहै। तिन की महिमाँ चितयौ चहै।।
कच्छ तैं बच्छ लये सब आइ। जब लगि हरि वै देखन जाइ।।
तब लगि इत तैं लै गयौ बाल। अकिले रहि गये मोहनलाल।।
दुहुँवनि बन घन ढूँढन लगे। डोलत प्रेम–पगे, रँगमगे।।
पुनि हँसि परे कछू रिस भरे। इते काम इनि बिघना करे।।
जौ अब हम इत चुप कै रहैं। तौ इन की जननी कहा कहैं।।
अरू जौ उन हीं कौं फिरि आनैं। तौ बिधि मो महिमा कहा जानैं।।
हँसन लगे हरि सुंदर स्याम। कही कि ये सब बिधि के काम।।
हमरी महिमा देखन आयौ। होउ सबै अब वाकौ भायौ।।
जितक हुते बछ–बाछी–बाल। आपु ही भए कुँवर नँदलाल।।
वैसेई कंबर, अंबर, हार। वैसैंई सहज अहार बिहार।।
वैसैंई नाम, दाम गुन नीके। बेसैई श्रंग, बेनु दल छीके।।
वैसीयै हँसनि, चहनि पुनि बोलनि। वैसियै लटकनि, मटकनि, डोलनि।।
नूपुर, कंकन, किंकिनि, माल। सबै भये ईश्वर नँदलाल।।
बेद जु बदत बिस्व यह जितौ। सबै बिष्णुमय् भासत तितौ।।
ऐसें नाहिन परतु है पायो। सो यह अर्थ प्रगट दिखरायौ।।

❍

वेई बच्छ स्वच्छ, ब्रजबाल। जमुन–कच्छ खेलत नँदलाल।।
तिनहिं निरखि उत धायौ गयौ। वैसैंई दिखि अति विस्मय भयौ।।
तैसैंई उत के तैसैंई इत के। कहत कि सत्य आहिं धौ कितके।।
पुनि जौ फिरि आवै इहि ठौर। ह्वै रही कछू और की और।।
बालक–बच्छ इहाँ हैं जिते। बेनु बिषान, बेत्र दल तिते।।
मुक्तावलि, गुंजावलि जु ही। नूवुर, किंकिनि, कंकन सुही।।
बहुरि अगाध बोध श्रुति बोलै। सोबछ–बालक ढूँढ़त डोलै।।
परयौ धरनि चरनन पर जाइ। सब मुकटन करि परसत पाइ।।
ज्यौं ज्यौं वह महिमा उर फुरै। उठि उठि पद पंक्रज सों धुरै।।
श्री हरि कछु न कहत रिस भोये। हमरे खेल आनि इन खोये।।
हरैं हरैं उठि हरि तन चहै। टपकि टपकि नैनन जल बहै।।
थर थर कंपत सकल सरीर। कमल लिये ठाढ़े बलबीर।।
नमित बदन दृग भरि रहे पानी। गदगद कंठ फुरै नहिं बानी।।
सापराध बिधि निवटहि डरयौ। अंजुलि जोरि स्तुति अनुसरयौ।।
बच्छ–हरन, बिधि–बुधि–हरन, सुनै जु इहि अध्याइ।
'नंद' सकल मंगल करै, जग दंगल मिटि जाइ।।

चतुर्दश अध्याय :

एकौ कवल न पावन पायौ। भैया तो बिन जाइन खायौ।।
हौं हूँ तौ तुम बिन नहिं खायौ। हाथ कवल वैसैं ही आयौ।
आवहु बैठहु भोजन करैं। इत ये बच्छ कच्छ मैं चरैं।।
अब ऐसैं बोले ब्रजबाल। बिहँसन लगे नंद के लाल।।
मंडल करि बैठे पुनि आछे। जैसैं बान बन्यौ हो पाछे।।
अति रूचि सौ मिलि भोजन करयौ। इहि बिधि वा बिधि को मद ह्रयो।।
सीथ जु परें दही–रस भरे। सदन जाइ बिधि लालच खरे।।
काक न भयौ फिरयौ इतरातौ। चुनि–चुनि सुंदर सीथन खातौ।।

इति वत्सहरण लीला

चले धरन अजगर दरसते। हिय सरसते, सुखनि बरसते।।
गातनि धात के चित्र बनाये। सीसनि मोर के चंद सुहाये।।
बेनु सृंगदल ललित बजावत। नव नव गीत पुनीतन गावत।।
गोपी दृगन के उत्सव रूप। ब्रज आये नँद सुवन अनूप।।
बीत्यौ एक बरष जिहिं काल। ब्रज में कहत भये ब्रजबाल।।
आजु जु एक नंद के लाल। मारयौ ब्याल महा बिकराल।।
चित दै सुनै जो चतुर कोउ, चतुर दसौं अध्याइ।
गुनत चतुरदस भुवनतैं, परै परम गति जाइ।।

पंचदश अध्याय :

अब सुनिलै पंद्रहों अध्याइ। चलिहैं कान्ह चरावन गाइ।।
बन की स्तुति कछु श्री मुख करिहैं। धेनुक हति ब्रज सुख बिस्तरि हैं।।
मंडित वय पौगंड सुदेस। छिन छिन ससिलौं बढ़त सुबेस।।
खेलत ललित खेल बन महियाँ। चलत चहन लागे परछहियाँ।।
गोपालनि संमत जब जाने। द्विज बर बोलि नंद जू आने।।
भल मुहुर्त लै दान दिवाइ। पठए कान्ह चरावन गाइ।।
जसु लगि मंगल गीत गवानन। नंद चले बन लौ अवरावन।।
सखा साथ, बल भैया साथ। राजत रूचिर मंगली माथ।।
बीच अछत सु कवन छबि गनौ। मोती जमे चंद मधि मनौं।।
आगे करि दै गोधन–बृंद। बदन चूमि ब्रज बगदे नंद।।

इति बन बिहार लीला

खेलत खेलत खेल सुहाये। गोधन लै गिरि गोधन आये।।
सखा एक श्रीदामा नाम। कहन लग्यो कि अहो बलराम।।
हो धनस्याम परम अभिराम। दुवौ अतुल बल छबि के धाम।।
इत तैं निकट ताल बन महा। मिष्ट मिष्ट फल कहियै कहा।।

यह दिखि उन कौ परिमल आवत। चपन्यौ हमरे चितहि चुरावत।।
भारी भूख लगी है चलौ। भैया बहुत मानिहैं भलौ।।
ए परि तहँ इक धेनुक नाम। बड़ौ बाम ताकौ बिश्राम।।
जाके डर तहँ जात न कोई तछिन भछन करि डारै सोई।
सुनतहि चले सु लागत भले। ऐसे दुष्ट किते दलमले।।
आगे भये बिहँसि बलराम। पाछे करि लये मोहन स्याम।।
धसे बिसाल ताल महँ जाइ। मत गयँद ज्यौ पैठत आइ।।
दिये जुताल सनाल हलाइ। भूखे ग्वाल जिये सब खाइ।।
सुनि कै आयौ धेनुक धाइ। धर डगमगत धरत यौं पाइ।।
गर्दभ सब्द करत इहि भइ। सुर डरपे कि लिये हम आइ।।
अति बल सौं बल की ढिंग गयौ। पछिले चरन चलावत भयौ।।
ते पद तबहिं पकरि हैं लये। पकरत प्रान निकसि हैं गये।।
फेरि फेरि ऐसैं गहि डार्‍यौ। ऊँचे हुतौ सु ता करि झारयौ।।
आ खर आये रिस भीने। तेऊ सबै डेल से कीने।।
परे सु ताल बिसाल सु ऐसैं। प्रबल पवन के मारे जैसैं।।
खैलु सों खेलि छिनक में चले। कहत हैं ग्वाल भले जु भले।।
ब्रज कहुँ आवत अति छबि पावत। बालक बृंद सु कीरति गावत।।
उपर सुर सुमन सु बरषावत। मुदित भये दुंदुभी बजावत।।

इति धेनुंक मर्दन लीला

पुनि इक दिन बिन ही बलराम। सखनि सहित बन गयने स्याम।।
पसु अरू पसुप तृषित अति भये। चले चले कालीदल गये।।
बनमाली आवत हे षाछें। बन छवि देखत देखत आछें।।
तब लगि ग्वाल–बाल अरू गाइ। महा गरल जल पीयौ जाइ।।
जौ पाछे आवहिं नँदलाल। मरे परे सब गोधन–ग्वाल।।
अमृत–दृष्टि करि सींचि जिवाये। उठे सबै अति बिस्मय पाये।।
कहन लगे कि मरे हे सबै। इहि नँदलाल जिबायै अबै।।
तब बन माली सब गुनसाली। काठि दियौ तिहि दह तैं काली।।

षोड्ष अध्याय :

अब सुनिलै षोडसों आध्याइ। कीनी प्रश्न परिक्षिछत राइ।।
हो प्रभु वह दह महा अगाध। तरल गरल करि भरयौ असाध।।
कमल तें अति कोमल बनमाली। तहँ ते कैसे काढ़यौ काली।।
अरू तहँ बहुत जुगनि कौ कह्यौ। सर्प अजलचर क्यों जल रह्यौ।।
गोप वेश श्रीकृष्ण चरित्र। अति सरूप अरू परम पवित्र।।
निरवधि मधु की धारा आहि। सु को जु तृषतें पीवत ताहि।।

हरिलीला– रससिंधु हिलोले। मंद मुसकि तहँ श्री सुक बोले।।
जमुनहि मिल्यौ निकट ही महा। अति अगाध हद कहियै कहा।।
विष की आगि लागि जल जरै। उड़ते खग जहँ गिरि गिरि परै।।
इक जोजन के थिर चरजंत। जरि जरि मरि मरि गये अनंत।।
जे वृंदावन जोग्य न हुते। ते सबविष–जल जवाला हुते।।
ताही ढिग इक मृदुल कदंब। सो है सक्यौन विष को अंब।।
या पर कृष्ण–चरन परसिहैं। इत तें अहि दुष्टहि करसिहैं।।
जा कदंब की भावी ऐसैं। विष–जल परसि सकै तिहि कैसैं।।
कान्ह कह्यौ कि हमारी जमुना। क्यों पुछियै विष भरी अमुना।।
सरितहि सुद्ध करन कलमले। छबि यों कहि कदंब ढिंग चले।।
किंकिन सो कटि पटहि लपेटि। कुटिल अलक मुकुट मैं समेटि।।
चट दै तिहि कदंब पर चढ़े। छाजत ता छिन अति छबि बढ़े।।
जिहिं जल छुवत जात जन डरे। तिहिं जल कुँबर कूदि ही परे।।
बन बारन ज्यौं जल मैं धसरै। सत सत धनु चहुँ दिसिपय पसरै।।
अति अधम सुनि काली डरयौ। ब्रज परयौ कि गरूड़ बल करयौ।।
अरग अरग आयौ रिस भरयौ। कोमल कुँवर दिष्टि–पथ परयौ।।
नूतन धन सम सुंदर स्याम। तड़िदिव पीतबसन अभिराम।।
धन इव, तड़िदिव उपमा एंसैं। साखा बिन ससि सुझै न जैसैं।।
बिहरत बिभु अपने रस रंग। ईश्वरता कछु नाहिंन संग।।
ताकौ कह जानै यह नीच। लोचन भरे महा तम कीच।।
अरून कमल से कोंमल पाइ। डसत भयौ दुरात्मा आइ।।
लपटि गयौ पुनि सिगरे गात। रोष भरे दृग अनल चुचात।।
ऐसैं जब निरखे ब्रजबाल। बाइ, वृषभ, बछ, बाछी, बाल।।
मुरझि परे ठाँ ठाँ सब ऐसैं। सुंदर तरू बिनु मूलहि जैसैं।।
ब्रज में होन लगे उत्तपात। असुभ सूचने फरकें गात।।
भूमि कंप नभ ते उडु गिरे। अवर असमुन निरखि थरहरे।।
कहत कि आज राम बिनु स्याम। बन जु गये कछु बिगरयौ काम।।
अति कलमले बिरह दलमले। बाल–बिरद सब कानन चले।।
तिन सों कछु न कहत बलदेव। जानत हरि भैया के भेव।।
चरन–सरोज–खोज ही लगे। जिन मैं सुभ लच्छन जगमगे।।

०

दह मैं दिष्टि परे वनमाली। लपटि रह्यौ तन कारौ काली।।
जौ बलभद्र बीच नहीं परे। तौ सब जन जल ज्वाला जरै।।

०

ब्रज अनन्य गति दिखि बनमाली। गहि डारयौ तब कारो काली।।
ठाढ़ौ भयौ भयानक भारौ। इक सत फन, बरियारौ कारौ।।

फन फन द्वै द्वै जीभ कराल। लपलप करै निपट बिकराल।।
डारत बार बार फुंकार। छुटत जु गरल अनल की झार।।
द्वै सत लोचन राते ऐसैं। मॉडे पकने भाँडे जैसैं।।
तिन तैं अगिनि की चिनगी परैं। ठाढे इहाँ तीर के जरैं।।
ऐसैं काली सौं बनमाली। खेलन लगे सकल गुनसाली।।
वाम भाग दिये तिहि उर मेलत। जैसें गरूड़ सर्प सौं खेलत।।
बुझि गयौ ओज उरग कौं एसैं। नागदवन के देखत जैसैं।।
पुनि ताके फन पर चढिगये। सकल कला गुरू निर्तत भये।।
सौहैं नंद सुवन तहँ ऐसैं। सेस उपर नाराइन जैसैं।।
तिहि छन ब्रज गंधर्व जितेक। लै लै ताल मृदंग अनेक।।
सुधर सुधर जे सुर लोक के। सिव लोक के विष्णु ओक के।
अद्‌भुत नर्त्तक नहिं कछु कचे। सर्प फननि पर तांडव नचे।।
फननि तें निकसि किसि मनि परै। पगनि में झलमल झलमल करै।।
तब बोले ब्रजकुमार। यह बन हमरौ नित्य बिहार।।
अब तू रमनक दीपहि जाहि। बा गरूड़ तैं नैंकु न डराहि।।
मो पद चिह्वि चिह्वित भयो। करि आनंद, सबै भय गयौ।।
काली मर्दन लाल की, लीला सुनैजु कोइ।
महाव्याल कलिकालतैं, तिहि न तनक भय होइ।।

सप्तमदश अध्याय :

सो वह काली, हरि बनमाली। काढ़ि दियौ करि कीर्ति बिसाली।।
सुत–कलत्र लै भरि अनुरागं रमनक गयौ नाग बडभाग।।
तब नंदनंदन दहतें निकसे। मुसकत नवल कमल से बिकसे।।
बन्यौ जु बदन सु को छबि गनों। दीनी ओप चंद मधि मनों।।
धाइ धुरि गइ जसुमति मैया। इत हँसि दौरि धुरयौ बल भैया।।
गोपी गोप, गाइ, बछ जिते। धुरि गये सुंदर अंगनि तिते।।
चलत सबनि के नैंननि नीर। जनु निकसी जल है उर पीर।।
आये ब्ऱज के द्विज अनुरागे। नंद सों कहन सबै यौ लागे।।
अगिनि पान, हरि–जान कौं, गान जु करिहै कोइ।।
महा झार संसार–झर बहुरि न परिहै सोइ।।

अष्टादश अध्याय :

लौकिक लरिकनि की सी नाँई खेलत खेल जगत के साँई।
असुर प्रलंब गोप के बानक। आनि मिल्यौ तिन माँझ अचानक।।
नंद सुवन तब हीं पहिचान्यौ। दुष्ट न दुरै दई कौ हान्यौ।।

ताकौं हतन हिये में आन्यौ। तब हरि और खेल इक ठान्यौ।।
ताकौं हतन हिये में आन्यौ। तब हरि और खेले इक ठान्यौ।।
कहत कि सुनहु मिवा ही हीरी। अवर खेल खेलहु बटि भीरी।।
द्वै द्वै ह्वै ह्वै आबहु ऐसैं। बल अरू अबल जानि कै जैसैं।।
जो हारे सो लेइ चढ़ाइ। बट भाँडीर तीर लै जाइ।।
भले भले कहि किकले हँसे। ललित कटिनि झट दै पट कसे।।
नाइक भये स्याम बलराम। आवन लागे धरि धरि नाम।।
कोउ लेइ चंद, कोउ लेई सूर। कोउ खजूर, कोउ लेइ बबूर।।
श्रीदामा बृषभादिक ग्वाल। बल दिसि गये बजावत गाल।।
जमुना पुलिन ललित चौगान। खेलन लगे जान–मनिजान।।
लै गये मारि टोल बल प्यारे। कमल–नयन दिसि के सब हारे।।
तिन पर चढ़ि–चढि बल ओर के। चले चपल आपनी जोर के।।
श्रीदामा हरि पर चढ़ि चले। को ठाकुर जु खेल मैं रले।।
बट भंडीर तीर लगि चढे। लै गये बाल केलि रस बढे।।
कान्ह कुँवर की दृष्टि बचाइ। असुर अवधि तें आगे जाइ।।
अपने रूपहि आश्रित भयौ। तब ही अंबर लौं बढ़ि गयौ।।
ता छिन भयौ भ्यानक भारौ। पहिरे कंचन–भूषन कारौ।।
अष्टादस अध्याइ इह, सुनै तनक मन लाइ।
ताकै पाप प्रलंब जिमि, सब मरि जाइ सुभाइ।।
अष्टादस अध्याइ कौ फल न कछू कहि नंद।
अपने ही हिय रहन दै, चरित सहित ब्रजचंद।।

एकोनविंश अध्याय :

अब सुनि उनइसवौं अध्याइ। स्याम–राम मुंजारन जाइ।।
गोप–गाइ–गन गहबर डरतें। लैहैं सखि दवानल झरतें।।
बृंदाबन सब छबि कौ धाम। सखन समेत स्याम बलराम।।
बिहरत अति आसक्त जु भये। गोधन निकसि बनांतर गये।।

❍

हरि सनमुख आवति उमहि, उज्जल गोधन–नार।
सुमुदहि मन हुँ मिलन चलि, गंग भइ सत धार।।
ऐसेहिं मॉझ दवानल लग्यौ। वृष–रबि–रस्मि परसि जगमग्यौ।।
प्रबल पवन लगि अति झर झषटै। लतनि सौं लपटि द्रुमनि सौं लपटै।।
जरि जरि ताल तमाल जु लटकैं। पटके बाँस फॉस–तृन चटकैं।।
डरे गोप–गोधनगन सबै। आये नंद–सुवन ढिग तबै।।
ज्यौ कोऊ काल ब्याल तें डरै। भजि हरि–चरन–सरन अनुसरै।।

कहन लगे कि अहो बलराम। हो श्रीकृष्ण कृष्ण घनस्याम।।
राखि लेहु हम बंधु तुम्हारे। जरत हैं सबै दवानल जारे।।
तब हँसि बोले मोहनलाल। मूँदहुँ नैन धेनु, बछ, बाल।।
सुनतहि नंदसुवन के बैन। झट दै सबहिन मूँदे नैन।।
जो देखहिं तौ बट भंडीर। ठाढ़े है सब ताके तीर।।
कहन लगे अति बिस्मय पाये। कित हम हुते, कितै अब आये।।
यह जु नंद कौ नंदन आहि। भिया मनुज जिनि जानहु ताहिं।।
देवनि मै ज लै गोधन बृंद। चले सदन ब्रज कदन–निकंद।।
आगें धरि लै गोधनबृंद। चले सदन ब्रज कदन–निकंद।।
मधुर–मधुर धुनि बेनु बजावत। बालकबृंद सु कीरति गावत।।
गोपीजन कौं परमानंद। भयौ निरखि बृजपति कौ चंद।।
जिन कहुँ जा बिनु इक छिन ऐसैं। बीतत कोटि कोटि जुग जैसैं।।
श्रीदामादि सखा जिते, जीतत खेलहु लागि।
ऐसी ठौर न सुधि परै, पियौ जात क्यौं आगि।।
सुनै जु कोऊ हरि चरित, उन बिंसत अध्याइ।
पाप न परसै 'नंद' तिहि, पदमिनि–ढल–जल अध्याइ।।

विंश अध्याय :

अब सुनलै बिसऔं अध्याइ। बर्नित जहँ द्वै रितु के भाइ।।
इक बरषा अरू सरद सुढार। बिहरत जहँ ब्रजराज–कुमार।।
प्रथमहिं प्रावृट प्रगटित तहाँ। सब जंतुनि कौ उद्भव जहाँ।।
छुभित जु गगन पवन संचरै। रबि अरू ससि कहुँ मंडल परै।।
नील बरन नीरद उनये। गरजि गरज़ि नभ छादित भये।।
जैसें सुगुन ब्रह्म यह जीय। सत, रज, तम करि आवृत कीय।।
अष्ट मास धर कौ जल जितौ। रस्मिन करि रबि पीयत तितौ।।
चारि मास पुनि निर्झर झरै। सब दुख हरैं, सुखन बिस्तरैं।।

शरद वर्णन-

सरद समै मनभायौ कानन। स्वच्छ सलिल अरू अनिल सुहावन।।
पानी पहुने से चलि बसे। सरनि मैं सरसिज छबि सौं लसे।।
ज्यौं जोगीजन–मन बहि परै। बहुरि जोग बल निर्मल करे।।
गगन के धन जल मल भुव पंक। जंतन की संकीरन संक।।
सरद हरत भयौ सहजहिं ऐसैं। कृष्ण–भक्ति–आश्रम दुख जैसैं।।
अपनौ सरबसु दै करि मेह। राजत भये सु उज्जल देह।।

सुत–बित–इच्छा परिहरि जैसैं। सोहत मुनि गतकल्मष तैसैं।।
गिरिबर निर्मल जल की धार। कहूँ स्रवत, कहुँ नहिं निज ढार।।
जैसैं ग्यान–अमृत कहुँ ग्यानी। देहि न देहि दया इस बानी।।

❍

सुनै जु उपमा सरद बर, यह बिसएँ अध्याय।
सरद समै के नीर जिमि, मन निर्मल ह्वै जाई।

एकविंश अध्याय :

अब सुनि इकईसों अध्याइ। सरद समै बृंदाबन जाइ।।
बेनु बनै हैं मोहनलाल। तिहिं सुनि सुंदर ब्रज की बाल।।
बरनन करिहैं परम पुनीत। अहो मीत ! सुनि गोपी–गीत।।

❍

हे सखि ! नैननि कौ फल यहै। सुंदर प्रियतम–दरसन चहै।।
तिन कहुँ फल पिय–दरसन फरे। छिन छिन बदन बिलोकन करे।।
योतें अवर नहिंन कछु परे। निसि–बासर अवलोकन करै।।
सो फल सखिन सहित बन धन में। बल समेत डोलत गोगन में।।
मधुर मधुर सुर बेनु बजावत। अनेक राग–रागिनि उपजावत।।
ताननि के सँग स्निग्ध कटाछैं। चलत जु मंद हँसनि के पाछै।।
जिन करि वह सुंदर मुख चह्यौ। नैननि कौ फल तिन ही लह्यौ।।

❍

'नंद' इकीस अध्याइ यह, ऐसैं सुनि चित चाहि।
प्रिया–बचन जिमि पीय के, सुनिबौई फलु आहि।।

द्वाविंश अध्याय :

बिबि बिंसत अध्याइ सुनि मित्र। बस्त्रहरन मनहरन पवित्र।।
'नंद' गोप ब्रज की दारिका। अद्‌भुत–अद्‌भुत सुकुमारिका।।
जदपि समस्त बिबाहित आहि। नंद सुवन के रूपहि चाहि।।
बिबस भइ पति परिहरि परिहरि। करत भइ व्रत हिय हरि धरि धरि।।
हिम रितु प्रथम मास अभिराम। देवी कात्यायनी जु नाम।।
तिहि पूजन जमुना तट जाहिं। तहाँ न्हाइ हविषा कछु खाहिं।।

❍

ब्रजतिय कों दै अपनपौ, कृष्ण कमल–दल–नैन।
जगपतिनी अपनी करन, चले अनुग्रह दैन।।
तिन के पति जु भक्ति–रति–हीन। करमनि विषय निपट लवनीन।।
तिन तन दृष्टि दिये मुसकात। बन के द्रुमनि सराहत जात।।

सखन सौं कहत कुँवर नँदलाल। अहो भोज, अहो भोज रसाल।।
अहो सुबल, अर्जुन, अहो अंस। अहो श्रीदामा, बंस अवतंस।।
देखहु ये कैसें द्रुम बने। छत्र से तने, सबै गुन सने।।
बिबि बिंसति अध्याइ यह, सुनै जु हित चित लाइ।
धनु देखे खग अवलि जिमि, पाप–अवलि उडि जाइ।।

त्रयोविंश अध्याय :

अब सुनि त्रयबिंसत अध्याइ। द्विज अरू द्विज पतिनिन के भाइ।।
ठाढे हुते जमुन के तीर। बल अरू सुंदर बर बलबीर।।
श्रीदामादि ग्वालनन जिते आरत भये छुधा करि तिते।।
वस्त्र हरन हित हरि के संग। देखन गोपबधुन के रंग।।
भोर बडे देखन उठि आये। भोजन कछू लेय नहिं आये।।
यातैं भूखे हैं ब्रजबाल। आये तहँ जहँ मोहन लाल।।
अहो बलराम अतुल बलधाम। हो घनस्याम, परम अभिराम।।
भूख लगी भिया उद्यम करौ। प्रान प्रहारनि पापिनि हरौ।।
जगपतिनीन अनुग्रह दैन। बोले तब हरि करूना–ऐन।।
इत ये जाग्यक जग्यहि करैं। स्वर्ग–काम–हित पचि पचि मरैं।।
तिन पै जाहु, न तनक डराहु। अरू जाचंग्या तैं न लजाहु।।
लीजहू जाइ हमारौ नाम। बल अरू, बल भैया घनस्याम।।
ये ठाढ़े दोऊ तरू तरैं। तुम सों कछू प्रार्थना करैं।।
जौ न देहिं, वे रिस भरि जाहिं। लाज हमहिं, तुमहिं तौ नाहिं।।
यों जब कान्ह कुँवर करि कह्यो। ग्वालन यों सभि नाहीं गह्यो।।
गये जग्य जहँ थर थर डरतै। बहुत भाँति दंडोतन करतै।।
अंजुलि जोरि डरात डरात। कहन लगे बिप्रनि सौं बात।।
हो भूदेव ! सुनहु इत हम पै। राम कृष्ण करि पठये तुम पै।।
भोर के आये गोधन संग। खेलत–खेलत अपेन रंग।।
घर तैं कछु भोजन नहिं लाये। भूखे हैं, अब तुम पै आये।।
श्रद्धा होइ तौ ओदन दीजै। धर्म बिरूद्ध करम क़त कीजै।।
कहँ यह हरि ईश्वर कौ जचिबौ। कहँ वह द्विजनि कौ मद कर मचिबौ।।
सुनत न सुनै, भरे अभिमान। अनु इन द्विजनि कै नैन न कान।।
पुनि जब भौंह अमेठन लागे। तब ये ग्वाल–बाल डरि भागे।।

ㅇ

ऐसैं लोक–रीति दिखराइ। पुनि बोले प्रभु मृदु मुसकाइ।।
अहो मित्र इन की तिय जिती। हम कौ नीके जानत तिती।।
देहमात्र वे बसति गेह में। सदा मगन अद्भुत स्नेह में।।

तिन पै जाहु, लजाहु न भिया। समझौगे तब तिन को हिया।।
सुभग–सुगंध, स्वच्छ बर–ब्यंजन। दधि–ओदन मोहन मन–रंजन।।
दैहैं जात, बिलंब न लैहैं। अपने करनि किये ही ऐहैं।।
जगपतिनिन के गृह है जहाँ। सकुचत सकुचत गवने तहाँ।।
राजति कंचन पीढनि बैठी। सोहति सुंदर भौह अमेठी।।
पहिरे अद्‌भुत मनिमय भूषन। अद्‌भुत बसन नहिंन कछु दूषन।।
डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन–जलज अँगन जनु फूले।।
द्विजपतिनिन के पाइनि परे। बातें कहत महा मुद भरे।।
हे द्विजपतिनिन ! कान्ह मनमोहन। आये इतहि गाइ–गन–गोहन।।
छुधित आहि कछु भोजन दीजै। सखनि सहित अघाइ सो कीजै।।
जिन के दरसन हित अरबरती। पतिन सौं बिनती करती अरती।।

❍

ते अच्युत ब्रजराज दुलारे। निकटहिं पाये प्रानपियारे।।
चारि प्रकार बिचित्र सुव्यंजन। भक्ष्य, भोज्य, चुस, लिह, मनरंजन।।
लै चली कंचन भाजन भरि भरि। सुत–पति तिनसौं अरि अरि लरि लरि।।
रोकि रहे सुत–पति अपनो सौं। मानत भई ताहि सपनो सौं।।

❍

तब बोले हरि हे बड़भागि। नीके आई भरि अनुरागि।।
ब्रतबंधन जे हुते तिहारे। ते तुम तिन से लघु करि डारे।।
मो दरसन हित इत अनुसरीं। उचित करी, अनुचित नहिं करी।।
जे जन निपुन जथारथ बेदी। स्वारथ अरू परमारथ भेदी।।
ते मो विषै भक्ति–रति करैं। फल न कछु रंचक चित धरैं।।

❍

'नंद' गोविंद की भक्ति बिनु, बड़ौ कहावत कोइ।
बुझे दीप कहँ ज्यौं बढ़ों, कहियत वह गति सोइ।
तियनिकी गतिहि निरखि द्विज जिते। पश्चाताप करत भये तिते।।
जो प्रभु निगम अगम करि गाये। जेंवन मिस ते हम पै आये।।
धिग धिग हम, धिग धिग ये क्रिया। धिग धिग विप्र–जन्म, धिग जिया।।
धिग बहुम्यता, धिग सब इषै। बिमुख जु कृष्ण अधोक्षज विषैं।।
यह प्रभु की माया मोहनी। जोगीजन–मन की सोहनी।।
जा करि हम द्विज है मद भरे। गुरू कहाइ सठ मठ मैं परे।।
त्रयबिसति अध्याइ यह, सुनि नीके सुख–कंद।
जप, तप, व्रत, संयम न कछु, कृष्ण–भक्ति बिनु 'नंद'।।

❍

चतुर्विंश अध्याय :

चतुर्विंश अध्याइ अनूप। सुनि हो मित्र ! परम सुख रूप।।
जामैं गिरि गोबर्धन पूजा। अति पुनीत अस गीत न दूजा।।
द्विजनि कों क्रिया गर्ब सब हरयौ। चाहत इन्द्रहि निर्मद करयौ।।
इंद्र को जग्य करन जब लगे। गोपी–गोप महामुद पगे।।
पूछत हरि अजान से भये। मंद मुसकि सु नंद ढिग गये।।
कहहु तात यह बात है कहा। भवन भवन आनंद है महा।।
कवन सु फल, काके उद्देस। कवन देवता सेस–सुरेस।।
मों मन अति अभिलाष है कहो। लरिका जानि चाइ जिनि रहौ।।
यह करनी तुम सास्त्र ते पाइ। ऐ किधौ परंपरा चलि आई।
कैधौं लोक रूढ़ है तात। मो सौ कहौ कहा यह बात।।
नंद जु कहत मेघगन जिते। मधवा के बसवर्त्ती तिते।।
अपनौ जीवन जग मैं बरषै। दुख करषै, सब जंतुन हरषै।।
यातैं यह जु पुरंदर आहि। जजत हैं जग्यनि करि नर ताहि।।
हम हूँ सब यह तिहि उद्देस। करत हैं ज्यौं रस देइ सुरेस।।
ता करि अर्थ, धर्म अरू काम। पावहिं सबै पुरूष विश्राम।।
परंपरा चलि आयौ धर्म। अहो तात नहिं अब को कर्म।।
जो नर याकौं नाहिन करैं। लोभ–द्वेष भय तैं परि हरैं।।
सो नर नहिं पावैं कल्यान। कहत हैं बेद पुरान सुजान।।
महानंद उपनंद सुनंद। निजानंद अरू बाबा नंद।।
ऐसौं करि जब सबहिन कह्यौ। सबके ईश्वर नाहिन गह्यौ।।
अहो तात यह देव न कोई करम की गति जु होइ सो होई।
कर्महि करि उपजत ये जंत। कर्महि करि पुनि सब कौं अंत।।
कुसल–छेम, सुख दुख, भै–अभै। होत हैं ये कर्मनि करि सबै।।
रज गुन करि उपजत हैं मेह। बरषत सब ठाँ नहिं संदेह।।
ऊसर पर, पर्वत पर परै। ते सब कहाँ जग्य है करै।।
हमने नहि पुर, पत्तन, ग्राम। बन, गिरि, नदी निकट विश्राम।।
जहँ सुख तहं हम बसहिं निसंक। करि हैं कहाँ पुरंदर रंक।।
एक कर हु जग्यन कौ जिती। करते सुंभ सामग्री तिती।।
और कछू जिय मैं जिनि आनौ। मेरौ कह्यौ सत्य करि मानौ।।
सुनतहि मोहन मुख की बानी। भले भले कहि सबहिन मानी।।
पूजन चले गोप गिरि गोधन। आगे करि लिये अपने गोधन।।
कंचन–सकटनि चढि चढि गोपी। चली जु तिन हुँ सबै विधि लोपी।।
सुंदर नंद–कुँवर गुन गावति। भाग भरी सब राग रिझावति।।
हरि धरि गिरि कौ सुंदर रूप। बैठे बिकसि सु निकसि अनूप।।

गिरि के द्वै द्वै रूप बताये। इक जड इक चैतन्य सुहाये।।
गोबरधन की मूरति दुसरी। श्री गोविंदचंद हित कुसरी।।
दिखि कै गोप महा मुद भरे। नमो नमो कहि पाइनि परे।।
चतुर्बिस अध्याइ यह, कोउ चतुर सुनि है जु।
जो दिन बीतें अनसुनें, तिन कौं सिर धुनि है जु।।

पंचविंश अध्याय :

अब सुनि पंचविंस अध्याइ। पंचविंस निर्मल ह्वै जाइ।।
सुनि कै इंद्र भरयौ रिस भारी। लाग्यौ देन सबहि कों गारी।।
धन–मद–अंध नंद की बेटा। सौ भयौ हमरे मख को मेटा।।
ताके बल करि मोसों घाती। रहि हैं गोप कहाँ किहि भाँती।।
ज्यों कोउ उरन पूँछ कर धारे। तर्‌यौ चहै सठ सिंधु अपारे।।
झूठ की जयों कोउ नाउ बनावै। मूढ तहाँ लै कुटँब चढ़ावै।।
ऐसैं गोपन कृष्ण भरोसें। महा बैर कीनौ है मोसें।।
अब दखौ कैसी सिखलाऊँ। गोकुल गाँवहिं खोदि बहाऊँ।।
बोले मेघन के गन सोइ। जिन के जल जग परलै होइ।।
उमगे धन–गन रिस भरि भारे। ताते, राते, पियरे, कारे।।
तड़प जहि तडि बज्र से परैं। घर हरहिं धन ऊधम करैं।।
चली अपरबल बात अघात। उड़े जात कहि बनति न बात।।
परन लगी नान्हीं बुँदवारी। मोटे थाँमनि हू तैं भारी।।
तब ब्रजजन जित तित तें घाये। सुन्दर नंद कुँवर पै आये।।
घौरी–घौरी धेनु जु दौरी। बड्डी बूँदनि के दुख बौरी।।
नमित सुग्रीव पुच्छ उच कियें। छबिलि छतिन तरबछरन लियें।।
गोपिन पै कहि बनति न बात। थर थर कंपत कोमल गात।।
हो श्रीकृष्ण कृष्ण, जगनाइक ! असुभहरन, सुभकरण सुभाइक।।
गोकुल के तो तुम ही नाथ। जैसे मीन दीन के पाथ।।
कुपित भयो सुरपति मतवारौ। हमरो अव़र कवन रखवारौ।।
बोले हरि बिलोकि तिन माहीं। कत भय करत, इहाँ भय नाहीं।।
मुसकत मुसकत स्याम सुहाये। छबि सों चलि गिरि गोधन आये।।
झट दै उचकि लियो गिरि ऐसें। साँप बेठना को सिसु जैसें।।
गोपी–गोप, गाइ बच जिते। अपने सुख रहे तिहिं तर तिते।।
बाम हस्त पर गिरि असबन्यौ। फूल को जनु कि छत्र है तन्यौ।।
ललित त्रिभंग अंग किये ठाढे। मुरली अधर धरें छबि बाढ़े।।
गिरि–मूल तैं जु गिरि की घात। गिरि गिरि परी साँवरे गात।।
जलद जु बरषन लागे पानी। कह कहियै, कछु अकथ कहानी

महा प्रलै को जल है जितौ। गोबरधन पर बरस्यौ तितौ।।
ता पर नग–खग अरू तरू बेली। तिन पर फुही न परी अकेली।।
इंद्रहु अपने बज्र चलाये। पातनि लगि तेऊ नहिं आये।।
सात दिवस अद्भुत झर ठान्यौ। ब्रज वासिनि तनकौ नहिं जान्यौ।।
सुंदर बदन बिलोंकनि आगै। भूख प्यास डर कौनहिं लागै।।
निकसे तब जब गिरिधर भाख्यौ। गोवरधन फिरि तहँई राख्यौ।।
प्रेम भरि बनिता जुरि आई वारहिं अभरन लेहिं बलाइ।।
चूमति बदन जसौमति मैया। इति धुरि रह्यौ बडो बल भैया।।
मुनिबर, सुरबर, सिघबर जिते। बरषत कुसुम भरे मुद तिते।।
दुंदुभि–धुनि, दुर–धुनि हिय हरैं। जै जै धुनि पुनि मुनिबर करैं।।
गावत गुन गंधर्व सु गाइनि। नृतत अपछरा चाइनि चाइनि।।
बल अनुजहि जु मनुज किये, जानै जग में कोई
अहो 'नंद' इहि इंद्र जिमि, दई बिगारै सोई।
पंचबिंस अध्याइ यह, यौं हिय मैं धरि राखि।
रसिक भक्त बिन आन सौ, 'नंद' न कबहुँ भाखि।।

षड्विंश अध्याय :

अब सुनि षडविंसति अध्याइ। नंद गरग के बचन सुनाइ।।
समाधान गोपनि को करि हैं। बाल–चरित–मधु पुनि बिस्तरि हैं।।
अद्भुत कर्म कुँवर कान्ह के । निरखि गोप सब अति चकमके।।
विस्मय भये, महा छबि छये। मिलि कै नंद महर ढिंग गये।।
अहो नंद यह तुम्हरौ तात। यामैं सब अचरज की बात।।
क्यौं बूझियें जनम हम माहीं। हम गँवार या लाइक नाहीं।।
षडविंसत अध्याइ यह पड़विंसत जु अनूप।
सों गिरिधर प्रभु 'नंद' के दंसयें आश्रय रूप।।

सप्तविंश अध्याय :

अब सुनि सप्तविंश अध्याइ। जामें इंद्र मंद लजि आइ।।
विनती करि, परि हरि के पाइ। जैहै घर अपराध छिमाइ।।
अद्भुत कर्म कान्ह जब करयो। छत्राकार महा गिरि धर्‌यौ।।
ऐसें गाइ गोप ब्रज राखि। बोले सुर मुनि जै जै भाखि।।
तब वह सुररानौ बिलरवानो। आयो कित हूँ ते बिररानो।।
लोकनि मुख दिखाइ नहि सकें। नंद दुलारेहि न्यारोहि तकै।।
तनक कहूँ एकांतहि पाइ। धाइ आइ हहि लै रह्यौ पाइ।।
देख्यो–सुन्यो प्रभाउ जु प्रभु को। गिरिगयौ गब। जु लोक तिहुँको।।

गर्व करो जिनि भूलि कोउ, गृह–जन धन कोपाइ।
'नंद' इंद्र तें को बड़ो, दीनो धूरि मिलाइ।।
सप्तविंस अध्याइ यह, इंद्र भये गोविंद।
'नंद' नैक इहि गाइ धौ, को है कलिमल मंद।।

अष्टविंश अध्याय :

अब सुनि अष्टविंस अध्याइ। पैहौ जहाँ निरोध के भाइ।।
सुरपति उनमद कौ मद हरयौ। अब चाहत बरू नहिं बस करयो।।
परमानँद मूरति जो नंद। अरू घर में सुत सब सुख कंद।।
सो एकादसि ब्रत आचरे। हरि इच्छा बिन क्यों अनुसरे।।
एक समै द्वादसि दिखि थोरी। उठे नंद कछु मति भई भोरी।।
सास्त्र के बल तें अति कलमले। अरूनोदय तैं पहिले चले।।
जाइ जमुन निर्मल जल धसे। तहाँ अन्हात नंद कछु लसे।।
मूर्तिवंत जहँ चारो बेद। बरनत प्रभु के नाना भेद।।
अरू कौतुक जे कान्ह ब्रज करे। गिरिवर–धरन अवर रँग भरे।।
ते सब गान करत श्रुति जहाँ। नंदादिक सुनि चकि रहे तहाँ।।
परी चटपटी सब के मन में। कब देखैं इहि वृंदावन में।।
मधुर मूर्ति बिन जब अकुलाने। तब फिरि बहुर्यो ब्रज ही आने।।
मित्र कहत कि ब्रह्म में जाइ। पुनि अकुंठ बैकुंठ हि पाइ।।
बहुरि जु लोकनि में फिरि आवै। यह संदेह माहिं भरभावै।।
'नंद' कहत कछु जिनि करि चित्र। जिन के मन मोहन से मित्र।।
नंद–सुवन दिनमनिसमरूप। ब्रह्म–बियापी जाकी धूप।।
बेकुंठ मधि सुक्ख हैं जिते। सब वृंदावन ठाँ ठाँ तिते।।
अष्टविंसत अध्याइ की, लीला सब सुख–कंद।
मुक्ति न मन–मानी जहाँ, फिरि आये ब्रजचंद।।

एकोनत्रिंश अध्याय :

उनतीसौं अध्याइ सुनि मित्र। जामैं रास उपक्रम चित्र।।
ब्रह्मादिकन जीति कंदर्प। बाढ्यो हुतौ वाके अति दर्प।।
कियौ चहत अब ताकौ खंडन। जय जय गोपी मंडल–मंडन।।
आगामिनी जामिनी जु ही। ब्रज भामिनीन सौ जे कही।।
ते आइ जब परम सुहाइ। नंद सुवन दिखि अति मन भाई।
प्रफुलित सरद मल्लिका जहाँ। अवर अनेक कुसुम छबि तहाँ।।
जब ही नँद–नंदन मन भयौ। तब हीं उडप उदय है लयौ।।
अरून बरन तहँ सोभित ऐसौ। प्राची दिसि तिय को मुख जैसौ।।

दीरघ काल मिल्यौ है पीय। तिन मनु कुंकुम रंजित कीय।।
लसत अखंडल मंडल जाकौ। ऐ किधौं है इह बदन रमा कौ।।
स्याम रंग सिंगार कौ, अरूण रंग अनुराग।
पीत रंग है प्रेम कौ, ओढ़ै कोउ बडभाग।।
ग्यान तुलित, विग्यान पुनि, तुलित तुलित जम–नेम।।
सबै वस्तु जग मैं तुलित अतुलित एकै प्रेम।।
ऐसैं प्रभु बस होत जिहिं, सुनहु प्रेम की बात।
तप करि प्रेरे मुनिन के, मन जहँ लगि नहिं जात।।
बिहरत बिपिन बिहार उदार। ब्रजरमनी ब्रजराज–कुमार।।
पियहि पाइ तिय के मुख लसैं। सरद मैं सरसिज होत न असैं।।
बीरी खात, दिये गरबाँही। डोलत फूली कुँजन माँहीं।।
तिन मधि बने कुँवर नँद–नंद। बड़े उड़न सौं ज्यौं धन चंद।।
बिलुलित उर बैजंती माल। लटकत चलत सुमद गज चाल।।
इहि परकार कुँवर रस भरे। छबि सौं जमुन पुलिन अनुसरे।।
कोमल उज्ज्वल बालुका जहाँ। मलय समीर धीर नित तहाँ।।
सुकर तरंगन करि कै जमुना। रच्यौ रूधिर जहँ और की गमुना।।
सीतल मंद सुगंध बयारि। पंखा करति बनिता बपु धारि।।
भ्रगंन सहित भ्रंगन की घरनी। बीन सी बजति महा सुख करनी।।
कमल अमोद कुमुद आमोद। सब परिमल जहँ देत विनोद।।
तहाँ बैठि भुज–भुज गरमेलनि। परिरंभन, चुंबन, कल केलनि।।
कच–लट गहि बदनन की चूमनि। नरव नाराचन घायल घूमनि।।
कुचन की परसनि, नीबीकरसनि। सुखनकी बरसनि मनकी सरसनि।।
ताही के सरन मैन जब हत्यो। दुखित भयौ घूमन जिमि मत्यौ।।
भस्म करहिं जिनि इह डर डरयौ। तब उठि प्रभु के पाइनि परयौ।।
कोटि अनंग अंग के भौन। इक अनंग जीतिबौ सु कौंन।
सिव से जीतत कैसे हुँ कैसे। दृढ़ बैराग्य जोग बल तैसैं।।
ऐसें विस्व बिमोहन कामहिं। को जीतहिं बिनमोहन स्यामहि। ।
अपनेरस बस देखि साँवरे। ह्वै गये तियन के मन बावरे।।
कहति भई भरि हिय अभिमान। हम सम तिय न तिहुँ पुर आन।।
यहै मान बढ़ि सैल समान। ओट परि गये पिय भगवान।।
सुनै, जो कोउ मन–क्रम वचन, उनतीसौ अध्याइ।
ध्वंसनि कलिमल बंस कहुँ, 'नंद' न अवर उपाइ।।

* * * * * * * *

नन्ददास पर साहित्यकारों के विचार

श्री गुसाईंजी के सेवक नंददासजी तिनकी वार्ता

नंददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते सो विनकूं नाच तमाशा देखवे को तथा गान सुनवे को शौक बहुत हतो सो वा देशमें सूं एक संग द्वारका जातहतो सो नंददासजी ऐसे विचार कें मैं श्रीरणछोड़जी के दर्शनकूं जाऊँ तो अच्छोहै जब विनने तुलसीदासजी सूं पूंछी तब तुलसीदासजी श्रीरामचंद्रजी के अनन्य भक्त हते जासूं विननें द्वारका जायवेकी नाहिं कहीं, जब नंददासजी नहीं माने सो वासंगमें चले गये। सों मथुरा सूधे गये मथूरा में वा संगकूं बहुत दिन लगे सों नंददासजी संगकूं छोडकर चलदीने सो नंददासजी द्वारका कों रस्ता भूलगये सो कुरूक्षेत्र की आड़ीसी नंदगाम में जाय पहूँचे सो वहाँ एक साहुकार क्षत्राणी रहतो हतो तब नंददासजी वाके घर भिक्षा लेवे गये वाकी स्त्री को रूप सुंदर हतो सो नंददासजी देखकर मोहित होयगये जब आखोदिन जायके वाके दरवाजे पै बैठे रहते जब वा क्षत्री को मुख देख लेते तब डेरा पे आवते हते ऐसे करते बहुत दिन बीते जब वा क्षत्रानी को सुसरो तथा पती विननें विचार कीनों गाम में रहनो नाहिं तब उहांते घर के सगरे मनुष्य श्री गोकुलजी कूं चले कारणकें सब वैष्णव हते तब नंददासजी कूं खबर भई तब नंददासजी हूं विनके पाछें गये रास्ता में विनसे दूरदूर चलेजाय और विनसें दूर डेरा करें एंसे कितने दिन पीछे ब्रजमें पहुंचे सो यमुनाजी उपरवे समय वा क्षत्रीनें कछू मलाहनकूं दीनों और ये कही कै या ब्राह्मण कूं मती उतारों ये हमकूं दुख देतं हैं जब सब उतर के श्रीगोकुल गये श्रीगुसाईंजी के दर्शन करे जब श्रीगुसाईंजी ने आज्ञाकरी जो वा ब्राह्मण कूं यमुना पार क्यों बैठाय आये हो तब वा क्षत्री के मन में ऐंसी आई कोई ने विनकी बात कही हैं अथवा जान गये हैं सो क्षत्री मन में बहुत पछतायवे लग्यो जब श्री गुसाईंजीने एक मनुष्य पठाय के वा ब्राह्मण कूं पारसों बुलाय लीनौ जब वा नंददासजी ने आयके श्रीगुसाईंजी के दर्शन करे साक्षात् कोटिकंदर्पलावण्य पूर्णपुरूषोत्तम के दर्शन भये तब नंददासजी को मन वहाँ ते छूटके साक्षात श्री गुंसाईजी के चरणारविंद में लग्यो तब नंददासजी हाथ जोरके ठाढे रहे और जा स्वरूप के दर्शन वा क्षत्राणी के नेयन में नन्ददासजी को ऊ होत हते वही स्वरूप के दर्शन श्रीगुसाईंजी भये– जब श्री गुंसाईजी ने श्रीनवनीतप्रियाजी के सन्निधान नाम निवेदन करवाये पाछे नंददासजी ने श्रीनवनीतप्रियाजी के दर्शन सब आशय पूर्वक करे के पाछें श्री गुसाईंजी भोजन करके सब वैष्णवनकूं पातर धराई तब नंददासजी

महाप्रसाद लेवे बैठे तब महाप्रसाद लेते ही नंददासजी कूं देहानुसंधान रह्यो नहीं जब पातर बैठही रहे भगवद्लीला में मन मग्न होय गयो अनेक लीलानको अनुभव होवै लग्यो भरे घर के चोरकी सीनाई मोहत भये ऐसें करते सवारो होय गयो कछु सुद्धि रही नहीं तब श्री गुसाईंजी पधारकें नंददासजी के कानमें कही के नंददासजी उठो दर्शन करो जब नंददासजी उठके ठाढे भये तब नंददासजी ने उठके श्री गुसाईंजी के दर्शन करके ये पद गायो "प्रात समय श्रीवल्लभसुत को उठतहिं रसना लीजिये नाम" इत्यादि पद गायके श्रीनवनीतप्रियाजी के दर्शन करे दर्शन करत मात्र रही भगवद्लीला की स्फूर्ती भई जब पलने को पद गायो–

"बालगोपाल ललन को मोद भरी यशुमति हुलरावत" इत्यादि भगवद्लीला संबंधी बहुत पद नये करकें गाये सो नंददासजी के ऊपर श्रीगुसाईंजी ने ऐंसी कृपा करी तब सब ठिकानेंन सों विनको मन खिंचके प्रभुनमें लगाय दीनो सो वे क्षत्री की बहू जिनसों नंददासजी को मन लाग्या हतो सो वे क्षत्रीकी बहू नंददासजी कू रस्तामें पांच सात बार नित्य दीखती हती परंतु नंददासजी वाकी आडी देखते ही न हते ऐसे श्रीगुसाईंजी की कृपातें ऐसो मनको निरोध होय गयो हतो जासूं इनके भाग्यकी बड़ाई कहा कहिये। (प्रसंग १)

तापाछे श्रीगुसाईंजी श्रीजी द्वार पधारे सो नंददासजी कूं आज्ञा करके संग ले गये तब नंददासजी ने जायकर श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे सो साक्षात कोटिकंदर्पलावण्यपूर्णपुरूषोत्तम के दर्शन भये सो दर्शन करके नंददासजी कूं किशोरलीलाकी स्फूर्ती भई तब उत्थापन को समय हतो सो श्रीगुसाईं जी की आज्ञा पायके यह पद गायो – "सोहत सुरंग दुरंगी पाग कुरंग ललना कैसे लोयन लोने"।। यह पद गायके अपने मन में नंददासजी ने बडे भाग्य माने फिर संध्या आरती समय दर्शन करे तब ये पद गाये–

बनते सखन संग गायनके पाछे पाछे आवत मोहनलाल कन्हाई (१)

वनते आवत गावत गौरी (२) देख सखी हरिको वदनसरोज (३) घर नंदमहरके मिसहीमिस आवत गोकुल की नारी (४) इत्यादि पद अनेक याभातसूं नंददासजी ने गाये सो नंददासजी कोई दिन श्रीगिरिराजजी रहते कोई दिन श्रीगोकुल आवते जिनकूं संसार ऐसो फीको लागतो जैसे मनुष्यकूं उल्टी देखके बुरो लगे जासूं वे और ठिकाने जाते नहीं हुते और श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसाईंजी और श्रीगिरिराज और यमुनाजी और श्रीब्रजभूमी इनको स्वरूप विचार्यो करते प्रभुन के दूसरे अवतारन पर्यंत कोई ठिकाने विनको मन नहीं लागतो हुतो जासूं विनने श्रीस्वामिनीजी के स्वरूपवर्ण में कहयो है–

"चलीये कुंवरका सखी भेष कीजै" या पद में कहयो है–

"शिव मोहे जिन वे मोहनी जे कोई। प्यारी पायन आज आन पर सोई" ऐसी दृष्टि जिनकी ऊँची हती। (प्रसंग–2)

सो वे नंददासजी ब्रज छोड के कहू जाते नही हूते सो नंददासजी के बडे भाई तुलसीदासजी काशी में रहते हूते सो विनने सून्यो, नंददासजी श्री गुसाईंजी के सेवक

भये हैं जब तुलसीदासजी के मनमें ये आई के नंददासजी ने पतिव्रताधर्म छोड दियो है आपनेतो श्रीरामचंद्र जी पती हुते सो तुलसीदासजी नें ये विचारकें नंददासजी कूं पत्र लिख्यो जो तुम पतिव्रता धर्म छोडकें क्यों तुमने कृष्ण उपासना करी। ये पत्र जब नंददासजी कूं पहुंचो तब नंददासजी ने वांचबे से उतर लिख्यो जो श्रीरामचन्द्रजीतो एक पत्नी व्रत हैं सो दूसरी पत्नी कुं कैसे संभार सकेगें एक पत्नी हूं बरोबर संभार न सके सो रावण हर ले गयो और श्रीकृष्ण तो अनंत अबलानके स्वामी हैं और जिनकी पत्नी भये पाछें कोई प्रकार को भय रहे नहीं है एककालविच्छन अनंत पत्नीनकुं सुख देत हैं जासूं मैने श्रीकृष्णपती कीने है सोजानोगे। ये पत्र जब नंददासजी को लिख्यो तब तुलसीदासजी कूं मिलयो तब तुलसीदासजी ने वांचके विचार कियो कैं नंदउसजी को मन वहाँ लग गयो है सो वे अब आवेगें नहीं सो इनकी टेक हमसूं अधिकी है हमतो अयुध्या छोडके काशी में रहेहैं और नंददासजी तो ब्रजछोडके कहीं जाय नहीं है। इनकी टेक हमारी टेकसूं बडी है सो वे नंददासजी ऐसे कृपापात्र भगवदीय हुते। (प्रसंग–३)

सो एक दिन नंददासजी के मन में ऐंसी आई जो जैसे तुलसीदासजी ने रामाणण भाषा करी ही सों हमहूं श्रीमद्भागवत भाषा करें ये बात ब्राह्मण लोगनने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलके श्रीगुसाईंजी के पास गये सो ब्राह्मण ने वीनती करी जो श्रीभागवत भाषा होयगो तो हमारी आजीविका जाती रहेगी तब श्रीगुंसाईजी ने नंददासजी कू आज्ञाकरी जो तुम श्रीभद्भागवत भाषा मत करो और ब्राह्मण के क्लेश में मत परो, ब्राह्मण क्लेश आछो नहीं है और कीर्तन करकें ब्रजलीला गाओ जब नंददासजी ने श्रीगुंसाईजी की आज्ञा मानी श्रीमद्भागवतभाषा न करयो ऐंसों श्रीगुसाईंजी की आज्ञा को विश्वास हतो ऐसे परमकृपापात्र भगवद्‌ीय हूते। (प्रसंग–४)

सो नंददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी हते काशीजीतें नंददासजी कूं मिलवेके लिए ब्रज में आये सो मथुरा में आयके श्रीयमुनाजी के दर्शन करें पाछे नंददासजी की खबर काडके श्री गिरिराजजी गये उहाँ तुलसीदासजी नंददासजी कूं मिले जब तुलसीदासजी ने नंददासजी सूं कही के तुम हमारे संग चलो गाम रूचे तो अयोध्या में रहो पुरी रूचे तो काशी में रहो पर्वत रूचे तो चित्रकूट में रहो वन रूचे तो दंडकारण्य में रहो ऐसे बडे बडे धाम श्रीरामचंन्द्रजी ने पवित्र करे हैं तब नंददासजी ने उतर देवेकूं ये पद गायौ। सो पद –

जो गिरि रूचे तो बसो श्रीगोर्वद्धन गाम रूचे तो बसो नंदगाम।।
नगर रूचे तो बसो श्रीमधुपुरी सोभासागर अतिअभिराम।।
सरितारूचे तो वसो श्रीयमुनातट सकलमनोरथ पूरणकाम।
नंददास कानन रूचे तो बसो भूमि वृन्दावनधाम।।

यह पद सुनके तुलसीदास बोले जो ऐसो कोनसो पाप है जो श्रीरामचन्द्रजी के नामसूं न जाय जासूं तुम श्रीरामचन्द्रजी कूं भजो। तब नंददासजी ने एक कीर्तन में उतर दिण्यो। सो पद–

कृष्णनाम जबतें में श्रवण सुन्यो री भूली री आली
भवन होतो बावरी भई री।। भर भर आवे नयन चितहूं
न परे चैन मुखहुं न आवे वैन तनकी दशा कछु और रहीरी।।
जेतके नेम धर्म व्रतकीने री मैं बहुविध अंगो अंग भई मैं तो श्रवण मइरी।।
नंददासप्रभु जाके श्रवण सुने यह गति माधुरी मूरत केधों कैंसी दईरी।।

ये पद सुनके तुलसीदास चुप रहे जब नंददासजी श्रीनाथजी कूं दर्शन करवेकूं गये तब तुलसीदासहू उनके पीछे पीछे गये जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे तब तुलसीदासजी ने माथोनमायो नहीं तब नंददासजी जानगये कि ये श्रीरामचन्द्रजी बिना और दूसरे कूं नहीं नमे है जब नंददासजी ने मन में विचार कीनो यहाँ और श्रीगोकुल में इनकूं श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन कराउँ तब ये श्रीकृष्णको प्रभाव जानेंगे जब नंददासजी ने श्रीगोर्वधनलाल सों विनती करी। सो दोहा–

आजकी शोभा कहा कहूं भले बिराजे आप।
तुलसी मस्तक तब नमे, धनुषबाण लेओ हाथ।।

ये बात सुनकें श्रीनाथजी कों श्रीगुसाईंजी की कानतें विचार भयो सो श्रीगुसाईंजी के सेवक हें सो हमको मान्यो चाहिये जब श्रीगोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्रजी को रूप धरे तुलसीदासजी कूं दर्शन दिये तब तुलसीदासजी ने श्रीगोवर्धननाथजी निकूं दण्डवत करी तुलसीदासजी दर्शन करें बाहिर आये तब नंददासजी श्री गोकुल चले गये जब तुलसीदास संगसंग आये तब आय के नंददासजी ने श्रीगुसाईंजी के दर्शन करे साष्टांगदण्डवत करी और तुलसीदासजी ने दण्डवत करी और नंददासजीकूं तुलसीदासजी ने कही कें जैसे दर्शन तुमने कराये वैसेही यहाँ कराओ तब नंददासजी ने श्रीगुंसाईजी सों विनती करी ये मेरे भाई तुलसीदास हैं श्रीरामचन्द्रजी बिना औरकूं नहीं नमें हैं तब श्रीगुंसाईजी न कहा के तुलसीदास बैठो जब श्रीगुसाईंजी के पांचवे पुत्र रघुनाथजी वहाँ ठाढे हुते और विन दिन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हतो जब श्रीगोंसाईजी ने कही रघुनाथजी तुम्हारे सेवक आये हैं इनकूं दर्शन देवो तब श्रीरघुनाथलालजी जी तथा श्रीजानकीजी को स्वरूपधरके दर्शन दिये साक्षात दर्शन भये तब तुलसीदासजी ने साष्टांगदण्डवत करी यही ते श्रीद्वारकेशजी ने मूलपूरूषमें गायो हैं "हेतु निज अभिधान प्रकटे तात आज्ञा मानके" और तुलसीदासजी दर्शन करके बहुत प्रसन्न भये और पद गायो "वरणी आवधि गोकुलगाम" ये पद गायके तुलसीदासजी विदा होयके अपने देशकूं गये सो वे नन्ददासजी श्रीगुंसाईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते जि़नके कहतें श्री गोवर्द्धननाथ जी कूं तथा श्रीरघुनाथजी कुं श्रीरामचन्द्रजी को स्वरूप धरके दर्शन देने पडे। जासूं इनकी वार्ता कहाँ ताईं लिखिये। (वार्ता सम्पूर्ण वैष्णव–४)

-२५२ वैष्णवन की वार्ता से

श्री नन्ददास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

ये सूरदासजी के प्रायः समकालीन थे और इनकी गणना अष्टछाप में है। इनका कविता काल सूरदासजी की मृत्यु के पीछे संवत १६२५ या उससे और आगे तक माना जा सकता है। इनका जीवन वृत पूरा–पूरा और ठीक ठीक नहीं मिला। नाभाजी के भक्तमाल में इन पर जो छप्पय है उसमें इनके जीवन के संबंध में इतना ही है–

चन्द्रहास–अग्रज सुहृद परम–प्रेम–पथ में पगे।

इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चन्द्रहास था। इनके गोलोकवास के बहुत दिनों पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी के नाम से जो "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" लिखी गई। उनमें इनका थोडा सा वृत दिया गया है अक्त वार्ता में नन्ददासजी तुलसीदासजी के भाई कहे गये हैं। गोकुलनाथजी का अभिप्राय प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदासजी से ही है, यह पूरी वार्ता पढ़ने से स्पष्ट होजाता है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि नन्ददासजी का कृष्णोपासक होना राम के अनन्य भक्त, उनके भाई तुलसीदासजी को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने उलाहना लिखकर भेजा। यह वाक्य भी उसमें आया है– "सो एक दिन नन्ददासजी के मन में ऐसी छाई। जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है सो हम हूं श्री मद्‌भागवत भाषा करें।" गोस्वामी का नन्ददासजी के साथ वृन्दावन जाना और वहाँ "तुलसी मस्तक तब नवै, धनुषबाण लो हाथ" वाली घटना भी उक्त वार्ता में ही लिखी है। पर गोस्वामीजी का नन्ददासजी से कोई संबंध न था। यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी हैं। अतः उक्त वार्ता की बातों को , जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने ओर वल्लभाचार्यजी की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिये ही लिखी गई है, इसे प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।

उसी वार्ता मे यह भी लिखा है कि द्वारिका जाते हुए नन्ददासजी सिंधनद ग्राम में एक रूपवती खत्राणी पर आसक्त हो गये। ये उस स्त्री के घर के चारों ओर चक्कर लगाया करते थे। घर वाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिये गोकुल चले गये। अंत में वहीं पर गोसाईंजी श्री विट्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा ओर ये अनन्य भक्त हो गये। इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होने गोसाईं विट्ठलनाथजी से दीक्षा ली। ध्रुवदासजी ने भी अपनी "भक्तनामावली" में इनकी भक्ति की प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है।

अष्टछाप में सूरदासजी के पीछे इन्हीं का नाम लेना पडता है। इनकी रचना भी बडी और सरस–मधुर थी। इनके संबंध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि "और कवि गढिया, नन्ददास जडिया।" इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक "रास पंचाध्यायी" है जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का

अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूर ने स्वाभाविक चलती भाषा का ही अधिक आश्रय लिया है, अनुप्रास और चुने हुए संस्कृत पदविन्यास आदि की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखाई है, नन्ददासजी में ये बातें पूर्ण रूप में पाई जाती हैं। जहाँ तक ज्ञात है, इनकी चार पुस्तकें हैं जो अब तक प्रकाशित हुई हैं– रास पंचाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थ मंजरी और अनेकार्थनाममाला। इनमें रास पंचाध्यायी और भ्रमरगीत ही प्रसिद्ध हैं।

–हिन्दी साहित्य का इतिहास

श्री नन्ददास

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नन्ददास ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

नन्ददास के जीवन के संबंध में विश्वसनीय सामग्री बहुत कम प्राप्त है। इनका जन्म स्थान ब्रज के पूर्व स्थित कोई रामपुर नाम का गांव था। उनका जन्मकाल सन् १५३३ ई॰ के पूर्व माना गया है।

नन्ददास की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण अष्टछाप कवियों में उनका स्थान अद्वितीय कहा जा सकता है। कवित्व शक्ति और भक्तिभावना के अतिरिक्त सिद्धान्तवादिता और शस्त्रीयता भी उनमें सबसे अधिक मुखर रूप में पायी जाती है। कृष्ण भक्ति के महात्म्य को वे तर्क और पांडित्य द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अतिरिक्त नन्ददास ने अपनी कृष्ण भक्ति के सन्दर्भ में ही काव्य शास्त्रीय विवेचन की प्रवृति भी प्रकट की है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने कृष्णलीला संबंधी विविध विषयों पर रचना अवश्य की, परन्तु उन विषयों को स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत करने की प्रवृति केवल नन्ददास में पायी जाती है। नन्ददास ने कृष्ण लीला संबंधी विषयों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विषयों को भी अपनी रचना का विषय बनाया है जो लौकिक और साहित्यिक कहे जा सकते हैं। नन्ददास अष्टछाप कवियों में परवर्तीकाल के कवि हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि उनमें हम साम्प्रदायिकता का अधिक्य तथा लौकिक विषयों के प्रति उन्मुखता देखते हैं।

नन्ददास की दृश्य, रूप और क्रिया–कलाप वर्णन करने की शक्ति, अनका असाधा रण भाषाधिकार, विचारों की स्पष्टता, वाणी की वक्रता तथा विषय को तर्कपूर्ण ढंग से उपस्थित करने की योग्यता का परिचय मिलता है। ब्रजभाषा का लालित्य "रास पंचाध्यायी" में उत्कृष्ट रूप में प्राप्त होता है। इसी रचना के आधार से प्रायः नन्ददासजी की तुलना संस्कृत की कोमलकान्त–पदावली में रचना करने वाले महाकवि जयदेव से करते हैं।

नन्ददास ने श्रृंगार के सभी भावों को श्रीकृष्ण को नायक मानकर व्यक्त किए हैं। उनका विचार है कि जिस प्रकार अग्नि में पड़कर सब वस्तुएँ भस्म हो जाती हैं, उसी प्रकार बुरे भाव भी भगवान के संसर्ग में पड़कर भस्म हो जाते हैं। रचना के आरम्भ में उन्होंने आनन्दघन रसरूप, रस के कारण, रस के भोक्ता, आनन्द के मूल मात्र नन्दकुमार की स्तुति करके अपने प्रेम और रसानन्द को उन्हीं में समर्पित किया है। इस भूमिका के बाद उन्होंने श्रृंगार का जैसा विशद वर्णन किया है, वह रीतिकालीन कवियों का पूर्वगामी कहा जा सकता है। "अनेकार्थ मंजरी" संस्कृत भाषा न जानने वालों के लिये एक छोटा सा शब्द कोश है, जिसमें दोहा छन्द में एक एक शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं। रचना का संबंध पुष्टिमार्गीय भक्ति में केवल इतना ही है कि मंगलाचरण में अविकृत परिणामवाद का सिद्धान्तवाद स्पष्ट किया गया है और प्रत्येक दोहे के अन्तिम चरण में उसमें वर्णित शब्द को भगवान के साथ संबद्ध किया गया है। "मानमंजरी, नाममाला" भी एक शब्द कोश ग्रंथ है; किन्तु साथ ही इसमें राधा के मान का वर्णन भी है। एक कोश ग्रंथ में कथानक का क्रमिक वर्णन नन्ददास जैसे कलाकार के लिये ही संभव था। "विरह मंजरी" में एक ब्रजयुवती का वियोग दशा का वर्णन किया गया है। इसकी शैली बारहमासा जैसी है। ब्रजयुवती का वियोग काल्पनिक रूप में वर्णित है। युवती सोचती है कि कृष्ण द्वारिका चले गये हैं और वह उनके वियोग में व्यथित हो रही है। वास्तविक स्थिति का ध्यान आते ही वह प्रेममग्न हो जाती है। इस रचना का उद्देश्य प्रेमभक्ति के विरह की महत्ता का प्रतिपादन करना है। "रूपमंजरी" एक छोटा सा कथा काव्य है, जिसमें एक सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य तथा लौकिक प्रेम को छोड़कर कृष्ण के प्रति उसके "जारभाव" के प्रेम तथा उसकी एक सखी इन्दुमती के साथ उसके संबंध का वर्णन है। काव्य की नायिका रूपमंजरी स्वयं नन्ददास की मित्र रूपमंजरी है और सखी स्वयं कविनन्ददास हैं। यद्यपि रूपमंजरी का कथानक लौकिक श्रृंगार से संबंद्ध है किन्तु उसमें नन्ददास ने अपने आध्यात्मिक भावों तथा प्रेम लक्षणा भक्ति के अन्तर्गत परकीया प्रेम के आदेशों को स्पष्ट किया है। काव्यकला और रसात्मकता की दृष्टि से यह रचना उत्कृष्ट है। "रूक्मिणी–मंगल" की कथा श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध उतरार्द्ध के ५२,५३ और ५४ वे भावपूर्ण स्थलों को अधिक विशद कर दिया है। "दशमस्कन्ध" की रचना नन्ददास ने अपने एक मित्र के अनुरोध से की थी, जिसमें उन्हें संस्कृत भागवत के विषय का भाषा द्वारा ज्ञान हो जाय। इसमें भागवत का भावानुवाद किया गया है और साथही भागवत की कुछ टीकाओं का उपयोग भी किया गया है। इन्होंने विविध विषयों पर गेयपदों की भी रचना की थी। कृष्णलीला से संबंद्ध विषयों के अतिरिक्त उनके ऐसे पद भी हैं, जिसमें गुरू महिमा, विनय भावना और भक्ति कणों का वर्णन हुआ है। नन्ददास के नाम से गोवर्द्धनलीला और सुदामाचरित नामक दो रचनाएँ और प्रसिद्ध हैं किन्तु गोवर्द्धनलीला दशमस्कन्ध का ही एक अंश है और वह उसके २४–२५ वे अध्याय में वर्णित है। "सुदामाचरित" की प्राभाणिकता पर विद्वानों में मतभेद है।

रचना की प्रचुरता तथा विषय की विविधता की दृष्टि से नन्ददास का स्थान अष्टछाप कवियों में बहुत ऊँचा है। भक्त होने के साथ ही वे ऐसे सचेष्ट और सच्चे कलाकार भी हैं, जिन्हें अपने कविकर्म के उत्तरदायित्व का सदैव ध्यान रहता है। यह अवश्य है कि नन्ददास ने काव्य कला संबंधी जो सामग्री प्रस्तुत की है उसका स्रोत बहुत अंश में सूरसागर ही है। नन्ददास की विशेषता यह है कि उन्होंने उस विषय को, जो सूरदास, परमानन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने प्रच्छन्न रूप में वर्णित किया था, स्पष्ट रूप में सम्मुख रख दिया और इस प्रकार वे हिन्दी के भक्ति काव्य तथा लौकिक श्रृंगारी काव्य को जोड़ने वाली एक कड़ी बन गये। काव्यकला की दृष्टि से नन्ददास की इस प्रवृति की सराहना की जा सकती है परन्तु उनके भक्तिभाव की एकान्तिकता और तीव्रता में शंका उठना भी स्वाभाविक है। भावानुभूति की गंभीरता के अभाव में नन्ददास की अनुभूति और अभिव्यक्ति में वैसी एकात्मकता और घनिष्ठता नहीं है, जैसी कि पूर्ववर्ती कवियों में पायी जाती है। शब्दों के प्रयोग में नन्ददास बड़ी सावधानी और सतर्कता का परिचय देते हैं और यह कथन सत्य ही है कि जहाँ और कवि "गढ़िया' वहीं है, नन्ददास "जडिया" हैं। परन्तु भाषा सौन्दर्य पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण वे न केवल कभी–कभी भावों की उपेक्षा कर जाते हैं वरन् यमक, अनुप्रास छन्द की लय और प्रवाह के अनुरोध से शब्दों को विरूप भी कर देते हैं। नन्ददास को छन्द प्रयोग भी बहुत आकर्षक हैं। रोला दोहा के संयुक्त छन्द का प्रयोग उन्होंने सूरदास के अनुकरण पर अपनी कई रचनाओं में किया है। इस छन्द के अन्त में एक छोटा सा चरण जोड़कर पूर्वगामी भाव का सार वे जिस प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं, उससे छन्द का आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है। अपनी अनेक विशेषताओं के कारण हिन्दी साहित्य में नन्ददास का स्थान कुछ चुने हुए महान कवियों के बाद ही आता है। नन्ददास की सम्पूर्ण कृतियों के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं – उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा प्रयाग विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित "नन्ददास", दूसरा ब्रजरत्न दास द्वारा सम्पादित और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित "नन्ददास ग्रंथावली" तथा डा॰ सत्येन्द्र और कैंब्रिज के डा॰ मैकग्रेगर ने भी नन्ददास के ग्रंथों का सम्पादन किया है।

-हिन्दी साहित्य शब्द कोश भाग-२

श्री नन्ददास

✍ डा. रामकुमार वर्मा

नन्ददास विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के प्रसिद्ध कवियों में से थे। साहित्यिक महत्त्व के दृष्टिकोण से सूरदास के बाद ही इनका स्थान है। नन्ददास अष्टछाप में विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका तिथि–पूर्ण जीवन–चरित्र अभी तक ज्ञात नहीं हो सका, बहिर्साक्ष्य से केवल परिचयात्मक विवरण ही मिलता है। नन्ददास ने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। रासपंचाध्यायी के प्रारंभ में नन्ददास ने केवल अपने एक मित्र का संकेत किया है :–

परम रसिक एक मित्रा, मोहि तिन आज्ञा दीनी।
ताही तैं यह कथा जथामति भाषा कीनी।।

नन्ददास के ये प्रसिद्ध मित्र कौन थे, इनका नाम भी अज्ञात है। वियोगी हरि के अनुसार "मित्र से यहाँ गंगाबाई से आशय है। गंगाबाई श्री गोंसाईजी की शिष्या थी। यह कविता में अपना नाम "श्री विट्ठल गिरिधरन" लिखा करती थीं।"

रासपंचाध्यायी के अन्त में नन्ददास ने अपनी कविता के विषय में निर्देश किया है :–

इहि उज्जवल रसमाल, कोटि जतनन करि पोई।
सावधान है पहिरी, वरू तोरौ मति कोई।।

इससे यह ज्ञात होता है कि ये अपनी कविता "बहु जतनन करि" लिखा करते थे। रचना करने में इस परिश्रम के कारण ही सम्भवतः यह जनश्रुति चल पड़ी हो, "और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।" खोज रिपोर्ट (सन् १००१) में "दसमस्कन्ध भागवत" नामक नन्ददास रचित ग्रंथ का निर्देश है। उसमें नन्ददास ने अपने एक मित्र का निर्देश किया है :–

परम विचित्रा मित्रा इक रहै। कृष्ण चरित्रा सुन्यों सो चहै।।
तिन कहि दसम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनौ ताहि।।
सबद संस्कृति के हैं जैसे। मो पहि समुझि परैं नहीं तैसे।।
ताते सरल सुभाषा कीजै। परम अमृत पीजै सुख भीजै।। आदि

इस संबंध में खोज रिपोर्ट के संपादक लिखते हैं :–

"इस ग्रंथ के कर्त्ता नन्ददासजी हैं जो एक मित्र के कहने पर इस दसम स्कन्ध को भाषा में करने में प्रवृत्त हुए। कहीं कहीं तो कथा को ऐसे वर्णन किया है मानों दोनों मित्र परस्पर सम्वाद करते हों। ग्रंथ के बनने अथवा समाप्त होने का ठीक समय विदित नहीं होता। अन्त के लेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रंथ फाल्गुन सुदी ७ मंगलवार को समाप्त हुआ, पर सम्वत् कौनसा है यह नहीं लिखा।"

अतः अन्तर्साक्ष्य से हमें केवल यही ज्ञात होता है कि नन्ददास अपने ग्रंथ की रचना अधिकतर अपने मित्रों के अनुरोध से ही किया करते थे।

बहिर्साक्ष्य के अन्तर्गत नाभादास का छप्पय भी प्रसिद्ध है :–

नाभादास के छप्पय के अनुसार नन्ददास "चन्द्रहास अग्रज सुहृद" थे। "चन्द्रहास अग्रज सुहृद" के दो अर्थ हो सकते हैं :–

१. चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र

२. चन्द्रहास के सुहृद बड़े भाई

इन दोनों अर्थो में कौनसा अर्थ नन्ददास के पक्ष में प्रयुक्त होता है, यह अनिश्चित है, क्योंकि चन्द्रहास का निर्देश अन्य किसी बहिर्साक्ष्य में नहीं है।

अतः नन्ददास चन्द्रहास के बडे भाई या चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे और रामपुर के निवासी थे।

गोकुलनाथ की दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में नन्ददास का परिचय विस्तारपूर्वक दिया गया है। इसमें नन्ददासजी के जीवन वृत से यही ज्ञात होता है कि वे तुलसीदास के छोटे भाई थे और ब्रज में निरन्तर निवास करते थे।

नन्ददास का निर्देश वैणीमाधवदास के गोसांई चरित में भी मिलता है :–

नन्ददास कनौजिया प्रेम मडे। जिन सेस सनातन तीर पडे।।
सिच्छा गुरू बन्धु भये तेंहि ते। अति प्रेम सों आय मिले यहिं ते।।

तुलसीदास की ब्रजयात्रा में नन्ददास उनसे मिले थे। इस निर्देश के अनुसार नन्ददास कनौजिया थे और तुलसीदास के साथ शेष सनातन से अन्होंने विद्योपार्जन किया था। इस प्रकार वे तुलसीदास के गुरूभाई थे।

इस उद्धरण से २५२ वैष्णवन के इस कथन की पुष्टि किसी प्रकार हो जाती है कि "नन्ददासजी तुलसीदास के छोटे भाई थे।" पर गोंसाई चरित की प्रमाणिकता भी संदिग्ध है। अतः इस कथन का निर्देश मात्र ही पर्याप्त है।

"मिश्र बन्धु" ने नन्ददास को केवत ब्राह्मण माना है। "केवत" से तात्पर्य कान्यकुब्ज निकलता है। सुकवि सरोज में नन्ददास को शुक्ल कहा गया है। इन प्रमाणों से कम से कम यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि नन्ददास ब्राह्मण थे और रामपुर के निवासी थे।

नन्ददास ने अपने काव्य में रस और गुण की सृष्टि बड़ी सुन्दरता के साथ की है। रसों में उन्होंने श्रृंगार, करूण ओर शान्त का बड़ी विशद रीति से वर्णन किया है। उनका श्रृंगार रस इस प्रकार है :–

इहि विधि विविध विलास हास सुख कुंज सदन को।
चले जमुन जल क्रीडन, ब्रीडन कोटि मदन को।

कितना सरल श्रृंगार–वर्णन है !

नन्ददारा ने करूण रस के वर्णन करने में भी कुशलता दिखलाई है। आंसुओं की स्वच्छ मालाओं में उन्होंने जो हृदय–बेधी भाव गूंथे है, उन्हें हम केवल अनुभव कर सकते हैं, कह नहीं सकते। इस प्रकार का करूण रस हिन्दी साहित्य में बहुत कम है :–

सतत मनोरथ करत चरण सरसी रहु पिय को।
कह घटि जैहै नाथ, हरत दुख हमरे हिय को।।
कहँ यह हमरी प्रीति, कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि पखान ते खचै दई तें कछु न बसाई।।
जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतत छिन।
दिन बीतत जिनि भाँति हमहिं जाने पिय तुम बिन।।

अन्त में शान्त रस का उज्जवल स्वरूप है !

रासपंचाध्यायी में दो गुणों की प्रधानता है। वे दोनों गुण है, माधुर्य और प्रसाद। माधुर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा हुआ है। शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर है और न लम्बे–लम्बे समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है वह भी बहुत थोडे शब्दों में और सुन्दरता के साथ। ''अर्थ अमित अति आखर थौरे।'' रास–वर्णन मधुर और सरस है।

नूपुर कंकन किंकनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली।।
मृदुल मधुर टंकार ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार भंवर गुंजार रली पुनि।।
तैसिय मृदुपद पटकनि चटकनि कटतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुण्डल हारन की।।
साँवरे पिय के संग नृतत या ब्रज की बाला।
जनु घनमण्डल मंजुल खेलति दामिनिमाला।।
पदों में प्रसाद का गुण भी अच्छा है।
नव मरकत मनि स्याम कनक मणिगण ब्रजबाला।
वृन्दावन की रीझि मनो पहिराई माला।।

काव्य का बाह्य रूप सजाने में भी नन्ददास का कौशल दर्शनीय है। पद–योजना का सुन्दर आयोजन है। मुख्य–मुख्य अलंकारों का विस्तार और छन्द का स्वछन्द प्रवाह है। नीचे के उद्धरणों में यह कथन और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगा।।

१. पद–योजना –

या बन की वर बानक या बन ही बन आ। सेंस महेस सुरेस गनेसहु पार न पावै।।
बैठे पुनि तिहिं पुलिनहि परमानन्द भयौ है। छबिलिन अपनो छादनि–छवि सुविछाय दयौ है।

२. अनुप्रास –

है चन्दन, सुख दन्दन सब की जरन जुड़ावहु। नँदनन्दन, जगबन्दन चन्दन हमहि बतावहु।

३. रूपक –

नव मरकत मणि श्याम, कनक मणिगण ब्रज बाला।

४. उत्प्रेक्षा –

वृन्दावन को रीझि मनो पहिराई माला।।

इसके अतिरिक्त अन्य अलंकार भी सुन्दर रीति से सजाए गए हैं। समस्त ग्रंथ रोला और दोहा छन्दों में लिखा गया है। रोला छन्द में लिखने में नन्ददास को बहुत सफलता मिली है। भावों के अनुसार ही छन्द का प्रवाह है। किन्तु कहीं–कहीं पर विचार नहीं किया गया है। जैसे –

''**मोहन लाल रसाल की लीला इनहीं सोंहै।**

बहुत से पिंगल के आचार्यों के कथन है कि रोला में ११ और १३ मात्रा की यति से २४ मात्राऐं होनी चाहिये। इसके अनुसार नन्ददास की रचना में यति–भंग दोष आ जाता है। किन्तु बाबू जगन्नाथदास ''रत्नाकर'' ने ''रोला के लक्षण'' शीर्षक से लेख में लिखा है कि ''रोला छन्द में ग्यारह मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है, पर यदि हो तो अच्छी बात है।''

नन्ददास ने भाव–निरीक्षण में अपनी काव्य–कला का अच्छा परिचय दिया है। उन्होंने मनुष्य के हृदय के गूढतम भावों को अन्तर्दृष्टि से देखकर उन्हें ललित शब्दों में स्पष्ट प्रकट किया है।

वियोगिनी ब्रजबालाओं के स्वाभाविक वियोग कथन भावपूर्ण, और कितना करूणाजनक है –

नैन मँदवो महे अरुना तै हंसी हंसी। मारत हो कित सुरतनाथ बिन मोल की दासी।।
विष तै जल तें व्याल अनल तें दामिनि झरते। क्यों राखी नहि मरन दई नागर नागर तें।।

वियोग के बाद आकस्मिक संयोग की छटा कितनी स्वाभाविक है :–

कोऊ चटपट सो झपटी, कोउ पुनि उरवर लपटी। कोउ गर लपटी कहत भे जू कान्हर कपटी।।
कोउ नागर नगधर की गहि रहि दोउ कर पटकी। मानों नव धन ते सटकी दामिनी दामन अटकी।।

प्रकृति वर्णन कवि के वैयक्तिक सिद्धान्तों के अनुसार बदला जा सकता है। अंग्रेजी में वर्डस्वर्थ का प्रकृति वर्णन टेनिसन के प्रकृति वर्णन से सर्वथा भिन्न है। उसका कारण यह है कि वर्डस्वर्थ ने प्रकृति को सजीवन मानकर अपनी सहचरी समझा है, किन्तु टेनिसन ने प्रकृति को मानवीय विचारों के चित्र के लिये केवल चित्रपट समझा है। उसने प्रकृति का अस्तित्व हृदय के विविध विचारों के अनुकूल प्रदर्शन के लिये ही माना है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का भी प्रकृति वियोगिनी के लिये अन्ततः यही विचार

था। वियोग में उनकी प्रकृति वियोगिनी बनकर रोती थी और संयोग में उनकी प्रकृति में हर्ष चिन्ह नजर आते थे। यद्यपि यहाँ–वहाँ इस सिद्धान्त के कुछ प्रतिवाद अवश्य देखने में आते हैं; पर मुख्यतः यह स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन कवि टैनिसन की भाँति प्रकृति को अपने भावों ही के रंग में रंगते थे।

नन्ददास ने प्रकृति वर्णन तीन प्रकार से किया है। –

१. प्रकृति का सुखमय श्रृंगारयुक्त चित्रण।

२. आगामी कार्यों के क्रीड़ास्थल के उपयुक्त प्रकृति का रूप प्रदर्शन।

३. केवल अलंकार के रूप में लाने के लिये ही प्रकृति के भिन्न–भिन्न रूपों का प्रयोग।

इनकी रासपंचाध्यायी में कथानक का प्रवाह एक ही वेग से आगे बढ़ता जाता है। अन्त में नन्ददास इस पंचाध्यायी को इस प्रकार समाप्त करते हैं, मानो वे एक पूरे ग्रंथ की समाप्ति कर रहे हैं :–

अघहरनी मनहरनी सुन्दर प्रेम–वितरनी। नन्ददास के कण्ठ बसौ नित मंगलकरनी।।
नन्ददास ने यह रचना स्वतंत्रा रूप से लिखी है, इसका संबंध अन्य किसी ग्रंथ से नहीं है।

दूसरी विशेषता है – इसकी भाषा। ब्रजभाषा का प्रवाह बहुत ही स्वाभाविक और सरल है। हम आजाद के शब्दों में इनके लिये भी कह सकते हैं कि "इनके अल्फाज मोती की तरह रेशम पर ढलकते हुए चले आते हैं।" शब्दों का विकृत रूप कहीं भी दिखने में नहीं आता। सभी शब्द यथास्थान इस प्रकार सजे हुए हैं, मानों किसी ने रतनों को जड़ दिया हो। सचमुच वे "जडिया" थे।

है अवनी नवनीत चोर चितचोर हमारे। राखै कितहुँ बता देउ प्रान पियारे।।

तीसरा गुण है इनके अनुप्रास की विशेषता। नन्ददास की रचना में अनुप्रास इस तरह स्वाभाविक रीति से चला आता है, मानों इनके शब्द भण्डार में अनुप्रासयुक्त शब्दों के अतिरिक्त कोई शब्द ही नहीं था। अनुप्रास युक्त भी इस तरह आता है कि उससे भावों की लेश–मात्र भी क्षति नहीं होती है। इसी में कवि की प्रतिभा का परिचय है :–

जो रज अघ शिव खोजत जोजत जोगी जन जिय। सो रज वन्दन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय।।

इनकी रचना का चौथा गुण है चित्र शक्ति। नन्ददास जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, वह वर्णन इतना यथार्थ और स्वाभाविक होता है कि इसका चित्र आँखों के सामने आ जाता है –

सुन्दर उदर रोमावलि राजत भारी, हियो सरोवर रसभरि चलि मानो उमगि पानरी।। इन शब्दों के प्रवाह में "पनारी" के तीव्र गमन का चित्र है।

रचना का पाँचवा गुण है ईश्वरोन्मुख प्रेम। प्रत्येक–श्रृंगार–स्थल पर ईश्वर के प्रति भक्तिभाव की अभिव्यक्ति होती है। गोपिकाओं के बिहार और गर्व का मतलब

नन्ददास ने अन्तिम दो पंक्तियों में बडी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है।

निपट निकट घट में जो अन्तरजामी आही। तिं विदूषित इन्द्री पकरि सकैं नहि ताही।।

रचना का छठवाँ गुण है शब्दों का चुनाव। नन्ददास ऐसे उपयुक्त शब्दों का चयन करते हैं, जो सर्वथा कविता के भाव व्यंजक हैं :–

इत महकत मालती चारू चम्पक चितचोरत। उत घनसार तुसार मिली मन्दार झकोरत।।

यहाँ "महकत, तुसार और झकोरत" आदि कितने उपयुक्त हैं ! इन शब्दों के पर्यायवाची शब्द इन पंक्तियों की भाव–व्यंजना में ओछे उतरेगें।

माधुर्य की दृष्टि से हिन्दी–साहित्य में रास पंचाध्यायी सर्वश्रेष्ठ है। यदि तुलसी की कविता भागीरथी सी और सूर की पदावली यमुना के सदृश है, तो नन्ददास की मधुर कविता सरस्वती के समान होकर कविता त्रिवेणी की पूर्ति करती है।

अभी तक रास पंचाध्यायी के तीन संस्करण प्राप्त हैं –

१. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण

२. बालमुकन्द गुप्त संस्करण

३. ब्रजमोहनलाल संस्करण

बालमुकन्द गुप्त का संस्करण अपेक्षाकृत मान्य है। इसका प्रकाशन सन् १६०४ में भारतीयमित्र प्रेस कलकत्ता से हुआ था। इस संस्करण के लिये गुप्तजी ने निम्नलिखित प्रतियों की सहायता ली थी :–

१. संवत् १८६४ की कलकत्ता की प्रति।

२. संवत् १६४५ की मथुरा की छपी हुई लीथो की प्रति।

इनमें कलकत्ते की प्रति अधिक शुद्ध और प्रामाणिक है।

नन्ददास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ भँवरगीत है। यह भँवरगीत, भ्रमरगीत शब्द का अपभ्रंश है। गोपियों के लिए उद्धव के द्वारा भेजा हुआ कृष्ण–सन्देश कृष्ण–काव्य के कवियों को बड़ा रूचिकर था। इसी का वर्णन भ्रमरगीत या भँवरगीत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका भँवर गीत उद्धव के उपदेश से ही प्रारम्भ हो जाता है :–

ऊधो को उपदेस सुनो ब्रजनागरी। रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।।

प्रेम धुजा रस रूपिनी उपजावनि सुख पुंज।
सुन्दर स्याम विलासिनी नववृन्दावन कुंज।। सुनो ब्रजनागरी ...।

भ्रमरगीत का छन्द रोला और दोहा के मिश्रण से बनाया हुआ एक नवीन छन्द है। इस छन्द के अन्त में १० मात्रा की एक छोटी से पट्टी है जिसमें भावपूर्तिके साथ छन्द की संगीत–पूर्ति भी होती है। यह छन्द संभवतः सूरदास से ही लिया गया ज्ञात होता है, क्योंकि सूरदास ने पदोंके अतिरिक्त इस छन्द में भी भ्रमरगीत लिखा है।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अन्तिम दस मात्रा की पंक्ति नन्ददास की मौलिक पंक्ति है। यह पंक्ति छन्द को बहुत मधुरता दे देती है। इस पंक्ति का प्रयोग सत्यनारायण कविरत्न ने भी अपने "भँवरगीत" में किया है।

नन्ददास ने अपने भँवरगीत में गोपिकाओं की विरह दशा का करूणापूर्ण चित्र खींचते हुए ब्रह्म, माया और जीव की जो विवेचना की है वह उनके पाण्डित्य की परिचायिका है। हिन्दीके समस्त भ्रमरगीतों में नन्ददास का भँवरगीत दार्शनिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है।

नन्ददास के ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि वे भक्ति के साथ कवित्व में भी पारंगत थे। काव्य–शास्त्र में उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने काव्य की अनेक शैलियों में रचना कर अपनी बहुलता और काव्य–ज्ञान का प्रमाण दिया है। रासपंचाध्यायी में उन्होंने भक्तिमय रहस्यवाद का परिचय देते हुए रीति–शास्त्र का पाण्डित्य भी पदर्शित किया। कृष्ण गोपी चित्रण में आध्यात्मिक संकेत के साथ श्रृंगार रस के लिए नायक–नायिका का आलम्बन अनेक गुणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। उद्दीपन में ऋतु–वर्णन है! शैली की दृष्टि से पंचाध्यायी खण्ड काव्य की कथा–वस्तु लिए हुए हैं! अलंकार और छन्द का प्रयोग, भावों की अनुगामिनी भाषा का महत्त्व नन्ददास के कवित्व का गौरव है। अतः ज्ञात होता है कि वे श्रेष्ट भक्त के साथ ही रीति–शास्त्र के भी आचार्य थे। रस मंजरी में तो उन्होंने नायिका भेद ही लिखा है। उन्होंने केशव की भाँति अपनी प्रतिभा को पाण्डित्य के कठिन पाश में जकड़ नहीं दिया। नन्ददास पर रीतिशास्त्र का उतना ही प्रभाव हैं जहाँ तक कि उनकी भक्ति–भावना को अनियंत्रित रूप से प्रकट करने की आवश्यकता है। इसके लिये उनका शब्द चयन और अलंकार प्रयोग सुरूचिपूर्ण है। नन्ददास यमक और अनुप्रास के पण्डित हैं, पर उनका अनुप्रास पदमाकर के "मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद–मंद मारूत मुहीत मनसा की हैं" के समान नहीं है। अनुप्रास प्रवाह का सहायक है बाधक नहीं। कहीं कहीं शब्दों का स्वरूप अवश्य विकृत हो गया है। दूराय (तिनके भूत भविष्य हौ जानत कौन दूराय) (दूसरे के अर्थ में, बेकारी) लिए फिरत मुख जोग गोठ काटत बेकारी "व्यर्थ के अर्थ में तथा हमरो के लिए "हमारा" "हम्हारो" आदि अप्रयुक्त शब्द देखे जा सकते हैं।

नन्ददास ने जिस प्रकार काव्य रचना की है, उससे ज्ञात होता है कि गीत गोविंद के रचयिता जयदेव और पदावली के रचयिता विद्यापति से अधिक प्रभावित थे।

-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

नन्ददासजी के जीवन चरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा

डा. दीनदयाल गुप्त

नन्ददास का निवास स्थान भक्तमाल में रामपुर जाति "सुकुल" बताई है। २८४ वैष्णवन की वार्ता में इन्हें सनाढ्य कहा है। नन्ददास के दीक्षा गुरू गो. श्रीविट्ठलनाथजी थे। इनका अध्ययन गंभीर था, विद्वता के कारण इनका बड़ा मान था। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और उनको हिन्दी भाषा से बडा प्रेम था ... उन्होंने दशमस्कन्ध की कथा संस्कृत से हिन्दी में इसलिए की कि संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उसका आनन्द उठा सके।... पर ब्राह्मणों के संकुचित विचार तथा स्वार्थपरता के कारण उसका अधि-कांश भाग नष्ट कर दिया।

भक्तमाल, भक्तमाल की टीकाएँ, भक्तनामावली आदि ग्रंथ नन्ददास के वैराग्य लेने और उनके वल्लभ सम्प्रदाय में जाने की घटना का कोई उल्लेख नहीं करते। इस प्रसंग को केवल २५२ वैष्णवन की वार्ता तथा अष्ट सखान की वार्ताएँ देती हैं।

.... वल्लभ सम्प्रदाय में स्थायी रूप से आने के बाद, उनका जीवन कृष्ण–भक्ति तथा गोकुल और गोवर्धन पर स्थित मन्दिरों की कृष्ण मूर्तियों के दर्शन और सेवा में ही बीता। उनकी जीवन–चर्या केवल भगवद् चर्चा तथा पद और छन्द रचना कर भगवान के समक्ष गाने में ही थी। इसी बीच में नन्ददास ने अनेक ग्रंथों की रचना भी की। उनकी संख्या २८ हैं।

.... वार्ता साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नन्ददास पुष्टिमार्गीय थे। उन्होंने अपने गुरू गोसाईं विट्ठलनाथजी की स्तुति करते समय पदों में तथा अन्य ग्रंथों में अपने साम्प्रदायिक विचारों का उल्लेख किया है, यह व्यक्त सिद्धान्त लेखक के विचार से, वल्लभ सिद्धान्तों से पूर्ण साम्य रखते हैं... नन्ददास अद्वैत ब्रह्म को मानते थे, अनेक स्थानों पर उन्होंने श्रीकृष्ण के परब्रह्म लेने के भाव को व्यक्त किया है।

नन्ददास के मतानुसार ईश्वर अजन्मा है। उसको किसी ने उन्पन्न नहीं किया, वह अनन्त रूप होते हुए भी एक है, वह जगत का निभित्त व उपादान दोनों का कारण है। वह ज्योति रूप भी है, जिसका योगी ध्यान करते हैं। वह प्रेम रूप भी है, और रूपनिधि तथा नित्य भी। भक्तजन इस प्रेम रूप का ध्यान करते है। इस प्रकार नन्ददास ने ईश्वर में अनेक धर्मो का आरोप कर उसे धर्मी बताया और उसके व्यक्त–अत्यक्त आदि धर्मो को बताकर उसे विरूद्धधर्मत्वका आश्रय कहा। ये विचार वस्तुतः वल्लभ सिद्धान्तों के अनुसार ही हैं।

नन्ददास ने ईश्वर विषयक अपने भाव श्रीकृष्ण की अनेक स्तुतियों में प्रकट भी किये हैं। ... इन्होंने वल्लभाचार्य के अद्वैत ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया है। परब्रह्म

श्रीकृष्ण के विश्वरूप, ज्योतिरूप, रसरूप, जीवरूप, जगतरूप आदि की अनेकता में जिस एकता को उन्होंने प्रतिपादन किया है वह न तो शंकर के केवलाद्वैत से साम्य रखती है और न रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से ... नन्ददास आदि अष्टकवियों ने कहीं भी ईश्वर की इस प्रकार की विशिष्ट अद्वैतता का उल्लेख नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि उनका मत शुद्धाद्वैत के ही अनुकूल है।

नन्ददास ने कृष्ण के अतिरिक्त कृष्ण के अन्य अवतार राम, नरसिंह आदि में भी अपनी आस्था प्रकट की है। वे यह भी मानते हैं कि परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने पूर्णरस रूप से इस ब्रज में तथा धर्म संस्थापन के लिये वासुदेव, राम, आदि चौबीस नाना अवतारों के रूप में, इस लोक में, अवतार धारण करते हैं। नन्ददास ने कृष्ण की उपासना के अतिरिक्त कृष्ण की पूर्ण आनन्दशक्ति राधा की भी उपासना की है। उन्होंने अनेक पद युगल–रूप की लीला और स्तुति में भी लिखे हैं।

-'अष्टछाप एवं वल्लभ सम्प्रदाय' ग्रंथ से

अष्टछाप कवियों में नन्ददास

✍ डा. नगेन्द्र

अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का स्थान काव्य सौष्ठव और भाषा की प्रांजलता की दृष्टि से सूरदास के बाद समझना चाहिये। नन्ददास बहुमुखी प्रतिभा के भक्त कवि थे। इनके जीवन वृत्तांत के विषय में भी बहुत बधिक मतभेद पाया गया है। इनका कुछ परिचय "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" और "अष्टसखान की वार्ता" में उपलब्ध होता है। इन वार्ताओं के आधार पर यह प्रतीत होता है कि नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य बनने से पूर्व लौकिक वृत्ति के व्यक्ति थे। इनका निवास स्थान रामपुर लिखा है। इन्हीं वार्ताओं में नन्ददास को तुलसीदास का भाई बताया गया है।

नन्ददास का जन्म १५३३ ई. में उत्तरप्रदेश के सूकर क्षेत्र (सोरों) के रामपुर गाँव में हुआ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। सोरों से उपलब्ध सामग्री के अनुसार इनके पिता का नाम जीवनराम था और चाचा का आत्माराम। इन्हीं आत्माराम के पुत्र तुलसीदास थे। तुलसीदास और नन्ददास ने शैशव से सोरों में रहकर ही नृसिंह पंड़ित से संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित किया था। नृसिंह पंड़ित रामानन्दीय सम्प्रदाय के रामोपासक थे। अतः नन्ददास ने प्रारम्भ में रामभक्ति को ही स्वीकार किया। ऐसी मान्यता है कि सोरों से नन्ददास भी तुलसीदास के साथ काशी चले गये और वहाँ रहकर अनेक शास्त्रों का अध ययन करते रहे। वहीं रहते हुए उन्होंने एक यात्री दल के साथ द्वारिका यात्रा के लिये प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग में भटक गये और स्त्री के प्रति अनुरक्त होकर गोकुल पहुँचे।

गोकुल में उनकी भेट गोस्वामी विट्ठलनाथ से हुई और वहीं पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद नन्ददास की जीवन दिशा ही बदल गयी। लौकिक रागात्मक सम्बन्धों से दूर हटकर वे सच्चे कृष्णभक्त हो गये। गोस्वामी विट्ठलनाथ के साथ कथा–वार्ता में उनका समय व्यतीत होने लगा। इन्हीं दिनों वे गोवर्द्धन में सूरदास के सम्पर्क में आये और सूर की भक्ति भावना को देखकर उनका शास्त्र मोह भंग हुआ। कहतें हैं कि सूरदास के आग्रह से ही वे पुनः अपने गाँव रामपुर आये थे और कमला नामक कन्या से विवाह कर सद्गृहस्थ के रूप में जीवन व्यतीत करने लगे। अपने गाँव में उन्होंने "श्यामसर" नाम से एक तालाब का निर्माण कराया। जीवन के अन्तिम दिनों में वे पुनः गोवर्द्धन आ गये और १५८३ ई॰ के लगभग मानसीगंगा के तट पर उनका देहावसान हुआ।

नन्ददासजी ने विधिवत शास्त्रानुशीलन किया था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके द्वारा रचित पन्द्रह ग्रंथों को देखकर उनका रचना–वैविध्य स्पष्ट हो जाता है। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार है –अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखड़ी, दशम स्कन्ध भाषा, गोवर्द्धनलीला, नन्ददास पद्यावली।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रंथ परिमार्जित ब्रजभाषा में है। मधुर और परिचित शब्दों का चयन कवि की विशेषता है। नन्ददास को "जड़िया" कहा जाता है, जिसका कारण उनका सुन्दर एवं उपयुक्त शब्द चयन ही है। बानक, लुनाई, रावी, नौकि, आनि आदि प्रचलित शब्दों का सुष्ठु प्रयोग "जड़िया" नन्ददास में भरा पड़ा है। लोकोक्ति–मुहावरों पर भी कवि का पूर्णाधिकार था। संगीत में प्रवीण होने के कारण शब्दों के चयन में लय, स्वर आदि का ध्यान रखने में उनके काव्य में प्रांजलता और प्रवाह की सृष्टि हुई है। सरस एवं मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना में जैसी ललित एवं मोहक पदावली नन्ददास के काव्य में मिलती है, अष्टछाप के सूर के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलती।

-हिन्दी साहित्य का इतिहास

श्रीनन्ददास

श्री गुलाबराय

नन्ददास– इनके जन्म संवत् के संबंध में बड़ा मतभेद है। डा॰ श्यामसुन्दरदासजी स॰ १५६० मानते हैं। श्री प्रभुदयालजी मितल, पं॰ कण्ठमणि शास्त्री सं॰ १५७० मानते हैं। गो॰ गोकुलनाथजी ने अपने "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में इनको गोस्वामी तुलसीदास का भाई बताया है। गोस्वामीजी के ही अनुकरण में इन्होंने श्री मद्भागवत की कथा पद्य में लिखी हैं। श्री गोस्वामीजी से दीक्षित नन्ददास के साथ ही वृन्दावन जाने पर तुलसीदासजी ने श्रीकृष्ण की मूर्ति

के सामने यह प्रसिद्ध दोहा कहा था–

"कर मुरली उर माल पट, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेउ हाथ।।"

तुलसीदास और नन्ददास के भाई–भाई होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। तुलसीदास के भाई होने की बात चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर अवलम्बित है। "भक्तमाल" में इनको चन्द्रहास का भाई कहा गया है। "चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम–पथ में पगे" और गोसाईं चरित में इनको तुलसीदास का गुरू भाई बताया गया है। "सिच्छा गुरू बन्धु भये तिहिते।" इसलिए यह बात अनिश्चित हो जाती है। सोरों की सामग्री के अनुसार नन्ददासजी तुलसीदासजी के चचेरे भाई और गुरू भाई दोनों ही ठहरते हैं। वे सौरों के पास रामपुर गाँव में रहते थे। जिसका नाम उन्होंने पीछे से श्यामपुर कर दिया था। सौरों में एक परिवार है जो अपने को नन्ददासजी का वंशज बतलाता है। रामपुर के निवासी होने का उल्लेख भक्तमाल में भी है। अष्टछाप के सभी कवियों में सूरदास को छोड़ कर इनकी अधिक प्रसिद्धि है। इनके लिए कहा जाता है – "और कवि गड़िया, नन्ददास जड़िया।" इन्होंने एक एक पद को काटछांट कर उसे नगीने का–सा सौन्दर्य प्रदान किया है। शब्दों के चयन और संगठन तथा उनमें ध्वन्यात्मक अर्थगाम्भीर्य भरने में वे सिद्धहस्त हैं। इनकी रास पंचाध्यायी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें भगवान की रासलीला का बड़ा सुन्दर, प्रवाहमय और सजीव भाषा में वर्णन है। उसकी उत्साहपूर्ण गति का चित्रण हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, देखिए –

छवि सों निर्तनि, पटकनि, लटकनि, – – – मण्डल डोलनि।

इसी प्रकार नन्ददासजी ने ध्वनि के भी सुन्दर चित्र दिये हैं, देखिए –

नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकै सुर जुरली।।
मृदुल मधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि।।

पहले उद्धरण में नन्ददास टवर्ग प्रधान ओज गुण को भी श्रृंगार का सहायक बनाने में सफल हुए हैं। गोपियों के दैन्य दिखाने में कवि ने अलंकारों के आडम्बर से मुक्तसरल भाषा द्वारा भवभूति की करूणा को भी लज्जित–सा कर दिया है।

कह घटि जैहै नाथ ! हरत दुख हमरे हिय के।" इस पंक्ति में अपार करूणा के साथ अमित दैन्य मिश्रित है।

नन्ददासजी ने रासपंचाध्यायी को लौकिक श्रृंगार वर्णन के रूप में नहीं लिखा है। वे रासलीला को गोलोक की नित्य लीला का ही अंग मानते हैं। "नित्य रास रमनीय नित्य गोपी बल्लभ", इस दृष्टिकोण से कम से कम भक्तों के लिए नन्ददास के श्रृंगारिक वर्णनों की एन्द्रिकता उद्वेगजनक नहीं होती। लौकिक दृष्टि से भी रास पंचाध्यायी के

वर्णन बडे सजीव और सरस हैं। इनकी भाषा में अनुप्रास और पद विन्यास का विशेष सौन्दर्य है। सूरदास जी ने चलती हुई भाषा का स्वाभाविक माधुर्य दिखाया है और नन्ददासजी ने उसे शब्दालंकरों से विभूषित कर दिया है। पंचाध्यायी के अतिरिक्त १. भ्रमरगीत, २. अनेकार्थमंजरी ३. मानमंजरी नाम माला, ४. रसमंजरी, ५. श्याम सगाई, ६. रूक्मणी मंगल, ७. भाषा दशम स्कन्ध आदि नन्ददासजी के बहुत से ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय के संग्रह में प्रकाशित हो गये हैं। इनमें भ्रमरगीत अधिक लोकप्रिय है। इनमें भावुकता के साथ दार्शनिकता और तार्किकता का भी प्राधान्य है। जहाँ सूरदासजी की गोपियाँ अपने स्त्रियोचित सरलतापूर्ण सरस निजी अनुभव की तीव्रता के सामने उद्धव के तर्क को ठहरने नहीं देती वहाँ, नन्ददासजी की गोपियों में बुद्धिवाद का बाहुल्य है। उन्होंने उद्धव को दर्शन की ही तर्कभूमि में पछाड़ने का प्रयत्न किया है। उनमें भावुकता और हास्य–व्यंग्य की भी कमी नहीं है। देखिए –

जो उनके गुन नाहि, और गुन भये कहाँ ते। बीज बिना तरू जमें, मोहि तुम कहो कहाँ ते।
वा गुन की परछांह ही, माया दर्पन बीच। गुन ते गुन न्यारे भये, अमलबारि मिलि कीच।

सखा सुनि श्याम के।

-हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

नन्ददास

✍ ब्रजेश्वर वर्मा

नन्ददास ने भंवरगीत की रचना की। उसकी छन्दशैली तो ''सूरसागर'' से ली गई है, किन्तु उसमें पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धान्त तथा दार्शनिक पक्ष अधिक मुखर हो गया है। नन्ददास 'भागवत' की ओर भी अधिक झुकते दिखाई देते हैं। नन्ददास का भ्रमरगीत अपेक्षाकृत बहुत छोटी रचना है।

सूरदास के 'भ्रमरगीत' में 'भंवरगीत' के आकार–प्रकार के कम से कम दो प्रसंग पृथक और स्वतंत्र रूप से इंगित दिये जा सकते हैं।

-हिन्दी साहित्य कोश भा-२

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री नन्ददास

✍ डा. विजयेन्द्र स्नातक

अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का स्थान काव्य सौष्ठव और भाषा की प्रांजलता की दृष्टि से सूरदास के बाद समझना चाहिए। नन्ददास बहुमुखी प्रतिमा के भक्त कवि थे। इनके जीवनवृत के विषय में भी बहुत अधिक मतभेद पाया जाता है।

नन्ददासजी ने विधिवत् शास्त्रानुशीलन किया था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके द्वारा रचित पन्द्रह ग्रन्थों को देखकर उनका रचना वैविध्य स्पष्ट हो जाता है।

'अनेकार्थमंजरी' एक प्रकार का पर्याप्त कोश ग्रन्थ है। इनके मंगलाचरण में शुद्धाद्वैत सम्बन्धी दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है। 'मानमंजरी' में भी 'अमरकोश' के आधार पर शब्दों के पर्यायवाची ही लिखे गये हैं। चमत्कार यह है कि छन्द की प्रथम पंक्ति में पर्यायवाची है और दूसरी में कवि ने उस शब्द का प्रयोग कर दूती द्वारा राधा के श्रृंगार का वर्णन किया है। यह ग्रंथ नन्ददास के भाषा विषयक प्रौढ़ज्ञान और पांडित्य का द्योतक है। 'विरहमंजरी' भावात्मक काव्य है। इसमें कृष्ण के वियोग में एक ब्रजवासी की विरह दशा का वर्णन है। किसी कथानक के बिना केवल काल्पनिक वियोग को ही भावात्मक शैली से वर्णित किया गया है। इसमें बारहमासा शैली भी है। 'रूपमंजरी' नन्ददास का लघु आख्यान काव्य है। असमें 'रूपमंजरी के प्रति कृष्ण प्रेम को जार भाव से निरूपित करते हुए दूती इन्दुमती के साहाथ्य का वर्णन किया गया है। 'सुदामाचरित' की कथा 'श्रीमद्भागवत' से गृहीत है। इस लोकप्रिय कथानक को कवि ने कृष्णभक्ति के फलक पर अवस्थित कर सख्य भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। काव्य की दृष्टि से रचना साधारण है।

'रासपंचाध्यायी' नन्ददास की श्रेष्ठ कृतियों में गिनी जाती है। इसमें लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। बाहय रूप में यह काव्य लौकिक गोपी प्रेम को ही लेकर चलता है, किन्तु प्रच्छन्न रूप से आध्यात्मिक कृष्ण प्रेम भी इसमें अनुस्यूत है जिसे भक्तगण सहज ही पा लेते है। वियुक्त आत्मा (गोपी) रासलीला के माध्यम से रस रूप परमात्मा (कृष्ण) से मिलने के लिए प्रयत्नशील है। ''रासपंचाध्यायी'' भाषा, विषय प्रतिपादन शैली कवि कल्पना काव्य सौन्दर्य और मौलिक उद्भावनाओं की दृष्टि से नन्ददास की 'जडिया' उपाधि को सार्थक बनाती है।

'भँवरगीत' नन्ददास के परिपक्व दर्शन ज्ञान, विवेक बुद्धि तार्किक शैली और कृष्ण भक्ति का परिचायक काव्य है। इसके पूर्वार्द्ध में गोपी उद्धव संवाद है और उत्तरार्ध में कृष्ण प्रेम में गोपियों की विरह दशा का वर्णन है। इस रचना का मूल उद्देश्य निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना का खण्डन करते हुए सगुण साकार कृष्ण की भक्ति की स्थापना करना है।

पूर्वार्द्ध कवि की विचार वृत्ति का द्योतक है और उत्तरार्द्ध रागात्मिका सरस वृत्ति का परिचय देता है। दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। 'भागवत पुराण' में वर्जित भाव भी कवि की वाणी से नवीन एवं मोहक रूप धारण करके ही आये है। यह रचना नन्ददास के पांडित्य का भी निदर्शन है।

"सिद्धान्तपंचाध्यायी" कृष्ण की रासलीला से संबन्ध रखने वाली रचना है। इसमें कृष्ण, वृन्दावन, वेणु, गोपी, रास आदि शब्दों की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। रासलीला के आध्यात्मिक पक्ष के उद्घाटन में इस ग्रंथ से अच्छा प्रकाश पडता है।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रंथ परिमार्जित ब्रजभाषा में है। मधुर और परिचित शब्दों का चयन कवि की विशेषता है। नन्ददास को 'जडिया' कहा जाता है जिसका कारण उनका सुन्दर एवं उपयुक्त शब्द चयन ही है। 'बानक, तुनाई, रावरे, नीकी, आनि आदि प्रचलित शब्दों का सुष्ठु प्रयोग 'जडिया' नन्ददास से भरा पडा है। लोकोक्ति मुहावरों पर भी कवि का पूर्णाधिकार हैं। संगीत प्रवीण होने से शब्दों के चयन में लय, स्वर आदि का ध्यान रखने से उनके काव्य में प्रांजलता और प्रवाह की सृष्टि हुई है। सरस एवं मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना में जैसी ललित एवं मोहक पदावली नन्ददास के काव्य में मिलती है, अष्टछाप के कवियों में सूर के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलती।

-हिन्दी साहित्य का इतिहास

नन्ददास

✍ विजयेन्द्र स्नातक

नन्ददास-- कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों में सूरदास के बाद नन्ददास का स्थान है। ये सूरदास जी के समकालीन थे। इनका रचना काल सं॰ १६२५ माना गया है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य "रासपंचाध्यायी" की रचना रोला छन्द में की है। इनकी कविताओं की भाषा बडी सहज और प्रवाहमयी है। "पंचाध्यायी" के अतिरिक्त इनके "भ्रमरगीत", "अनेकार्थ मंजरी", "रसतंजरी", "स्याम सगाई". तथा "रूक्मिणी–मंगल" आदि ग्रंथ भी बडे प्रसिद्ध हैं। इनमे "भ्रमरगीत" अधिक लोकप्रिय है। इनकी भाषा की गति और सजीवता देखिए –

छवि सों निर्तनि, पटकनि, लटकनि, मंडल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसकनि, मंजुलता थेई, थेई बोलनि।।

-हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति

नन्ददास

✍ क्षेमचन्द्र सुमन

नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ के मुख्य शिष्य थे। कुछ विद्वानों की सम्मति में ये गोस्वामी तुलसीदास के भाई लगते थे, किन्तु इनका प्रवल प्रमाण नहीं है। कहते हैं कि युवावस्था में ये वासनापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ के सत्संग और आशीर्वाद से इनके चित्त की वृत्ति उधर से हट गई और भगवान की ओर आकर्षित हुई। इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं हैं जिनमें रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी, रूपमंजरी, मायामंजरी, रसमंजरी, विरहमंजरी, भ्रमरगीत, गोवर्द्धनलीला, श्याम सगाई, रूक्मिणी मंगल, सुदामा चरित, भाषा दशम स्कन्ध तथा पदावली अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के काव्य लालित्य है। इनकी रचनाएँ केवल भगवद्–भक्ति की न होकर विभिन्न दिशाओं में प्रवृत्त हुई हैं। इनके भ्रमर–गीत का एक पद इस प्रकार है –

जो उनके गुन होय, वेद क्यों नेति बखानै। निरगुन सगुन आत्मा–रूचि ऊपर सुख सानै।
वेद पुराननि खोज कै पायो कतहुँ न एक। गुन ही कै गुन होहि है तुम कहे अकास हि टेक।

सुनो ब्रजनागरी

-हिन्दी साहित्य का इतिहास

सूरदास और नन्ददास की गोपियाँ

✍ डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी

वैष्णवकवियों, विशेषकर भक्तों की कविता की आलोचना करना आग से खिलवाड़ करना है। सूरदास या नन्ददास कविता नहीं करते थे, भजन गाते थे। वे साहित्यिक सृष्टि करने के उद्देश्य से नहीं गाते थे, गाते थे साधना के लिए। साधना भी ब्रजतत्व की, जहाँ लौकिक रस बिल्कुल विपर्यस्त हो जाते हैं। ब्रजतत्व में जो काम है, वही प्रेम है (भक्ति प्रकरण देखिए) जो प्रेम है वही राग है, जो राग है वही भक्ति है। इसी ब्रजतत्व की आलोचना करने का अधिकार सबको नहीं है। हम लोग दुनियावी प्रेम और काम के समुद्र में आजीवन निमज्जित रहते हैं और मौके बेमौके इन वैष्णव कवियों की प्रेम लीला गान सुनकर उन पर बरस पड़ते हैं। आज इस बीसवीं शताब्दी के विशेष युग में, जब भी कोई साधना स्थायी रूप से अग्रसर नहीं हो पाती है, हमने काम और प्रेम की परिभाषा

की है और बडे–बडे तत्व खोज निकाले हैं। ब्रजतत्व का मर्मज्ञ भक्त विश्वास करता है कि वहाँ काम और प्रेम दो चित्र नहीं है। इस युग के साहित्य सूर इसे सच समझे या झूठ, वह यही समझकर भजन करता है। उसी प्रेम तत्व की आलोचना में प्रवृत्त होते समय हम गोलोकवासी वैष्णव भक्त से प्रार्थना करते है कि "है वैष्णव कवि, तुम्हारी प्रेमलीला का वास्तविक रहस्य न समझते हुए भी इतना हम जानते हैं कि वह हमारी काम और प्रेम की परिकल्पनाओं से परे है। उस मूक प्रेम तत्व के संबंध में हम एकदम मौन रहेंगे। देखेंगे केवल उस प्रेम की दिशा–वह किधर से आया था। किधर गया था, यह प्रश्न हमारी आलोचना की अपेक्षा नहीं रखता। वह निश्चय ही राधिका–रानी और ब्रजराज की ओर चला गया था।"

सूरदास और नन्ददास, दोनों एक ही सम्प्रदाय के साधक थे दोनो ने ही भक्तजनों के हृदय पर आसन पाया हैं और दोनों का समय करीब करीब एक ही है। इन दोनों महात्माओं ने भ्रमरगीत तथा उद्धव और गोपियों के संवाद लिखे हैं। इन संवादों में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का मार्ग सहज और महान बताया गया है। योग और निर्गुण उपासना की जगह सगुण उपासना की महिमा प्रतिष्ठित की गई है। दोनों संवादो के पात्र, कथा, विषय और प्रणाली एक ही है। यह कहना शायद अनुचित न होगा कि इन दोनों संवादों का उद्देश्य भी एक ही है। अतः यह देखना शायद अनुचित न होगा कि इन संवादों के वर्णित प्रेम–मार्गो में कुछ विशेषता है या नहीं।

नन्ददास की गोपियाँ सूरदास की गोपियों से अधिक तार्किक है। निर्गुण उपासना का प्रसंग हो या योग का, वे उद्धव की युक्तियों का इस खुबी से खंडन कर देती है कि सिखाये–पढ़ाये उद्धव निरूपाय होकर दूसरा विषय छेड देते हैं।

उद्धव कहते हैं -

जो उनके गुन होंय बेद क्यों नेति बखानैं,
निर्गुन सगुन आतमा रचि ऊपर सुख सानैं।
बेद पुराननि खोजि कै पायौ नहिं गुन एक,
गुनहूँ के गुन होहिं जौ कह अकास किहि टेक।

–सुनो ब्रजनागरी।।१६।।

गोपियाँ जवाब देती हैं -

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँतें,
बीज बिना तरू जमै मोहि तुम कहो कहाँ तें।
वा गुन की पट छाँहरी माया दर्पन बीच,
गुनतें गुन न्यारे भये अमल बारि मिलि कीच।

–सखा सुन स्याम के।।२०।।

तर्क में नन्ददास की गोपियाँ सदा उद्धव से बीस रहती हैं।

इस प्रसंग में कुब्जा के प्रति उपालंभ भी ध्यान देने योग्य है। नन्ददास की गोपियाँ कुब्जा की खूब खबर लेती हैं। वे कुब्जा का नाम स्मरण करते ही आपे से बाहर हो जाती हैं –

कोउ कहै रे मधुप तुम्हें लज्जा नहि आवै। सखा तुम्हारो स्याम कूबरी नाथ कहावे।
यह नीची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय। अब जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय।
– (भरत कह बोल को)

कोउ कहै हो मधुप स्याम जोगी तुम चेला। कुब्जा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहि। इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहि.
. . पधारो रावरो।

और इतना कह चुकने के बाद –

ता पाछे इक बार ही रोई सकल ब्रजनारि। हा करूनामय नाथ, हा केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यौ !

नन्ददास की ये गोपियाँ दुनिया को जानती हैं। वे प्रत्येक बात की छानबीन करती हैं। कितनी करूणाजनक कल्पना है यह ! प्रेममूर्ति गोपियों को छोड़कर करूणा निधान भगवान कुब्जा से प्रेम करने लगे। यह सोचना भी भयानक है– फाटि हियरौ चल्यो ! उद्धव ने ठीक समझा –

ये सब प्रेमासक्त हैं कुल-लज्जा करि लोप।
धन्य ए गोपिका।

-सूरसाहित्य

नन्ददास

देवी शरण रस्तौगी

ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में नन्ददासजी के जन्मस्थान तथा जन्म संवत् आदि के बारे में अनुमान से ही काम लिया जाता है। उनके जीवन की अन्य घटनाओं के आधार पर उनका जन्मकाल सं० १५६० के लगभग ठहरता है। 'भक्तमाल' के अनुसार इनका निवास स्थान रामपुर नामक ग्राम था और वार्ता के अनुसार पूर्व देश का कोई ग्राम था। जाति के सबंध में इतना कहा जा सकता है कि यह किसी उच्च जाति के ही थे। कहीं पर उनको शुक्ल, कहीं पर सनौढिया कहीं पर कान्य कुब्ज ब्राह्मण लिखा है। यह भी कहा जाता है कि यह तुलसीदास के भाई थे।

नन्ददासजी रसिक थे। अपनी स्त्री से विरक्त होकर काशी में तुलसीदास के पास गये थे। तुलसीदासजी ने इनको रामानन्द सम्प्रदाय का अनुयायी बनाने का प्रयत्न किया। एक बार कुछ व्यक्तियों के साथ रणछोड जी के दर्शन के लिये चल पड़े। रास्ते में द्वारिका का मार्ग भूलने पर चलते–चलते सिहनद ग्राम में पहुँच गए थे। वहाँ के एक साहूकार की स्त्री अत्यन्त रूपवती थी। उस पर मोहित हो गये। साहूकार आचार्य विट्ठल का अनुयायी था। वह इनसे पीछा छुडाने के लिये सपरिवार गोकुल के लिये चल पड़ा। पीछा नन्ददास ने भी किया किन्तु यमुना पर आकर जब नाविक ने इन्हें पार उतारने से मना कर दिया तो वहीं यमुना तट पर बैठकर भक्ति भाव से यमुना–यश–गान करने में लग गये। बाद में आचार्य विट्ठलनाथ ने अपने पास बुलाकर पुष्टिमार्ग में इनको दीक्षित कर लिया। पुष्टि–मार्ग में दीक्षित होने के पूर्व ही यह उस स्त्री के मोह पाश से यमुना–यश–गान करते समय छूट गये थे। तब से लेकर अन्त तक यह आचार्य विट्ठल की सेवा मे श्रीनाथजी में ही बने रहे। कहते हैं कि इस बीच में कुछ समय के लिये वह गार्हस्थ जीवन बिताने की इच्छा से अपने घर भी गये परन्तु बाद में बिल्कुल विरक्त होकर आचार्य जी की सेवा में ही लग गये।

प्रसिद्धि इन्होंने काफी प्राप्त की। वार्ता के अनुसार बीरबल स्वयं इनसे मिलने आया था। इनकी भक्ति–भावना से प्रभावित होकर अकबर ने भी इनको बुलवाया था। इनका गोलोकवास अकबर तथा बीरबल के जीवनकाल में ही हो गया था-। डा॰ दीनदयाल गुप्त ने सबल युक्तियों के आधार पर इनका मृत्यु–संवत् १६३६ ठहराया है।

नन्ददास ने पर्याप्त मात्रा में साहत्यिक सृजन किया। उनकी सभी रचनाएँ उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं से अनुप्राणित है।

सूरदास के भ्रमरगीत तथा नन्ददास के "भंवरगीत" में आपस में बड़ा भारी अन्तर है। सूर भावुक अधिक थे और उन्होंने भ्रमरगीत संबंधी गीतों की रचना अलग से नहीं की थी। इसके विपरीत नन्ददासजी भावुक होने के साथ–साथ सैद्धान्तिक भक्ति–भावना से भी काफी परिचलित होते थे और उन्होंने "भंवरगीत" की रचना एक प्रकार के खंड काव्य के रूप में की थी, अतएव उनका भ्रमरगीत अधिक सुव्यवस्थित दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त नन्ददास ने अपने भ्रमरगीत में आद्योपांत संवाद–शैली को अपना कर उसकी मर्मस्पर्षिता को द्विगुणित कर दिया है। एक बडा भारी अन्तर यह भी है कि नन्ददास उद्धव के ज्ञानोपदेश से भ्रमरगीत प्रारंभ करते हैं, पर सूरदास ने इससे पूर्व की सभी बातों को लिखा है। कृष्ण का वृन्दावन वासियों की बातें याद करके व्याकुल रहना, उद्धव के हाथ सन्देश भेजना, उद्धव का ब्रज में प्रवेश, गोपियों का एकत्रित होना। जै़सा कि पहले कहा जा चुका है, नन्ददास अपनी भक्ति भावना में सैद्धान्तिक थे, इसलिए भ्रमरगीत मे उन्होंने तर्कों के द्वारा ज्ञान योग का खंडन कराया है। सूर की गोपियाँ व्यंग तथा विनोद द्वारा स्थान–स्थान पर निर्गुण मार्ग की निस्सारता प्रकट करती हैं पर नन्ददास की गोपियाँ शास्त्रीय तर्कों द्वारा अपनी प्रेम लक्षणा भक्ति को "मुक्ति" प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन सिद्ध करती है। अन्त में स्वयं उद्धव कहते हैं :–

जो ऐसैं मरजाद मेटि मोहन को ध्यावै। काहै न परमानन्द प्रेम पदवी को पावै।।

ज्ञान योग सब सरम तैं परे ही साँच, हौं यहि पटतर देत हो हीरा आगै काँच।।

. . विषमता बुद्धि की।।

नन्ददास के काव्य का भाव–पक्ष तो सबल है ही पर साथ ही कला–पक्ष भी अत्यन्त पुष्ट है। इसके पद–लालित्य तथा शब्द चयन के संबंध में तो प्रसिद्ध भी हो चुका है कि और कवि गढिया, नन्ददास जड़िया।'' कहीं पर तो इनकी शब्द योजना अत्यन्त सुन्दर बन बड़ी है।

-हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

नन्ददास का "भंवरगीत" : बुद्धिपक्ष की न्यूनता का पूरक

✍ राजनाथ शर्मा

''अष्टछाप'' के लगभग अन्य सभी कवियों ने किसी न किसी रूप में ''भ्रमरगीत'' प्रसंग को लेकर रचनाएँ की हैं। आराध्य के प्रति प्रेम की तीव्रता दिखाने का यही एक मात्र एवं सशक्त माध्यम मुक्तक–काव्य के लिए उपयुक्त हो सकता है। ''अष्टछाप'' के अन्य कवियों की इस प्रसंग से संबंधित रचनाओं से नन्ददास का ''भंवरगीत'' सर्वाधिक लोकप्रिय है। नन्ददास का ''भ्रमरगीत'' इस प्रसंग की उस न्यूनता का पूरक है, जिसे सूर की कमजोरी कहा गया है। सूर की गोपियाँ जो तर्क उपस्थित करती हैं, वे प्रतिपक्षी की विचार पद्धति की ''अव्यावहारिकता'' पर ही निर्भर करते हैं और ये तर्क शास्त्र सम्मत नहीं हैं, अतः बुद्धिवादियों को उनसे पूर्ण संतोष नहीं हो पाता। सूर के ''भ्रमरगीत'' के बुद्धिपक्ष'' की इसी न्यूनता का पूरक–नन्ददास का ''भंवरगीत'' माना गया है।

नन्ददास की गोपियों का बौद्धिक स्तर सूर की गोपियों के बौद्धिक स्तर से बहुत ऊँचा है। इसी कारण उनके तर्क सूक्ष्म एवं शास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित है। वे प्रेम के साथ–साथ तर्क और प्रमाण का आधार मानकर चलती हैं। नन्ददास अपनी गोपियों के इसी तार्किक स्तर को शास्त्र–प्रमाणिक दिखाकर उद्धव के ज्ञानमार्ग का शास्त्रीय दृष्टिकोण से खण्डन करना चाहते हैं। परन्तु इसका अभिप्राय नहीं कि उनका काव्य भाव–प्रवण नहीं है। नन्ददास के ''भंवरगीत'' का आधा भाग गोपियों के विरह का चित्रण करता है और आधा उद्धव–गोपी संवाद का है। प्रथम भाग में कवि बुद्धिवादी है और अन्तिम भाग में सूर के ही समान उसमें भावुकता का प्राधान्य रहता है।

तर्क–वितर्क की मनोहर छटा दिखाकर अन्त में नन्ददास भी सूर के ही स्वर में बोल उठते हैं, क्योंकि ज्ञान का संबंध बुद्धि से है, और भक्ति का प्रधानतः हृदय से। केवल बुद्धि द्वारा भक्ति की श्रेष्ठता प्रदर्शित करना असम्भव था, इसलिए नन्ददास को भी अन्त में भावुकता का ही आश्रय लेना पड़ा–क्योंकि वे स्वयं भावुक थे, भक्त थे और भक्ति के क्षेत्र मे तर्क का कोई स्थान नहीं रहता।

अन्य कृष्ण–भक्त कवियों में परमानन्ददास, कृष्णदास अधिकारी, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी आदि ने भी भ्रमरगीत प्रसंग को लेकर विभिन्न छन्दों मे रचनाएँ की हैं। इस सब का सार भी वही रहा है जो सूर और नन्ददास का था–वही ज्ञान पर भक्ति की छाप। सभी ने गोपियों के विरह वर्णन को प्रमुखता दी है; परन्तु नन्ददास की सी तर्क पद्धति इनमें से किसी में भी नहीं मिलती। इनमें सर्वत्र भावुकता का ही प्राधान्य रहा है। नन्ददास के तर्क के आधार पर, अपने तर्कों को शास्त्रीय मतों से पुष्ट करते हुए ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ दिखलाया है। इसे ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता और उपलब्धि माना जा सकता है।

-साहित्यक निबन्ध

भ्रमरगीत परम्परा में नन्ददास

डा. लक्ष्मीनारायण चातक

✍ डा. राजकुमार पाण्डेय

हिन्दी काव्य की भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास के बाद नन्ददास का ही नाम विशेष उल्लेखनीय है। नन्ददास ने भँवरगीत नाम से केवल ७५ छन्दों की रचना की है। इसके उपरान्त २६ वें पद में गोपियों के समक्ष कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। ४४ वें पद तक गोपियों के विरह की मार्मिक उद्‌भावना है। इसी समय भ्रमर का प्रवेश हुआ तथा उसी के साथ उपालम्भ–काव्य का प्रारम्भ हो जाता है। ६० वें पद में गोपियों का रूदन और ६६ वें पद तक उद्धव का मानसिक द्वन्द्व एवं विचार परिवर्तन को प्रस्तुत किया गया है। इसमें कृष्ण और उद्धव का संवाद है जिसमें उद्धव कृष्ण के व्यापक और ईश्वरीय रूप के दर्शन करते हैं और भँवरगीत यही समाप्त हो जाता है। नन्ददास ने श्रीमद्‌भागवत के भ्रमरगीत के परम्परागत तथ्यों की रक्षा करते हुए अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं का समावेश भी इसमें किया है। 'उद्धव का उपदेश सुनौ ब्रजनागरी' से प्रारम्भ होने वाला यह भँवरगीत उद्धव–गोपियों के बीच बौद्धिक तर्क–वितर्क के द्वारा निर्गुण–सगुण भक्ति–मार्ग की विवेचना करता है। नन्ददास के भँवरगीत से ही भ्रमरगीत छन्द का अविष्कार भी माना जाता है। डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने सूरदास के भ्रमरगीत से ही भँवरगीत में तर्क के अतिरिक्त दार्शनिकता का भी प्राधान्य है। उनके

भँवरगीत में कुब्जा का नाम तो आया किन्तु राधा का नाम कहीं नहीं मिलता। भावुकता की दृष्टि से भी नन्ददास की गोपियाँ सूर की गोपियों से पीछे नहीं हैं। उलाहनों की दृष्टि से भी इस काव्य में विदग्धता है। उद्धव द्वारा निरूपित ईश्वर–रूपी कृष्ण में भी वे छल–कपट, लाभ आदि अवगुण ढूँढ निकालती हैं।

नन्ददास ने भी अन्त में उद्धव को भक्ति–मार्ग के सामने विनत होते दिखाया है। यह सूरदास का अनुकरण नहीं है। डा॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने बताया कि सूर तर्क में संक्षिप्त है। अतः गोपियाँ जब उद्धव को तर्क में परास्त कर देती हैं तब हमें एक विशेष प्रकार से सन्तोष होता है क्योंकि सूरदास में करूणा बहुत अधिक है और उपहास करते समय सूर तर्क नहीं देते। वह केवल प्रतिपक्षी की विचार पद्धति की अव्यवहारिकता पर ही प्रहार करते हैं, किन्तु नन्ददास ने गोपियों का बौद्धिक स्तर बहुत ऊँचा कर दिया है जिससे अस्वाभाविकता भले ही आई हो, परन्तु 'बुद्धि–तत्व' अधिक होने से नन्ददास की गोपियों के विरह–वर्णन में नन्ददास भावुकता के सागर में डुबकियाँ लगते भी नजर आते हैं। नन्ददास की गोपियाँ दर्शन की प्रतीक बन गई हैं। जहाँ भी वे निर्गुण का खण्डन करती हैं वहाँ वे अधिक बौद्धिक बन गई हैं। उनका कहना है कि जब ईश्वर ही निर्गुण है, तब संसार में गुण अए कहाँ से ?

इस प्रकार नन्ददास का भँवरगीत गोपियों को बुद्धितत्व से युक्त करके प्रस्तुत करता है।

-साहित्यिक निबन्ध

नन्ददास

सुरेशचन्द्र गुप्त

कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

कविवर नन्ददास अष्टछाप के एक प्रमुख कवि हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण के विषय में सरस और मधुर काव्य की रचना की है। इस दृष्टि से उन्होंने कृष्ण की रासलीला और भ्रमरगीत प्रसंगों को लेकर 'रास पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' नामक रचनाएँ उपस्थित की हैं। उन्होंने अपने भावों को संक्षिप्त और मार्मिक रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने अपना काव्य मुक्तकरूप ब्रजभाषा में लिखा है। उनकी भाषा स्वच्छ, मधुर और साहित्यिक है। उनकी शैली भी चुभती हुई, आकर्षक और प्रवाहपूर्ण है।

-आधुनिक हिन्दी निबन्ध

नन्ददास का भँवरगीत (भ्रमरगीत)

✍ डा. गोविन्द त्रिगुणायंत

विद्वानों की धारणा है कि सूर के भ्रमरगीत में एक कमी थी, वह यह कि उनके भ्रमरगीत में गोपियों का बौद्धिक स्तर अधिक ऊँचा नहीं उठ पाया है। नन्ददास ने अपने 'भँवरगीत' मे सूर की इस कमी को पूरा करने की चेष्टा की है। किन्तु सूर पर किये गये इस आक्षेप से मैं सहमत नहीं हूँ। गोपियाँ साधारण ग्रामीण बालाएँ थी। उनसे ऊँचे बौद्धिक स्तर की अपेक्षा करना अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। मैं तो यह कहूँगा कि नन्ददास के भ्रमरगीत में यही दोष है कि उनकी गोपियाँ सहृदय नारियाँ न रहकर तर्कमयी शिक्षित नारियों के रूप में चित्रित की गयी हैं। उद्धव गोपियों को समझाते हैं

जो उनके गुन होय बेद क्यों नेति बखाने ?

तो गोपियाँ तुरन्त पूछती है–

जो उनके गुन नाय और गुन भये कहाँ ते ?

कहीं–कहीं तो नन्ददास की गोपियाँ बहुत कटुक्तियाँ कह देती हैं। एक स्थल पर वे कहती हैं –

यह नीची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय।
अब जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय।।

सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना–

सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीत एक ही परम्परा के कवियों द्वारा लिखे गये हैं, किन्तु फिर भी दोनों में निम्न अन्तर दिखाई पड़ते हैं –

१. सूरदास के भ्रमरगीत में भाव–प्रवणता का अतिरेक है और नन्ददास के भ्रमरगीत में तर्कबल अधिक दिखाई देता है।

२. सूर के भ्रमरगीत में मर्मस्पर्शिता की मात्रा नन्ददास के भ्रमरगीत की अपेक्षा कहीं अधिक है। उसका कारण यह है कि नन्ददास का भ्रमरगीत प्रयत्नज काव्य प्रतीत होता है, वह उनकी आत्मा की निर्बाध अभिव्यक्ति नहीं मालूम होता। उसमें हमें कवि के बौद्धिक व्यायाम का चमत्कार प्रधान मिलता है और ऐसा लगता है कि सूर से होड़ लेने के लिए उन्होंने अपना भ्रमरगीत लिखा था और उनके चिन्तन–प्रधान व्यक्तित्व ने सूर के भ्रमरगीत में जिस अभाव का अनुभव किया था, उसकी पूर्ति कर के अपना वैशिष्ट्य दिखाने की चेष्टा की है।

३. सूर की गोपियाँ नन्ददास की गोपियों से अधिक शिष्ट, अधिक सहृदय, अधिक भावुक तथा अधिक मधुर हैं।

४. सूर का भ्रमरगीत उद्देश्य–विशेष से लिखा गया है। उस उद्देश्य का हम पहले भी उल्लेख कर आए हैं। वह उद्देश्य था – निर्गुण ज्ञान–मार्ग और सगुण–निर्गुण योग–मार्ग के ऊपर सगुण प्रेम–मार्ग की विजय दिखाना। नन्ददास का उद्देश्य था – सूर के भ्रमरगीत पर अपने भ्रमरगीत की विजय दिखाना। इन्हीं उद्देश्य–भेदों के कारण ही दोनों के भ्रमरगीतो में अनेक अन्तर दिखाई पडते हैं।

-नवीन साहित्यिक निबंध

नन्ददास

श्यामचन्द्र कपूर

इनके जन्म संवत् के विषय में बड़ा मतभेद है। श्यामसुन्दर दास जी इनका जन्म संवत् १५६० वि॰ मानते हैं। प्रभुदयाल मितल पं॰ कण्ठमणि शास्त्री १५७० वि॰ स्वीकार करते हैं। गोस्वामी गोकुलनाथ ने अपने "दोसौ बावन वैष्णव की वार्ता" में इनको गोस्वामी तुलसीदासजी का भाई माना है। गोस्वामीजी के अनुकरण में ही इन्होंने श्रीमद्भागवत की पद्य कथा लिखी। तुलसीदास ने (नन्ददास के साथ में वृन्दावन जाने पर) श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने निम्न दोहा कहा था –

कर मुरली उर माल पट, भले बने हो नाथ
तुलसी मस्तक तव नवै, धनुष बाण लेउ हाथ॥

कोई ऐतिहासिक प्रमाण ऐसा नहीं है जिसके आधार पर नन्ददास को तुलसीदासजी का भाई माना जा सके। यह अनुमान केवल "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" वर ही आधारित है। "भक्तमाल" में इनको चन्द्रहास का भाई बताया गया है –

"चन्द्रहास अग्रज सुहद परम–प्रेम–पथ में पगे।"

इससे स्पष्ट है कि इनके भाई का नाम चन्द्रहास था। "गोसाईंचरित" में इन को तुलसीदास का गुरूभाई कहा गया है। देखिये –

"सिच्छा गुरू बन्धु भये तिहिते।"

सौरों में उपलब्ध सामग्री के अनुसार ये तुलसीदास के चचेरे–भाई और गुरू भाई दोनों ही ठहरते हैं।

अष्टछाप के सभी कवियों में सूर को छोडकर इनकी अधिक प्रसिद्धि है। इनके विषय में निम्न पंक्ति विख्यात है–

"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

प्रसिद्ध है कि इन्होंने एक–एक पद को काट–छांटकर ऐसा संवारा है कि उसमें नगीनों का–सा सौन्दर्य समाविष्ट हो गया। शब्दों के सुन्दर चयन एवं संगठन तथा उनमें ध्वन्यात्मक अर्थगाम्भीर्य भरने में वे निपुण है। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ रोला छन्द में रचित "रासपंचाध्यायी" है। इसमें भगवान् की लीला का वर्णन प्रवाहमय और सजीव भाषा में हुआ है। उसकी पंक्तियां पढ़ते–पढते एक चित्र–सा हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, देखिए –

छवि सों निर्तनि, पटकनि, लटकनि, मण्डल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसकनि, मंजुलता थेई–थेई बोलनि।।
अब ध्वनि–चित्रा का भी एक उदाहरण देखिए –
नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकै सुर जुरली।।
मृदुल मधुर टंकार, ताल, झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्रा की तार भँवर गुंजार रली पुनि।।

गोपियों की देन्य–भावना के प्रदर्शन में कवि ने अलंकारों के आडम्बर से मुक्त सुबोध भाषा द्वारा भवभूति की करूणा को भी मात दी है। निम्न पंक्ति में अपार करूणा के साथ दैन्य–भाव अपारता भी है –

कह घटि जैहै नाथ ! हरत दुख हमरे हिये को।

नन्ददास की भाषा में अनुप्रास और पद–विन्यास का सौन्दर्य सर्वत्र मिलेगा। सूर ने चलती (बोलचाल की) भाषा के स्वाभाविक माधुर्य का समावेश किया है तो इन्होंने उसे शब्दालंकारों से सजा दिया है।

डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके विषय में लिखा है– "निःसन्देह नन्ददास बहुत उच्चकोटि के भावुक भक्त थे, परंतु सूरदास की भाँति सहज कवित्व से ही सन्तुष्ट नहीं होते थे। उन्होंने भक्ति सिद्धान्तों का अध्ययन और मनन किया था। उनकी रचनाओं में विद्याध्ययनजन्य ग्रन्थिलता वर्तामान है। उनकी भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है, विचार–पद्धति शास्त्रीय और पुष्टिमार्ग सम्मत है–सूरदास की गोपियों में जिस प्रकार का अशिक्षित पटुत्व और सारल्य शब्द–माधुर्य पाया जाता है वैसा नन्ददास की गोपियों में नहीं पाया जाता है। भ्रमरगीत मे उद्धव के तर्को को सुनकर वे शिथिलवाक् होकर परास्त नहीं हो जाती, बल्कि आगे बढ़कर उत्तर देती है और तर्क को तर्क से काटने का प्रयत्न करती हैं।

-हिन्दी साहित्य का इतिहास

भक्त श्रीनन्ददास जी

श्री नन्ददास भक्तिरस के पूर्ण मर्मज्ञ और ज्ञानी थे। उनका जन्म वि॰ संवत् १५७० में हुआ था। गोसाईं विट्ठलनाथजी ने उन्हें अष्टछाप में गौरवपूर्ण स्थान दिया था। उनके पिता का नाम जीवाराम और चाचा का नाम आत्माराम था, वे शुक्ल ब्राह्मण थे, रामपुर ग्राम के निवासी थे। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी उनके गुरूभाई थे, नन्ददास उनको बड़ी प्रतिष्ठा,सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे युवक होने पर उन्हीं के साथ काशी में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे।

वे गोसाईंजी के परम पवित्र दर्शन से धन्य हो उठे। गोसाईंजी ने उनको नवनीतप्रिय का दर्शन कराया, नन्ददास की काव्य वाणी ने भगवान् की लीला रसानुभूति का मांगलिक गान गया। वे भागवत हो उठे, उनके हृदय में शुद्ध भगवत्प्रेम की भागीरथी बहने लगी। श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ ने उन्हें गले लगाया। नन्ददास ने गुरू–चरण की वन्दना की, स्तुति की। उनकी भारती के स्वरमय सरस कण्ठ ने गुरूकृपा के माधुर्य से उपस्थित वैष्णव–मण्डली को कृपार्थ कर दिया।

उन्होंने गोसाईं जी के चरण कमल के स्थायी आश्रय के लिये उत्कट इच्छा प्रकट की। श्री वल्लभनन्दन का दास कहलाने में उन्होंने परम गौरव अनुभव किया। नन्ददास ने उनके चरण–कमलों पर सर्वस्व निछावर कर दिया। उनका मन भवान् श्रीकृष्ण में पूर्ण आसक्त हो गया। उन्होंने गोवर्धन में श्रीनाथजी का दर्शन किया। वे भगवान् की किशोर लीला के संबंध में पद रचना करने लगे। श्रीकृष्णलीला का प्राणः ान रासरस ही उनकी काव्य साधना का मुख्य विषय हो गया। वे कभी गोवर्धन और कभी गोकुल में रहते थे।

नन्ददास उच्च कोटि के कवि थे। उन्होंने सम्पूर्ण भागवत को भाषा का रूप दिया। कथावाचकों और ब्राह्मणों ने गोसाईं विट्ठलनाथ से कहा कि हमलोगों की जीविका चली जायगी।

गुरू के आदेश से महाकवि नन्ददास ने केवल ब्रजलीला संबंधी पदों के और प्रधान रूप से रास–रस के वर्णन को बचा रखा, शेष भाषा भागवत को यमुनाजी मे बहा दिया। नन्ददास ऐसे निःस्पृह और रसिक श्रीकृष्ण भक्त का गौरव इस घटना से बढ गया। नन्ददास की सूरदास से बड़ी घनिष्ठता थी। महाकवि सूर ने उनके बोध के लिए अपने प्रसिद्ध ग्रंथ साहित्य–लहरी की रचना की थी।

एक दिन महात्मा सूर ने उनसे स्पष्ट कह दिया था कि 'अभी तुम में वैराग्य का अभाव है।' अतः महाकवि सूर की आज्ञा से वे घर चले आये। कमला नामक कन्या से उन्होंने विवाह कर लिया। अपने ग्राम का नाम श्यामपुर रखा, श्यामसर नामक एक

तालाब बनवाया। वे आनन्द से घर पर रहकर भगवान की रसमयी लीला पर काव्य लिखने लगे। पर उनका मन तो श्रीनाथजी के चरणों पर न्योछावर हो चुका था, कुछ दिनों के बाद वे गोवर्धन चले आये। वे स्थायी रूप से मानसी गंगा पर रहने लगे तथा शेष जीवन श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित कर दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण का यश चिन्तन ही उनके काव्य का प्राण था। वे कहा करते थे कि "जिस कविता में हरि के यश का रस न मिले उसे सुनना ही नहीं चाहिये।" भगवान् श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के वर्णन में उन्होंने जिस योग्यता का परिचय दिया, वह अपने ढंग की एक ही वस्तु है। नन्ददास ने गोपी–प्रेम का अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श अपने काव्य में निरूपित किया है। ब्रजकाव्य साहित्य में रासरस का पारावार ही उनकी लेखनी से उमड़ उठा। नित्य नवीन रासरस, सराबोर रहते थे।

रसिकों के संग में रहकर हरिलीला गाते रहने को ही वे जीवन का परमानन्द समझते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी–

रूप प्रेम आनन्द रस जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनौं ताहि।।

नन्ददासजी ने संवत् १६४० वि. में गोलोक प्राप्त किया।

-भक्त चरितांक से

श्री नन्ददास

डा. विश्भरनाथ उपाध्याय

अष्टछाप के कवियों में सूर से भी अधिक नन्ददास में वल्लभ सम्प्रदाय के विचारों को वाणी मिली है। नन्ददास सम्प्रदाय के विचारों को कविता का आवरण पहनाने में अधिक प्रवीण थे।

-हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि

अष्टछाप के कवि नन्ददास का काव्य

✍ प्रभुदयाल मीतल

नन्ददास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उनको ब्रजभाषा और संस्कृत की अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। इसके साथ ही उनको काव्य और संगीत का भी अच्छा ज्ञान था। उनके पांरभिक शिक्षा गुरू नृंसिह पंडित थे, उन्होने सूरदास से भी आवश्यक शिक्षा प्राप्त की थी, इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वाध्याय और सत्संग से अपने ज्ञान की वृद्धि की होगी।

उन्होने कीर्तन के स्फुट पदों के अतिरिक्त अनेक ग्रंथो की भी रचना की है। उनके रचे हुए अनेक ग्रंथो का नामोल्लेख खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में हुआ है। उनके अनेक ग्रंथ मुद्रित भी हो चुके हैं, उनमें 'भंवरगीत' और 'पंचाध्यायी' विशेष प्रसिद्ध है।

उनके काव्य का प्रारंभ संभवतः पद रचना के साथ हुआ था। श्री राम और हनुमान विषयक पद उनकी प्रांरभिक रचना के हो सकते है जो उन्होंने पुष्टि सम्प्रदाय में सम्मिलित होने से पूर्व रचे होंगे, इस प्रकार के कतिपय पदों में काव्य प्रौढिता का अभाव है। गो. विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेने पर उन्होंने कृष्णलीला के पदों की रचना की होगी। इस प्रकार की रचना ग्रंथ रचना के साथ ही साथ उनके अंत समय तक होती रही होगी। नन्ददास कृत लगभग ४०० पद उपलब्ध है, इनके अतिरिक्त खोज में और भी पद मिल सकते हैं। उनके पदों में राधाकृष्ण के प्रेमानुराग और रास के पद काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से अति उत्तम हैं, किन्तु नन्ददास का महत्व उनकी पद रचना की अपेक्षा उनकी ग्रंथ रचना पर आधारित हैं।

नन्ददास के नाम से अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कुछ अप्राप्य और कुछ प्राप्य हैं। अप्राप्य ग्रंथों के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे सब नन्ददासकृत हैं या नहीं। कुछ ग्रंथ कई कई नामों से प्रसिद्ध हैं। कुछ के नन्ददास कृत होने में भी सन्देह है। और कुछ ग्रंथ निश्चित रूप से अष्टछाप के नन्ददास की अपेक्षा किसी अन्य अप्रसिद्ध कृत हैं।

नन्ददास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों मे "सुदामा चरित" संदिग्ध रचना है। कुछ लोग 'नासिकेत पुराण भाषा' नामक एक ग्रंथ को भी नन्ददासकृत बताते है। ब्रजभाषा ग्रंथों की प्रांरभिक रचनाओं में चौरोसी वार्ता' और दो सौ बावत वार्ता का प्रमुख स्थान है। यदि 'नासिकेतु पुराण' नन्ददासकृत है, तब इसकी रचना उपर्युक्त वार्ता पुस्तकों से भी पूर्व होना निश्चित है। इस प्रकार नन्ददास सुकवि होने के अतिरिक्त ब्रजभाषा गद्य के भी आरम्भिक लेखक सिद्ध होते हैं और ब्रजभाषा गद्य की आरम्भिक कृति होने के कारण 'नासिकेत पुराण' का भी अनुपम साहित्यिक महत्व हो जाता है, किन्तु हमारे मतानुसार उक्त गद्य पुस्तक नन्ददास की रचना नहीं हैं।

नन्ददास की कृतियों के विवेचन से ज्ञात होता है कि उन्होंने श्रीमद्भागवत के विभिन्न प्रकरणों के आधार पर अपने प्रायः समस्त ग्रंथों की रचना की है। उन्होंने भागवत का अनुवाद न कर उसकी सामग्री का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया है और उसे कलात्मक ढंग से सजाकर उपस्थित किया है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास और नन्ददास ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने पद रचना के साथ साथ विभिन्न शैलियों में भी कविता भी है। सूरदास की भी अधिकांश रचना पदों में है, भिन्न शैलियों में कम है, किन्तु नन्ददास की रचना पदों मे कम और भिन्न शैलियों में अधिक है। वे छोटे छन्द जैसे रोला और चौपाई, लिखने के विशेष अभ्यासी थे। रोला छन्द लिखने में तो उन्होंने वह चमत्कार दिखलाया है, कि इस प्रकार की रचना उनकी निजी वस्तु बन गयी है।

नन्ददास के काव्य की दो विशेषताएँ मुख्य हैं – भाषा की मधुरता और शब्दों की सजावट। वे उपयुक्त शब्दों को कलात्मक ढंग से यथा स्थान रखने में सिद्धहस्त थे, इसलिए "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया" की उक्ति प्रचलित हो गयी है। नन्ददास भाषा कोष के भी धनी थे। उनके पास विपुल शब्द भण्डार था। वे जहाँ पर जैसा शब्द उपयुक्त समझते थे, वहाँ पर वैसा ही प्रयुक्त करते थे। इसके साथ साथ वे साहित्य शास्त्र के भी पंडित थे, अतः अपने शब्दों को साहित्यिक ढंग से रखने में भी वे समर्थ थे।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के उपरान्त नन्ददास की ही विशेष प्रसिद्धि है। उनका टकसाली काव्य ब्रजभाषा साहित्य का श्रृंगार है। नंददास में दो गुणों की प्रधानता है। ये दोनो गुण हैं माधुर्य और प्रसाद। माधुंर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा हुआ है। शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर है और न लंबे चौडे समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है, वह भी बहुत थोड़े शब्दो में और सुंदता के साथ।

नन्ददास के काव्य का साहित्यिक महत्व सर्वविदित है किन्तु उसका धार्मिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। उन्होंने अपने रस पूर्ण कथन में पुष्टि संप्रदाय के सिद्धान्तों को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। उनके काव्य की यह भी विशेषता है कि इसमें सर्वत्र धार्मिकता और साहित्यिकता का गंगा जमुना की भाँति संगम हुआ है। इस दृष्टि से उनकी रचनाओं में रस मंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी विशेष उल्लेखनीय हैं।

-ब्रजसाहित्य माला से

नन्ददास का भ्रमरगीत

✍ डा. कृष्णदेव झारी

नन्ददास ने ज्ञान, योग – मार्ग और निर्गुण का खण्डन करके प्रेम लक्षणा भक्ति की स्थापना की है, जसमें ज्ञान, साधना आदि छुट जाते हैं और प्रेम तथा समर्पण ही सब कुछ माने जाते हैं। भागवत में गोपियों की विरह व्यथा भी वैसी सजीव एवं साहित्यिक नहीं बन पाईं, जैसी सूरदास, नन्ददास आदि हिन्दी कवियों के भ्रमरगीत में है।

नन्ददास ने खण्ड काव्य के रूप में अपने प्रसिद्ध भँवरगीत की रचना की। दार्शनिक तर्क पद्धति, वाकचातुर्य, भाषा शैली की कोमलता आदि विशेषताओं के कारण इनका भँवरगीत महत्वपूर्ण है। भाव प्रवणता भी इसमें पर्याप्त है। इनके काव्य में नन्द – यशोदा और उनके विरह को स्थान नहीं मिला। उद्धव सीधे आकर केवल गोपियों से ही ज्ञान कथा आरम्भ करते है। भागवत के ४६ वें अध्याय को इन्होंने नहीं अपनाया। इनकी गोपियाँ कुछ अधिक तार्किक प्रतीत होती है। इनके भँवरगीत में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त की छाप भी स्पष्ट है। दोहा–रोला के एक मिश्रित छन्द में रचित यह ७५ पद्यों का लघु काव्य है।

-साहित्यिक निबन्ध